ओ३म्

स्वर्ण जयन्ती स्मारिका

संवत् - २०३५

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम
ज्वालापुर, हरद्वार

आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार)

स्वर्ण-जयन्ती-समारोह

के अवसर पर शुभकामनायें समर्पित

स्वर्ण-जयन्ती स्मारिका

१९७८

आर्य विरक्त
(वानप्रस्थ एवं संन्यास)
आश्रम
स्थापना-अर्धशताब्दी-समारोह
के अवसर पर

३० मार्च १९७८

सम्पादक मण्डल—

श्री महात्मा आर्यभिक्षु
श्री कल्याणस्वरूप बी० ए०
पं० विद्यानिधि सिद्धान्तालंकार
डा० हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार

सम्पादक—

कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री

चार आश्रमों के प्रति श्रद्धा आर्य सभ्यता का मुख्य अंग है। किन्तु आश्रम व्यवस्था के प्रति निष्ठा प्रायः लोप ही हो चुकी थी कि वैदिक मर्यादाओं की ओर सहसा ध्यान आकृष्ट करने का दिव्य सन्देश ले कर देश में महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव हुवा। उन्होंने वेद-शास्त्रों से सिद्ध किया कि गृहस्थ और संन्यास आश्रम भले ही ऐच्छिक हैं किन्तु ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थाश्रम अनिवार्य है। इसी दिशा में ऋषि की पावन प्रेरणाओं से प्रेरित होकर आर्य समाज ने अपनी शिक्षा संस्थाओं के लिए ब्रह्मचर्याश्रम प्रणाली को अपनाया। इसके लिए श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करके पहल की। उनके बाद तो देश भर में बहु-संख्यक गुरुकुलों और कन्या गुरुकुलों की स्थापना हुई जो आज भी आश्रम प्रणाली के प्रति देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किये हुए हैं। ... कि ... ने ... स्वीकार कर लिया है कि ब्रह्मचर्य पू... मों में रहकर ही शिक्षा-दीक्षा उत्तम हो सकती है।

किन्तु देश भर में वानप्रस्थाश्रमों की स्थापना के प्रति प्रबल प्रचार की प्रणाली नहीं अपनाई गई। आज तक भी महात्मा नारायण स्वामी जी सदृश गिने-चुने महापुरुष ही ऐसे हुए जिन्होंने इस ओर ध्यान दिया। महात्मा जी ने ५० वर्ष पूर्व जब आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर की स्थापना की थी तब उस दूरदर्शी महात्मा को भी सम्भवतः ज्ञान नहीं था कि इस आश्रम को इतनी लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि प्राप्त होगी कि आज इसमें देश के कोने-कोने से अवकाश प्राप्त उच्च पदाधिकारी, जिज्ञासु, साधक, विरक्त नर-नारी इतनी बड़ी संख्या में सत्संग में संलग्न दिखाई देंगे।

मातृ पितृ भक्ति देश में से विलुप्त प्रायः होती जा रही है, विवाहित होते ही आज के युवक संयुक्त परिवार से पृथक रह कर वृद्ध माता पिता के प्रति कर्त्तव्यों से विमुख होते जा रहे हैं। ऐसी दशा में उन सत्पुरुषों के जीवन का शेष काल कहाँ और कैसे व्यतीत हो जिन्होंने बड़ी तपस्या और शुभ संकल्पों से सन्तान सुख की कल्पनायें ली थी। तथा च उन्हें कहां ऐसा स्थान सुलभ हो जहां अपनी ही आयु के धर्मप्रेमी, शान्त मस्तिष्क सुधीजनों का सत्संग प्राप्त हो और विद्वानों सन्यासियों के सदुपदेश एवं याज्ञिकता का वाता-

वरण सुलभ हो। वैसा स्थान यदि इस देश में कहीं है तो वह आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर है।

इसी आश्रम की पचास बर्षीय उपलब्धियों प्रवृतियों और प्रगतियों की परिचायक "स्वर्ण जयन्ती स्मारिका १९७८" प्रकाशित की जा रही हैं। जो आपके हाथों में है। इसमे विद्वानों के लेखों को भी प्रस्तुत किया गया है, जिसमें इसे आर्य जगत् के स्थाई साहित्य के रुप में अवश्य ही सुरक्षित रक्खा जायगा। इस आशा एवं विश्वास के साथ यह 'स्मारिका' रूपी ग्रन्थ आर्य जगत् की सेवा में समर्पित है।

प्रयास किया गया है कि किसी लेखक को तथा आश्रमवासी को अपने उद्गार व्यक्त करने से वंचित न रक्खा जाए इसी कारण इसका कलेवर २५० पृष्ठो से बढ़कर ४०० पृष्ठों तक जा पहुँचा है। तथापि प्रभु कृपा से सीमित समय में हो इसे पूरा कर लेना सम्भव हो सका। मैं तो अतिविस्तृत कार्य क्षेत्र वाला व्यस्त चिकित्सक ठहरा–मैं यथोचित समय नहीं दे सका किन्तु आश्रम के अध्यक्ष महात्मा आर्य भिक्षु जी की प्रेरणाएं और विद्वद्वर पं० श्री निधि जी सिद्धातालंकार तथा कर्मवीर प० कल्याणस्वरुप जी मंत्री आर्य वानप्रस्थाश्रम की कर्मठता को ही इस आयोजन की सफलता का श्रेय जाता है; जिन्होंने सम्पूर्ण शक्ति और समय का सदुपयोग करके इस चिरस्मरणीय सुकार्य को सम्पन्न किया। लेख सामग्री का निरीक्षण करके यथा स्थान सन्निहित करने में गुरुकुल फार्मेसी के संचालक आर्य नेता डा० हरिप्रकाश जी आयुर्वेदालकार का सहयोग भी उल्लेखनीय रहा। मैं इन आर्य बन्धुओं के लिए हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। स्मारिका में सराहना योग्य आप सबके सहयोग का सुपरिणाम है और हर प्रकार की त्रुटियों का उत्तरदायी मैं हूं। अतः क्षमा प्रार्थी भी हूँ।

आर्य-जनता का सेवक—

कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री

प्रकाशक —

मन्त्री
आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम, ज्वालापुर
(हरिद्वार)

मूल्य : बारह रुपये

मुद्रक—

गुरुकुल कांगड़ी प्रिंटिंग प्रेस
हरिद्वार

११०० प्रतियां] [मार्च १९७८

विषय-सूची

वैदिक ज्योति के अग्रदूत; व्याकरण महानिधि; अद्वितीय गुणयुक्त;
अद्भुत स्मरण शक्ति वाले; तपस्वी; महर्षि दयानद के गुरु; प्रज्ञाचक्षु

स्वामी विरजानन्द जी दण्डी

जन्म : संवत् १८३५ निधन : संवत् १९२५

प्राक्कथन

इस आश्रम को स्थापित हुए ५० वर्ष हो गये हैं । यह आश्रम सत्य सनातन वैदिक-धर्म की मूल-भूत आश्रम-व्यवस्था के अन्तर्गत साधना आश्रम के रूप में विरक्त नर-नारियों के लिये आर्य जगत् के तपोनिष्ठ मूर्धन्य विद्वान् पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज द्वारा मार्च १९२८ ई० में गंगा नहर के पवित्र तट पर स्थापित किया गया था । इसका मुख्य उद्देश्य योग्य संन्यासियों का निर्माण करना है जो तपस्वी जीवन एवं ओजस्वी वाणी से परिव्राट् के रूप में संसार के गृहस्थ नर-नारियों का मार्ग दर्शन कर सकें । यहां की दिनचर्या में स्वाध्याय सत्सङ्ग एवं साधना का प्रमुख स्थान है जिससे आश्रमवासी अपने जीवन की उत्तरोत्तर उन्नति कर सकें ।

३० मार्च से १८ अप्रैल १९७८ तक आश्रम स्थापना अर्ध-शताब्दी महोत्सव का आयोजन किया गया है । इस समारोह का प्रदर्शन मात्र ही उद्देश्य अभीष्ट नहीं है अपितु विगत ५० वर्षों की उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में भावी कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारण करना भी है ।

किसी भी संस्था के जीवन में ५० वर्ष कुछ अधिक समय नहीं होता । विगत ५० वर्ष आश्रम के लिये बाल्यकाल के ही तुल्य हैं । इस काल में यह आश्रम असहाय अवस्था में से निकल कर साधन सम्पन्न युवावस्था को प्राप्त हो गया है । इस काल में इसने दो बड़े संघर्षों को पार करके अपनी वास्तविक स्थिति को प्राप्त कर लिया है ।

प्रथम संघर्ष स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ के साथ था । स्वामी जी इस आश्रम को मठ या महन्ती का रूप देना चाहते थे । यह महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित एवं प्रसारित निर्वाचिन पद्धति के विरुद्ध था । दो वर्ष के कठिन संघर्ष के अनन्तर निर्वाचन पद्धति के समर्थकों की विजय हुई ।

द्वितीय संघर्ष, आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश के साथ था । प्रतिनिधि सभा इस आश्रम को अपने आधीन तथा आश्रित संस्था का रूप देना चाहती थी । यह उपक्रम भी महर्षि दयानन्द की आश्रम प्रणाली के विरुद्ध था । वानप्रस्थियों और संन्यासियों की संस्था पर गृहस्थों का प्रभुत्व मौलिकता के सर्वथा विरुद्ध एक धारणा थी । दो साल के संघर्ष के पश्चात् प्रभुकृपा से सभा के अधिकारियों को सद्बुद्धि आयी और उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि आश्रमवासी अपने आश्रम का प्रबन्ध करने में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हैं और उन्हें अपने किसी विषय में भी सभा से आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहेगी । अब यह आश्रम पंजीकृत स्वयं सत्ता सम्पन्न संस्था है, किसी पर आश्रित नहीं और किसी के आधीन नहीं ।

भविष्य

बाल्यकाल में यह संस्था अपने को विकसित करने में लगी रही । स्वाध्याय, सत्संग एवं साधना द्वारा वैयक्तिक विकास पर ही अधिक बल दिया जाता रहा । आने वाले वर्षों में आश्रमवासियों की गतिविधियों को अधिकाधिक देश-हित, समाज-हित तथा धर्म-कार्य करने में प्रेरित करने का यत्न किया जायेगा ।

इस अर्धशताब्दी समारोह के अवसर पर **"स्वर्ण-जयन्ती स्मारिका"** आर्य जनता के समक्ष प्रस्तुत है। इसके माध्यम से विगत ५० वर्षों की उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण और भावी कार्यक्रम की एक रूपरेखा आपके समक्ष प्रस्तुत करने का सौभाग्य पाकर हम गौरव अनुभव करते हैं।

इस स्मारिका को विषय वस्तु की दृष्टि से चार खण्डों में विभक्त किया गया है—

१. समर्पण खण्ड

इस खण्ड में वैदिक-वर्णाश्रम-व्यवस्था के पुनरुद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर के संस्थापक महात्मा नारायण स्वामी को कुछ श्रद्धाञ्जलियां समर्पित की गई हैं। इसी खण्ड में आश्रम के भूतपूर्व प्रधान, अनथक कार्यकर्ता तथा महान् समाजसेवी, पूज्यपाद महात्मा हरप्रकाश जी के सम्बन्ध में भी कुछ लेख हैं जिनकी विशेष सूझ-बूझ से आश्रम का विस्तार हुआ। इन महामानवों की तपस्या सूझ-बूझ एवं पुण्य-प्रताप से ही इस आश्रम की स्थापना तथा प्रतिष्ठा है। आश्रम के शुभेच्छुओं की ओर से शुभकामनायें भी अन्ततोगत्वा इन्हीं के प्रति श्रद्धाञ्जलियाँ हैं।

२. सिद्धान्त खण्ड

इस खंड में वैदिक सिद्धान्तों तथा वैदिक मर्यादाओं के समर्थन में विद्वानों के विद्वत्ता-पूर्ण लेख एवं कवितायें हैं।

३. आश्रम खण्ड

इस खण्ड में आश्रम का संक्षिप्त परिचय, आश्रम का विगत ५० वर्षों का इतिहास तथा विशिष्ट परिचय दिया गया है।

४. समापन खण्ड

इस खण्ड में जनता की बधाईयाँ पुण्यस्मृतियाँ, विज्ञापन एवं परिशिष्ट सम्मिलित किये गये हैं।

आर्य भिक्षु — प्रधान

कल्याण स्वरूप — मन्त्री

आर्य-विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार), जिला : सहारनपुर
उत्तर-प्रदेश

७ मार्च, १९७८ — ऋषि बोधोत्सव (शिवरात्रि)

शुभकामनाएँ

——०००——

उपराष्ट्रपति, भारत
नई देहली
अक्टूबर १३, १६७७

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर के स्वर्ण-जयन्ती समारोह के अवसर पर एक स्मारिका प्रकाशित करने जा रहे हैं। मैं स्वर्ण-जयन्ती समारोह तथा स्मारिका की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूं।

आपका
ब० दा० जत्ती

० ० ०

प्रधान मन्त्री सचिवालय
नई दिल्ली—११

हसमुख शाह
प्रधानमन्त्री जी के संयुक्त सचिव

नं० ८२(२)/७७-पी०एम०एफ० १६ जनवरी १६७८

प्रिय श्री कल्याणस्वरूप जी.

प्रधानमन्त्री राष्ट्रीय सहायता कोष में आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु के तूफान पीड़ितों की सहायता के लिए ५००१.०० रुपये का जो अंशदान आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर (सहारनपुर) ने भेजा है इसके लिए प्रधान मन्त्री जी ने मुझ से कहा है कि मैं आपको धन्यवाद दूं। वे इस भावना की सराहना करते हैं। इस अंशदान से उन लोगों के दु:ख को कम करने में मदद मिलेगी जो दुर्भाग्यवश एक ऐसी विपत्ति में पड़ गये है जिसकी मिसाल शायद ही मिले।

वानप्रस्थ आश्रम के स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव पर मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करें।

औपचारिक रसीद नं० ७७१२६ संलग्न है।

आपका
न० स० श्रीरामन
(कृते, हसमुख शाह)

राज्यमन्त्री रक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार

सं० १४७/र०रा०म०/७७ नई दिल्ली—१३-१०-१९७७

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर की ओर से एक स्मारिका निकाली जा रही है। आपको इस कार्य में सफलता मिले, ऐसी मैं मङ्गल कामना करता हूँ।

आपका
शेरसिंह

o o o

विधान भवन
लखनऊ
२२ दिसम्बर १९७७

हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव
मन्त्री, खाद्य विज्ञान तथा प्राद्योग

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आगामी मार्च-अप्रैल में आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर की अर्ध-शताब्दी के अवसर पर एक स्वर्ण-जयन्ती स्मारिका का प्रकाशन हो रहा है।

आशा है कि प्रस्तुत स्मारिका में इस आश्रम के द्वारा किये जाने वाले लोक-कल्याणकारी कार्यों तथा उपलब्धियों पर पर्याप्त रूप से प्रकाश डाला जायगा जो पाठकों तथा आश्रमवासियों के लिये लाभदायक होगा।

मैं स्मारिका की सफलता की कामना करता हूं।

आपका
हरिश्चन्द्र

o o o

विधान भवन
लखनऊ
— दिसम्बर १९७७

लक्ष्मणसिंह
राज्यमन्त्री–नियोजन, अर्थ एवं संख्या विभाग

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आर्य वानप्रस्थ आश्रम अपनी स्थापना अर्ध-शताब्दी मार्च-अप्रैल १९७८ में बड़े समारोह पूर्वक मना रहा है तथा इस शुभ अवसर पर 'स्वर्ण जयन्ती स्मारिका १९७८' प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। मैं उपरोक्त समारोह एवं प्रकाशन की सफलता हेतु अपनी शुभकामनाएं भेज रहा हूँ।

आपका
लक्ष्मणसिंह

विधान भवन

कुंवर सत्यवीर — लखनऊ

प्राविधिक शिक्षा उपमन्त्री, उत्तरप्रदेश — ६००/ ५-१२-७७ — ३–१२–७७

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की स्वर्ण-जयन्ती स्मारिका प्रकाशित होने जा रही है।

इस आश्रम द्वारा मानव जीवन के तीसरे व चौथे आश्रम के लोगों की व्यवस्था की जा रही है, यह एक स्तुत्य और समय की मांग के अनुसार अति आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कार्य है। सब से बड़ी बात तो यह है कि प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार इसके संवासी जन-समुदाय के बीच जा कर भारतीय संस्कृति एवं जीवन के मूल्यों का प्रचार करते हैं। वानप्रस्थों और संन्यासियों "अवकाश प्राप्त लोगों" की समस्याओं का समाधान और उनका जन-हित में उनका सदुपयोग इस आश्रम की विशेषता है।

मैं इस आश्रम की सर्वतोमुखी उन्नति और इसके सेवा-कार्यों में वृद्धि और विस्तार की कामना करता हूँ।

मेरी शुभकामनायें इस स्मारिका की सफलता के लिये हैं।

भवदीय

सत्यवीर

० ० ०

सेवा कुटीर

चन्द्रभानु गुप्त — पानदरीबा, लखनऊ

१२ अक्टूबर १९७७

प्रसन्नता है कि आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर की स्वर्ण-जयन्ती स्मारिका निकाली जा रही है। खेद है कि इस स्मारिका हेतु लेख आदि नहीं लिख सकूंगा, किन्तु इतना कहूँगा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने हिन्दू समाज के उत्थान के लिये बहुत कुछ किया। आर्य समाज ने दलित-वर्ग को ऐसे अवसर पर सहारा दिया जब वे आततायियों के अत्याचार से पीड़ित होने के कारण धर्म परिवर्तन करना ही श्रेष्टकर समझने लगे थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के विचारों का जितना अधिक प्रसार एवं प्रचार हो उतना ही अच्छा।

शुभकामनाओं सहित,

आपका

चन्द्रभानु गुप्त

महात्मा आनन्द स्वामी जी की शुभकामनाएँ

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने अपने जीवन काल में कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। परन्तु मेरी दृष्टि में आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर की स्थापना करके उन्होंने आर्य जगत् पर बड़ा उपकार किया है। जङ्गलों में रहने की तो अब कोई व्यवस्था नहीं है। यह ज्वालापुर का आश्रम तीसरे आश्रम की मर्यादा को पूरा करने में लगा हुआ है। महात्मा हरप्रकाश जी ने इसको चार चाँद लगा दिये हैं। सम्पूर्ण भारत में आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर के समान सारा ही दिन सत्संग, यज्ञ और स्वाध्याय की सुविधा किसी आश्रम में नहीं है। परमात्मा ऐसी कृपा करे कि इसमें निवास करने वाले नर-नारी इससे पूरा लाभ उठायें।। आजकल जो प्रधान एवं मन्त्री महात्मा श्री आर्य भिक्षु जी एवं श्री कल्याण स्वरूप जी तथा उनके साथी वानप्रस्थाश्रम में सेवा कार्य कर रहे हैं, मैं उनको बधाई देता हूं और चाहता हूं कि वे सदा इस पवित्र कार्य में लगे रहें।

आपका
आनन्द स्वामी
५-१०-७७

° ° °

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री रामगोपाल जी वानप्रस्थ की शुभकामनाएँ

पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर की स्थापना करके, वानप्रस्थ बन्धुओं के लिए वैदिक धर्म के प्रचार हेतु संस्था का निर्माण किया था। पूज्य स्वामी जी महाराज की इच्छा थी कि इस आश्रम के द्वारा वानप्रस्थ एवं विरक्त संन्यासी देश के कोने-कोने में फैल कर वैदिक-धर्म के प्रचार व प्रसार के कार्य को गति प्रदान करें।

आज देश के सीमा एवं पर्वतीय अंचलों में विदेशी एवं विधर्मी बड़ी तेजी से धर्म परिवर्तन कर रहे हैं, जिससे भारत की पुरानी आस्थाओं को खतरा पैदा हो गया है।

नागालैण्ड, मिजोरम, दीमापुर, मेघालय, आसाम, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर-प्रदेश पर्वतीय अञ्चलों में धर्म-परिवर्तन का कार्य इस समय जोरों से हो रहा है। मुझे ऐसा लगता है कि उन लोगों का यह विचार मूर्त्तरूप धारण करता जा रहा है कि भारत में हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन होने के साथ-साथ राष्ट्रीयता परिवर्तित हो जाती है।

ऐसी स्थिति में सभा की ओर से मेरा विनम्र निवेदन वानप्रस्थी तथा संन्यासी बन्धुओं तक पहुँचा दें कि जो भाई इस महान् सेवाकार्य में सहयोग देने को तैयार हों, वे सभा को अपनी सेवायें देने का संकल्प करें। आशा है, वानप्रस्थ बन्धुओं के सहयोग से इस बाढ़ को रोका जा सकेगा।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका
रामगोपाल वानप्रस्थ
३०-९-७७

आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद

विजय निकेतन
खरड़ (निकट चण्डीगढ़) पंजाब

१-२-७८

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज आर्य समाज की एक महान् विभूति थे । उन्होंने अपने जीवनकाल में जितने भी कार्य किये वे सभी महान् थे । उन्होंने स्वामी दयानन्द जी महाराज का पावन सन्देश जन-जन तक पहुँचाने के लिए जहां अपना जीवन अर्पण कर रखा था वहां उन्होंने वैदिक-धर्म की आश्रम मर्यादा के पालन हेतु अपने जीवन काल में ही आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की स्थापना करके आर्य जगत् पर महती कृपा की थी और स्वामी जी महाराज द्वारा स्थापित इस आश्रम को एक आदर्श आश्रम बनाने के लिए जो महान् कार्य स्वर्गीय महात्मा हर प्रकाश जी ने किया वह भुलाया नहीं जा सकता और इस आश्रम को सुचारु रूप से चलाने के लिए जो कार्य माननीय आर्य भिक्षु जी और कल्याण स्वरूप जी कर रहे हैं, वह अत्यन्त सराहनीय है ।

इस आश्रम की स्वर्ण जयन्ती के शुभ अवसर पर जहां मैं इस स्मारिका के लिए अपनी शुभ-शुभकामनायें भेजता हूं वहां मैं आशा रखता हूं कि इस आश्रम को वैदिक धर्म के प्रचार का सच्चे अर्थों में एक केन्द्र बनाया जायेगा ताकि ऋषि दयानन्द के स्वप्नों के भारत के निर्माण में यह वानप्रस्थ आश्रम भागीदार हो सके और जिन उद्देश्यों को सामने रखते हुए श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने इस आश्रम की स्थापना की थी, वे सफल हो सकें ।

आपका

पृथ्वीसिंह आजाद

o o o

वीरेन्द्र एम. ए.
प्रधान
आर्यप्रतिनिधि सभा, पंजाब

जालन्धर
पंजाब

४-२-१९७८

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की स्वर्ण-जयन्ती मनाई जा रही रही है । इस अवसर पर आप एक स्मारिका भी प्रकाशित कर रहे हैं । श्रीयुत् महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा स्थापित यह आश्रम फूलता-फलता रहे यही प्रभु से प्रार्थना है ।

शुभकामनाओं सहित,

आपका

वीरेन्द्र

भगवतीप्रसाद गुप्त
बम्बई
५–२–१९७८

अध्यक्ष
केन्द्रीय आर्य-परिषद्, बम्बई

आदरणीय महात्मा आर्यभिक्षु जी,

आर्य वानप्रस्थाश्रम के स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव का समाचार जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। प्रभु आपका यह उत्सव सफल करें। आपके नेतृत्व में यह आश्रम दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करे।

आपका
भगवतीप्रसाद गुप्त

° ° °

९७ एल, माडल टाउन
करनाल

रायसाहिब चौ० प्रतापसिंह

महात्मा नारायण स्वामी ने आर्य समाज के हर क्षेत्र में सेवा की है। महर्षि जन्म-शताब्दी मथुरा, हैदराबाद सत्याग्रह, सिन्ध में सत्याग्रह, सार्वदेशिक सभा का प्रधान पद शोभित किया। साहित्य में काफी योगदान है। परन्तु सबसे बढ़ कर जो संन्यास वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की स्थापना की वह सदा उनका नाम अमर रखेगा। १९२८ में यह पौधा लगाया गया और आज एक वटवृक्ष बन गया है। आर्य जगत् के लिये यह एक तीर्थ स्थान बन गया है। यहां संन्यासी, वानप्रस्थी अपनी साधना करते हैं वहां गृहस्थी भी अपनी प्यास बुझाते हैं और तृप्त होते हैं। ब्रह्मचारी वर्ग को भी रहने का स्थान मिल जाता है।

अब तो यहाँ उपदेशक विद्यालय खोल दिया गया है, जिसकी बड़ी आवश्यकता थी। परमात्मा करें यह आश्रम फले-फूले और उच्च आदर्शों को कायम रखे। भगत सुन्दरदास जी व महात्मा हर प्रकाश का भी इस संस्था को यहां तक पहुँचाने में बड़ा योग रहा है।

आपका
प्रतापसिंह चौधरी

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम

ज्वालापुर (हरिद्वार)

*

स्वर्ण - जयन्ती स्मारिका : १९७८ ई०

*

समर्पण-खण्ड

सादर समर्पित

इस खण्ड में वैदिक - वर्णाश्रम - व्यवस्था के पुनरुद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं आर्य वानप्रथाश्रम ज्वालापुर के संस्थापक महात्मा नारायण स्वामी को कुछ श्रद्धाञ्जलियां समर्पित की गई है ।

इसी खण्ड में

आश्रम के भूतपूर्व प्रधान, अनथक कार्यकर्ता व महान् समाज-सेवी पूज्यपाद महात्मा हरप्रकाश जी के सम्बन्ध में कुछ लेख हैं जिनकी सूझ-बूझ मे आश्रम का विस्तार हुआ ।

इन महा-मानवों की तपस्या एवं पुण्य-प्रताप से ही इस आश्रम की शोभा तथा प्रतिष्ठा है ।

यह स्मारिका इन्हीं महा-मानवों को सादर समर्पित है !

*

आर्यसमाज के प्रवर्तक; वैदिकधर्म पुनरुद्धारक; आचार्यों के आचार्य; सम्राट्; परिवाट्
सकल शास्त्र निष्णात; अलौकिक एवं अद्भुत तार्किक; सर्वतंत्र स्वतंत्र

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती

जन्म : संवत् १८८१ निधन : संवत् १९४०

भारतीय तथा अन्य विद्वानों
के
महर्षि दयानन्द विषयक उद्‌गार

०००

श्री अरविन्द

वेद के भाष्य के विषय में मुझे विश्वास है कि अन्तिम पूर्ण तशरीह चाहे कुछ भी हो, पुरातन अज्ञान दीर्घकालीन गड़बड़ी और भ्रामिक अनुवादों के मध्य में दयानन्द की पैनी आँख ने सत्यता का दर्शन किया और जो आवश्यक था उस पर डट गया। उसने द्वार की चाबी ढूंढ निकाली है जिसको समय ने बन्द कर रखा था। उसने वास्तविक स्रोत को बन्दी बनाये रखने वालीं मोहरों को तोड़ कर परे फेंक दिया है, इसलिये वह इस विषय में प्रथम अनुसन्धानकर्ता के रूप में प्रतिष्ठित होगा।

डॉ० के. सी. वर्द्धाचारी

हम अनुभव करेंगे कि दयानन्द ने वह कोष जो गुम हो चुका था, भ्रामक सिद्धान्तवाद और विकृत अनुवादों के कूड़ा-कर्कट के नीचे दब चुका था, संसार को सौंप कर, कृतज्ञता के बोझ के नीचे दबा दिया है।

ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री रेम्जे मैक्डानल्ड

आर्य समाज समस्त संसार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। स्वामी दयानन्द ने इसको जीवन और सिद्धान्त दिया है। उनका विश्वास था कि आर्य जाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई पुस्तक है।

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी

महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्थान पर बहुत अधिक पड़ा है।

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महानुभावों में थे जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया है और जो उसके आचार सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के कारण हुए।

साधु टी. एल. वास्वानी

मेरे निर्बल शब्द ऋषि की महत्ता वर्णन करने में अशक्त हैं। ऋषि का अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य-संग्राम और घोर तपश्चर्या के लिए हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित हो कर मैं उनकी वन्दना करता हूँ।

कर्नल अल्काट

निस्सन्देह दयानन्द एक महामानव था। वह संस्कृत का धुरन्धर पण्डित था। उसका धैर्य अतुलनीय, आत्मिक-शक्ति अद्वितीय तथा आत्म-विश्वास अभूतपूर्व था। वह जनता का नेता था।

रोमन रेलां

वर्तमान काल में जितने महापुरुष हुए हैं, उनमें सब से बड़ा व्यक्तित्व दयानन्द का था। जितना जीवन हिन्दुस्थान में पैदा हुआ है उसके जन्मदाता ऋषिवर दयानन्द थे।

डॉ० राधाकृष्णन्

महर्षि दयानन्द ने राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उद्धार का बीड़ा उठाया। स्वामी जी ने स्वराज्य का जो सबसे पहले सन्देश हमें दिया था, उसकी आज हमें रक्षा करनी है। उनके उपदेश सूर्य के समान प्रभावशाली हैं।

लोकमान्य तिलक

स्वराज्य के वे सर्वप्रथम सन्देश-वाहक तथा मानवता के उपासक थे।

*

कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। मतमतान्तर के आग्रह से रहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता।

—महर्षि दयानन्द।

ऋषिबोध अङ्क १९४०, आर्य-गजट, लाहौर (शिवरात्रि), ४ मार्च १९४० ई०

सम्पादक – दीवानचन्द शर्मा एम. ए.

आर्य समाज के उत्सव

लेखक : महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

धन का अपव्यय, समय का अनुचित इस्तेमाल, उपदेश और व्याख्यानों का बेफ़ायदा कराना, इन सब को देखना हो तो आर्य समाज के वार्षिक उत्सवों में देखा जा सकता है।

मैं एक कान्फ्रेंस के सभापतित्व के लिए स्यालकोट गया था। मैं तो शाम को स्वास्थ्य खराब होने की वजह से अपने उतारे की जगह पर आकर लेट रहा था। सुबह मैंने सुना कि रात को बारह बजे तक जलसा हुआ और एक बैठक ही में पाँच व्याख्यान हुवे। कोई इन प्रबन्धकों से पूछे कि इतने व्याख्यान किस लिये करा दिये गये, क्योंकि कोई भी आदमी मुश्किल से एक ही व्याख्यान की बातें याद रख सकता है। फिर इन पांच व्याख्यानों का लाभ का मतलब क्या हो सकता है ? इसका उत्तर कुछ भी नहीं सिवाय इसके कि उपदेशक बहुत आ गये और उनका व्याख्यान कराना जरूरी समझा गया था। इसलिये सब के व्याख्यान कराने को वे विवश थे। उपदेशक इतने अधिक क्यों बुलाये गये ? इसलिये कि उनके अधिक संख्या में आने से उत्सव की रौनक होती है। मतलब साफ है कि उत्सव धर्म प्रचार के लिये नहीं, बल्कि रौनक बढ़ाने के लिये किये जाते हैं। एक आदमी बारह बजे रात को व्याख्यान देता है कि शारीरिक उन्नति करनी चाहिये और स्वयं लोगों की नींद खराब करके उनको सोने न देने के द्वारा उनका स्वास्थ्य खराब करने का कारण बनता है।

मेरी राय है कि जब तक इन उत्सवों का सुधार न हो उस समय तक किसी ऐसे विद्वान् को जो अपने समय को कीमती समझता और मानता है ऐसे उत्सवों में जाने से इन्कार कर देना चाहिये। किसी अवस्था में भी एक उत्सव में दो से अधिक उपदेशक और एक से अधिक भजनीक नहीं जाने चाहियें। आर्य प्रतिनिधि सभायें इन उत्सवों के कारण किसी भी जगह उपदेशक नहीं भेज सकतीं। न नये समाज बनते हैं न नये मेम्बर, पर उत्सव धड़ाधड़ हुवे जा रहे हैं। हजारों रुपया जनता का व्यर्थ खर्च किया जाता है।

मेरी सम्मति में प्रतिनिधि सभायें यदि इन उत्सवों का सुधार नहीं करतीं या नहीं करना चाहतीं तो वे नैतिक अपराधी ठहरतीं हैं। उन्हें शीघ्रातिशीघ्र इन उत्सवों का सुधार करना चाहिये।

संकलनकर्ता — महात्मा आर्य भिक्षु

त्यागी, तपस्वी, परिश्रमी

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज

लेखक : अमर स्वामी—प्रधान सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल
ज्वालापुर (हरिद्वार)

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज का पूर्व नाम श्री मुंशी नारायणप्रसाद जी था। मुरादाबाद में सरकारी सर्विस में थे। धर्मपत्नी का देहान्त हो गया था सन्तान कोई न थी। विवाह के लिए मित्रों और सम्बन्धियों ने बहुत बल दिया पर नहीं माने, बहुत लड़कियों वाले भी आये। लोगों ने विवाह के लिये बहुत आग्रह किया, पर विवाह करना स्वीकार नहीं किया। आर्यसमाज के कार्य की वहुत लगन थी, दिन-रात धर्म-प्रचार की ही धुन सवार रहती थी।

उत्तरप्रदेश में दूर-दूर के भी लोग जानते थे कि मुरादाबाद में श्री मुंशी नारायणप्रसाद जी कर्मठ और आदर्श आर्य पुरुष हैं। अंग्रेजी राज्य में सरकारी नौकरी करते हुए रिश्वत का नाम नहीं। हर काम में ईमानदारी, सचाई और तत्परता सदा विद्यमान, आलस्य और प्रमाद नाम को नहीं।

अंग्रेज अफसरों की दृष्टि में भी और भारतीयों की दृष्टि में भी श्री मुंशी जी के लिले अनुपम सम्मान था।

सरकारी नौकरी करते हुए भी आर्य-समाज और आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश के कार्यों में उनका इतना बड़ा भाग था कि सभा के सभी अधिकारी क्या, देश भर की समाजों के प्रतिनिधि भी सारे आपको जानते और सम्मान करते थे।

थोड़ा बोलना, पर बात तुली नपी, सर्वथा पक्ष-पात रहित, सत्य और समाज के हित की ही कहनो, यह उनका स्वाभाविक विशेष गुण था। पदलोलुपता, पार्टी-बाजी और बनावट से सदा दूर रहते थे।

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन

गुरुकुल की स्थिति कुछ ठीक-सी नहीं रही थी, आवश्यकता थी एक घोर परिश्रमी, त्यागी तपस्वी, सुदृढ़ और बहुत समझदार अधिष्ठाता की। चारों ओर दृष्टि दौड़ाई जाती पर कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं देता। सब समझदारों की दृष्टि श्री मुंशी नारायणप्रसाद जी पर ही ठहरती थी। वह सरकारी सर्विस में थे। सर्विस छोड़ कर गुरुकुल में आने को कौन कहे? तो भी कुछ लोगों ने साहस करके कहा कि मुंशी जी गुरुकुल वृन्दावन को आप जैसे योग्य व्यक्ति की आवश्यकता है।

कर्मयोगी; आर्य-समाज के उज्ज्वल रत्न; ऋषि-भक्त; लगनशील सेवाभावी;
गुरुकुल बृन्दावन के आचार्य; हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम के प्रथम सर्वाधिकारी

महात्मा नारायण स्वामी जी

जन्म : संवत् १९२६ निधन : संवत् २००४

स्वयं उन्होंने अनुभव किया कि ये लोग ठीक कहते हैं। तत्काल सर्विस छोड़ दी, वहुत मित्रों, हितैषियों ने रोका, समझाया कि आपकी सर्विस पेन्शन वाली है, इस को पेन्शन से पहिले नहीं छोड़ना चाहिये। गुरुकुल में इतना रुपया नहीं मिलेगा। आपने कहा – गुरुकुल से रुपया लेने का प्रश्न ही नहीं है, मैं गुरुकुल से एक पैसा भी नहीं लूंगा।

गुरुकुल को मेरी आवश्यकना है तो मैं गुरुकुल को ही अपना शेष जीवन दूंगा। सर्विस छोड़ दी और अपना जीवन गुरुकुल के लिये अर्पण कर दिया। धन्य है ऐसे महान् जीवनदानी, इनके तप और त्याग से ही आर्य-समाज उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ।

मुंशी नारायणप्रसाद से महात्मा नारायणप्रसाद

गुरुकुल में उनका तप और त्याग देख कर सारा आर्य-गजत् उनको महात्मा नारायणप्रसाद कहने लगा।

महात्मा नारायण स्वामी

वर्षों गुरुकुल की सेवा की और गुरुकुल को बहुत उच्च अवस्था में पहुँचा दिया।

जोगी चलने भले

किसी भी पद से चिपटे रहने का रोग उनमें नहीं था, गुरुकुल को अच्छा चला दिया, उन्नत अवस्था में पहुँचा कर छोड़ दिया और त्यागमूर्ति श्री स्वामी सर्वदानन्द महाराज से संन्यास की दीक्षा ले ली। नारायण स्वामी नाम हो गया और सारा आर्य-जगत् उनको 'महात्मा नारायण स्वामी' कहने लगा।

मथुरा में ऋषि दीक्षा-अर्ध-शताब्दी

सन् १९२५ के प्रारम्भ में मथुरा में महर्षि दयानन्द जी महाराज की दीक्षा-अर्ध-शताब्दी मनाई गई। देश भर के लाखों आर्य-जन उसमें इकट्ठे हुए। मैं भी क्वेटा बिलोचिस्तान में कथा कह कर वहां से मथुरा पहुँचा था।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज उस महा-मेले के अध्यक्ष थे। उनकी देख-रेख में ही सारे मेले का प्रबन्ध था। देश और विदेशों से भी आर्यजन उसमें आये हुये थे। जैसा प्रबन्ध उस मेले का था वैसा जीवन में दूसरे किसी मेले का देखा नहीं गया।

लाखों की भीड़ वाले मेले में सिग्रेट और बीड़ी देखने को भी किसी मूल्य पर नहीं मिलती थी। पान में खाने का तम्बाकू सौ रुपये तोला मांगने पर भी न मिले। एक पैसा या एक पैसे की भी

वस्तु की चोरी उस मेले में नहीं हुई । एक रुमाल भी किसी का गिर गया तो वह पूछ-ताछ कार्यालय में जमा हुआ पाया जाता था ।

मेले में स्वर्ग और सतयुग था और उसका श्रेय श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज को ही था । सारे देश के लाखों आर्य नर-नारी महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज का अद्भुत और अनुपम प्रबन्ध देख कर महात्मा जी का ही गुणगान करते हुए घरों को गये ।

उस मेले को जिन्होंने भी देखा था उनमें से जो जीवित हैं वे उस मेले की और उसके प्रबन्धक माननीय महात्मा जी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं ।

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा दिल्ली

श्री महात्मा जी सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के वर्षों तक प्रधान रहे । सार्वदेशिक सभा का कार्य बहुत ही सुचारु रूप से महात्मा जी ने चलाया । सभा के पास पर्याप्त धनराशि भी उस समय महात्मा जी के सुप्रयास से जमा हो गई ।

वे उस सभा के सदा निर्विरोध ही प्रधान निर्वाचित हुए और जब छोड़ने की इच्छा हुई तब स्वयं ही छोड़ गये ।

सार्वदेशिक संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल ज्वालापुर (हरिद्वार) का निर्माण किया । इस मण्डल के नियम और उद्देश्य बहुत सुन्दर तथा उपयोगी बनाये । उस मण्डल ने बहुत अच्छा कार्य किया, वह मण्डल अब भी बहुत अच्छा कार्य कर रहा है ।

आर्य वानप्रस्थ आश्रम भी बनाया और इसकी रजिस्ट्री उक्त सार्वदेशिक संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल के नाम ही उन्होंने करा दी थी । वह आश्रम भी अत्युत्तम कार्य कर रहा है ।

रामगढ़ जिला नैनीताल में आश्रम

अपने रहने और योगाभ्यास करने के लिये रामगढ़ जिला नैनीताल में बहुत रमणीक स्थान पर एक सुन्दर आश्रम बनाया । वहाँ अपना विशाल पुस्तकालय भी बनाया, वहां योगाभ्यास वर्षों तक करते रहे । बड़ा स्वाध्याय किया, बड़ी योग्यता प्राप्त की । अंग्रेजी पढ़े थे फ़ारसी के विद्वान् थे, परिश्रम कर के संस्कृत की भी अच्छी योग्यता बना ली ।

ग्रन्थ निर्माण

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर इन ग्यारह उपनिषदों की टीका लिखी. इनके अतिरिक्त वेद-रहस्य, योग-रहस्य, विद्यार्थी जीवन-रहस्य, मृत्यु और परलोक, प्राणायाम आदि छोटी-बड़ी कई पुस्तकें भी लिखीं ।

सन् १९३९ में हैदराबाद में देश भर के आर्य-समाजियों ने सत्याग्रह किया। इस सत्याग्रह में सब से पहले श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने ही अपने आपको गिरफ़्तार कराया था, वह गुलबर्गा जेल में थे, मैं भी उसी जेल में था। हल्दौर जिला बिजनौर के रईस लाला ठाकुरदास जी, लाला मुरारीलाल जी रिटायर्ड जज, लाला खुशहाल चन्द जी खुरसन्द और अखिल भारतीय हिन्दु महासभा के प्रधान श्री भोपतकर जी भी इनके साथ उसी जेल में थे।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज का जीवन ऐसा था, जिससे बहुत शिक्षायें ग्रहण की जा सकती हैं।

उनकी बनाई हुई दो संस्थायें अच्छा कार्य कर रही हैं उनसे लाभ उठाना और उनको लाभ पहुँचाना प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है। एक संस्था है–'सार्वदेशिक संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर। दूसरी – 'आर्यवानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)।

० ० ०

महर्षि का उद्घोष

मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं को चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण-रहित क्यों न हों उन की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे सनाथ महा-बलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की अवनति सर्वथा किया करे, इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही चले जायें तथापि इस मनुष्य रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

०००

पूज्यान् महात्मनो नारायणस्वामिनः प्रति श्रद्धाञ्जलिः

स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

ओ३म्
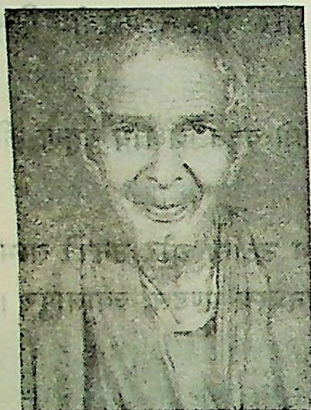
समर्पकः —

स्वामी धर्मानन्दसरस्वती विद्यामार्तण्ड
विश्ववेदपरिषदध्यक्षः
आनन्दकुटीरम् – ज्वालापुरम्

: १ :

परोपकारे सततं प्रसक्तान् दातान् प्रशान्तान् सुगुणैश्च कान्तान् ।
सप्रश्रयं तानिह संस्मरामो नारायणस्वामि महात्मनो वयम् ।।

परोपकार में निरन्तर तत्पर, जितेन्द्रिय, प्रशान्त, अपने उत्तम गुणों से कान्त (चमकने वाले) महात्मा नारायण स्वामी जी का हम आदरपूर्वक स्मरण करते हैं ।

: २ :

धर्मप्रचारे जनता सुधारे लोकोपकारे किलदत्तचित्तान् ।
तपोनिधींस्तानिह संस्मरामो नारायणस्वामि महात्मनो वयम् ।।

धर्मप्रचार, जनता के सुधार तथा लोक के उपकार में जिन्होंने अपने चित्त को लगाया हुआ था उन तपोनिधि महात्मा नारायण स्वामी जी का हम सादर स्मरण करते हैं ।

: ३ :

येषां प्रसिद्धोऽपनिषत्कथासौ श्रद्धालुवर्गाय ददातिमोदम् ।
समर्पयामः कुसुमानिभक्तेः ? श्रद्धास्पदेभ्यो मुदिताः समस्ताः ।।

जिनकी प्रसिद्ध उपनिषदों की कथा (उपनिषद् रहस्य) श्रद्धालुओं को प्रसन्नता देती है । उन श्रद्धेय महात्मा नारायण स्वामी जी के ऊपर हम श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं ।

: ४ :

वृन्दावनाचार्यपदे निषण्णान्, विनायकान् दक्षिणधर्मयुद्धे ।
वचोऽमृतैस्तर्पयतः समस्तान्, नारायणस्वामिमहात्मनो नुमः ।।

बृन्दावन गुरुकुल में आचार्य पद पर सुशोभित, हैदराबाद दक्षिण के धर्मयुद्ध में प्रथम सर्वाधिकारी के रूप में मुख्यनेता, अपने वचनामृत से सब को तृप्त करने वाले महात्मा नारायण स्वामी जी की हम स्तुति करते हैं ।

: ५ :

नेत्रग्रगण्यान् सकलार्यलोके, ज्ञानाग्निना दग्धसमस्तदोषान् ।
नारायणस्यात्र यथार्थभक्तान्, नारायणस्वामिमहात्मनो नुमः ।।

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान के रूप में अपने काल में आर्य-जगत् के सर्वोच्च नेता ज्ञानरूप अग्नि से समस्त पापों को दग्ध करने वाले, नारायण-पदवाक्य परमात्मा के सच्चे भक्त महात्मा नारायण स्वामी जी की हम स्तुति करते हैं ।

: ६ :

संस्थापितो येन सदाऽश्रमो महान्, वैखानसानां च कृते यतीनाम् ।
कुर्वन्तु यस्मिन् शुभसाधनां समे पूज्यो महात्मा न स केन वन्द्यः ?

जिन्होंने वानप्रस्थों और संन्यासियों के लिये महान् विरक्त आर्य आश्रम ज्वालापुर की स्थापना की इस उद्देश्य से कि सब उत्तम साधना को करते रहें, वे पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी किस के लिये वन्दनीय नहीं ?

: ७ :

अयं हि तस्यास्ति महोपकारः, सदाश्रमोऽयं भुवनेऽद्वितीयः ।
तद्ध्येयपूर्त्यै सकला यतन्तां, सर्वे नमस्यन्तु च तं यतीन्द्रम् ।।

इस आर्य विरक्त आश्रम की स्थापना का कार्य उनका एक महान् उपकार था । सब आश्रमवासी उनके ध्येय की पूर्ति के लिये सदा प्रयत्नशील रहें, जिससे यह आश्रम संसार में अनुपम बन जाए । सब यतीन्द्र महात्मा नारायण स्वामी जी को सादर नमस्कार करें ।

०००

नारायण स्वामी आश्रम रामगढ़ (नैनीताल) में "महात्मा नारायण स्वामी हीरक-जयन्ती समारोह" (३ से १० जून १९४५) के शुभ अवसर पर सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा की ओर से भेंट किया गया

अभिनन्दन-पत्र

श्रद्धेय स्वामिन् !

आपकी आयु के ८० वर्ष पूर्ण होने जाने पर समस्त आर्य-जगत् सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के द्वारा आपको वधाई देता और हार्दिक अभिनन्दन करता है ।

हम किन शब्दों में प्रभु को धन्यवाद दें जिसकी असीम कृपा से लोक-सेवा के उद्यान को सुवासित करने वाला आप जैसा सुगन्धित पुष्प मिला । सचमुच आर्य-समाज आप सरीखे महात्मा को पाकर अपने को धन्य मानता है । आर्य-समाज की वर्तमान और आने वाली सन्तति आपके उच्च व्यक्तित्व व निस्पृह समाज-सेवा के महान् आदर्शों मे, आनन्द विभोर हो कृतज्ञता के साथ चिरकाल पर्यन्त प्रकाश ग्रहण करेगी । आप आर्य-समाज के उन गण्यमान्य व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने आर्य-समाज की सेवा में ऊंचे से ऊंचा भाग लिया है । आपका विशुद्ध उन्नत चरित. संयमयुक्त आर्य-जीवन, विद्वत्ता, दृढ़ आत्म-स्वाध्याय, शान्तियुक्त कर्मण्यता अनुकरणीय हैं । आपके सार्वजनिक जीवन की विशुद्धता और सामाजिक कार्यों की उज्ज्वल सफलताओं का रहस्य आपके इन्हीं विशिष्ट गुणों में सन्निहित है । आपकी आर्य-सामाजिक सेवायें इतनी अधिक और विविध हैं कि इस पत्र में उन सबका उल्लेख नहीं किया जा सकता । जिस भूमि में भगवान् दयानन्द को अपने मिशन पर जाने की प्रेरणा मिली थी, संयुक्त प्रान्त की उसी पुण्य-भूमि में आपकी सामाजिक सेवाओं का सूत्रपात हुआ । संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा और गुरु-कुल वृन्दावन को नव-अंकुरित पौधों की व्यवस्था से हरे-भरे पुष्प पल्लवित वृक्षों की अवस्था तक पहुंचा देना आप ही के सदुद्योग का फल था ।

श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी मथुरा भूमण्डल के आर्यों का सबसे पहला बड़ा उत्सव था । इस यज्ञ का ब्रह्मा आप ही को बनाया गया था । सात-आठ लाख व्यक्तियों के उस महोत्सव का सुप्रबन्ध आज भी आर्य-जगत् की प्रशसा का विषय बना हुआ है । हैदराबाद का धर्म-युद्ध आपके ही नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ था और आपके ही नेतृत्व में उसमें जयश्री प्राप्त हुई ।

आपने निरन्तर १४ वर्ष पर्यन्त सार्वदेशिक सभा के प्रधान पद पर रह कर जिस लगन और तत्परता से सभा का कार्य संचालन और उसका भाग्य-निर्माण किया है वह आर्य-जगत् को भली-भांति विदित है । यदि कहा जाये कि सभा के जिस पौधे को अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लगाया था उसको आपने हरा-भरा किया है तो कोई भी अत्युक्ति नहीं होगी । आर्य-जगत् के संगठन में आज सभा को जो उच्च स्थान प्राप्त है उसका सबसे अधिक श्रेय आपको ही है । आज भी आर्य-जगत् का नेतृत्व आपके दृढ़ हाथों में सुरक्षित है ।

परम पिता आपको दीर्घायु प्रदान करें जिससे आप आर्य-समाज की और भी अधिक व बहुमूल्य सेवा करने में समर्थ हों और हम आर्य नर-नारी आपके पथ-प्रदर्शन से लाभ उठाते रहें । इसी शुभ-कामना के साथ, यह तुच्छ भेंट आपकी सेवा में सादर समर्पित है ।

—आर्य-जगत् की ओर से सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के सदस्य व अधिकारीगण

महात्मा हर प्रकाश

श्री देवदत्त मुनि, Ex, I, A.O.C.

१. बाल्यकाल

हर प्रकाश जी का जन्म २९ सितम्बर सन् १८८८ई० को राहों (जि० जलन्धर) के एक समृद्ध परिवार में हुआ इनके पिता लाला कृष्णदास खोसला पुलीस इन्सपेक्टर थे। इनके पितामह ला० सदाराम खोसला एक बड़े जमीदार थे। इनके बड़े भाई ला० सतनारायण खोसला डिपटी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस थे। इनकी शिक्षा मैट्रिक तक थी। इनकी जमीनें लायलपुर बीकानेर और राहों में थीं। उन्होंने लायलपुर में कई साल ठेकेदारी भी की और जमीनों का भी कार्य देखते थे।

२. सन्तान

उनके तीन पुत्र व दो पुत्रियां थीं बड़े पुत्र सर्व मित्र को गुरुकुल कांगड़ी में दाखिल किया। जब वह बी. ए. में पढ़ता था तब ३० अगस्त १९३० को एक जत्था लेकर शराब एवं विदेशी कपड़ों की दुकानों पर महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये सत्याग्रह के अन्तर्गत पिकटिंग करने रुड़की गया। वहां उसे हैजा हो गया और उसका देहान्त हो गया। गुरुकुल में सर्व मित्र भवन एवं उनकी फोटो मौजूद है उससे छोटा ज्ञानमित्र घर का कारोबार सम्भालने के लिए घर पर ही रहा। तीसरा पुत्र धर्म मित्र गुरुकुल कुरु क्षेत्र में नवम श्रेणी में पढ़ता हुआ बीमार हो गया, घर राहों लाया गया परन्तु ९-१२-१९३६ को स्वर्ग वासी हो गया। बड़ी लड़की कुछ साल हुए आश्रम में ही स्वर्ग वासी हुई थी। सबसे छोटी लड़की १० वर्ष की आयु में ही स्वर्ग वासी हो गई थी।

३. आर्य समाज से सम्पर्क

आरम्भ से ही आर्य समाजी थे, राहों आर्य समाज बनाने में व चलाने में इनका ही सब हाथ था, श्री गंगा-नगर आर्य समाज का हाल कमरा भी इनकी हिम्मत से बना, उस पर कई हजार रुपया खर्च हुआ। इन्होंने स्वयं भी १०००) रुपये दिये और अपने हाथों से मजदूरों का काम हाल बनते समय किया।

४. वैराग्य

सन् १९३८ में हैदराबाद सत्याग्रह में जत्था ले कर जेल गये और वहां महाशय कृष्ण जी के सारे जत्थे के Assistant Leader नियुक्त हुए। जेल में ही दाढ़ी रखी। सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा को उस समय ५००) रुपया भी दिया, जेल से वापिस आकर उन्होंने घर की चाबियां नहीं ली। यदि परिवार के लोग राहों होते तो गंगानगर चले जाते और यदि वे गंगानगर होते तो लायलपुर चले जाते। धीरे २ घर का मोह त्याग कर रहे थे।

आखिर १६-१०-१९४५ को वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया। उस समय उन्होंने जो निमन्त्रण-पत्र भेजा था। उसकी प्रतिलिपि निम्न है: —

श्रीमान् जी

सादर नमस्ते,

सेवा में निवेदन है कि मेरे गृह पर १२-१०-१९४५ से यजुर्वेद का यज्ञ आरम्भ होगा जिसमें श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज (शिष्य स्वामी सर्वदानन्द जी), श्री पण्डित हरिदयालु जी शास्त्री आर्योपदेशक तथा महाशय शमशेर सिंह जी भजनीकादि सज्जन सम्मिलित होंगे। यज्ञ की पूर्णाहुति १६-१०-१९४५ को ११ बजे प्रातःकाल होगी। १६-१०-१९४५ को ही मेरा वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश संस्कार होगा। प्रार्थना है कि आप परिवार सहित दर्शन देकर कृतार्थ करें और लाभ उठायें

समय विभाग

प्रातः प्रतिदिन ८ बजे से १० बजे तक यज्ञ
१० बजे से १०॥ बजे तक भजन
१०॥ बजे से ११ बजे तक प्रार्थना व प्रवचन
दोपहर के अनन्तर ५ बजे से ५॥ बजे तक भजन
५॥ बजे से ६ तक श्री स्वामी विवेकानन्द जी की उपनिषदों की कथा।

निवेदक :
हरप्रकाश खोसला राहों

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द जी से दीक्षा ली और उस समय २५००० रुपये का दान किया। तदनन्तर घर छोड़ कार आर्य समाज मन्दिर राहों में कुछ दिन रहे और फिर आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में आगये।

५. आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर

आश्रम में आकर वे आश्रम के संस्थापक महात्मा नारायण स्वामी जी के दायें हाथ के तौर पर कार्य करते रहे। जो लोकप्रियता यहां प्राप्त की वह आश्रम वासियों के दिए संस्मरणों से भली भांति प्रगट होती है।

आश्रम निवास के समय भी हिन्दी सत्याग्रह के समय आर्य-समाज चन्डीगढ़ २२ सेक्टर को केन्द्र बनाकर कई बार सत्याग्रह किया, जितने महीने सत्याग्रह चलता रहा एक हजार रुपये हर महीने राहों से मंगा कर देते रहे। दिल्ली में भी हिन्दी सत्याग्रह में जेल गये और वहां भी १०००) रुपये हर महीने घर से मंगा कर देते रहे।

२६ वर्ष आश्रम में रहे सिर्फ तीन बार ही बीमारी के कारण उनको घर जाना पड़ा किसी की शादी, गमी में वे कभी घर नहीं गये।

२६ अक्टूबर १९७४ को अधिक बीमार होने पर उन्हें लुधियाना दयानन्द अस्पताल में लाया गया वहां ३७ दिन रहे २३-१२-७४ को दोपहर उन्हें राहों लाया गया और रात्रि को उनका देहावसान हो गया।

जीवन के कुछ संस्मरण

आश्रम बासियों के हृदयों पर महात्मा हर प्रकाश जी के व्यक्तित्व की एक अमिट छाप है। आश्रम का प्रत्येक सदस्य वास्तव में ही उन्हें महात्मा समझता रहा है। उनके मन में स्वतः ही इस बात की प्रेरणा होती रही है कि वे उनको महात्मा के नाम से सम्बोधित करें। यहां के प्रत्येक निवासी की एक यह धारणा भी बनी हुई है कि महात्मा जी उनसे सर्वाधिक स्नेह करते थे।

यद्यपि मेरा उनसे व्यक्तिगत परिचय का संयोग नहीं हुआ था तथापि उनके प्रथम दर्शन से ही मुझे यह अनुभूति हो गई थी कि उनके दर्शन मात्र से ही किसी संतप्त मन को शान्ति की अनुभूति मिल सकती है। जब मेरा इस आश्रम में प्रवेश हुआ और महात्मा जी के दर्शन हुए तथा अन्य आश्रम वासियों से वार्तालाप हुआ तो मुझे अनुभव हुआ कि महात्मा जी एक विशाल बरगद के वृक्ष के समान हैं जिस पर हजारों पक्षी प्रतिदिन रात्रि-वेला में विश्राम के लिए आते हैं और सुख की नींद का अनुभव करते हैं। मानो वे जीवन के खेल से थक कर रात्रि में मां की गोद में विश्राम लेने को आये हैं।

पुत्र शोक से संतप्त एक परिवार महात्मा जी के अद्भुत आकर्षण से खिचा हुआ उनकी छत्र-छाया में शेष जीवन व्यतीत करने के लिये किस प्रकार आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में अपनी कुटिया बनवाता है यह आप उन्हीं के शब्दों में पढ़िये :—आर्य विरक्त वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर, शाखा न० २ में मैंने कुटिया नं० ६१ बनबाई हैं। क्यों और किस कारण से बनवाई हैं इस का विवरण नीचे लिख रहा हूं।

"मैं, कैप्टेन बालमुकन्द कपूर भारतीय सेना में था। इस समय पैंशन ले रहा हूं। मेरा पुत्र लैफ्टिनेन्ट गौतम कपूर भारतीय सेना की इन्जीनियरी ब्रांच में सर्विस करता था। सन् १९६५ में एक मोटर दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गयी। मैं सपरिवार दुःख में डूब गया। अपने दुःख को कम करने हेतु मैंने उस की यादगारी में कई धार्मिक स्थानों पर 'उसकी सर्विस का संचित पैसा' पर्याप्त मात्रा में खर्च किया, किन्तु मन में शान्ति न हुई। कई धार्मिक स्थानों पर उस की स्मृति में स्मृति चिन्ह भी बनवाये। मैं बचपन से ही अपने पूज्य पिता जी के प्रभाव से आर्य समाजी विचार का रहा हूं। दुःखियों की सुपात्र सेवा करके मन की शान्ति प्राप्त करता रहा हूं। किसी भाई ने मुझे आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में जाने का सुझाव दिया। सितम्बर १९६५ में मुझे पूज्य महात्मा हरप्रकाश जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महात्मा जी मुझ से इतनी सहृदयता तथा प्रेम से मिले कि मेरा हृदय तृप्त हो गया मैंने उनसे आश्रम में अपने निवास के लिए कुटिया बनवाने का विचार रखा। प्रथम तो उन्होंने मुझे सम्पूर्ण आश्रम दिखाया फिर कहा कि पहले मन में विचार करके देखो कि यहां का वातावरण मन के अनुकूल भी है वा नही। सोच समझकर मैंने

अदम्य-उत्साही; त्यागी तपस्वी; साधु-स्वभाव
वानप्रस्थ आश्रम के प्राण

महात्मा हरप्रकाश जी

जन्म : सन् १८८८ ई० निधन : दिसम्बर १९७४
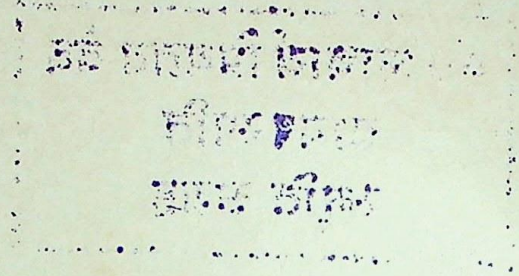
कुटिया बनवाने के लिए आवेदन-पत्र दे दिया । स्वीकृति मिल गई । कुटिया बन गई और मैं परिवार सहित यहाँ आ गया । कुटिया में फ्लश व्यवस्था काम नहीं कर रही थी। मैंने महात्मा जी से इसे ठीक करवा देने के लिए प्रार्थना की । उस समय प्रातः काल का सत्सङ्ग चल रहा था। पास ही बैठे हुए एक सत्सङ्गी प्रि श्री रामगोपाल जी उनसे कहकर फ्लश को तुरन्त ठीक करवा दिया । यह स्नेह वा सेवा केवल मेरे प्रति ही नहीं अपितु सब आश्रम वासियों के प्रति भी ऐसी ही थी ।"

० ० ०

इस आश्रम में लगभग ३०० से अधिक व्यक्ति निवास करते है इनमें कितने ही सरकार के सेवा मुक्त उच्च पदाधिकारी, सम्भ्रान्त कुलों के व्यक्ति, तथा धनी व्यवसायी सांसारिक-माया के बन्धनों को त्याग कर भगवद् आराधना में अपना शेष जीवन व्यतीत कर रहे हैं । कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें सांसारिक दृष्टि से अकिंचन वा साधारण श्रेणी में गिना जाता है । महात्मा हरप्रकाश जी सब के प्रति समभाव वरतते थे । उनकी छोटी से छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वे सदा तैय्यार रहते थे । उनके कामों को स्वयं अपने हाथों से तुरन्त कर देना उन का प्रकृति-सिद्ध स्वभाव था । इस सम्बन्ध में एक साधिका सत्यव्रता वानप्रस्था स्वर्गीय श्री मिट्ठन लाल पैन्शनर मिलटिरी मैडिकल-विभाग की विधवा पत्नी अपने संस्मरणों में लिखती हैः—

"एक दिन मैं किसी किताब के लेने के लिए उनके पास गई । वे उस समय चाय पीने को जा रहे थे । मैंने उनसे कहा कि मैंने कुछ किताबें पुस्तकालय से लेनी हैं । फिर मुझे मालूम हुआ कि महात्मा जी चाय पियेंगे तो मैंने उनसे कहा तथा एक अन्य माता जी ने भी कहा कि आप पहले चाय पी लीजिए फिर बाद में पुस्तकें दिखा दीजियेगा । परन्तु वे तुरन्त उठ खड़े हुए और आलमारी के पास जाकर उन्होंने पहले हम दोनों को किताबें दिखाईं । बाद में चाय पीने गये । उनके पास जो कोई भी जाता था तो उसका काम वे पहले करते थे । जैसे ही कहते थे वे अपने हाथ का काम छोड़कर तुरन्त ही उसका काम स्वयं ही कर देते थे । मेरा बिजली का मीटर वे स्वयं बाजार जाकर लाये थे । यही मीटर मेरी कुटिया में अब भी लगा हुआ है और प्रतिक्षण उनकी सदाशयता का स्मरण कराता रहता है ।"

महात्मा हरप्रकाश जी एक उत्साही, लगन वाले कर्मठ वीर थे । अपने कार्य के प्रति उत्साह के कारण वे अनायास ही आय ... के कार्य कलापों वा देश के सामाजिक उत्थान के कार्यों में अग्रणी बन जाते थे इस सबन्ध में आश्रम की एक साधिका वानप्रस्था चन्द्रवती पानीपत वाली अपने संस्मरणों में लिखती हैं :—

"सन् १९५७ में हिन्दी सत्याग्रह चल रहा था । मैं सत्याग्रही बनकर चन्डीगढ गई थी । मेरे साथ एक और आश्रम के साधक भी सत्याग्रही बनकर गये थे । उनका नाम श्री गोकुल पद्म था । वे अब भी आश्रम में वास करते हैं । हम को घर घर से भिक्षा मांग कर लानी पड़ती थी। सत्याग्रहियों के लिए भोजन सामग्री आटा, दाल, सब्जी वा दैनिक यज्ञ के लिए घी, सामग्री आदि हम प्रत्येक घर जाकर भिक्षा रूप में इकट्ठा करके लाते थे । महात्मा जी हमारे काम को देखकर बहुत प्रसन्न होते थे । उन दिनों महात्मा जी बहुत व्यस्त रहते थे । वे प्रातः ही २००० से अधिक पुरुषों व स्त्रियों को पहले तो प्रातराश कराते थे । फिर उनको भोजन कराना तथा सत्याग्रह के लिये तैय्यार कराना उनका प्रतिदिन का काम था । रात को भी सब सत्याग्रहियों तथा अन्य कार्य कर्त्ताओं के भोजन बनवाने तथा उनके खिलाने पिलाने का प्रबन्ध उन्हीं का उत्तरदायित्व था । सब को खिला पिला कर बचा खुचा भोजन रात के ११ वा १२ बजे खाना उनके भाग्य में लिखा होता था । इस प्रकार वे १८ घन्टे बिना किसी आराम के नित्य ही रसोई घर वा भोजनालय में व्यतीत किया करते थे । यही उनका काम भी था और अनथक पुरुषार्थ तथा लगन की वे मूर्ति थे । उनके इस अथक परिश्रम से हमें उत्साह तथा प्रेरणा मिलती थी । यह काम उन्होंने ६ मास तक लगातार किया । इतने आदमियों के खान-पान वा निवास व्यवस्था करना कितनी कार्य कुशलता तथा लगन की अपेक्षा रखता है इस का अनुमान आप स्वय कर सकते हैं ।"

० ० ०

आश्रम के एक निवासी हैं जिन्हें हम स्वामी विवेकानन्द जी के नाम से जानते हैं । वे यहां के दीर्घ-कालीन निवासी हैं प्रायः आश्रम की स्थापना के समय से ही उन्होंने यहां वास किया है उनके संस्मरण विविध हैं । आरम्भ में उन्हों

ने आश्रम के आदि रूप का जो चित्रण किया है उसे उन्हीं के शब्दों में पढ़िये : —

"मैं आश्रम में मार्च १९३० में आया था। उस समय थोड़ी ही कुटियों का निर्माण हुआ था। उस समय केवल ८ वा १० साधक ही निवास करते थे। पानी कुए से लिया जाता था। बिजली भी नहीं लगी थी। उस समय सुन्दर लाल जी तीतरों निवासी प्रधान थे। उनके बाद भगत सुन्दर दास जी ने प्रधान का पद ग्रहण किया। इन्होंने आश्रम का बहुत विस्तार किया। आस पास की भूमि खरीद कर उनके प्लाट बनाकर बेचे। इस कालोनी का नाम आर्य नगर रखा गया। इस प्रकार आश्रम के पास पर्याप्त रुपया इकट्ठा हो गया। महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने इस आश्रम की स्थापना इसलिये की थी कि मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति करे। इसके लिये उन्होंने कड़े नियम बनाये थे। ४० वर्ष से कम आयु का कोई आश्रम में निवास नहीं कर सकता था। किसी की छोटी आयु की पुत्री भी अपने माता पिता के पास नहीं रह सकती थी। वे लोग जिन्होने अपनी कुटियाए नहीं बनवाई हुई थीं और वे आश्रम में दूसरों की बनवाई हुई कुटियाओं में रहते थे उनको किसी भी कुटिया में एक वर्ष से अधिक नहीं रहने दिया जाता था। वर्ष समाप्ति पर उनको वह कुटी छोड़ देनी पड़ती थी और उन्हें अन्य कुटी दे दी जाती थी।

महात्मा हर प्रकाश जी कई वर्ष मन्त्री रहे। बाद में उन्हें प्रधान बना दिया गया। उन्होने आश्रम को बहुत बढ़ाया। उनकी इच्छा थी कि आश्रम में लोग अधिक से अधिक रहें। उनको पूरा आराम मिले। पहले पति और पत्नी दोनों ही जब आश्रम में प्रवेश लेते थे तो २ कमरे की कुटिया बनवाने का नियम था। दोनों एक ही कमरे में सोयें इस के लिए मनाही थी। फिर नियमों में ढील दी जाने लगी। आश्रम बढ़ने लगा। आश्रम की हित कामना के प्रति वे अत्यन्त जागरूक थे। एक बार की बात है वर्षा बहुत जोर से हो रही थी। मैंने देखा कि वे इधर उधर चक्कर लगा रहे हैं। हाथ में उन्होंने एक बड़ा सा बांस ले रखा है मैंने पूछा कि वे बाँस उठाये हुए इधर उधर क्यों घूम रहे हैं। उन्होने कहा कि मैं यह देखना चाहता हूं कि वर्षा का पानी बाहर क्यों नहीं निकल रहा, आश्रम में क्यों जमा हो रहा है। वे बांस लेकर नालियों में अटके हुए कूड़े को निकालने लगे। इसी तरह वे एक बार भोजनालय में बैठे भोजन कर रहे थे। मैं भी पास बैठा था। उसी समय एक आश्रम का आदमी दौड़ता हुआ आया और कहने लगा कि महात्मा जी! घाट पर (उस समय आश्रम का घाट बन रहा था) एक नहर का अफसर आया है। सुनते ही अधखाई थाली छोड़ कर वे घाट की ओर चल दिये। आश्रम के काम के आगे वे अपना निजी काम वा आराम तुच्छ समझते थे।

उनकी आश्रम के काम के प्रति इतनी तत्परता देख कर मैंने उनसे एक बार कहा कि क्या आप रात को सोते हुए भी आश्रम के स्वप्न देखा करते हैं? इस पर उन्होने तुरन्त उत्तर दिया कि मुझे रात को स्वप्न आते ही कभी नहीं।

मैंने एक बार उनसे पूछा कि आपको क्या दिन रात आश्रम की ही चिन्ता लगी रहती है? इस पर उनका उत्तर था कि वे कभी चिन्ता नहीं किया करते। मेरे मन में ख्याल आया कि विलक्षण महात्माओं की यही विशेषता होती है।

उनमें एक और भी विशेषता थी कि वे प्रतिपक्षी के रोष को अपने स्नेह तथा उदारता से विफल कर देते थे। एक दिन किसी सिलसिले में मैं उनसे मिलने गया। उन्हों ने मुझे एक पत्र पढ़ने को दिया। पत्र पढ कर मैं चकित रह गया। पत्र किसी विद्वान संन्यासी का लिखा हुआ था। पत्र में महात्मा जी की निन्दा की गई थी। उनके प्रति अपशब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया गया था तो मुझे यह बात बुरी लगी। परन्तु उन्होंने बहुत ही शान्ति से मुझे कहा कि कोई बात नहीं। वे विद्वान है और सन्यासी भी हैं बाद में जब ये महापुरुष आश्रम में पधारे तो सब से कह कर उनका सत्कार करवाया और सेवा करवाई।

वे कहा करते थे कि मेरा झगड़ा जब किसी से हुआ तो खूब खुल कर हुआ। झगड़ा समाप्त होने पर मैंने अपने मन

में कोई मैल या वैर नहीं रखा। फिर पूर्ववत् ही मैंने उनसे स्नेह वा प्रेम का वर्ताव रखा। इसका प्रमाण भी मिला : स्वामी वेदानन्द जी से महात्मा जी का झगड़ा हुआ वे आश्रम छोड़कर चले गये। बाद में जब वे किसी अवसर पर आये तब वे स्वयं ही उनके डेरे पर पहुंच गये। वहाँ से पकड़ कर उन्हें आश्रम में ले आये। उनका व्याख्यान भी कराया। और उनसे आग्रह भी किया कि जब वे हरिद्वार आयें तो इस आश्रम में ही आकर ठहरा करें। उनका साथ देने वाले कुछ अन्य आश्रम वासी भी थे। ये भी आश्रम छोड़कर चले गये थे। उनको भी वापस आश्रम में लाकर रखा। उनसे ऐसा वर्ताव बनाकर रखा कि मानो कभी झगड़ा हुआ ही न हो।

आश्रम के प्रत्येक निवासी को वे अपने ही परिवार का सदस्य समझते थे। जब कभी कोई भी बीमार पड़ जाता था तो वे उनकी सेवा शुश्रूषा बड़े प्रेम से करते थे। एक बार आश्रम में फ्लू का प्रकोप हो गया। बहुत से व्यक्तियों को खांसी वा जुकाम हो गया। उन्होंने अपने घर पर एक बड़े पतीले में सब के लिये गुरुकुल चाय बनाना आरम्भ कर दिया। ये चाय वे प्रतिदिन प्रत्येक रोगी के घर देने जाते थे।

एक बार मुझे भी ज्वर चढ गया थर्मामीटर का पारा १०५ अंश के मार्क तक पहुँच गया। उन्होंने तुरन्त एक डाक्टर को बुलवा कर मेरी चिकित्सा करवाई। एक आदमी को मेरे घर सुलवाने की व्यवस्था करवा दी। इस शीत ऋतु में रात्रि के समय वे दो बजे मुझे देखने के लिए आये। आश्रम में कोई आगन्तुक आये तो उसके चाय-पानी वा भोजन का प्रवन्ध वे अवश्य करते थे तथा उसकी अन्य सुविधाओं का भी ध्यान रखते थे।

वे तो महात्मा कहलवाना नहीं चाहते थे। एक बार वे किसी कार्य वश बाहर गये हुए थे। जिस छोटी सी कुटिया में उनका निवास था उस के द्वार पर अधिकारियों ने 'महात्मा हरप्रकाश' लिखवा दिया। जब वे बाहर से आये तो उन्होंने 'महात्मा' शब्द मिटवा दिया और केवल "हरप्रकाश" ही लिखा रहने दिया।

एक घटना उनके छात्र जीवन की है जिसे उन्होंने अपनी जबानी इस प्रकार सुनाया :—

वे जब कालेज में पढ़ते थे उस समय वे होस्टल में रहते थे। जिस कमरे में रहते थे उस में एक अन्य छात्र भी रहता था। महात्मा जी होस्टल में बने भोजन को पसन्द नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने अपने साथी छात्र से प्रस्ताव किया कि वे दोनों अपना भोजन अलग बनावेंगे। जो कुछ खर्चा पड़ेगा उस का सारा भार वे स्वयं उठायेंगे। परन्तु इस में एक शर्त है वह यह है कि शाक भाजी जो भी तुम्हे पसन्द हो वह बनवा लेना। वह ही मुझे पसन्द होगी। आज क्या साग बने यह बात पूछ कर मुझे तङ्ग न करना। शर्त उसने स्वीकार कर ली। नौकर रख लिया गया और भोजन की व्यवस्था ठीक हो गयी। एक बार वह हमारा साथी कहीं बाहर चला गया नौकर ने उनसे आकर पूछा कि आज साग कौन सा बनेगा मैंने उत्तर दिया कि जो तेरी इच्छा हो वही बना दे। उस के मन में यह बात नहीं बैठी। वह वहीं पर खड़ा रहा, गया नहीं। फिर उसने पूछा, मैंने पिछला उत्तर दुहरा दिया। अन्त में जब देखा कि मेरा उत्तर उसकी समझ में नहीं आ रहा तो मैंने उससे कह दिया कि सामने जो कंकरियाँ पड़ी हैं उनमें से अच्छी अच्छी चुन ले। बस उनका ही साग बना ले। यह कह कर मैंने अपना मन पढ़ने में लगा दिया। आधे घन्टे के बाद वह फिर आया और कहने लगा कि मैंने बहुत देर से उन ककरियों को चूल्हे पर चढ़ा रखा है पर वे अभी तक गली नहीं। तुरन्त मैं स्थिति को भांप गया। समझ लिया कि नौकर बहुत सीधा सादा है। उसने ककरियां बीनकर साग बनाने के लिए कड़ाही में डाल रखी हैं। मैंने कहा कि वे ऐसी ही गलती हैं। तू थाली परोस के ले आ। उस दिन कंकरियों के रस से ही भोजन खाया।

० ० ०

देखा जाए तो इस आश्रम का प्रत्येक निवासी, पुरुष हो या स्त्री, महात्मा जी के प्रति अपार श्रद्धा रखता है। उन सब के स्नेह सिक्त उद्गारों वा संस्मरणों को छोटे से लेख में शामिल नहीं किया जा सकता। फिर भी आश्रम की एक साधिका माता आनन्दा की लेखनी से लिखे गये संस्मरणों को आंशिक रूप में उद्धृत किये बिना इस लेख की समाप्ति करना उचित प्रतीत नहीं होता।

"जीदन मोह की सीमा से ऊपर निर्भीक महात्मा" के अन्तर्गत उनका लिखा संस्मरण इस प्रकार है :—

सायं काल का समय था। सभी आश्रम वासी स्नान ध्यान के लिए गङ्गा तट पर निकल गये थे। मौन साधना की घन्टी वज चुकी थी। आश्रम में लगभग सन्नाटा छाया हुआ था। महात्मा जी संध्या भजन में मगन हो गये थे। उनकी आंखें मुन्दी हुई थीं। मौका पाकर एक अजनवी युवक महात्मा जी के समीप जा पहुंचा। आहट का आभास पाकर महात्मा जी ने अपनी आंखे खोल दीं। समीप ही खड़े युवक से बोले "कहिए क्या सेवा करूं" युवक ने छुरा निकाल कर दिखाया और बोला "तुम्हारा पेट फाड़ने आया हूं। तुमने अमुक अमुक आदमियों को आश्रम से निकाल दिया" "वे बहुत दिनों से आश्रम के नियमों का उल्लंघन कर रहे थे" महात्मा जी ने उत्तर दिया। युवक उग्र आवेश में आकर छुरा तान कर बोला "तैय्यार हो जा"। महात्मा जी बड़े संयत स्वर में तथा शान्त स्वर में ओढ़ी हुई चादर को दूर हटाकर बोले "यह लो अपना काम शीघ्र करो। कहीं कोई और साधक इधर न आ जाए और तुम्हें पकड़ न ले।" महात्मा जी के शान्त अभीत तथा करुणा पूर्ण शब्दों को सुन कर युवक का हृदय क्रूर कर्म करने से विरत हो गया। एक क्षण इधर उधर देखा। इतने में स्वर्गीय ब्रह्मचारी जिज्ञासु आते दिखाई दिये। और युवक भाग खड़ा हुआ।

आश्रम में रहने वाले प्रत्येक वानप्रस्थी का जीवन सांसारिक विषयों से दूर रहकर त्याग वा तप का ही होता है। परन्तु अवसर पड़ने पर जन-हित के कामों में भी वे अपना सहयोग देते हैं। ऐसा ही एक अवसर तब उपस्थित हुआ जब पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरों ने पंजाब के बढ़ते हुये हिन्दी प्रसार को रोकने के लिए विद्यालयों से लगभग ४५०० हिन्दी वा संस्कृत के शिक्षकों को सेवा मुक्त कर दिया। इससे आर्य जगत में वहुत क्षोभ पैदा हो गया। इस पर आर्य सार्वदेशिक सभा दिल्ली की ओर से सत्याग्रह का आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। जिसका सेण्टर चन्डी गढ़ बनाया गया था। इस सत्याग्रह में जो सब से पहला जत्था भेजा गया उसका नेतृत्व महात्मा हरप्रकाश जी ने किया। इसी प्रकार पुण्य भूमि भारत में प्रदि-दिन तीन चार हजार गौएं कटती देखकर सनातन धर्मी तथा आर्य समाजियों ने संयुक्तरूप से सत्याग्रह प्रारम्भ किया। इस सत्याग्रह का केन्द्र आर्यसमाज दीवान हाल दिल्ली में बना था। इस सत्याग्रह में भी एक जत्था यहां के आश्रम वासियों का था, जिसका नेतृत्व महात्मा हर प्रकाश जी कर रहे थे। चन्डी गढ़ वाला सत्याग्रह ६ मास तक चलता रहा और गौरक्षा आन्दोलन एक साल और ३ मास तक जारी रहा। इन दोनों ही सत्याग्रहों में उन्होंने न केवल सत्याग्रही बनकर ही प्रमुख भाग लिया परन्तु दोनों ही सत्याग्रहों में जब तक वे जारी रहे लगातार १.००) रुपये का प्रतिमास दान भी दिया। अर्थात् तन, मन और धन से भी अनुपम सेवा की। जेल मे रहते हुए भी (तिहाड़ जेल दिल्ली) जेल के अन्दर ही सम्पूर्ण यजुर्वेद के पाठ के साथ यज्ञ करवाया। इस पर किया गया सम्पूर्ण व्यय उन्होंने ही दिया। उपरोक्त जन सेवाओं में दिये गये दान के अतिरिक्त आश्रम में रहने वाली कुछ माताओं को जिनके आय स्रोत नहीं थे वा अपर्याप्त थे उनको भी अन्न, वस्त्र तथा धन आवश्यकता के अनुसार वे दिया करते थे।

एक बार की बात है, आश्रम से लगभग १६ मील दूर एक गांव में आग लग गई। यहां के गावों के मकानों की छतें, बांस की खपचियों तथा फूस की बनी होती हैं। इसलिए देखते ही देखते आग सर्वत्र फैल गई। सारा गांव जल कर राख बन गया। सूचना मिलते ही महात्मा जी ने कुछ धन तथा अन्न वस्त्रादि आश्रम वासियों से, कुछ अपने घर से इकट्ठा करके बैल गाड़ी द्वारा वहां भिजवा दिया।

० ० ०

महात्मा जी की दिनचर्या अति व्यस्त थी। आश्रम के प्रबन्ध का कार्य निरन्तर बढ़ता जा रहा था। इस निरन्तर व्यस्तता में रहते हुए भी उन्हें एक व्यसन भी लगा हुआ था। यह व्यसन विद्याभ्यास का था विशेष कर योग से सम्बन्धित चिन्तन का वा तत्संबन्धी साहित्य का इस व्यसन की पूर्ति के लिए वे कब और कैसे समय निकाल लेते थे इस बात का उत्तर मेरे लिए देना अति कठिन है। परन्तु यह सत्य है कि वे योग विषयक ग्रन्थों का अनुशीलन करते थे। इस का प्रमाण मुझे मिला हमारे आश्रम के कर्तव्य निष्ठ मन्त्री कल्याण स्वरूप जी के लिखे महात्म

जी के जीवन-वृत्त के संस्मरणों से यह उद्धृत लेख उनकी अपनी कलम से लिखा गया है: —

"पुस्तक-विक्री विभाग की आलमारियों की चाबियां महात्मा जी अपने पास ही रखते थे और ग्राहकों को वे पुस्तकें अपने हाथ से ही दिया करते थे। एक दिन मैंने उनसे महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा लिखी गयी टीका वाली मुण्डकोपनिषद् मांगी। उन्होने आलमारी खोल कर पुस्तक मुझे दे दी। पुस्तक देते हुए उन्होंने मुझ से प्रश्न किया कि क्या मैंने योगदर्शन पढ़ा है? मेंने कहा कि महात्मा नारायण स्वामी जी रचित "योग रहस्य' को मैंने पढ़ा है। वे कहने लगे कि यह काफी नहीं। योग दर्शन को समझने के लिए स्वामी ओमानन्द तीर्थ द्वारा रचित "पातञ्जल योग प्रदीप" पढ़ना चाहिए। मैंने पूछा कि क्या विक्री विभाग में यह विद्यमान है? उन्होंने उत्तर दिया कि विक्री विभाग में तो यह नहीं है परन्तु पुस्तकालय में है। वहां से ले लीजिए। उसे चाहे छै मास अपने पास रखिए। ऐसी पुस्तकों को पढ़ने वाले आश्रम में विरले ही व्यक्ति होते हैं। उनके आदेशानुसार मैंने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा और उससे लाभान्वित हुआ। इससे मुझे प्रत्यक्ष हो गया कि वे योग विषयक उपलब्ध साहित्य का न केवल अध्ययन करते थे। परन्तु विवेचनात्मक समीक्षा भी करते थे।"

और भी देखिये। योग संसिद्ध पुरुषों की एक विभूति यह भी है कि उनके सान्निध्य में मन के सन्ताप दूर हो जाते हैं। मन उनके प्रति श्रद्धालु हो आता है। वह अपने आपको योगी के समक्ष पूर्णरूप से समर्पित कर देता है। दूसरे शब्दों में वह उन्हीं के वश में हो जाता है। महात्मा जी को यह सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। इसी सिद्धि के कारण यहां का प्रत्येक साधक उनके चरणों में झुका हुआ था। इस सिद्धि को प्राप्त करने का मुख्य साधन क्या है इसका संकेत मुझे मिला है मंत्री कल्याण स्वरूप जी के लिखे इस सस्मरण में।

"एक दिन की बात है कि वे अपने तख्त पर बैठे हुए एक वृद्धा माता की दुःख-कथा ध्यान से सुन रहे थे। माता अपनी घरेलू परिस्थितियों से दुःखी थी। कथा को लम्बी खींचती जा रही थी। अन्त नहीं हो रहा था। मैं किसी कार्य-वश उनके पास गया था। महात्मा जी का ध्यान वृद्धा की कथा सुनने में लगा हुआ था। इसलिए मैं चुपचाप उनके पास बैठ गया। बैठे-बैठे मुझे आधे घन्टे से भी अधिक समय व्यतीत हो गया। परन्तु वृद्धा माता की बात निरन्तर चलती रही। थाली में परोसा हुआ भोजन ठण्डा हो गया था। उसकी तरफ न ध्यान देते हुए वे उसी माता की कथा सुनते रहे। आखिर मेरे मुख पर अधीरता के लक्षण परिलक्षित होने लगे। यह देखकर उन्होंने माता जी से कहा कि अब मैं भोजन कर लूं। आप किसी अन्य समय मेरे पास आना और अपनी बात कहना। जब माता जी चली गईं तब मैंने महात्मा जी से पूछा कि आप इतना समय इन व्यर्थ की बातों को सुनने पर क्यों गंवा देते हैं? आप में बड़ा धैर्य है। इस माता के घरेलू झगड़ों में आप क्या सहायता कर सकते हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि भाई! यह माता घर की परिस्थितियों से बहुत दुःखी है। इसने मुझे सुनाकर अपना दुःख हलका कर लिया। हम इसकी कुछ सहायता नहीं कर सकते। परन्तु इसका दुःख सुनने में हमारा क्या बिगड़ जाता है। देखो प्रबन्ध करने वाले के लिये यह आवश्यक है कि वह शान्ति और धैर्य्य से सबकी सुने परन्तु करे अपनी बुद्धि के अनुसार।

महात्मा जी विनोद प्रिय भी थे इसका एक प्रसंग ब्रह्मचारिणी कमला आर्या ने इस प्रकार सुनाया:—

"श्रावण मास की बात है। मैं गंग नहर पर बने आश्रम के घाट की मुंडेर पर बैठी ओ३म् का जाप कर रही थी अचानक बूंदें पड़ने लगीं। छाता मेरे साथ था। मैं जैसे ही उसे खोलकर मुंडेर पर से उतरने लगी हठात् मेरा पैर फिसल गया और नहर में गिरपड़ी। तब नहर में डूबते हुए मुझे और तो कुछ सूझा नहीं, निरन्तर ओ३म् ओ३म् की ही पुकार लगाने लगी। तभी एक तरंग आई और उसने मुझे किनारे पर धकेला दिया। तभी एक आदमी दौड़ता हुआ मेरी सहायता के लिये आ पहुँचा और उसकी मदद से मैं सुरक्षित बाहर निकल आई। यह प्रसंग जब मैंने सत्संग भवन में पहुंच कर महात्मा जी को सुनाया तो वे पास बैठे मन्त्री ज्योतिप्रसाद से हंसते हुए बोले—देखिये, कमला जी की जान बच गई ओ३म् के स्मरण से। 'मगर असल बात यह है कि ये निरे गंगा स्नान को मोक्ष का साधन नहीं मानतीं। अतः मां गंगा ने इन्हें अपने जल

श्री देवदत्त मुनि Ex I.A.O.C

में स्नान करते देखकर तिरस्कार से बाहर धकेल दया।' सुनकर सभी हंस पड़े। यहां तक कि वहां बैठी वृद्धायें भी हंसने लगीं।"

और. यह एक प्रसग तो उस दिन बहुतों ने देखा था। महात्मा जी अपना जन्म - दिवस मनाने की सर्वदा उपेक्षा करते रहे। किन्तु जब उनके ८६ वें जन्म-दिन का अवसर पास आने लगा उनके अनेक मित्रों ने इस जन्म-दिवस के मनाने का बहुत अनुरोध किया। अपने सरल स्वभाव के कारण उन्होंने अनुरोध स्वीकार कर लिया। पं० सुखदेव जी यज्ञ के ब्रह्मा बने और पूर्ण वैदिकविधि से यज्ञ सम्पन्न हुआ। यज्ञ के अनन्तर महात्मा जी ने बड़ी उदारता से विविध कामों के लिए दान दिया। बाद में ब्रह्मा के आशीर्वचनों के अनन्तर सब को धन्यवाद देते हुए वे बोले 'यह शरीर अब रहने योग्य नहीं रहा। क्योंकि इससे अब मैं जनसाधारण की सेवा नहीं कर पा रहा। यथार्थ में यह मेरे जीवन का प्रथम तथा अन्तिम जन्म-दिवस ही मनाया गया है। अतएव आप लोग इसे ही मेरा अन्तिम जन्म दिवस समझिये।' सुनकर सभी उपस्थित लोगों के नेत्र भीग गये। मगर महात्मा जी के मुख से निकले वे वचन तो भविष्य वाणी थे जो पूर्ण होकर ही रहे। २३ दिसम्बर की आधी रात अभी बीत भी न पाई थी कि उन्होंने अपने पुण्य शरीर का परित्याग कर दिया। सच तो यह है कि सिद्ध पुरुषों के हृदय में आने वाली घटनाओं का पूर्ण चित्र पहले ही प्रकट हो जाता है।

एक बार यह पूछे जाने पर कि आश्रम में निवास करने का विचार उनके मन में कैसे पैदा हुआ, उन्होंने उसका कारण इस प्रकार सुनाया—"मेरे ताऊ जी एक बार बहुत बीमार पड़ गये। उनकी सेवा करते हुए एक बार मैंने उनको सीढ़ियों से नीचे उतारा और भूमि पर लिटा दिया। थोड़ी देर बाद उनके बेटे आये और बोले 'चाबी दे दो' कुछ पैसा निकालना है। मगर उन्होंने चाबी नहीं दी। पैसे की बहुत जरूरत थी। इसलिए बेटे ने जरा जोर के साथ कहा कि चाबी दे दो। फिर भी उन्होंने चाबी नहीं दी। फिर एकाएक उन्हें गुस्सा आ गया और चाबी जमीन पर पटक कर दे मारी। संपत्ति के प्रति उस अन्तिम समय में भी इतनी मोह-ममता का अद्भुत दृश्य देखकर मुझे एकाएक माया से विरक्ति हो गई। मुझे लगा कि यदि मृत्यु वेला में माया के बन्धन से मुक्ति चाहते हो तो जीते जी ही इसका मोह त्यागने की तैयारी करनी पड़ेगी। जैसे ही ये विचार आया मैंने पुत्र को बुलाकर सम्पूर्ण कारोबार उसे सौंप दिया और साधना के लिए सीधा वानप्रस्थाश्रम आ गया।"

आश्रम के कीर्तिस्तम्भ पर लिखे अधोलिखित श्लोक उनके जीवन का संक्षिप्त प्रदर्शन चिर दिनों तक करते रहेंगे —

यो मोहनः स्वीय गुणैः प्रशस्तैः,
स्थितो जनानां हृदयेषु नित्यम्।
निष्काम सेवाम करोत् सदा यः,
हरप्रकाशः सः न केन वन्द्यः ॥१॥

यदीय शिक्षा प्रददाति मोदं,
स्फूर्ति नवोत्साहबलं सुधैर्यम्।
श्रद्धान्वितानां मनसा स सम्राट्,
हरप्रकाशो हि न केन वन्द्यः ॥२॥

——०——

एक श्वेत वस्त्रधारी संन्यासी
श्री महात्मा हरप्रकाश जी वानप्रस्थ

लेखक — अमर स्वामी
प्रधान, सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर (हरिद्वार)

श्री महात्मा हरप्रकाश जी का जन्मस्थान राहों, जिला–जालन्धर पंजाब था । श्री हरप्रकाश जी का परिवार अच्छा समृद्ध था ।

वैराग्य की भावना से प्रेरित हो कर घर-बार छोड़ दिया और वानप्रस्थ की दीक्षा लेकर आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में रहने लगे । रहन-सहन और खान-पान अत्यन्त सादा था, वाणी में बहुत मिठास था, काम करने की लगन बहुत थी और आलस्य-रहित परिश्रमी जीवन था ।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज भी तब वानप्रस्थ आश्रम में ही रहते थे, आर्य वानप्रस्थ आश्रम के आजीवन प्रधान थे वह बड़े रत्न पारखी थे । उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम के प्रबन्ध के लिये श्री हरप्रकाश जी को छांट लिया, नाम को प्रधान रहे गये, पर धीरे-धीरे सारे अधिकार इन्हीं को दे दिये ।

शरीर में आतमा जैसे प्रेरणा देता है और कार्य सारे देखने, सुनने, चलने, पकड़ने आदि शरीर ही करता है इसी प्रकार प्रेरणा, संकेत आदि श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के रहे और कार्य सारे श्री हरप्रकाश जी द्वारा होते थे ।

सारे आश्रम के कोने-कोने का पता हर समय श्री हरप्रकाश जी को रहता था, आश्रम के कोने-कोने में हर समय पहुँचना श्री हरप्रकाश जी का काम था ।

क्रोध और कड़वापन श्री हर प्रकाश जी में नाम को भी नहीं थे । श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज की जीवन-लीला समाप्त हो गई आश्रम का सारा भार श्री हरप्रकाश जी पर आगया, सारा उत्तरदायित्व भी इन ही पर आगया ।

गम्भीरता और सहनशीलता इतनी थी कि पराई क्रोधाग्नि भी उनके सम्मुख बुझनी ही सदा दिखाई देती थी । श्री हरप्रकाश जी के दूध चाय, भोजन यहां तक कि बिजली-पानी तक का व्यय स्वयं हरप्रकाश जी ही देते थे । आश्रम का तो केवल स्थान और वायु ही उनके प्रयोग में आता था ।

पुत्र इनके बहुत सुपात्र और आज्ञाकारी हैं । सन् १९५७ में जो पंजाब में हिन्दी सत्याग्रह चला उसमें श्री हरप्रकाश जी ने बड़ा काम किया । चण्डीगढ़ में भी बहुत समय डेरा रक्खा । उनका

प्रण था कि जब तक सत्याग्रह चलेगा तब तक अपने घर से लेकर एक हजार रुपया प्रति मास सत्याग्रह के लिये देना है सो सत्याग्रह समाप्त होने तक बराबर दिया।

सन् १९६५ के गोरक्षा आन्दोलन में वानप्रस्थ आश्रम से जत्था लेकर मेरे साथ ही दिल्ली में सत्याग्रह किया, चित्र भी उनका और मेरा इकट्ठा बना था।

घर से उनको मोह नहीं था कभी भी वानप्रस्थ आश्रम से घर जाना उनको पसन्द नहीं था। अधिक बीमार होने पर भी घर जाने की उनकी इच्छा नहीं होती थी। उनके पुत्र यदि रुग्णावस्था में उनको चिकित्सा के लिये जालन्धर आदि ले भी जाते तो थोड़ा-सा स्वास्थ्य ठीक होते ही वानप्रस्थ आश्रम में आ जाते थे।

वृद्धावस्था में भी उनमें आलस्य नहीं था, सारे आश्रम में घूमते और सबके सुख-दुःख का हर समय ध्यान रखते थे। वानप्रस्थ आश्रम के सभी नर-नारी उनको पिता जी कहते थे—

शेर — है संन्यास क्या ? ग़म में गैरों के जलना।
कदम तेज तलवार में धर के चलना॥

उधर तोड़ना बन्द सब खानमां के।
इधर बाप बन जाना सारे जहां के॥

यह शेर उनके जीवन में पूरा उतरता था। आश्रम के प्रधान वह बनते नहीं थे बनाये ही जाते थे। श्री महात्मा हरप्रकाश जी ने आग्रहपूर्वक औरों को भी प्रधान बनवाया तो भी कार्य वह उतना ही करते थे जितना प्रधान बन कर करते थे। अधिकार सारा उन्हीं का मानते थे जिनको अधिकारी बनवाते थे। त्याग, तप और परिश्रम में वह अपने ढग के अद्वितीय थे। न उनको पुत्रैषणा थी न वित्तैषणा थी और न लोकैषणा थी वह गुण-कर्म-स्वभाव से पूर्ण संन्यासी थे इसलिये मैं उनको श्वेत वस्त्रधारी संन्यासी ही कहता तथा मानता था और भी सभी लोग उनको वैसा ही मानते थे।

श्री महात्मा हरप्रकाश जी ने आर्य वानप्रस्थ आश्रम की लगातार तीस वर्ष से भी अधिक समय तक सेवा की और सेवा करते-करते ही शरीर त्यागा।

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने आर्य वानप्रस्थ आश्रम जितना बड़ा छोड़ा था श्री महात्मा हर प्रकाश जी ने अपने गुणों और अपने परिश्रम से लगभग चार गुणा उसको बढ़ा दिया और धन तो बहुत ही बढ़ा दिया। पता नहीं वह कितने गुणा अधिक है।

सामान्यरूप से सभी मनुष्यों को उनके गुणों से शिक्षा लेनी चाहिये और विशेष रूप से आश्रम वासियों को उनके गुण धारण करने चाहियें।

आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर में पदों के लिये कभी भी कोई झगड़ा नहीं होना चाहिये आश्रम में जो वानप्रस्थ नर-नारी हैं वे संन्यासी बनें चाहे न बनें पर महात्मा हर प्रकाश जी का अनुकरण अवश्य करना चाहिये।

———o———

ऋषि दयानन्द का उद्घोष

सृष्टि के आरम्भ से लेकर पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था, अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे।

o o o

जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे सभी आर्यावर्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द से मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुतायत होने से अन्न रस पुश्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशों से मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।

———o———

महात्मनां श्रीहरप्रकाशमहोदयानां पुण्यस्मरणम्

० ० ०

श्रद्धाञ्जलिसमर्पको

धर्मानन्दसरस्वती विद्यामार्तण्डः

विश्ववेदपरिषदध्यक्षः आनन्दकुटीरम्-ज्वालापुरम्

: १ :

य आश्रमं दिव्यमिदं विधातुं,
येते दिवारात्रमनन्तभक्तः ।
न केन वन्द्यः स पवित्रचित्तः,
हरप्रकाशाख्य महात्मवर्यः ।।

इस आश्रम को दिव्य बनाने के निमित्त जो दिन-रात यत्न करते रहे, वे प्रभुभक्त महात्मा हरप्रकाश किस के वन्दनीय नहीं हैं ।

: २ :

स्यात्सज्जनानां विपदां विनाशः,
सुखं च शान्तिं च समेलभेरन् ।
चिन्तेयमासीत् खलु यस्य चित्ते,
वन्द्यो महात्मा समुदा समस्तैः ।।

सत्पुरुषों की विपत्तियों के विनाश एवं सुख-शान्ति के लिए जिनका मन सदा चिन्तित रहता था, वे महात्मा उदारतापूर्वक वन्दनीय हैं ।

: ३ :

स्वार्थं परित्यज्य सदैव सेवा,
परायणो यो विदुषां सतां च ।
स कर्मयोगी मदमोहहीनः,
न केन वन्द्यो विमलो महात्मा ॥

स्वार्थ का परित्याग कर जो विद्वानों तथा सत्पुरुषों की सेवा में सदा निरत रहते थे, वे पवित्रात्मा, मद-मोह हीन, कर्मयोगी महात्मा किस के वन्दनीय नहीं हैं ।

: ४ :

वयं स्मरामो प्रभुभक्तमेनं,
प्रकाशयन्तं च हरेर्गुणान् शुभान् ।
परोपकारे निरतं ह्यजस्रम्,
आह्लादयन्तं सुगुणैः समस्तान् ॥

प्रभु के शुभ गुणों के प्रकाशक, निरन्तर परोपकार में निरत एवं निज शुभ गुणों से सब को प्रसन्न रखने वाले उस प्रभुभक्त को हम स्मरण करते हैं ।

: ५ :

वैखानसानामिदमाश्रमं स्यात्,
अनुत्तमं ध्येय मिदं दधानम् ।
मुदाहरन्तं विपदो जनानां,
हरप्रकाशाख्य बुधं नमाम ॥

जो इस वानप्रस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठ बनाने का ध्येय रखते थे और लोगों के कष्ट निवारण में निरत रहते थे उन बुद्धिमान हरप्रकाश जी को हम प्रणाम करते हैं ।

: ६ :

यस्मिन्नहङ्कारलवोऽपिनासीत्,
यद्यप्य भूत्सप्रथितः प्रधानः ।
तपस्विनंत्यागनिधिं दिवंगतं,
हरप्रकाशाख्य - बुधं नमामः ।।

प्रसिद्ध प्रधान होते हुए भी जिनमें अभिमान का लवलेश भी नहीं था उन दिवंगत, परमत्यागी, बुद्धिमान हर प्रकाश जी को हम नमस्कार करते हैं ।

: ७ :

स्फूर्ति प्रदद्यात् किल तस्य जीवितं,
गुणांस्तदीया निह धारयेम ।
वयं स्वभक्तेः कुसुमानि तस्मै,
समर्पयामो मुदितामहात्मने ।।

उस महात्मा के जीवन से स्फूर्ति प्राप्त करने के निमित्त हम सदा उनके गुणों को धारण करते हुए, उनके प्रति प्रसन्नता पूर्वक भक्ति पुष्प समर्पित करते हैं ।

——ooo——

- हमें जीवन-पथ का निर्णय गम्भीरता से करना चाहिए, क्योंकि उसे जीवन में एक ही बार निर्धारित किया जाता है ।
- खाने में कड़वा, स्मरण करते समय मीठा लगता है ।
- तुम जिसे अपनी गोपनीयता दे देते हो, उसे अपनी स्वाधीनता बेच देते हो ।

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम

ज्वालापुर (हरिद्वार)

*

स्वर्ण - जयन्ती स्मारिका : १६७८ ई०

*

सिद्धान्त-खण्ड

दयानन्द वचनामृत

'विदित हो कि मैंने संसार के उपकारार्थ वेद-भाष्य के बनाने का आरम्भ किया है, कि जो सब प्राचीन ऋषियों की की हुई व्याख्या और अन्य ग्रन्थों के प्रमाण युक्त बनाया जाता है।'

'परमात्मा की कृपा से मेरा शरीर बना रहा और कुशलता से वह दिन देखने को मिला कि वेद-भाष्य सम्पूर्ण हो जावे, तो निस्सन्देह इस आर्यावर्त देश में सूर्य का सा प्रकाश हो जावेगा कि जिसके मेटने और झांपने को किसी का सामर्थ्य न होगा।'

'मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूं।'

—भ्रान्ति-निवारण से उद्धृत

※

शुभकामना

कविवर प्रणव शास्त्री एम० ए०,
फिरोजाबाद (उत्तर-प्रदेश)

आर्य जाति में गौरव गङ्गा धार बहाने
वा णी वैदिक बोध-शोध का स्रोत सजाने ।
न व-नव अविचल आध्यात्मिक की ज्योति जगाने
प्र गतिपन्थ में मन मराल को मुक्त उड़ाने ।। १ ।।

स्थ विर जनों में मनन मोद मङ्गल का दाता
आ दर्शों का केन्द्र आश्रम सदा सुहाता ।
श्र म की सत्ता स्वात्वलम्ब का पाठ पढ़ाती
म ञ्जु मुक्ति के महल-मार्ग को नित्य दिखाती ।। २ ।।

ज्वा ला अध्वर ज्योति ज्ञानमयशुभ जलती हैं
ला लायित सत्सङ्ग चकोरी चिति मिलती है ।
पु ष्पित पादप पुण्य प्रथा में पले हुए हैं
र म्य योग के सांचे में सब ढले हुए हैं ।। ३ ।।

स तत शास्त्र की चर्चा संशय शूल हटाती
हा स्य-भाव गाम्भीर्य गहन का भेद मिटाती ।
र क्षित दर्शन, उपनिषदों की वर व्याख्यायें
'न तस्य प्रतिमा' वेद मन्त्र की मधु महिमायें ।। ४ ।।

पु ष्कल साधन जहाँ साधकों के हैं, सारे
र थ-चिन्तन में बैठ सुपथ में कभी न हारे ।
उ स आश्रम को आर्य वृन्द मन से नहि भूलें
'त स्य वाचकः प्रणवः' के भूलने में ही भूलें ।। ५ ।।

र वि सम उज्वल तेज पुञ्जमय जीवन-भागी
प्र खर प्रथा के आर्य सभी हों अति अनुरागी ।
दे वें शिव कल्याण सर्वदा सुख की राशी
श त शत पावें स्वर्ण - जयन्ती आश्रमवासी ।। ६ ।।

मानव जीवन की चार अवस्थाएँ

लेखक — श्री ऋषिराम महाधिवक्ता, उत्तर-प्रदेश

मानव-जीवन की चार अवस्थाएँ होती हैं — बाल्यावस्था, युवावस्था, वानप्रस्थ तथा संन्यास। इन्हीं चार अवस्थाओं में हमारे महापुरुषों ने मानव-जीवन को बांटा था। ५० वर्ष की आयु के पश्चात् हमारे बहुत से पूर्वज वानप्रस्थ आश्रम में चले जाते थे और वहीं रह कर आत्म-शुद्धि करते हुए त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करते थे। मुगल तथा अंग्रेजी शासनकाल में शनैः-शनैः वानप्रस्थ अवस्था का ह्रास होता गया और वर्तमान भौतिक युग के कारण अब मनुष्य ६० वर्ष के पश्चात् भी अपना जीवन गृहस्थ के रूप में व्यतीत करता है। देश, समाज तथा व्यक्ति के उत्थान के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि ५० वर्ष अथवा ६० वर्ष की आयु के पश्चात् मानव गृहस्थ आश्रम छोड़ कर वानप्रस्थ आश्रम में जीवन व्यतीत करें। 'वानप्रस्थ आश्रम-ज्वालापुर' भारतवर्ष की एक विशेष संस्थाओं में से है, जहां रह कर मानव भौतिकता को त्याग कर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता है। यहां मानव पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक उथल-पुथल से अनासक्त रह कर आत्मोन्नति में तत्पर रहता है। इस समय जो समस्याएँ, पारिवारिक तथा सामाजिक हमारे देश में विद्यमान हैं, उनके हल करने का यही उपाय है कि मनुष्य गृहस्थाश्रम छोड़ कर वानप्रस्थाश्रम को अपनाये। विदुर-सेवा आश्रम, दारानगर गंज (बिजनौर) ने भी इस ओर एक विशेष प्रयास किया है, जहां पर वानप्रस्थियों को सभी प्रकार की सुविधा दी जाती है और यहां के वानप्रस्थी अपना जीवन पूजा-प्रार्थना तथा सामाजिक कार्य में व्यतीत करते हैं। देश में ऐसे वानप्रस्थ आश्रमों की बहुत आवश्यकता है।

———o———

- सर्वश्रेष्ठ विषयों पर आवश्यकता से अधिक बोलना भी अनुचित नहीं।
- वस्तु जैसी दीखती है बहुत मुश्किल से ही वैसी होती है एवं वह जितनी अधिक प्रलोभक होती है उतनी ही अधिक दूर होती है।
- स्वभाव को प्रतिबन्धित कर सकना उतना कठिन नहीं, जितना नष्ट कर सकना।

वेदों में विश्वबन्धुत्व की भावना

डा० रामनाथ वेदालंकार

वेदों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि वेद सार्वजनिक हित, विश्व बन्धुत्व, माधुर्य, प्रेम और शान्ति की भावना से ओतप्रोत हैं। वेदों में संज्ञान, सांमनस्य, एकता, संगठन, परोपकार आदि की प्रेरणाएं स्थान-स्थान पर उपलब्ध होती हैं।

एक माता के पुत्र

वेद की दृष्टि में सम्पूर्ण भूमि हम सबकी माता है तथा हम सब उसके पुत्र हैं — **माता भूमिः पुत्रो अह पृथिव्याः**, अथर्व १२. १. १२। संसार का प्रत्येक व्यक्ति यदि वेद की यह दृष्टि संमुख रखे कि हम सबकी माता एक है, तो परस्पर सगे भाइयों के समान रहने को बड़ा प्रेरणा मिल सकती है। वेद की शिक्षा है कि हमें छोटे-बड़े का भेद-भाव त्याग कर भ्रातृत्व की भावना के साथ आगे बढ़ना है — **अज्येष्ठासो अकनिष्ठाम एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय**, ऋग् ५.६०.५। अथर्ववेद के भूमि-सूक्त में कहा गया है कि यह भूमि विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले और विभिन्न धर्मों वाले जनों को भी अपने अन्दर ऐसे ही रखती है जैसे एक परिवार के लोग घर में रहते हैं। इससे हमें यह सन्देश प्राप्त होना है कि भाषा, धर्म, वेश-भूषा आदि का भेद होने पर भी हमें परस्पर प्रेम से रहना है।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं,
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां,
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।। अथर्व १२.१ ४५।

सांमनस्य

वेदों में कई सांमनस्य विषयक सूक्त मिलते हैं, जिन से यह प्रेरणा प्राप्त होती है कि एक परिवार में, एक समाज में, एक राष्ट्र में तथा एक विश्व में हम सब परस्पर प्रीतियुक्त मन से रहें। इस सम्बन्ध के कतिपय मन्त्र निम्नलिखित हैं —

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।
ऋग्. १०.१९१.२.४

"हे मनुष्यो, तुम सब मिलकर चलो, मिलकर वार्तालाप करो, तुम्हारे मन मिल जायें। तुम वैसे ही मिल कर कार्यों को सिद्ध करो, जैसे विभिन्न क्षेत्रों के देव परस्पर सहयोग से कार्य करते हैं। तुम्हारा संकल्प समान हो, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारा मन समान हो, जिस से तुम में परस्पर साथ रहने की शुभ प्रवृत्ति उत्पन्न हो।"

यहां देवों का दृष्टान्त बडा ही महत्वपूर्ण है। सभी क्षेत्रों के देव परस्पर सामंजस्य से ही कार्य करते हैं। प्रकृति में सूर्य, चन्द्र, वायु, पर्जन्य, पृथिवी आदि देव यदि पारस्परिक सहयोग छोड़ दें, तो समस्त प्राकृतिक कार्य अस्त-व्यस्त हो जायें। शरीर के जीवात्मा, मन, बुद्धि, चक्षु, श्रोत्र आदि देवों में भी यदि असामंजस्य होने लगे, तो न मनुष्य कुछ ज्ञान प्राप्त कर सके; न ही कोई कार्य कर सके। ऐसे ही किसी राष्ट्र के राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, शिक्षामन्त्री आदि देव भी एक सूत्र में बद्ध होकर कार्य न करें तो राष्ट्र की उन्नति के सब कार्य रुक जायें। अतः देवों के सहयोगयुक्त व्यवहार से शिक्षा लेकर विश्व के सभी मनुष्यों को पारस्परिक सहयोग और बन्धुत्व की भावना से रहना है, यह वेद का आशय है। पुनः भगवती श्रुति कहती है —

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।।

अथर्व ३.३०.१.३

" हे मनुष्यो, तुम्हें मैं सौहार्द, सांमनस्य तथा अबिद्वेष का उपदेश करता हूं । तुम एक दूसरे से वैसे ही प्रेम करो, जैसे नवजात वत्स से गौ प्रेम करती है । कोई भाई दूसरे भाई से द्वेष न करे, कोई बहिन दूसरी बहिन से द्वेष न करे । तुम मिल कर चलते हुए, सहकर्मा होते हुए, एक-दूसरे के प्रति भद्र वाणी बोला करो । "

वेद का यह उपदेश एक छोटे परिवार तथा बड़े विश्व-परिवार दोनों के प्रति समान रूप से प्रवृत हो रहा है । वेद का स्पष्ट रूप में यह भी कथन है कि हमें केवल अपनों से ही प्रेम व्यवहार नहीं करना है, अपितु अपरिचितों के प्रति भी स्नेह-भावना रखनी है ।

संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः ।
संज्ञानमश्विना युवमस्मासु नियच्छतम् ।।

अथर्व ७.५२.१

" हमारी अपनों के प्रति प्रीति हो, परायों के प्रति भी प्रीति हो । हे अश्वी देवो, तुम हमें संज्ञान या परस्पर मिलकर रहने का गुण प्रदान करो ।"

यहां अश्वियुगल से पारस्पारिक सहयोग की शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहा गया है । जैसे अश्वी देव (सूर्य-चन्द्र, द्यावापृथिवी, प्राण-अपान आदि) दो हैं, और दोनों में इतना अधिक सांमजस्य है कि उसके बल पर वे अनेक महिमाशाली कृत्यों को करने में समर्थ होते हैं, वैसे ही हम मानवों में भी पारस्परिक सांमजस्य हो, यह वेद की प्रेरणा है ।

सर्वभूतमैत्री

वैदिक स्तोता सर्वभूतमैत्री का आदर्श अपने संमुख रखता हुआ प्रभु से प्रार्थना करता है कि – हे दृते, हे सब के मनों से विद्वेषादि भावों का विदारण करने वाले प्रभो, आज मैं मैत्री का व्रत ग्रहण कर रहा हूं, उस पर दृढ़ रहने का सामर्थ्य मुझे प्रदान कीजिये । सब भूत मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, क्योंकि आज से मैं सब भूतों को मित्र की दृष्टि से देखने लगा हूं । इस प्रकार हम सभी मानव एक-दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखा करें।

दृते दृंह मा, मित्रस्य मा चक्षषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।। यजुः ३६.१८

इस प्रकार मित्रता और सौहार्द का वेद यह उपाय बताते हैं कि हम दूसरों के प्रति अपने मन में मित्रता की भावना उत्पन्न कर लें । इसका प्रभाव उन पर यथासंभव अवश्य पड़ेगा, और वे भी हमारे प्रति अपने मन में सौहार्द के भाव धारण करने लगेंगे । परिणाम यह होगा कि सारा विश्व परस्पर मैत्री के सूत्र में आबद्ध हो जायेगा। वेद का आदर्श हैं कि सब दिशाए हमारी मित्र हों, कहीं भी कोई शत्रु न रहे— सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु,

अथर्व १९.१५.६

अनमित्रं नो अधराद् अनमित्रं न उत्तरात् ।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चाद् अनमित्रं पुरस्कृधि ।।

अथर्व ६.४०.३

" दक्षिण दिशा में हमारा कोई अमित्र न हो, उत्तर दिशा में हमारा कोई अमित्र न हो, पश्चिम दिशा में हमारा कोई अमित्र न हो, पूर्व दिशा में हमारा कोई अमित्र न हो ।"

वेद सबके प्रति प्रणय का व्यवहार करने की शिक्षा देता हुआ कहता है —

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ।।

अथर्व ७.१०५.१

अर्थात् हे मनुष्य, तू पुरुष-सुलभ कटु वाणी से दूर रह, दिव्य वाणी का वरण कर तथा समस्त मानवों के साथ प्रणय का व्यवहार कर ।

द्वेष-निवारण

यदि दुर्भाग्य से कभी कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रति या कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के प्रति विद्वेषोन्मुख हो भी जाये तो वेद के शब्दों में उसे भ्रातृभाव का हाथ बढ़ाते हुए कहना चाहिए—

इदमुच्छ्रेयोऽवसानभागां
शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु
न वै त्वा द्विष्म अभयं नो अस्तु ।।

अथर्व १९.१४.१

"आओ, आज हम परस्पर गले मिललें। अब तक जो कुछ ईर्ष्या, द्वेष, कलह, विध्वंस हमने किया है उस की परम्परा को समाप्त कर दें। अब तक भूमि पर, आकाश में, समुद्र में, कहीं भी जाते हुए हमारे मनों में एक भय और सन्देह विद्यमान रहता था कि कहीं यहां शत्रु की सुरंगे न बिछी हों, कहीं शत्रु के हवाई जहाज हमें न गिरा दें, कहीं शत्रु की पनडुब्बियां हमारे जलपोत को विनष्ट न कर दें। पर आज से इस प्रकार की आशंकाओं का हम अवसान कर दें। अपने मनों से द्वेष और त्रास को निकाल दें। द्यावापृथिवी हमारे लिए उद्वेजक न रह कर कल्याणकर हो जायें। सब दिशाएं हमारे लिए शत्रु-रहित हो जायें।"

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः ।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ।।
सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः ।।

अथर्व ६.४२.१,२

"हे भाई, तुम्हारे हृदय पर मेरे प्रति क्रोध ऐसा चढ़ा हुआ है, जैसे धनुष पर मौर्वी चढ़ी हुई हो। जैसे मौर्वी चढ़े हुए धनुष से शत्रु पर बाण छोड़ा जाता है, वैसे ही क्रोधाविष्ट हृदय से तुम मेरे ऊपर अनिष्ट के बाणों की बौछार करना चाह रहे हो।

परन्तु आज मैं तुम्हारे हृदय से क्रोध की डोरी को उतार कर रहूंगा। तुम्हारे भारी से भारी क्रोध को मैं अपने प्रेम रूपी पत्थर के नीचे दबा दूंगा। परिणामतः तुम भी मेरे प्रेम का मूल्यांकन कर अपने क्रोध को भुला दोगे, और हम पुनः दो मित्रों के समान परस्पर व्यवहार करने लगेंगे।"

द्वेष-निवारण की निम्न वैदिक प्रार्थनाएं भी अपूर्व प्रेरणादायक हैं —

विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् । ऋग् ४.१.४

"हे प्रभो, हमारे अन्दर से समस्त द्वेषभावों को पृथक् कर दो।

यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत । ऋग् २.२९.२

"हे देवपुरुषो, तुम द्वेषभावों को सदा ही हम से दूर करते रहो।"

मा सो अस्मान् द्विक्षत मा वयं तम् ।

अथर्व १२.२.३३

"न वह हम से द्वेष करे, न हम उससे द्वेष करें।

सब समृद्ध हों

वेद किसी एक व्यक्ति की, एक समाज की या एक राष्ट्र की नहीं, किन्तु सभी व्यक्तियों की, सभी समाजों की और सभी राष्ट्रों की समृद्धि चाहता है। उसकी कामना है कि सभी दिशाओं के वासी फूलें, फलें, समृद्ध हों। एक प्रार्थना देखिए —

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः
वृष्टे शापं नदीरिव- इह स्फातिं समावहान् ।

अथर्व ३.२४.३

अर्थात् ये जो पांच प्रदिशाएं (पूर्वादि चार तथा एक केन्द्र) हैं, तथा उनमें रहने वाले जो पंच मानव हैं, वे सभी इस प्रकार समृद्धि को प्राप्त करें, जिस प्रकार वर्षा

होने पर नदियां जल की बाढ़ को प्राप्त करती हैं। यहां समृद्धि के लिए नदियों की उपमा कैसी सुन्दर है।

सबका मंगल हो

वेद का स्तोता केवल अपना ही नहीं, किन्तु सभी का मंगल चाहता है। यहां तक कि पशु-पक्षियों तक की स्वस्ति का उसे ध्यान है।

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु
स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः। अथर्व १.३१.४

"माताओं का मंगल हो, पिताओं का मंगल हो, गौओं का मंगल हो, पुरुषों का मंगल हो, सब जगत् का मंगल हो।"

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने।
शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे॥
अदत् पिबदूर्जयमानमाशितं।
तदस्मे शंयोररपो दधातन॥ ऋग् १०.३७.१२

"हे देवो, द्विपात्-चतुष्पात् दोनों प्रकार के जीवों का कल्याण करो। हम सबको ऐसा सुख और आरोग्य प्रदान करो कि प्रत्येक जीव खाता, पीता तथा बल के कार्य करता रहे।"

निम्न वैदिक प्रार्थनाएं भी सर्वभूतहित की भावना पर प्रकाश डालती हैं —

सर्वमिज्जगद् अयक्ष्मं सुमना असत्। यजुः १६.४

"सारा ही जगत् रोगरहित तथा स्वस्थ मन वाला हो।"

विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। यजुः १६.४८

"इस समाज में सभी हृष्टपुष्ट तथा नीरोग रहें।"

वेदों की अधिकांश प्रार्थनाएं 'नः', 'अस्मभ्यम्' आदि बहुवचनान्त शब्दों द्वारा की गई हैं। इसका कारण भी यही है कि वेद का स्तोता केवल अपना स्वार्थ नहीं देखता, किन्तु उसके अन्दर विश्वबन्धुत्व की भावना होने से वह कल्याण प्राप्ति में सभी को साझी बनाना चाहता है। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में सविता देव से बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करने की याचना सभी के लिए है। **'यद् भद्रं तन्न आसुव'** में सविता से भद्रप्राप्ति की प्रार्थना भी सभी के लिऐ की गयी है। **'उद् वयं तमसस्परि'** में तामसिकता से मुक्त होकर ज्योति में जाने की कामना भी सबके लिए है। **'वयं सर्वेषु यशसः स्याम'** में यशस्विता की प्रार्थना **'अगन्महि मनसा सं शिवेन,'** में शुभमनस्कता की प्रार्थना, **'अस्मान् पुनीहि चक्षसे'** में पवित्रता की प्रार्थना, **'अप नः शोशुचदघम्'** में पाप-शोषण की प्रार्थना, **'स्वस्ति नो अभयं च नः'** में स्वस्ति तथा निर्भयता की प्रार्थना, **'वयं मधुमन्तः स्याम'** में माधुर्य की प्रार्थना, **'शं च नो मयश्च नः'** में सुख-शान्ति तथा आरोग्य की प्रार्थना, **'वयं स्याम पतयो रयीणाम्'** में धनपति होने की प्रार्थना, **ऋतमस्माकं तेजोऽस्माकम्'** में ऋत और तेज की प्रार्थना, **'परैतुमृत्युरमृतं न ऐतु'** में मृत्यु-विनाश तथा अमरत्व की प्रार्थना तथा **'वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः'** में इन्द्र के प्रिय बनने की प्रार्थना भी सब के लिए ही है।

क्वचित् 'अहं', 'मे' 'मम', 'मह्यम्' आदि एकवचनान्त शब्दों से प्रार्थना है भी तो वह इस लिए कि एक-एक व्यक्ति के गुणवान् होने से अन्ततः समाज ही गुणी होता है। बहुत से वेदमन्त्रों में तो ऐसा भी है कि प्रथम अपने लिए प्रार्थना की गयी है, तो उसका उपसंहार बहुजनहिताय में ही किया गया है यथा—

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो,
वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे दधातु।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥ यजुः ३६.२

यहां कोई व्यक्ति अपने चक्षु, हृदय तथा मन के दोषों को दूर करने की प्रार्थना करता है। व्यक्तिगत दोषनिवारण होने पर लाभ समष्टि का ही होगा, अतः मन्त्र के उपसंहार में वह कहता है कि भुवनपति प्रभु हम सभी को सुख-शान्ति प्रदान करें।

परोपकार का आदर्श

वेदों में विश्वबन्धुत्व की भावना होने का एक यह प्रमाण भी है कि परोपकार तथा दान वैदिक-संस्कृति के प्रमुख अंग हैं। ऋग्वेद में दानस्तुति के अनेक सूक्त आए हैं। यदि कहीं कोई संकटापन्न मानव दिखाई देता है तो वैदिक दृष्टि में हमारा कर्तव्य है कि हम उसकी सहायता करें। वेद का आदेश है कि समृद्ध को चाहिए कि वह निर्धन को अवश्य दान करे। दान की भावना जगाने के लिए श्रुति कहती है कि संभव है कल तुम गरीब हो जाओ तथा तुम्हें दूसरों के दान की आवश्यकता अनुभव होने लगे। संपत्तियां तो रथ के चक्र के समान घूमती रहती हैं तथा एक को छोड़ कर दूसरे के समीप जाती रहती हैं।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्
द्राधीयांसमनुपश्येत पन्थाम्।
ओहि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा
अन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः॥ ऋग् १०.११७.५

वेद की घोषणा है कि अकेला खाने वाला पाप का ही भागी होता है — केवलाघो भवति केवलादी, (ऋग् १०.११७.६)। अतएव वैदिक उपासक पूषा प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे पूषन् प्रभो, जिसकी दान की प्रवृत्ति नहीं है उसे आप दान के लिए प्रेरित कीजिए। आप कृपण के कठोर मन को मृदु कर दीजिए, जिससे वह दुखिया को देख कर पसीजे।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन् दानाय चोदय।
पणेश्चिद् वि म्रदा मन॥ ऋग् ६.५३.३

वेद कहते हैं कि जो आपद्ग्रस्त को धन, अन्न आदि से सहायता नहीं करता, प्रत्युत उसके सामने ही स्वयं भोग करने में संलग्न रहता है, वह अन्ततः सुखी नहीं हो सकता।

य आध्राय चकमानाय पित्वो-
ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरो-
तो चित् स मर्डितारं न विन्दते॥
ऋग् १०.११७.२

जनसंहार न हो

आज अधिकांश राष्ट्र एक-दूसरे को नीचा दिखाना चाहते हैं। शस्त्रास्त्रों की होड़ लग रही है। ऐसे-ऐसे संहारक अणु-गोलों का आविष्कार हुआ है कि एक ही गोले से देश के देश विध्वस्त हो जायें। परन्तु वेद को यह स्थिति वांछनीय नहीं है। वेद कहता है —

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्।
यजुः १६.३

"हे रुद्र, हे शक्तिधर, तुझे तो 'गिरिशन्त' और 'गिरित्र' अर्थात् लोकरक्षक होना चाहिए — गिरिषु पर्वतवदुन्नतेषु राष्ट्रेषु शं कल्याणं तनोतीति गिरिशन्तः। गिरीन् राष्ट्राणि त्रायते इति गिरित्रः। तूने अपनी शक्ति के मद में आकर फेंकने के लिए जो इषु, जो भयंकर अस्त्र हाथ में पकड़े हुए हैं, उन्हें शिव बना, उनका संसार के हित के लिए उपयोग कर। उनसे तू निरीह पुरुषों का और जगत् का संहार मत कर।"

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वम् उभयोरार्त्न्योर्ज्याम्।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप॥

"तूने जो धनुष की दोनों कोटियों पर प्रत्यंचा चढ़ाई हुई है, उसे खोल दे, और जो चलाने के लिए बाण पकड़े हुए हैं उन्हें दूर रख दे, अर्थात् जो युद्ध की तैयारी कर ली है उससे उपरत हो जा।"

वेदों की शान्तिप्रियता

"वेदों को शान्ति इतनी अधिक प्रिय है कि कई संपूर्ण सूक्त शान्ति का आवाहन करने वाले हैं। देवों से, मानवों से, प्रकृति की एक-एक वस्तु से, शान्ति की पुकार की गयी है।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु
शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु
शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।

ऋग् ७.३५.८, अथर्व १९.१०.८

"यह विस्तीर्ण प्रकाश का गोला सूर्य हम मानवों में शान्ति लाता हुआ उदित हो। चारों दिशाएं हमारे लिए शान्ति को विकीर्ण करें। ये अचल पर्वत हमें शान्ति का सन्देश सुनाएं। ये समुद्र और नदियां भी हमें शान्ति का पाठ पढ़ायें।"

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी -
शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधी ।।

अथर्व १९.९.१

"तेजोमय द्युलोक हमारे लिए शान्ति का सन्देश वाहक हो। यह विस्तृत अन्तरिक्ष हमें शान्ति की प्रेरणा दे। ये शीतल सलिल वाली धाराएं हमें शान्ति का गान सुनाएं और ये प्रसूनों तथा फलों वाली औषधी वनस्पतियां हमारे लिए शांन्ति के राग गायें।

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोर तयैव शान्तिरस्तु नः ।।
इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ।।
इमानि यानि पंचेन्द्रियाणि
मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ।।

अथर्व १९.८.३-५

मनुष्य के अन्दर विद्यमान वाणी और मन परमेष्ठी हैं, परम पद पर स्थित हैं, परम शक्तिशाली हैं। पर इन के दुरुपयोग के कारण कभी-कभी मानव, मानव का शत्रु बन जाता है, उसके रक्त का पिपासु हो जाता है। मन सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियां भी मनुष्य के लिए अद्भुत देन हैं। पर इनका भी सम्यक् प्रयोग न करने से बड़े घोर परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं। वेद की प्रेरणा है कि इन वाक्, मन तथा इन्द्रियों को हम ज्ञान से तीक्ष्ण कर लें जिससे ये पारस्परिक कलह का कारण न बन कर संसार में शान्ति का साम्राज्य लाने वाले हों।

युद्ध क्यों ?

अब तक जो कुछ लिखा गया है वह वेदों की विश्व-बन्धुत्व की भावना को प्रकाशित करता है। परन्तु यहां एक शंका उपस्थित होती है, वह यह कि यदि वेद विश्व-बन्धुत्व तथा सर्वजनीन हित के ही समर्थक हैं तो उन में पग-पग पर भीषण युद्ध, शत्रुवध, आत्मविजय आदि के वर्णन क्यों आये हैं? वेदों के प्रमुख देवता इन्द्र के शत्रु विजय के इतिहास से वेदों के पृष्ठ के पृष्ठ क्यों रंगे पड़े हैं? इसका उत्तर भी कठिन नहीं है। वेद के युद्ध-वर्णनों में एक बात विशेष रूप से यह द्रष्टव्य है कि सर्वत्र देवों को असुरों के विरुद्ध अभियान के लिए प्रेरित किया गया है। ऐसा एक भी स्थल नहीं है जहां देवों को देवों के विरोध में उकसाया गया हो। इन असुरों को यातुधान, पिशाच, क्रव्याद्, रक्षस्, राक्षस, दास, वृत्र, दस्यु, शुष्ण, शम्बर, नमुचि आदि शब्दों से स्मरण किया गया है। यातुधान वे हैं जो निर्दोष लोगों को भयंकर यातनाएं देते हैं। पिशाच तथा क्रव्याद् वे हैं जो मनुष्यों का तथा गौ, अश्व आदि उपयोगी जन्तुओं का कच्चा मांस तक खा जाते हैं। रक्षस् या राक्षस वे हैं जिनके भीषण उपद्रवों से समाज असुरक्षित हो जाता है तथा उसे रक्षा की आवश्यकता पड़ती है। दास या दस्यु वे हैं जो सज्जनों का व्यापक रूप में उपक्षय करते हैं। वृत्र वे हैं जो सत्य, न्याय, दया आदि के प्रकाश को ढक कर तामसिकता उत्पन्न कर देते हैं। शम्बर वे हैं जो उत्पात और हिंसा का जाल फैला कर शान्ति भंग करते हैं। शुष्ण वे हैं जो सत्पुरुषों के शोषण में निरत रहते हैं। नमुचि वे हैं जो सज्जनों को अपनी दुष्टता से दूषित करने के लिए ऐसे चिपट जाते हैं कि छोड़ते ही नहीं। ये सब वे असुर हैं जो साम, दान, भेद इन तीनों उपायों का अवलम्बन करने पर भी अपने राक्षसी स्वभाव का परित्याग

नहीं करते । अतः " चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया "[१] की नीति के अनुसार इनके प्रति दण्ड का प्रयोग आवश्यक होता है। अतः इन आसुरी सम्पत् वालों पर विजय प्राप्त करने के लिए दैवी सम्पत् वालों को वेद प्रोत्साहित करते हैं, जैसे श्री कृष्ण ने गीता में अर्जुन को प्रोत्साहित किया है। ये युद्ध शान्ति की स्थापना के लिए होते हैं। साथ ही अध्यात्मक्षेत्र में ये असुर काम, क्रोध आदि हैं, जिन से अध्यात्म-पथ के पथिक को अहर्निश युद्ध करना पड़ता है। अतएव उन पर विजय पाने के लिए भी मानव को प्रेरित किया गया है।

वेदों के युद्ध-परक वर्णनों को इसी रूप में लेना उचित है। अतः इन से वेदों की विश्वबन्धुत्व की भावना में कोई अन्तर नहीं आता।

—o—

- आत्म प्रतारणा की धूप का सेवन केवल मूर्ख ही करते हैं।
- बैंक बैलेन्स सदा मित्र नहीं होता। मगर मित्र सदा बैंक बैलेन्स होता है।
- दूसरे लोगों द्वारा ढोये गये बोझ का ज्ञान हमें अपना बोझ ढोने में प्रोत्साहन देता है।
- समझदार मधुमक्खी कुम्हलाये फूल पर कभी नहीं बैठती।
- कौन अस्वीकार करेगा कि ईर्ष्या प्रकारान्तर से प्रसंसा ही है।

स्वामी दयानन्द का मेरे जीवन पर प्रभाव

श्री चौ० चरणसिंह

मैं जहां राजनीतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी को अपना गुरु या प्रेरक मानता हूं, वहां धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में मुझे सब से अधिक प्रेरणा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने दी । इन दोनों विभूतियों से प्रेरणा प्राप्त कर मैंने धार्मिक व राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया था । एक ओर आर्य-समाज के मंच से हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध मैं सक्रिय रहा, वहां कांग्रेसी कार्यकर्ता के रूप में भारत की स्वाधीनता के यज्ञ में मैंने यथाशक्ति आहुतियाँ डालने का प्रयास किया ।

स्वदेशी, स्वभाषा व स्वधर्म का गौरव

छात्र-जीवन में, लगभग १९-२० वर्ष की आयु में स्वामी सत्यानन्द लिखित महर्षि दयानन्द सरस्वती की जीवनी पढ़ी । मुझे लगा कि बहुत समय बाद भारत में सम्पूर्ण मानव गुणों से युक्त एक तेजस्वी विभूति महर्षि के रूप में प्रकट हुई है । उनके जीवन की एक-एक घटना ने मुझे प्रभावित किया, प्रेरणा दी । स्वधर्म (वैदिक-धर्म), स्वभाषा, स्वदेशी, स्वराष्ट्र, सादगी, सभी भावनाओं से ओत-प्रोत था महर्षि का जीवन । राष्ट्रीयता की भावनाएं तो जैसे उनकी रग-रग में ही समायी हुई थी । इन सब गुणों के साथ तेजस्विता उनके जीवन का विशेष गुण था । इसीलिये आर्य-समाज के नियमों में सत्य के ग्रहण करने एवं असत्य को तत्काल त्याग देने को उन्होंने प्राथमिकता दी थी ।

महर्षि दयानन्द की एक विशेषता यह थी कि वे किसी के कन्धे पर चढ़ कर आगे नहीं बढ़े थे । अंग्रेजी का एक शब्द भी न जानने के बावजूद हीन-भावना ने आजकल के नेताओं की तरह, उन्हें ग्रसित नहीं किया । अपनी हिन्दी भाषा, सरल व ग्राम जनता की भाषा में उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' जैसा महान् ग्रन्थ लिखा । इस महान् ग्रन्थ में उन्होंने सब से पहले अपने हिन्दू समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कड़े से कड़ा प्रहार किया । बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, महिलाओं की शिक्षा की उपेक्षा, अस्पृश्यता, धर्म के नाम पर पनपे पाखण्ड आदि पर जितने जोरदार ढंग से प्रहार स्वामी जी ने किया, उतना अन्य किसी धार्मिक नेता या आचार्य ने नहीं किया । अपने समाज में व्याप्त गली-सड़ी कुरीतियों पर प्रहार करने के बावजूद स्वामी जी ने राजा राम मोहनराय आदि पश्चिम स प्रभावित नेताओं की तरह, वैदिक-धर्म को उन दोषों के लिए दोषी नहीं ठहराया, वरन स्पष्ट किया कि वैदिक, हिन्दू-धर्म सभी प्रकार की बुराइयों व कुरीतियों से ऊपर है, वैदिक-धर्म वैज्ञानिक व दोष-मुक्त धर्म है, तथा उसकी तुलना अन्य कोई नहीं कर सकता ।

स्वामी जी ने अपने वैदिक-धर्म के पुनरुद्धार के उद्देश्य से आर्य-समाज की स्थापना की । उन्होंने नाम भी आकर्षक व प्रेरक चुना । 'आर्य' अर्थात् श्रेष्ठ समाज । इसमें न किसी जाति की

संकीर्णता है, न किसी समुदाय की । जो भी आर्य-समाज के व्यापक व मानवमात्र के लिए हितकारी नियमों में विश्वास रखे, वही आर्यसमाजी' । 'आर्य-समाज' नाम से उनकी दूरदर्शी, व्यापक व संकीर्णता से सर्वथा मुक्त दृष्टि का ही आभास होता है ।

स्वामी जी ने स्वदेशी व स्वभाषा पर अभिमान करने की भी देशवासियों को प्रेरणा दी । अंग्रेजी को वे विदेशी, अपनी भाषा तथा अपनी वेश-भूषा अपनाने पर बल देते थे । जिन परिवारों में वे ठहरते थे, उनके बच्चों की वेश-भूषा पर ध्यान देते थे तथा प्रेरणा भी देते थे कि हमें विदेशों की नकल छोड़ कर अपने देश के बने कपड़े पहनने चाहिएँ, अपना काम-काज 'संस्कृत व हिन्दी' में करना चाहिए । गाय को स्वामी जी भारतीय कृषि व्यवस्था का प्रमुख आधार मानते थे । इसीलिए उन्होंने 'गोकरुणा-निधि' लिखी तथा गोरक्षा के लिए हस्ताक्षर कराये । वे ग्रामों के उत्थान, किसानों की शिक्षा की ओर ध्यान देना बहुत जरूरी मानते थे ।

जाति प्रथा के विरुद्ध चेतावनी

स्वामी जी दूरदर्शी संन्यासी थे । उन्होंने इतिहास का गहन अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला था कि जब तक हिन्दू-समाज जन्मना जाति प्रथा की कुरीति में ग्रस्त रहेगा वह बराबर पिछड़ता जायेगा । इसीलिए उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' में तथा अपने प्रवचनों में जाति-प्रथा व अस्पृश्यता पर कड़े से कड़े प्रहार किये । वे दूरदर्शी थे अतः उन्होंने पहले ही यह भविष्यवाणी कर दी थी कि यदि हिन्दू समाज ने जाति-प्रथा व अस्पृश्यता के कारण अपने भाइयों से घृणा नहीं छोड़ी, तो समाज तेजी बिखरता चला जायेगा, जिसका लाभ विधर्मी स्वतः उठायेंगे । उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि अस्पृश्यता का कलंक हिन्दू धर्म के साथ-साथ देश के लिए भी घातक होगा ।

महर्षि की प्रेरणा पर आर्य-समाज के नेताओं – लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द आदि ने अस्पृश्यता के विरुद्ध अभियान चलाया । आर्य-समाज ने जन्मना जाति-प्रथा की हानियों से लोगों को समझाने का प्रयास किया । किन्तु आज तो जाति-पाति की भावनाएं धर्म के नाम पर नहीं, 'राज-नीतिक मठाधीशों' द्वारा राजनीतिक लाभ की दृष्टि से अपनायी जा रही हैं । आज तो आर्य-समाज को इस दिशा में और भी तेजी से सक्रिय होने की जरूरत है ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों अथवा आर्य-समाज के दस नियमों का पूरी तरह पालन तो बहुत ही निर्भीक संयमी व तेजस्वी व्यक्ति कर सकता है, परन्तु इस दिशा में मैंने यथा-सम्भव कुछ कुछ पालन करने का प्रयास अवश्य किया है ।

मैंने सात वर्षों तक निरन्तर गाजियाबाद में वकालत करते समय एक हरिजन को रसोइया रख कर व्यक्तिगत जीवन में जातिगत भावना को जड़-मूल से मिटाने का प्रयास किया । इसके बाद

उत्तर-प्रदेश के मुखयमन्त्री के रूप में प्रदेश की शिक्षा-संस्थाओं के साथ लगने वाले ब्राह्मण, जाट, अग्रवाल, कायस्थ आदि जातिवाचक नामों को हटाने का दृढ़ता के साथ कानून बनवाया । मेरे अनेक साथियों ने उस समय कहा कि इससे बहुत लोग नाराज हो जायेंगे । मैंने स्पष्ट उत्तर दिया कि 'नाराज हो जायें, मैं शिक्षा क्षेत्र में जातिगत संकीर्णता कदापि सहन नहीं कर सकता ।' जिस दिन मेरे क्षेत्र बड़ौत के 'जाट इण्टर कालेज' का नाम बदल कर जाट की जगह 'वैदिक' शब्द जुड़ा, उस दिन मुझे सन्तोष हुआ कि चलो महर्षि के आदेश के पालन करने में मैं कुछ योगदान कर सका । इसी प्रकार अपनी पुत्री तथा धेवती का अन्तर्जातीय विवाह कर मुझे आत्म-सन्तोष तो हुआ ही ।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भारत महर्षि दयानन्द तथा महात्मा गांधी के आदर्शों पर चल कर ही सच्चा गौरव प्राप्त कर सकता है । दोनों महापुरुष भारत को प्राचीन ऋषियों के समय की सादगी, सच्चाई, न्याय व नैतिकता के गुणों से युक्त भारत बनाने के आकांक्षी थे. 'महर्षि' व 'महात्मा' दोनों ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राचीन संस्कृति व धर्म को जीवन में महत्त्व दिया तथा धर्म के नाम पर किसी भी तरह घुस आयी कुरीतियों पर प्रहार किये । उनका स्पष्ट मत था कि हम विदेशियों का अन्धानुकरण करके भारत का उत्थान कदापि नहीं कर सकते । आज हमें उनसे दिशा ग्रहण कर इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बढ़ना चाहिये ।

दीपावलि ज्योति पर्व है । इस दिन हम अन्धकार अर्थात् अस्पृश्यता, अनैतिकता, भ्रष्टाचार आदि से ऊपर उठ कर प्रकाश के मार्ग पर चलने की प्रेरणा ले सकते हैं । ईमानदारी तथा नैतिकता को अपनाये बिना हम संसार में सम्मान कदापि प्राप्त नहीं कर सकते ।

(धर्मयुग ६ नवम्बर ७७ से साभार)

---o---

- मूर्ख की अज्ञानता के अर्ध-भाग को भी श्रेष्ठतम विद्वान् जान सकने में असमर्थ है ।
- औरों पर भले ही सन्देह करो अपने पर मत करो ।
- मैत्री केवल मैत्री से ही क्रय की जा सकती है ।
- जो अपने को जितना ही अधिक क्षमा करता है उतना ही अधिक अपराधी बन जाता है ।

वानप्रस्थाश्रम की उपादेयता

डा० गंगाराम, आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर
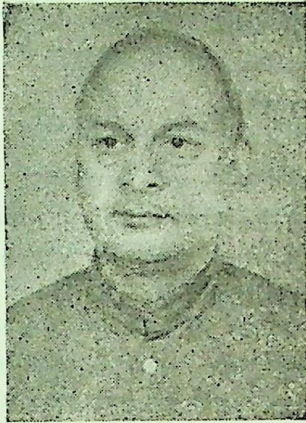
डा० गंगाराम जी

प्रायः यह शंका की जाती है कि जबकि आश्रमव्यवस्था के पहले दो आश्रमों अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम और गृहस्थाश्रम का विधान वेदों में है और उन आश्रमों पर विस्तार से लिखा भी गया है, अन्तिम दो आश्रमों – वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम – का उल्लेख वेदों में नहीं है। इस शंका के पोषक अपने मत के समर्थन में गृहाश्रम सम्बन्धी वेद का निम्न मन्त्र उद्धृत करते हैं—

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभि र्मोदमानौ स्वे गृहे॥

ऋ० १०.८५.४२

अर्थात् किसी से विरोध न करो, गृहस्थाश्रम में रहो, पूर्ण आयु प्राप्त करो, पुत्र और पौत्रों के साथ खेलते हुए और आनन्द करते हुए अपने ही घर में रहो और घर को आदर्श रूप बनाओ।

भारत के अपने ही पड़ौसी देश चीन की आदिम सामाजिक व्यवस्था में भी परिवार पर बहुत बल दिया जाता था। एक ही परिवार में दादा पड़दादा तक के सभी भाइयों की संतति सम्मिलित होती थी। बड़े बूढ़ों के प्रति जितना पूज्य भाव एक चीनी परिवार में होता था, ऐसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ था। परिवार के प्रति अगाध श्रद्धा थी। यहां तक कि यदि राज्य के प्रति वफादारी और परिवार के प्रति वफादारी का धर्म संकट सामने आ जाये तो परिवार के प्रति वफादारी को प्राथमिकता दी जाती थी। यदि परिवार के किसी एक सदस्य ने कोई अपराध किया है, तो यह परिवार का अपराध माना जाता था और राज्य को यह अधिकार था कि वह परिवार के किसी अन्य सदस्य को दण्ड दे सके।

प्रायः आदिम सामाजिक प्रणालियों में परिवार की इकाई पर बहुत बल दिया जाता था, पर भारतीय जीवन केवल परिवार तक ही सीमित रहा हो, ऐसी बात नहीं है! परिवार में रहते हुए भोग की पूर्ण अनुमति है, पर एक सीमा तक, और वह भी नियम-पूर्वक। 'तेनत्यक्तेन भुञ्जीथा। मा गृधः कस्य स्विद्धनम्" अर्थात् त्यागपूर्वक उपभोग कर और दूसरे के धन का लोभ मत कर। संपूर्ण भारतीय संस्कृति जहां भोग पर बल देती है, वहां त्याग पर भी उसका उतना ही जोर है। स्वयं वेद परिवार तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने परिवार के त्याग पर ही नहीं बल्कि संसार के त्याग पर भी बल दिया है। 'वानप्रस्थ' एवं 'संन्यास' शब्दों का प्रयोग भले ही वेदों में न हुआ हो पर ऐसे मन्त्र वेदों में अवश्य मिलते हैं, जिन से वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम का बोध होता है। परिवार का त्याग करना वानप्रस्थाश्रम है और उसके पश्चात् अगली सीढ़ी है संसार का त्याग, जिसे संन्यासाश्रम कहते हैं।

चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे
चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत।

ऋग् ९.७०.१, सामवेद पूर्वाचिकः ५.९.७

तात्पर्य यह कि मनुष्य, सत्य, वेदज्ञान तथा यज्ञ भावना द्वारा आश्रमों के रूप को साधारण रूप से भिन्न और अत्युत्तम बना देते हैं जिससे लोग उनकी ओर आकृष्ट होने लगते और उनके महत्व को समझने लगते हैं।

'भुवनानि' शब्द का प्रयोग यहां आश्रम के अर्थ में ही प्रतीत होता है। एक अन्य मन्त्र देखिये —

आनयैतमारभस्त्र सुकृतां लोकमपि
गच्छतु प्रजानन्।
तीर्त्वा तमांसि बहुधा महान्त्यजो
नाकमाक्रमतां तृतीयम्॥
अथर्व ९.५.१

इस में वानप्रस्थाश्रम का स्पष्ट वर्णन है। महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है —

हे गृहस्थ ! प्रकर्षता से जानता हुआ तू इस गृहस्थाश्रम का आरभ कर। अपने मन को गृहस्थाश्रम से इधर की ओर ला। पुण्यात्माओं के देखने योग्य वानप्रस्थाश्रम को भी प्राप्त हो। बहुत प्रकार के बड़े-बड़े अज्ञान दुःख आदि संसार के मोहों को तर के अर्थात् पृथक् होकर अपनी आत्मा को अजर अमर जान, तीसरे दुःख रहित वानप्रस्थाश्रम को रीति पूर्वक आरूढ़ हो। यहां महर्षि दयानन्द की व्याख्यानुसार भी आश्रम के लिए 'लोक' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो 'भुवन' का ही पर्यायवाची है।

ऋग्वेद १०.१४६ का अरण्यानी सूक्त स्पष्टतया वानप्रस्थ वासिनी देवी का वर्णन करता है, जिसके निम्नलिखित मन्त्र का उल्लेख ही यहां पर्याप्त है —

न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभि गच्छति।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथा कामं निपद्यते॥

अर्थात् घने जंगल में वानप्रस्थाश्रम वासिनीदेवी किसी की हिंसा नहीं करती और स्वादु फलों का सेवन करके तपस्या, साधना, स्वाध्यायादि द्वारा अपनी शुभ-कामना की पूर्ति करती है।

फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जबकि वेदों में ब्रह्मचर्याश्रम तथा आदर्श गृहाश्रम का विस्तार से उल्लेख है, अंतिम दो आश्रमों का अस्तित्व बीज रूप में विद्यमान है। आगे चलकर जब आरण्यकों और उपनिषदों की रचना हुई तो वेदों में वर्णित वानप्रस्थाश्रम के बीज रूप सूत्र को पकड़ कर उस पर बल दिया जाने लगा। 'आरण्यक' शब्द से तो तात्पर्य यही था कि इनका उपदेश वनों में दिया जाता था। गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम पर बल दिया जाने लगा। उपनिषदों और मनुस्मृति में इस आश्रम पर विस्तार से चर्चा हुई है।

वन्य जीवन कैसा हो ?

वन में उपलब्ध अन्न, शाक, मूल, फल, फूल, कन्द आदि से या भिक्षाचरण से निर्वाह का विधान है। तपस्या, त्याग, सत्य और श्रम का जीवन व्यतीत करे। जितेन्द्रिय होकर सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे।

दैनिक कर्तव्य

यज्ञ और योगाभ्यास करते हुए वह स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने-पढ़ाने में नित्य युक्त रहे और विद्यादि का दान देने हारा हो।

प्रश्न

अब प्रश्न उठता है कि वानप्रस्थाश्रम व्यवस्था समाप्त क्यों हो गई और यदि है तो उसका वर्तमान स्वरूप क्या रह गया है ?

वानप्रस्थाश्रम की व्यवस्था का ह्रास मुख्यतः ईस कारण हैं कि इस आश्रम से पहले जो गृहस्थाश्रम है उसने अपना क्षेत्र आगे-पीछे इतना फैला लिया है कि एक ओर तो उसने ब्रह्मचर्याश्रम के काल में और दूसरी ओर वानप्रस्थाश्रम के काल में भी प्रवेश कर लिया है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृति है कि वह संसार के भोग-विलास में जल्दी फँसना चाहता है और देर तक फँसे रहना चाहता है। इस फन्दे से निकलते हुए उसे एक झटका-सा लगता है। फिर बहुतों की गृह-परिस्थितियां ऐसी हो जाती हैं कि उनके लिये घर-बार छोड़ना संभव नहीं हो पाता – उदाहरणार्थ यदि संतानोत्पत्ति ४०-४५ वर्ष की आयु में हो, तो फिर वानप्रस्थाश्रम में समय पर कैसे प्रवेश हो सकता है। इसी प्रकार अन्य बहुत से कारण भी हो सकते हैं।

फिर वन में निवास करना कोई सरल कार्य नहीं हैं। वन्य प्राणियों एवं दुष्ट व्यक्तियों से भय, यज्ञीय एवं खाद्य पदार्थों का प्रचुर मात्रा में न मिल पाना, चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध न होना इत्यादि ऐसे कारण हैं कि जिन से वानप्रस्थाश्रम व्यवस्था को धक्का लगा होगा। देश की बदलती राजनीतिक परिस्थितियों ने भी मनुष्य के लिए वन में निवास कठिन बना दिया होगा।

धीरे-धीरे वानप्रस्थ की वृत्ति रखने वाले लोग नगरों की ओर मुड़ पड़े होंगे, पर अपना मुख्य कर्तव्य यज्ञादि कर्म करते हुए उन्होंने शिक्षा वृत्ति को धारण किये रखा। अपना निर्वाह दानादि पर करने लगे। आज भी मथुरा, काशी, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि धार्मिक स्थानों पर हजारों पाठशालाएं चल रही हैं, जिन में गुरु के प्रति सच्ची निष्ठा और श्रद्धा रखते हुए ब्रह्मचारीगण तपस्यापूर्वक जीवन बिताते हुए विद्याध्ययन कर रहे हैं। यहां न हड़तालें होती हैं और न गुरुओं को पीटा जाता है। दान से प्राप्त जो भी आ जाता है उससे गुरुजन और शिष्यगण निर्वाह करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इसी प्रकार की पाठशाला में आचार्य विरजानन्द जी से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी। गुरु का ही कुल, गुरुकुल कहलाता था। गुरु की मृत्यु के पश्चात् वह गुरुकुल भी समाप्त हो जाता था। जहां गुरु था, वहीं कुल था और वहीं गुरुकुल था। गुरु से पृथक् गुरुकुल की कोई सत्ता नहीं थी। अब तो गुरुकुल पहले स्थापित होता है और फिर गुरु की खोज होती है। हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरु ही शिष्यों को आकृष्ट करता था, अतः गुरु के साथ ही गुरुकुल होता था। यूनान में प्लेटो ने एक अकेडमी की स्थापना की जहां पर एरिस्टोटल ने विद्याध्ययन किया। पीछे एरिस्टोटल ने भी एक शिक्षण संस्था स्थापित की, पर ये दोनों इन्हीं की मृत्यु के साथ समाप्त हो गईं।

वानप्रस्थाश्रम की उपादेयता

आज हमारे देश में अधिक जन-संख्या की समस्या बनी हुई है। जन-संख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि अंतर्राष्ट्रीय सहायता एजन्सियों का यह विचार है कि भारत जब तक अपनी जन-संख्या पर नियन्त्रण नहीं करता, उसे आर्थिक सहायता देने से कोई लाभ नहीं। जबकि भारत में अधिक जन-संख्या की समस्या है, आयरलैंड में कम होती हुई जन-संख्या की समस्या है। आयरलैंड में लोग बहुत देर में विवाह करते हैं या फिर विवाह करते ही नहीं। चर्च के हर द्वार पर लिखा है 'विवाह करो, सन्तानोत्पत्ति करो, यह ईश्वर का आदेश है'। वहां की जन-संख्या निरन्तर गिरती जा रही है। यदि वर्तमान गति से जन-संख्या कम होती चली गई, तो ५०० वर्ष में आयरलैंड में एक भी निवासी नहीं बचा रहेगा। एक ओर अधिक जन-संख्या की समस्या है तो दूसरी ओर निरन्तर गिरती हुई जन-संख्या की। यदि आश्रमव्यवस्था के अनुसार २५ वर्ष की आयु में पुरुष का विवाह हो और ५०-५५ में वह वानप्रस्थाश्रम में आ जाये, तो जन-संख्या न तो अधिक होगी और न ही कम। फिर आवश्यकतानुसार परिवार को सीमित भी रखा जा सकता है। स्वयं वेद में भी पुत्रों की संख्या निर्धारित की गई है।

भारतीय संस्कृति में मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति है। इसके लिए आत्मोन्नति अपेक्षित है। वानप्रस्थाश्रम मनुष्य को भोग की प्रवृत्ति से निकालकर निवृत्ति और त्याग के मार्ग की ओर ले जाता है। धीरे-धीरे मनुष्य अनुभव करता है कि भोग की अपेक्षा त्याग में अधिक सुख, शान्ति और आनन्द है। फिर घर के झगड़ों से भी मनुष्य बच निकलता है, जो कई बार विकट रूप धारण कर लेते हैं।

वानप्रस्थाश्रम की उपयोगिता के साथ-साथ वर्तमान आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर के संदर्भ में भी कुछ कहना उपयुक्त रहेगा। प्रायः यह आरोप लगाया जाता है कि वर्तमान वानप्रस्थाश्रम में वे लोग आते हैं जिनके घरों में झगड़े होते हैं। यह आरोप कोई आरोप नहीं है। बुरी बात तो यह है कि झगड़े होते हुए भी लोग घर नहीं छोड़ते। झगड़ों के कारण यदि विरक्त भावना जागृत हो जाए तो यह अच्छी ही बात है। यह तो शुभ कर्मों का ही परिणाम है। झगड़ों के कारण आत्म-हत्या करना या दूसरों की हत्या करना पाप है, वानप्रस्थ लेना धर्म है। शास्त्रानुसार तो एक निश्चित आयु में वानप्रस्थ ले ही लेना चाहिए। यदि झगड़ों के कारण वानप्रस्थ की ओर वृत्ति बन जाती है, तो यह तो शुभ लक्षण है। महात्मा बुद्ध और स्वयं महर्षि दयानन्द सरस्वती ने गृह-त्याग भी तो दुःखों और कष्टों को देखकर किया था।

महात्मा हरप्रकाश जी कहा करते थे कि वानप्रस्थाश्रम में विद्वानों को खींच कर लाया जाये और उन्हें आश्रम में निवास के लिए प्रोत्साहित किया जाये। प्रसन्नता है कि आश्रम के सुयोग्य प्रबन्धक उस नीति पर चल रहे हैं। वस्तुतः आश्रम में अध्ययन और अनुसंधान की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाये। महर्षि भारद्वाज-कृत 'विमानशास्त्र' में ऐसे मुनियों का उल्लेख है, जिन्होंने उच्च अनुसंधान करके मन्त्रों का आविष्कार किया था। यदि आश्रम में उच्चतर साहित्य का निर्माण हो सके तो यह श्रेयस्कर रहेगा। आश्रम में हिन्दी-संस्कृत की शिक्षा देने का भी समुचित प्रबन्ध है। सध्या-हवन मन्त्रों को सिखाने की व्यवस्था है। प्रातः सायं यज्ञ-उपदेश तो होता ही है। इन कार्यों से समाज और धर्म का तो कल्याण होगा ही, साथ ही वानप्रस्थाश्रम का भी मान बढ़ेगा। इसके साथ यह भावना भी समाप्त होगी कि आश्रम में लोग निठल्ले नहीं रहते, बल्कि क्रियाशील व्यक्ति हैं।

आश्रम की अनेक गति-विधियों की व्यवस्था एक गुरुतर कार्य है। अनेक साधकों को यह सुविधा प्रदान करना कि वे शान्त वातावरण में साधना कर सकें, कोई सरल कार्य नहीं है। प्रबन्ध स्वयं एक जटिल कार्य है। जो भी महानुभाव इस व्यवस्था में जुटे हैं, वे सच्चे अर्थों में तपस्वी हैं।

—o—

- आदत को यदि शीघ्र ही न रोक लिया जावे तो वह अनिवार्य हो जाती है।
- यह ठीक ही कहा है कि बड़े आदमी मुश्किल से ही अच्छे श्रोता बन सकते हैं।
- धार्मिकताहीन महिला गन्धहीन पुष्प के समान है।
- कौन अस्वीकार कर सकता है कि बन्द ओष्ठ खुले हृदय की साक्षी होता है।

ऋषि दयानन्द एवं आर्ष पाठविधि

डॉ० प्रज्ञा देवी, वाराणसी-५

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन में जितने महत्तम कार्य किये उनमें से शिक्षा पद्धति के नियतीकरण का कार्य अत्यन्त प्रमुख कहा जा सकता है। ऋषि दयानन्द ने अपनी दूर दृष्टि से यह अच्छी प्रकार जान लिया था कि जब तक आधुनिक शिक्षा-प्रणाली को बदलकर आर्ष-पाठविधि की नींव नहीं रखी जायेगी तब तक वास्तविक मानव बनाने का ध्येय कदापि पूरा नहीं हो सकता। शिक्षा के आमूल परिवर्तन की बात आज अनेकों बार भारत के भाग्य-विधाता—तथाकथित नेतागणों द्वारा सुनने को मिलती है किन्तु वास्तविकता यह है कि शिक्षा का आमूल परिवर्तन तो हो "पर क्या हो ?" यह उन्हें भी नहीं पता। कभी १० + २ + ३ की स्कीम चालू की जाती है तो कभी कुछ। वस्तुत: देखा जाए तो यह सब प्रायोगिक विधियां हैं जो शिक्षा संस्थानों में लागू कर अनुभूत की जाती हैं। विदेशी पद्धति एवं पाठ्यक्रमों को देखकर ये नेता-गण अपने देश में उसका प्रयोग करते हैं बस यही इनका शिक्षा का आमूल परिवर्तन है अर्थात् इनका अपना कुछ भी नहीं !

युगद्रष्टा ऋषि दयानन्द ने लार्ड मैकाले की शिक्षा-पद्धति (जो हमारे लिए वास्तव में सर्वनाश का कारण है) के स्थान में इस ऋषि मुनियों के देश को पुन: उसी रूप में परिवर्त्तित करने के लिए एक क्रमबद्ध सुवैज्ञानिक सुन्दर पाठविधि दी; जिसके द्वारा वेदों के वास्तविक तथ्य को समझकर सुन्दर राष्ट्र का गठन हो सकता है, अपनी संस्कृति को पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। ऋषिवर ने इस पाठविधि की महत्ता पर इतना बल दिया कि अमरग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश, संस्कार-विधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका इन तीनों अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में इस पाठविधि की चर्चा की, इसकी महत्ता प्रतिपादित की किन्तु नेता-गणों की तो बात जाने दें आर्य समाज ने जो शिक्षण संस्थायें खोलीं उनमें भी वे इस आर्ष पाठविधि को न चला सके।

ऋषि दयानन्द के नाम पर खोली गई ये डी. ए. वी. कॉलिजादि आर्य संस्थायें आज ऋषि के मन्तव्यों के बिलकुल प्रतिकूल चल रहीं हैं। ऋषि दयानन्द ने शिक्षा की एक सुदृढ़ दिशा दी थी। किन्तु ये संस्थायें सर्वथा दिशा-हीन लक्ष्य-विहीन चल रही हैं। आर्यों ने आज तक आर्ष पाठविधि के लिए नाममात्र का प्रयास किया है, जब कि इन संस्थाओं के लिए करोड़ों रुपये की बिल्डिंग महान् प्रयास करके खड़ी की गई, परिणाम, वही हुआ जो होना था। सच्चे आर्य तैयार नहीं हो सके। ये संस्थायें ही आर्यों को खा गईं। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन काल में जो संस्कृत पाठशालायें खोली थीं उनमें उद्देश्य से विपरीत पठन-पाठन होने के कारण स्वयं उन्होंने अपने हाथों उन पाठशालाओं को तोड़ दिया था। क्या आज उनके दिशाहीन होने पर इन्हें तोड़ देने की आवश्यकता नहीं ? यह आर्यों को गम्भीरता से सोचना होगा।

ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में विशेषरूप से इस बात पर बल दिया है कि माता-पिता अपनी सन्तान को कोमल स्पष्ट उच्चारण करना सिखायें तथा ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोलना, वर्णों के स्थान और प्रयत्न बताते हुए मधुर-गम्भीर सुन्दर स्वर का ज्ञान कराने को भी कहा है। यह तभी सम्भव है जब माता-पिता वर्णोच्चारणशिक्षा के आधार पर अपनी सन्तानों को बोध करायें किन्तु अत्यन्त दुःख की बात है कि आर्य स्कूलों में प्राथमिक बुनियादी ज्ञान सिखाने के लिए इस छोटी किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण 'वर्णोच्चारण-शिक्षा' नाम की पुस्तक को भी स्थान न मिल सका। देवनागरी वर्णों का ठीक-ठीक ज्ञान प्रारम्भ में नहीं कराया जाता अतः शिक्षार्थी कभी भी शुद्ध लिखना शुद्ध पढ़ना एवं शुद्ध बोलना नहीं सीख पाता। प्रायः इतिहास, मनोविज्ञान, सामाजिक-शास्त्र आदि सभी विषय अवैदिक रीति से पढ़े-पढ़ाये जाते हैं। इतिहास में—आर्य लोग बाहिर से आये, पहिले वे जंगली और असभ्य थे इत्यादि बातें तथा मनोविज्ञान में—मन चेतन है एवं नाना-प्रकार की अन्धविश्वास की बातों को बताकर उसे शास्त्र की संज्ञा दी जाती है, इसी प्रकार सामाजिक शास्त्र जैसे विषयों का शिक्षण व्यावहारिक पक्ष से शून्य रहता है।

जब हमारा पाठ्यक्रम अन्य स्कूलों के समान ही है और जब तक हमने ऋषि के सिद्धान्तों के अनुसार सभी विषयों के पठन-पाठन के ग्रन्थों की तैयारी कर शिक्षा विधि का नवीन रूप न खड़ा किया हो तब तक ये संस्थायें खोलनी व्यर्थ हैं। कुछ यशो लिप्सु जन इन संस्थाओं को चलाने में बुरी तरह चिपटे हैं जो आर्यसमाज के ध्येय को नष्ट करते हैं। वस्तुतः इन संस्थाओं के संचालकों को बहुत गहराई से स्वयं आर्ष पाठविधि का अध्ययन करना चाहिए। पर, इतनी स्थिरता हममें आज है कहां? अनेकों स्थानों पर तो यह भी आज देखने में आता है कि आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग-भवन भी इन संस्थाओं के कब्जे में आ गये हैं, जो ठीक नहीं। साप्ताकि सत्संग-भवनों की पवित्रता एवं उद्देश्य अपने आप में पृथक् हैं। अवैदिक शिक्षा पद्धति के कारण ये संस्थायें उसकी पवित्रता और उद्देश्य को नहीं समझ पातीं अतः यज्ञशालायें एवं सतसंग-भवन भी इनके द्वारा ठुकराये जाते हैं जो अत्यन्त अनुचित है।

इस प्रकार आज आर्यों को यशो लिप्सा एवं पद-लिप्सा को छोड़कर बड़ी गम्भीरता पूर्वक शिक्षा के उद्देश्य एवं ऋषि के मन्तव्यों के अनुसार उसके आमूल-चूल परिवर्तन की बात सोचनी होगी। जिस प्रकार हमारे देश के लिए ईसाई मिशनरियां आदि अराष्ट्रीय तत्त्व बाधक एवं खतरनाक हो सकते हैं उसी प्रकार निरुद्देश्य अवैदिक बेबुनियादी शिक्षा भी हमारे लिये घातक एवं राष्ट्र को कमजोर करने वाली सिद्ध हो सकती है, यह जानकर हमें ऋषि अनुमोदित पाठ्यक्रम को लेकर चलना होगा।

——०——

वैदिक-मुक्ति

श्री मनोहर विद्यालंकार

(परम वेद-भक्त श्री मनोहर जी विद्यालंकार का अधोलिखित लेख गम्भीरता से विचारणीय है।
—सम्पादक)

वैदिक-मुक्ति पर प्रकाश डालने से पहिले कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक है। क्योंकि अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार प्रत्येक के मन में भ्रम उठ सकता है। वैदिक-मुक्ति से यहाँ अभिप्राय है 'वेद में वर्णित तथा प्रतिपादित मुक्ति, वेदानुकूल-मुक्ति, वेदाविरुद्ध-मुक्ति नहीं।'

वेद में मुक्ति या मोक्ष

वेद में मुक्ति या मोक्ष शब्दों का एक बार भी प्रयोग नहीं हुआ है। हां, 'मुच्' धातु का प्रयोग अवश्य हुआ है। इसी धातु से मुक्ति और मोक्ष शब्द बने हैं। इसलिये यह सम्भावना हो सकती है कि वेद में यद्यपि मुक्ति शब्द का प्रयोग तो नहीं है, किन्तु इस भावना का मूल उसी में निहित है। लेकिन वेद के प्रयोगों से यह संभावना भी निरस्त हो जाती है।

वेद में मुच धातु का प्रयोग— हथियार, मृत्यु या मृत्यु के कारण भूत रोग, पाप, पाश, क्रोध या निन्दा से छूटने अर्थ में हुवा है। उदाहरण के लिये—

क. निदो मुञ्चथ वन्दितारम्। ऋक् ३-३४-१५।

हे देवो ! अपनी वन्दना या स्तुति करने वाले को निन्दा से मुक्त करो।

ख. एवोष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः। ऋक् ४-१२-६।

इस प्रकार हम में से पाप को छुड़ा कर दूर कर दो।

ग. सोमा रुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अवस्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत्॥ ऋक् ६-७४-३

हे शान्त और घोर औषधों का प्रयोग करने वाले वैद्यो ! तुम मेरे शरीर और अंगों में सब प्रकार की भेषजों का प्रयोग करके मेरे शरीर में घुसे हुये पाप रूप रोग को दूर करो और उस पाप या रोग से छुड़ाओ—मुक्त करो।

घ. यद्देवा देवहेड़नं देवासश्चकृमा वयम्।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्य र्तेन मुञ्चत ।। अथर्व. ६-११४-१

हे प्राकृतिक तथा सामाजिक देवो ! यदि हम से (देवासः) खेल में या मजाक में या इन्द्रियों के वशवर्ती होने से कोई अपराध हो गया है, तो हे अदिति पुत्रो ! नियमानुसार ओषध या दण्ड का प्रयोग करके हमें उससे मुक्त कर दो ।

ङ. प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् । ऋक् १०-८५-२४

तुझे वरुण के बन्धन से मुक्त करता हूँ ।

च. मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः । ऋक् १०-८९-१९; अथर्व. ५-२९-११

तेरे दिव्य हथियार (दण्ड-व्यवस्था) से कोई भी छूटने न पावे ।

छ. प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् । ऋक् १०-८५-२५

हे विवाह बन्धन में बंधने वाली पत्नी ! तुझे पितृकुल से मुक्त करता हूँ । किन्तु पतिकुल से मुक्त नहीं करूंगा, उस कुल में तो तुझे अच्छी तरह बांधता हूं ।

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि वेद की मुक्ति=मुक्त होना – इसी लोक के बन्धनों, रोगों तथा पापों से है । मृत्यु के बाद की किसी मुक्ति से नहीं है ।

मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ऋक् ७-५९-१२; यजुः ५-६० ।

हे तीनों तापों को दूर करने वाले प्रभो ! आप मुझे मृत्यु से या मृत्यु के कारणों से मुक्त रखें और (अमृतात्) पूर्ण स्वास्थ्य तथा दीर्घायुष्य से कभी न छुड़ाएँ ।

किन्तु प्रायः वेद-भाष्यकारों ने यहाँ अमृत का अर्थ मोक्ष कर दिया है इसलिये कुछ विद्वानों के मन में द्विविधा होती है । और वे इस प्रयोग में मुक्ति या मोक्ष का स्पष्ट निर्देश मानते है ।

किन्तु ऋषि दयानन्द ने अपने भाष्य में इसका अर्थ मोक्ष. अन्य जन्म में मिलने वाला सुख, ईश्वर तथा वेदोक्त धर्म किया है । अर्थात् उनके मत में अमृत के ये सब अर्थ हो सकते हैं ।

इसी प्रकार आचार्य सायण ने (अमृतात्) के अर्थ किये हैं=चिर-जीविति, दीर्घायुष्य, स्वर्गादि सुख तथा मोक्ष । इन दोनों आचार्यों की सम्मति में अमृत के कई अर्थ हैं । केवल मोक्ष अर्थ नहीं है । और वेद में मोक्ष या मुक्ति का कहीं प्रतिपादन नहीं है । इसलिये यहाँ भी सिद्धान्त रूप में 'अमृत' शब्द पर पूरी तरह से विचार किये बिना मोक्ष अर्थ नहीं करना चाहिये । रोगी मनुष्य के लिये महा-

मृत्युञ्जय मन्त्र का जप भी यही संकेत करता है कि इस मन्त्र में अमृत का अर्थ मोक्ष या मुक्ति (परलोक की) नहीं, अपितु इस जन्म का जीवन या दीर्घायुष्य है।

इसी प्रकार यजुर्वेद के ५-६० में महामृत्युञ्जय मन्त्र का उत्तरार्ध भी इसी बात को पुष्ट करता है कि जैसे पत्नी को इसी जन्म में एक घर से मुक्त कर के दूसरे घर में सुबद्ध किया जाता है, उसी प्रकार एक रोगी को, जो मृत्यु के निकट पहुँच चुका है, मृत्यु के पाश से छुड़ा कर स्वस्थ और दीर्घ जीवन से न छुड़ाने की प्रार्थना है।

वेद में अमृत

वेद में आये हुए अमृत शब्द पर विचार करते हुए, यदि हम पूर्ण न्याय करना चाहते हैं तो अमृत शब्द का अर्थ निर्देश करने वाले वेदांशों पर ही निर्भर करना चाहिये।

वेद भाष्यों में तो अमृत का अर्थ बहुत स्थलों पर और बहुत विद्वानों ने मोक्ष (मुक्ति) किया है और कोशकारों ने अमृत शब्द के १६ अर्थ गिनाये हैं, जिनमें एक मुक्ति भी है। किन्तु यह संभव है कि दर्शनों में व्यवहृत मोक्ष और भाष्यकारों द्वारा किये गये अर्थ मोक्ष को देख कर उन्होंने अमृत के अर्थों में मोक्ष भी सम्मिलित कर लिया हो। इसलिये भाष्यों और कोशों को छोड़कर वेदांशों की परीक्षा करते हैं।

१. अप्सु अन्तः अमृतं अप्सु भेषजम्। अथर्व १-४-४

इस अंश से स्पष्ट है कि भेषज को अमृत कहा जा सकता है। इसको और भी स्पष्ट करने वाला निम्न मन्त्र देखिये—

यन्मातली रथक्रीतं अमृतं वेद भेषजम्।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत् तदापो दत्तभेषजम्॥ अथर्व ११-६-२३

भेषज ही अमृत है। उसे प्रभु ने जलों में प्रविष्ट कर रखा है। इसलिये जल सब रोगों को दूर करने का अमृत सामर्थ्य रखते हैं।

२. अम्रिर्भवामृतोऽतिजीवो माते हासिषुः असवः शरीरम्॥ अथर्व ८-२-२६

इस मन्त्र में स्पष्ट वर्णन है कि शरीर को प्राण न छोड़ें, वह न मरे, यही अमृत अवस्था है। अर्थात् मरने के बाद किसी जगह जाना या किसी स्थिति को प्राप्त करना अमृत या मुक्ति या मोक्ष नहीं हो सकता।

इसी बात को शिवगीता में बड़े स्पष्ट और सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न च ग्रामान्तर मेव वा।
अज्ञान हृदय ग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः॥

अर्थात् मरने के बाद कहीं जाकर रहना, या किसी अन्य शरीर में जन्म लेना मोक्ष नहीं है। हृदय में पड़ी हुई गुत्थियों का सुलझ जाना ही मोक्ष है। यह इसी जीवन में संभव है। मोक्ष का मृत्यु से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत शतपथ ब्राह्मण ने तो स्पष्ट कहा है कि सौ वर्ष से अधिक दीर्घ जीवन प्राप्त करना ही अमृतत्व या मोक्ष है।

"यो ह वै शतमूर्ध्वं वा जीवति स अमृत त्वमेति" — शतपथ।

३. स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन।
अग्ने गातारं अमृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहना ॥ ऋक् १-४४-५

सब के अग्रज, सब के रक्षक पालक, पवित्र, सब के द्वारा पुकारे जाने वाले, सब से अधिक पूजनीय, सब भोग्य पदार्थों का वहन करने वाले प्रभु को ही अमृत कहा गया है।

४. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ॥ ऋक् ४-५४-२

प्रत्येक स्थिति, वृत्ति या पदार्थ का उत्तम भाग ही अमृत है। यह अमृत देवपूजा, सांमनस्य तथा दानशील, विजिगीषु, कर्मठ और व्यवहार कुशल देवों को ही प्राप्त होता है।

५. हिरण्यममृतम् – हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते। ऋक्

हितकर तथा रमणीय पदार्थ-स्थिति तथा अनुभूति ही अमृत है। यह अमृत जो दूसरों को देते हैं, उन्हें भी अमृतत्व मिलता है।

६. देवेभ्यः कमवृणीत, मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत। ऋक् १०-१३-४

देवों के लिए तो क=सुख चुना गया, यह क ही अमृत है और सामान्य प्रजा–जो कर्मठ विजिगीषु तथा व्यवहार कुशल नहीं है – के लिये मृत्यु या मृत्यु सदृश दुःख-पीड़ा-कष्ट चुने गये।

इस प्रकार इन वेदांशों का मनन करने से स्पष्ट हो जाता है कि वेद को परवर्ती दर्शनों में कल्पित मुक्ति बिलकुल इष्ट नहीं है। वेद की दृष्टि में मुक्ति या अमृत का स्वरूप निम्न है—

क. पाप, रोग, कष्ट से छूटना ही मुक्ति है। मृत्यु के बाद की कोई अवस्था या स्थिति मुक्ति नहीं है और इसलिये उसके सान्त या अनन्त के विवाद की तो संभावना ही नहीं है।

ख. वेद में मुक्ति या मोक्ष का प्रयोग नहीं है। अमृत शब्द प्रयुक्त हुवा है जिसका अर्थ विचारणीय है।

विचारानन्तर अमृत का अर्थ

१. स्वास्थ्य – दीर्घायुष्य – शतायु या इससे अधिक आयु ।
२. रोग, कष्ट या पाप से छुड़ाने वाली भेषज या उपाय ।
३. किसी स्थिति – वृत्ति या पदार्थ का उत्तम भाग ।
४. हितकर व सुन्दर पदार्थ – स्थिति तथा अनुभूति ।
५. सुख की अनुभूति या सुख देने वाले पदार्थ ।
६. अकाम, धीर, स्वयम्भू, आनन्दमय, पूर्ण परमात्मा प्रतीत होते हैं ।

वेद में आये अमृत शब्द का इन ६ श्रेणियों में अर्थ किया जा सकता है, और वह अधिक युक्तियुक्त तथा संगत प्रतीत होता है ।

अमृत का अर्थ मुक्ति करना परवर्ती दर्शनों का अनुकरण या साम्प्रदायिक दृष्टि-कोण है ।

वेद आशावाद का संदेश लाते हैं । इस लोक को सुन्दर व आनन्दमय बनाने का निर्देश करते हैं । अपने जोवन को सुन्दर, स्वस्थ, आनन्दमय बना कर दूसरों का हित व सेवा करने का उपदेश करते हैं ।

यही वैदिक मुक्ति है । परलोक में या मरने के बाद की स्थिति, अनन्त या सान्त के विवाद से युक्त कोई मुक्ति नहीं है ।

मुक्त एक अनुभव है । जो प्राय: कभो न कभी प्रत्येक व्यक्ति का होता है । बड़े कष्ट में पड़ने के बाद — वह चाहे शारोरिक हो या मानसिक — उससे मुक्त होन का अनुभव बड़ा सुखकर, परम आनन्दमय होता है । यही मुक्ति है ।

इस मुक्ति को थोड़े से अभ्यास से चिर-स्थायी भी बनाया जा सकता है । आशा है वेद के अनुयायो वैदिक मुक्ति की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न करेंगे और उसमें सफल होंगे ।

———o———
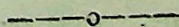
पितृ-लोक

(श्री निधि सिद्धान्तालंकार)

(१)
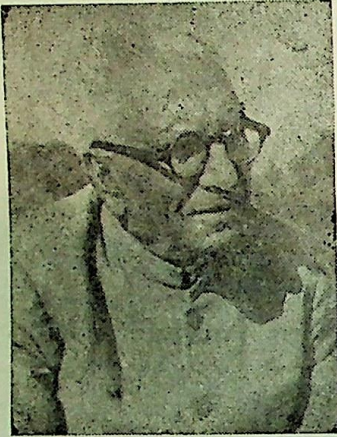
श्री निधि सिद्धान्तालकार

बात उस युग की है जब हिमाचल की ये रहस्यमयी उपत्यकायें सघनवनों से आच्छादित थीं और इन में ढेर के ढेर वन्यश्वापद स्वच्छन्द विचरण किया करते थे। महाकाय हाथी भी, सिंह व्याघ्र भी। केवल वन्यश्वापद ही क्यों, इन अरण्यानियों के प्रशान्त सौन्दर्य से आकृष्ट होकर अनेक विरक्त तापस भी इनमें आ बसे थे। गिरियों के उपह्वरों तथा गद्-गद् नादिनी सरिताओं के पावन तटों पर उनकी पर्ण कुटीरें तथा आश्रम कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाते थे। वैसे, इन तापसों का अधिकांश समय 'किं कारणं ब्रह्म ? कुतः स्म जाताः ? जीवामो केन' इत्यादि जटिल प्रश्नों के गहन विचार में ही व्यतीत होता था।

तपस्वी याज्ञवल्क्य इन्हीं में से एक थे, जो अपनी अमृताभिलाषिणी सह-धर्मिणियों—मैत्रेयी एवं कात्यायनी—के साथ एक विशाल ब्रह्मचर्याश्रम के कुलपति के रूप में एक सतत प्रवाहिनी सरिता के तट पर निवास करते थे। आश्रम के चारों तरफ दूर तक सघन अरण्यानी फैली हुई थी, जो वसन्त में उन्मादिनी और शिशिर में तापसी हो उठती थी। उपनिषदों में वर्णित उपाख्यानों से कुछ ऐसा संकेत मिलता है कि वे शायद तीव्र वैराग्य के कारण समय से पूर्व ही वनवासी बन गये थे। उपनिषदों से ही पता चलता है कि वे शायद अपनी दोनों ही पत्नियों में अपनी पुष्कल सम्पत्ति का समविभाजन कर गृहत्यागी बन जाना चाहते थे। मगर दोनों ने ही उनका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। मैत्रेयी ने तो यहां तक कह डाला कि 'येनाहं नामृतास्यां किमहं तेन कुर्याम्।' ऐसी स्थिति में अपनी उस प्रचुर सम्पत्ति की उन्होंने क्या व्यवस्था की, पता नहीं चलता। केवल इतना ही संकेत मिलता है कि अपनी दोनों सहचारिणियों के साथ अरण्यवासी हो गये।

लेकिन बाद में जब उपनिषद से ही पता चलता है कि अपने 'आश्रम' की आर्थिक आवश्यकता का समाधान करने उन्हें एक बार विदेहाधिपतिजनक की ब्रह्म सम्बन्धी विवाद-गोष्ठी में सम्मिलित होना पड़ा था और गोष्ठी में उपस्थित सभी विद्वानों की अपेक्षा अपने को उत्कृष्ट सिद्ध कर देने के बाद, परम विदुषी गार्गी की चुनौती को भी 'गार्गी, मास्मप्राक्षीः मूर्धाते विपतिष्यति' कह कर गोष्ठी से विरत कर दिया था; और इस प्रकार स्वर्ण मण्डित शृंगों वाली एक सहस्र धेनुओं को जीतकर अपने आश्रम की तरफ हकवा दिया था, तब श्रीमन्तों के सामने हाथ पसारने की अपनी उस विवशता की वेला में उन्हें यदि अपनी उस अपार सम्पत्ति का एक बार स्मरण हो आया हो तो यह अत्यन्त स्वाभाविक ही प्रतीत होता है।

रहा जो कुछ भी हो, इतना तो निश्चित है कि आश्रम की व्यवस्था में निरत रहते हुए भी उस कोटि का ब्रह्मनिष्ठ साधक पारलौकिक चिन्तन में अपना अधिकांश समय न देता हो, संभव नहीं है। बृहदारण्यक उपनिषद् इसकी पुष्टि करती है।

(२)

उस दिन आश्रम के चारों तरफ का आरण्यक आभोग शायद इन्द्र के नन्दन वन से भी अधिक मादक बना हुआ था। शीतल वन्य हवायें ग्रीष्म की प्रभात वेला पर धीरे-धीरे पंखा झल रहीं थीं और वनवासी पक्षी अपने मधुर संगीतों से वातावरण को और भी स्निग्ध बना रहे थे। ऐसे में अपनी कुटीर के बाहर बिछे कुशासन पर बैठे

याज्ञवल्क्य अत्यन्त मनो योग से उस सात्विक आनन्द का मधुपान कर रहे थे कि कात्यायनी ने अकस्मात् ही उपस्थित होकर उन्हें प्रणाम किया।

"क्या बात है, तपस्विनी! कहीं आज फिर तो किसी नई समस्या में अपने को उलझा नहीं बैठी हो? तुम्हारे नेत्र तो ऐसा ही बता रहे हैं।"

"नेत्र कुछ भी बता रहे हों, मगर महर्षि उनकी उलझन को सहज में ही सुलझा देंगे यही विश्वास लेकर आई हूं।"

"लगता है, तुम्हारा वह बार-बार पूछा हुआ प्रश्न आज भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ रहा। मगर भगवती, हम तो तुम्हें अन्तिम रूप से बता चुके हैं कि लोक तीन ही हैं। अधिक नहीं। इनमें से मनुष्य लोक पुत्र की सहायता से, पितृलोक कर्मानुष्ठान से और देवलोक विद्या से ही जीता जा सकता है। अन्य किसी प्रकार नहीं। यही सब तो हमने उस दिन तुमसे कहा था। याद है, न?" —कहकर वे जिज्ञासा भरी दृष्टि से कात्यायनी की तरफ देखने लगे।

विदुषी कात्यायनी को 'लोक' ★ शब्द के प्रयोग पर आज कुछ भी आपत्ति नहीं हुई। वह जान चुकी थी, उसके नवीनता-प्रिय पति चिर प्राचीन 'आश्रम' शब्द के स्थान पर ही इस नूतन शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। यह शब्द उसे काफी सुरुचि पूर्ण भी लगा था, और यह 'जीता जा सकता है' वाली बात? यह भी उसे ठीक ही लगी थी। उन का यह दृष्टिकोण कि ये तीनों ही लोक एक प्रकार के समरक्षेत्र हैं, जिनमें साधक को सभी प्रकार के राजस तामस शत्रुओं से सतर्क रहना होता है, उसे तर्क संगत ही लगा था। उसके अनुभव ने उसे यह बता दिया था कि गृहस्थाश्रम या मनुष्यलोक में सफलता पाने का प्रमुख साधन पुत्र ही होता है। अपने तनय के ही दाशरथी-राम उसके सामने ज्वलन्त उदाहरण थे। 'अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेय मपि पावके। भक्षयेय विषं तीक्ष्णं मज्जेय मपि चार्णवे'—यही तो कहा था राम ने उस दिन। ऐसा ही तो पराकाष्ठा का पितृप्रेम था उनमें। रहा, देवलोक अथवा सन्यासाश्रम। उसकी व्याख्या भी उसे शत-प्रतिशत ठीक ही लगी थी। ज्ञान-निस्त्रिंश के बिना संन्यासमार्ग की बाधाओं का समग्र उच्छेदन और कौन कर सकता है?

(३)

किन्तु याज्ञवल्क्य थे पहुंचे हुए सिद्ध। वे कात्यायनी के अन्तर्मन में आसीन होकर उसकी इन सब स्वीकृतियों के नेपथ्य में छिपकर खड़ी पितृलोक सम्बन्धी अस्वीकृति का भली प्रकार अध्ययन कर रहे थे। वे समझ गये थे कि भले ही वह उनके बताये मनुष्य-लोक एवं देव-लोक सम्बन्धी मत से सहमत हो, मगर पितृ लोक के सम्बन्ध में वह अब तक भी अपने आपको सहमत नहीं कर पा रही है। इस लिए बिना किसी प्रकार की पूर्व भूमिका के वे उससे पूछ बैठे—पितृ-लोक के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या धारणा है, तपस्विनी? यदि हम यह कहें कि यह कोई स्वतन्त्र तथा एकाकी-लोक नहीं, दो लोकों का सम्मिश्रण है तो कैसा लगेगा, तुम्हें?"

"तब तो मेरे सन्देह का सहज में ही समाधान हो जायेगा"

"कैसा सन्देह?"

"भला, जब श्रुति चार आश्रमों की अवतारणा करती है तो आपके ये लोक-नामधारी तीन आश्रम ही क्यों? प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम कहां गया?"

"फिर?"

किन्तु सोचने के बाद मुझे समझ आगया है कि आपका यह पितृ-लोक दो आश्रमों—ब्रह्मचर्य तथा वानप्रस्थ—का संमिश्रित स्वरूप है। यही है जिसने चार की संख्या को तीन में संक्षिप्त कर दिया है। ठीक कह रही हूँ, न?"

"एकदम ठीक"—याज्ञवल्क्य ने परितुष्ट होकर कहा। फिर कुछ क्षण विचारमग्न रहकर बोले—'यह तो तुम

★ त्रयोवाव लोकाः। मनुष्यलोकः पितृलोकः देवलोकश्च। मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यः नान्येन कर्मणा। कर्मणा पितृलोकः। विद्यया देवलोकः। वृहदारण्यक, पंचम ब्राह्मण। १३ श्लोक

जानती ही हो, कात्यायनी, कि आश्रमों को चार की संख्या में विभक्त करके भी जब स्वयं श्रुति ने ही ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रमों को बनवास जीवन के आधार पर एक ही सूत्र में आबद्ध कर दिया है तो हमने यदि उसी के आधार पर उन्हें एक मिश्रित लोक बना दिया, तो इसमें अनुचित क्या हो गया ?"

"अनुचित तो कुछ भी नहीं हुआ भगवन् ! प्रत्युत मुझे तो लगता है कि आपका यह नूतन निर्णय स्मृतिकारों की स्वीकृति प्राप्त किये विना नहीं रह सकेगा। कारण; सामान्य विद्वानों के निर्णय जैसे विधि विधानों का अनुगमन करने के लिये विवश रहते हैं वैसे ही विधि-विधानों को महर्षियों के निर्णयों का अनुगमन करने के लिये विवश होना पड़ता है।"

"लेकिन हमें लगता है कि हमारे इस निर्णय के एक उज्ज्वल पक्ष की तरफ अभी तुम्हारा ध्यान नहीं गया है ?"

कात्यायनी के नेत्र प्रश्न-पत्र बन उठे।

"देखो कात्यायनी; दो पहियों के विना रथ नहीं चल सकता यह तो सभी जानते हैं किन्तु यह शायद अधिक लोग नहीं जानते कि यह पितृ-लोक भी एक प्रकार का रथ ही है, अध्यापक तथा अध्येता जिसके दो पहिये होते हैं। इसमें से एक का भी अभाव इस पितृ-लोकरूपी रथ को नहीं चलने देता। जानती हो, न चलने देने का प्रमुख कारण क्या होता है ?"

" दोनों में से किसी एक का अभाव। यही तो आपने अभी कहा था"।

" नहीं। अर्थ-दैन्य ही इसका प्रमुख कारण होता है। देश में न अध्यापकों की कमी है, न अध्येताओं की। कठिनाई तब हो जाती है जब अध्यापक बिना उचित पारिश्रमिक पाये विद्यादान के लिए उद्यत नहीं होते और अध्येता – जिन में अधिकांश निर्धन ही होते हैं – अध्यापक को उसका प्राप्य शुल्क नहीं दे पाते। परिणाम यह होता है कि देश का तीन चौथाई मानव समुदाय अशिक्षित ही रह जाता है। मां सरस्वती के मन्दिर-द्वार तक पहुंचने का उन्हें अधिकार नहीं मिल पाता और उनके कारण देश में अविद्यान्धकार अपना सुदृढ़ शासन जमाये पड़ा रहता है।" कह कर वे कात्यायनी की तरफ देखने लगे।

" तो लगता है आपका यह पितृलोक शायद इसी कठिनाई का समाधान है ?"

" हां ! एकमात्र यही उसका सर्वोत्तम समाधान है, जिससे न राज्य पर विशेष आर्थिक बोझ पड़ेगा, नां ही अध्येता पर अध्यापक के पारिश्रमिक का बोझ। न हल्दी, न फिटकरी, रंग सुन्दर का सुन्दर।

(४)

क्रमश: दोपहर उतर आई। आश्रम मृग वृक्ष छायाओं का आश्रय लेने लगे। पक्षी आहारान्वेषण का प्रलोभन छोड़ द्रुम शाखाओं के पत्रान्तरालों में छिप कर अर्धनिद्र विश्राम करने लगे। तभी हठात् मध्याह्न की सूचना देने वाले वन्य मयूर की कहीं दूर से केकावाणी सुनाई पड़ी और उसे सुनकर जैसे ही कात्यायनी स संभ्रम उठने लगी देखा, पास की कुटीर से निकल मैत्रेयी उसीकी तरफ चली आ रही है।

" क्यों कात्यायनी ! महर्षि के सामने अपनी नई-नई समस्यायें रख कर तुम कबतक उनके तप: कृश शरीर को श्रान्त करती रहोगी ? देख नहीं रहीं, उन के मध्याह्न आहार का समय हो गया है" — उसने आते ही कहा।

सुनकर याज्ञवल्क्य हंस पड़े " मध्याह्न की सूचना तो उधर का कोई वन मयूर भी दे चुका है। तो ठीक है। कुटीर में ही चलना चाहिए"।

अपने सम्पन्न नागरिक जीवन में याज्ञवल्क्य का मध्याह्न आहार क्या रहा होगा, पता नहीं है। किन्तु अब तो नीवार धान्य, वन्यफल, कन्दमूल तथा गोदुग्ध के आश्रय पर ही उनका निर्वाह हो रहा है। सो, दोनों सहधर्मिणियों के साथ प्रसाद पाकर वे जब अपनी एकान्त पर्णकुटी में जा लेटे, थोड़ी ही दूर से नदी स्नान करते शत-शत किशोरों की, जो उनकी शिक्षा संस्था के छात्र थे, शैशवोचित हास्य ध्वनियां उनके वृद्ध शरीर में यौवन की स्फूर्ति भर देने लगीं। वे सोचने लगे उनके इस पितृलोक में बाल बसन्त और वृद्ध

शिशिर का यह कैसा मधुर समन्वय हो उठा है। यही तो जीवन का अमृत संजीवन-रस है। बहुत ही अच्छा लग रहा था उन्हें यह सब। सोच रहे थे, पूर्व जन्म के किन सुकृतों ने उन्हें ठीक समय पर सावधान कर दिया कि नागरिक जीवन का परित्याग कर वे इन सुन्दर अरण्यानियों में आ पहुँचे थे। यहां के आतिथ्य प्रिय वनदेवताओं ने कितने स्नेह से उन्हें अपना लिया था।

कितना ही समय बीत गया इन्हीं स्वप्निल विचारों में उनका और शायद अभी और भी कुछ समय बीत जाता यदि कात्यायनी का स्वर बीच में ही उनकी विचार शृंखला को भग्न न कर देता। लेटे ही लेटे बोलेअब और क्या शेष रह गया, कात्यायनी?"

"सभी कुछ तो शेष रह गया, भगवन्! अध्येताओं को अध्यापक निःशुल्क शिक्षा दे सकें और अध्येता अध्यापकों के पारिश्रमिक देने की कठिनाई से बचजायें, आपका पितृलोक इसका कौनसा सर्वोत्तम समाधान उपस्थित करता है, यह मुख्य बात तो अभी शेष रह ही गई है। वही जानने आई हूं। बताइये।"

"समाधान यद्यपि बहुत क्लिष्ट है तो भी बहुत ही सरल है।"

"वही बताइये।"

" कात्यायनी, तुम्हें क्या स्मरण है कि हमें कितना समय हुआ वनवासी हुए?"

" बीस वर्ष तो हो ही गये होंगे "

'और इस आश्रम की स्थापना?'

' उन्नीस वर्ष पूर्व'

' प्रारम्भिक दिनों में अध्यापक अध्येताओं की संख्या?'

' यह तो मुझे अच्छी तरह याद है कि प्रारम्भ में पांच अध्यापक तथा पच्चीस अध्येता ही थे। अधिक नहीं।'

'और अध्यापकों का पारिश्रमिक?"

' वे लोग क्या पारिश्रमिक भी लेते थे?'—कात्यायनी संदिग्ध स्वर में पूछ बैठी।

'जरा भी नहीं लेते थे, यही तो कहना चाहते हैं हम। सभी अवैतनिक ही शिक्षा देते थे। कहते थे अपने गृहस्थ जीवन में निरन्तर पच्चीस-तीस वर्ष तक हमने जो धनोपार्जन किया उसका तीन चौथाई भाग अपनी सन्तानों को सौंप कर शेष चतुर्थांश लेकर ही तो यहां आये हैं। इतना धन हमारे जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त है। पारिश्रमिक लेने का प्रश्न ही कहां रह जाता है? तो भी, हम अब भी पारिश्रमिक तो ले ही रहे हैं, जो हमारे पारलौकिक कोष में संचित हो रहा है।' — कह कर न जाने अपने किस परिहास पर हंसने लगे याज्ञवल्क्य। फिर अकस्मात् ही उनका कण्ठ आर्द्र हो उठा। रुंधे कण्ठ से बोले — 'जानती हो उन्होंने उस दिन और भी क्या कहा था, कात्यायनी?'

' कात्यायनी स्तब्ध होकर उनकी तरफ अवाक् देखने लगी।

'हमें लक्ष्य करके उन्होंने अन्त में कहा था कि 'यह तो आपका हम पर असीम अनुग्रह है जो छात्रों को विद्यादान देने का अवसर देकर आप हमें गुरुऋण से मुक्त होने का स्वर्ण अवसर दे रहे हैं।' कितना सात्विक विचार था यह उनका! वित्तैषणा का परित्याग करने वाले इन प्रारंभिक अध्यापकों के सात्विक त्याग के कारण ही हमारी यह छोटी सी शिक्षा संस्था एक महान वट-वृक्ष बनकर आज शत-शत छात्रों को निःशुल्क विद्यादान दे पा रही है। आज इस में डेढ़ सहस्र छात्र एवं डेढ सौ अध्यापक निवास कर रहे हैं। तब कहां रह जाती है आर्थिक समस्या? मानता हूँ, शिक्षा संस्थायें,राज्याश्रय से सर्वथा मुक्त रहनी चाहिएं। राज्य यदि वाह्य विपत्तियों, प्राकृतिक उपद्रवों तथा आवश्यक होने पर आर्थिक अनुदान आदि कार्यों द्वारा संस्था की सहायता करता रहे तो यह बहुत पर्याप्त है। इस सम्बन्ध में तुम्हारा क्या मत है, कात्यायनी?'

'कात्यायनी का मत तो महर्षि के मत का अनुकरण मात्र होता है, भगवन्। उसका विशेष महत्व नहीं है।'

याज्ञवल्क्य सहसा भावुक हो उठे। बोले—धन गृहस्थियों का ध्येय होता है। वह उन्हीं का रहे। पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा भी उन्हीं के क्षेत्र की वस्तुएं हैं। ये भी उन्हीं की बनी रहें। हमें इन सबसे क्या प्रयोजन? आश्रम की जल सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली ये सदा नीरा नदी अपने पावन तीर्थ जलों से, आश्रम के कृषि क्षेत्र

पुष्कल अन्नों से, आश्रम धेनुएं दुग्धामृत से, वनभूमियां यथेच्छ समिधाओं से, एवं वनदेवता कुशाओं और वल्कलों से, यदि हमें कृतार्थ करते रहें तो हमें और क्या चाहिए, कात्यायनी ? वन्य समीर व्यजन बनकर, चन्द्र दीपक बन कर, मां धारत्री शय्या बनकर, भुजायें उपधान बनकर, वन्य पुष्प सौन्दर्य के सन्देश वाहक बन कर और वन्य-पक्षी अलौकिक गायक बनकर यदि हमें प्रतिदिन धन्य करते रहें तो हमें और क्या चाहिए, कात्यायनी ?'

कात्यायनी के नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठें। अपने सन्मुख बैठे इस अद्भुत पितृलोक के अद्भुत प्रस्तोता के चरणों में उसका मस्तक स्वयमेव झुक गया। वह केवल इतना ही कह सकी – मुझे अपनी आशंका का उत्तर मिल गया, प्रभो ! अनेक धन्यवाद।
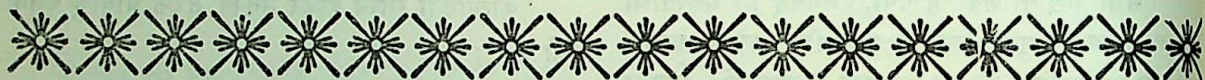
दयानन्द वचनामृत

"हमारा मत वेद है अन्य नहीं, यही सिद्धान्त है। ब्रह्म वैवर्तादि पुराण व्यास जी के नाम के छल से मतवादी जीविकार्थी लोगों ने मनुष्य को भ्रान्ति कराने वाले बनाये हैं। जैसे शिव आदि के नाम के छल से तन्त्र और याज्ञवल्क्यादि के नाम के छल से याज्ञवल्क्यादि स्मृति रची है। वैसे ही ब्रह्म वैवर्तादि पुराण जानो।"

"जो एक ईश्वर को छोड़ के अन्य देवता की उपासना करता है वह मनुष्य नहीं पशु ही है। इस लिये हे मनुष्यो, उठो, जागो, उस आत्मा को जानो, अन्य की उपासना रूप वाणियों को छोड़ो।"

— वेदविरुद्ध-मत-खण्डन
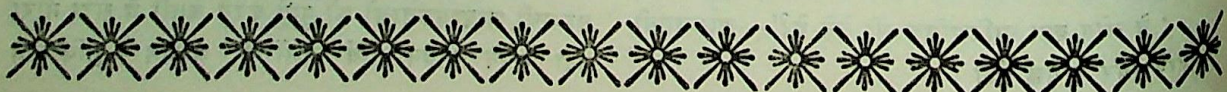
ईश्वर-भक्ति एवं उपासना

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

ईश्वर-भक्ति क्या है, इस पर आजकल बहुत से विचार देखे जाते हैं। परन्तु सब में एक ही भाव ओत-प्रोत हैं और वह है भक्ति पद का रुढ़ार्थ प्रेम और अन्ध-श्रद्धा। लोग अन्धी श्रद्धा को ही भक्ति कहने लगे हैं और भक्ति नाम पर नाचने-गाने और कीर्तन की भिन्न-भिन्न प्रक्रिया वर्तने लगे हैं, जो भक्ति से सर्वथा हीन है। योग-दर्शन की परिभाषा में 'ईश्वर प्रणिधान' पद भक्ति के लिए प्रयुक्त है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ करते हुये योगदर्शन के भाष्यकार व्यास कहते हैं कि 'परमगुरु परमेश्वर में सर्वोत्तम कर्मों का समर्पण और फल की इच्छा का त्याग ही ईश्वर प्रणिधान है। अतः इस आधार पर परमेश्वर में समस्त कर्मों और फलों का त्याग करते हुए कर्म करते जाना ही भक्ति होगा।

कुछ लोग समझते हैं कि भक्ति का मार्ग ज्ञान से भिन्न है और यह केवल अन्ध प्रेम वा विश्वास का मार्ग है। यह सरलतम विधि है परमेश्वर प्राप्ति की। इस में वे अनेक प्रकार के स्वांग रचते हैं परन्तु वे इस बात को भूल जाते हैं कि श्रद्धा भी तो विना श्रत् अर्थात् सत्य के नहीं बन सकती है। वह तो सत्य की धारिका है। श्रत् + धा = सत्यधारिका। अतः प्रेम और श्रद्धा भी तो सत्य के साथ होनी चाहिए। जहाँ सत्य होगा वहाँ ज्ञान का अभाव किसी प्रकार भी स्थान नहीं पा सकता है। ईश्वर-भक्ति का वास्तविक अर्थ होगा 'वह भावना एवं क्रिया वा पद्धति जिसमें ईश्वर को उसके गुण, कर्म, स्वभाव को दृष्टि में रख कर जगत् जीव आदि से पृथक् करके उसे देखा जाता है। संसार में ईश्वर जीव और परमेश्वर सर्वत्र गुथे हैं। उस गुत्थी को पृथक् करके ईश्वर के स्वरूप को जानना ईश्वर-भक्ति है।

भक्ति पद भज् धातु से बना है जिसका अर्थ है सेवा। परन्तु भज् धातु से भाग पद भी बनता है जिसका अर्थ है बांटना वा भाग करना। भाग करना एक प्रकार का पृथक् करण है। अतः भक्ति में जीव, प्रकृति और परमेश्वर का पृथक्करण वा विश्लेषण करके भगवान् के प्रति कर्मों का अर्पण किया जाता है और कर्म-फल का परित्याग किया जाता है। यही है भक्ति का स्वरूप, जिससे ज्ञान ओतप्रोत है। अन्धश्रद्धा को कोई स्थान नहीं है।

उपासना और उपस्थान का अर्थ है – समीप में आसन जमाना अथवा समीप में स्थान पाना। किसके समीप आसन जमाना वा स्थान पाना? परमेश्वर के समीप। इसी को उपस्थान भी कहा जाता

है। परमेश्वर सर्वव्यापक होने से और सब समयों में सर्वत्र होने से सब के पास है। अतः उसके पास तो तब स्थान पाने का प्रयास किया जावे जब वह हमसे दूर हो। परन्तु परमेश्वर है सब के पास, फिर यह उपासना किस प्रकार होगी। वस्तुतः परमात्मा देश काल से तो सब के समीप है परन्तु ज्ञान कृत दूरी के कारण दूर हैं। वह सदा हमारे अन्दर विद्यमान हैं परन्तु हम उसे जान नहीं पाते हैं अतः उस को जान कर हम उसके समीप जावें — यह कार्य उपासना, उपस्थान और भक्ति से होता है। उपासना ही सच्ची भक्ति है।

अपने शरीर को ही लीजिये। इसमें हमारी आत्मा भी है और भगवान् भी आत्मा का आत्मा होकर विराजमान है। शरीर भौतिक हैं परन्तु उसका कार्य भौतिक, अभौतिक दोनों प्रकार का पाया जा रहा है। अतः इस शरीर को प्रकृतिरूप में पृथक् कर आत्मा परमात्मा का भी पृथक्करण किया जाना चाहिये। तभी भक्ति का मार्ग खुल सकता है। यह भक्ति वा उपस्थान योग है। योग भी तभी हो सकता है जब द्रष्टा दृश्य के भेद को माना जावे और ध्याता व ध्येय के भेद को माना जावे। दोनों को एक मान कर कभी भी योग नहीं किया जा सकता है। योगदर्शन त्रैतवादी दर्शन है। बिना त्रैत के योग का प्रश्न ही नहीं उठ सकता है।

इस योग में ही भक्ति, कर्म और ध्यान सभी आ जाते हैं। योग कैवल्य प्राप्त कराता है। कैवल्य केवलपन का नाम है। यह केवलपन क्या है ? प्रकृति और प्रकृति के विकारभूत शरीर आदि में केवल अपने स्वरूप में स्थिति पाना कैवल्य है। जब जीव केवली हो जाता है तब वह भगवान् के वास्तविक स्वरूप को भी जानता है। योग का प्रथम पाद समाधिपाद है। यह योग्यतम अधिकारी के लिए है। यह भक्ति को भी स्थान देता है। इसमें भक्ति का वास्तविक रूप है। उसके बाद साधन पाद है। इसमें साधनों का वर्णन है जिन्हें क्रिया योग कहा जाता है। यह ही कर्मयोग है। विभूति और कैवल्य योग के परम फल हैं। ध्यान योग का एक अङ्ग है जो उससे सम्बद्ध है। इस प्रकार सभी का योग में समन्वय है। केवलभाव को प्राप्त करने में प्रकृति, पुरुष और परमेश्वर को पृथक् करके देखा जाता है अतः यही सच्चा ज्ञान योग भी है।

इस प्रकार भक्ति और उपासना लगभग एक से हैं। इसके वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए हमें महर्षि दयानन्द की सन्ध्या-पद्धति के शीर्षकों पर पूर्ण विचार करना चाहिए। मनसा परिक्रमा करके उपस्थान का जो विधान वर्णन किया गया है वह भक्ति और उपासना के उत्तम रूप पर प्रकाश डालता है। उसमें जो मन्त्रों का चयन है वे इस विषय के अनुपम मन्त्र हैं। प्रथम मन्त्र में उत् उत्तर और उत्तम पदों का प्रयोग है। ये क्रम है। प्रकृति 'उत्' है, स्वः=जीव उत्तर है और सूर्य=परमेश्वर उत्तम है। प्रकृति सूक्ष्म है, जीव सूक्ष्मतर है और परमेश्वर सूक्ष्मतम है। सूक्ष्म, सूक्ष्म-

तर ग्रौर सूक्ष्मतम पर इसी क्रम से पहुँचा जा सकता है । यही भाव व्याकरण से उत्, उत्तर ग्रौर उत्तम पदों का है।

एक प्रश्न यहां पर दार्शनिक लोग यह उठाते हैं कि यह प्रक्रिया ठीक नहीं है । जब प्रकृति सूक्ष्म है तो उससे फिर ये जीव ग्रौर परमेश्वर किस प्रकार सूक्ष्मतर ग्रौर सूक्ष्मतम हुये । उत्तर यह है कि उपादान कारण की सूक्ष्मता जो कार्य की ग्रपेक्षा से है वह प्रकृति पर्यन्त है । वह उससे ग्रागे नहीं जा सकती है । वह परिणाम नित्य पदार्थ की सूक्ष्मता है । परन्तु जीव ग्रौर परमेश्वर की सूक्ष्मता कार्य की ग्रपेक्षा नहीं ग्रपितु स्वाभाविक ग्रौर कूटस्थ है । ग्रतः वे प्रकृति से क्रमशः सूक्ष्मतर ग्रौर सूक्ष्मतम है।

——o——

दयानन्द वचनामृत

"कितने ही आजकल के आर्य और यूरोप देशवासी अर्थात् अंग्रेज आदि लोग इसमें ऐसी शङ्का करते हैं कि वेदों में पृथिव्यादि भूतों की पूजा कही है । यह उनका कथन मिथ्या है, क्योंकि आर्य लोग सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त इन्द्र, वरुण और अग्नि आदि नामों करके वेदोक्त प्रमाण से एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आये हैं।"

—'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' से

तेरा भिखारी

ले० पं० वंशीधर विद्यालंकार

० ० ०

: १ :

महलों से लेकर छप्पर तक
नीचे से लेकर ऊपर तक।
क्या फलों में क्या कांटों में,
घोर तिमर में या तारों में॥
इस दुनियां में क्या है मेरा,
सब कुछ तेरा सब कुछ तेरा।
मैं हूं एक भिखारी तेरा॥

: २ :

जो देता है ले लेता है,
और किसी को दे देता है।
सब कुछ वैसा ही रहता है,
नहीं खजाना घट पाता है॥
कहूं किसे फिर यह है मेरा,
सब कुछ तेरा सब कुछ तेरा।
मैं हूं एक भिखारी तेरा॥

: ३ :

अपने सारे साथी संगी,
वसुधा जिन से प्यारी लगती ।
उनकी स्मृति भी मिट जाती है
अन्त शून्य में मिल जाती है ।
मोह बंधे कह देते मेरा,
सब कुछ तेरा सब कुछ तेरा ।
मैं हूं एक भिखारी तेरा ।।

: ४ :

खाली आते खाली जाते,
जैसे थे वैसे ही जाते ।
जब आते ऐसे ही जाते,
क्या है मेरा क्या है मेरा ।।
लेकर कुछ भी साथ न जाते
सब कुछ तेरा सब कुछ तेरा ।
मैं हूं एक भिखारी तेरा ।।

---o---

- एक प्रत्यक्षदर्शी दस सुनी सुनाई बातें कहने वालों से श्रेष्ठ होता है ।
- जो केवल अपने लिए जीता है, यथार्थ में वह जीवित रहने का अधिकारी नहीं होता ।

वानप्रस्थाश्रमों का स्वरूप व उनकी उपयोगिता

लेखक — महामण्डलेश्वर स्वामी रामस्वरूप शास्त्री

'वार्धक्ये मुनिबृत्तीनाम्'' — भारतवर्ष हजारों वर्ष से अनेकविध आक्रमण एवं परिवर्तन के झंझावातों में भी अभी तक अपना अस्तित्व लिये हुए संसार का प्रहरी बना है ।

यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
बाकी अभी तलक है नामो निशां हमारा ।

वर्णाश्रम परम्परा की उर्वरा भूमि में इस कल्पवृक्ष का बीज वपन हुआ था — ''ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थ: सनातन:'' त्याग के खाद से इस अश्वत्थ की फलदूरूपता पनपी ।

गृहस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम दो ही आश्रम वास्तव में मुख्य हैं । गृहस्थाश्रम जीवन की सफल पूर्णता के लिए पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम तप, त्याग, संयम, सहिष्णुता के प्रतिदिन के अभ्यास से जीवन में वह सहिष्णुता आती थी । गृहस्थाश्रम की अनेकविध समस्याओं में यहां का व्यक्ति ''प्रलयेऽप्यचला महात्मान:'' के अनुसार अविकम्पित जीवनव्रती होते थे । ब्रह्मचर्य के पच्चीस वर्ष की साधना की बुनियाद पर गृहस्थ की नींव रखी जाती थी । इसी प्रकार संन्यास को आदर्श तथा पावन बनाने के लिए पच्चीस वर्ष का वानप्रस्थाश्रम जीवन यापन करना अनिवार्य था । पारिवारिक मोह पुत्रादि व्यामोह की निवृत्ति क्रमिक अभ्यास के द्वारा ही साध्य है । तत्काल नहीं । ''स तु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढभूमि:'' की पद्धति से परिपक्वता आती थी और जीवन का कीर्ति कलश रूप संन्यास देदीप्यमान होता था । भारत का संन्यासी विश्व का प्रेरणास्रोत बनता था ।

वानप्रस्थाश्रमों की महत्ता

कलियुग के इन विचित्र वातावरणों में पारिवारिक जीवन में जहां तक रहना उचित हो ''तनये तनयोत्पत्ति:'' पौत्र मुख दर्शन बाद वृद्धदम्पती वनवास जीवन के अभ्यासी बनें । पुत्र संसार का दायित्व अपने कन्धे पर ले तभी गृहस्थ-जीवन में सुख-शान्ति रहती है । खटिया तोड़ते हुए बाप जीवन भर घर में रहेगा तो न बाप को स्थिर शान्ति मिलेगी न पुत्र का वास्तविक दायित्व विकसित हो सकेगा अतएव इसी में भलाई है एक वन में रुचिशील बने ''शनै:-शनै रुपरमेत् बुद्धया धृतिगृहीतया'' इस गीता के जीवन को व्यवहार में लाये तथा दूसरा व्यक्ति (पुत्र) अपने संसार को सुखी एवं व्यवस्थित बनाये ।

शाकुन्तल नाटक में कण्वशिष्य की उक्ति क्या सुन्दर शिक्षा देती है—

यात्येकतोऽस्त शिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतारुणपुरस्सर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्याम्
लोको नियम्यत इवात्म दशान्तरेषु ।।

जीवन-धारा में प्रवाहशीलता तथा तट मध्यवर्तिता, संयमशीलता भी उतनी ही आवश्यक है । जीवन को सुख एवं शान्तिमय, भक्तिमय बनाने के लिए ही वानप्रस्थ जीवन की महत्ता है । पहले लोग वनवास में जाते थे । आज के युग में वन में भी जीवन की स्वतन्त्रता नहीं है । वन-विभाग शासनाधीन है । वहाँ भी वार्धक्य जीवन अपेक्षित सुविधा संभव नहीं । अतएव वानप्रस्थाश्रमों की रचना उपयोगी सिद्ध होती है परिवार जीवन से दूर एकान्त नदी तट पर वृद्ध-दम्पती अपना शेष जीवन यापन करते थे । संयम-पूर्वक शनैः-शनैः ममता, माया, मोह–निवृत्ति का प्रयत्न करते थे । जिससे चतुर्थाश्रम में कोई बन्धन हेतु संकल्प शेष न रहे ।

एवं तत्वाभ्यसा न्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् ।
अविपर्ययात् विशुद्धं कैवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ।।

इसी दूर दृष्टि से संन्यासी नारायण स्वामी जी महाराज ने गंगा तट हरिद्वार की पावन-भूमि पर वानप्रस्थाश्रम की स्थापना सन् १९२८ में की । जिस आश्रम ने ५० वर्ष की अपनी अमूल्य सेवाओं से भारतवर्ष में अपना अनुपम स्थान बना लिया । आर्य-संस्कृति के विशुद्ध वातावरण में रहने वाले वृद्ध नर-नारी की सेवा का अनुपम व्रत यहां पालन किया जाता है । वृद्ध परिवार को जहाँ कथा सत्संग का लाभ मिलता है वहाँ संस्कार-क्षेत्र प्रवेशार्थी तरुण को जीवन में उपयोगी अनुभव का शिक्षण इन अनुभवशील वृद्धों के चरणों में मिलता है जो तरुण व्यक्ति के जीवन का संबल बन सकता है । "परस्पर देवो भव" की मूल प्रेरणा देने वाले वानप्रस्थाश्रम का सर्वाधिक महत्त्व है ।

आपके सेवा-परायण इस वानप्रस्थाश्रम का सर्वतोमुख अभ्युदय इस स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव के शुभ अवसर पर चाहते हैं ।

धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्ते महदस्तु च ।।

——०——

पंच क्लेश

स्वामी व्रतानन्द जी आचार्य गुरुकुल चित्तौडगढ़ (राजस्थान)

ओम् कविमग्नि मुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे, देवममीव चातनम् ।

सामवेद :

सामवेद के इस मंत्र का भावार्थ यह है कि हे मनुष्य तू सर्वदा अध्वरे अर्थात् यज्ञमय जीवन में तत्पर रह और अविद्या क्लेश की निवृत्ति के लिए कवि स्वरूप ओम् की स्तुति प्रार्थना और उपासना प्रतिदिन किया कर ।

पहला क्लेश है अविद्या क्लेश :

इसका लक्षण यह है कि 'अनित्याशुचिदुखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्यातिरविद्या ।' अनित्य पदार्थ को नित्य समझना अथवा नित्य पादर्थ को अनित्य समझना और अपवित्र पदार्थ को पवित्र समझना अथवा पवित्र पदार्थ को अपवित्र समझना और दुःख देने वाले पदार्थों को सुख देने वाले तथा सुख देने वाले पदार्थों को दुःख देने वाले समझना जो आत्मा नहीं है उसको आत्मा समझना अथवा जो आत्मा है उसको अनात्मा समझना । इसके कारण जो क्लेश होता है उसको अविद्या क्लेश कहते हैं ।

द्वितीय क्लेश अस्मिता क्लेश है :

महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में इसका लक्षण किया है कि 'द्रष्टृ दृश्ययोः एकात्मता अस्मिता ।' द्रष्टा और दृश्य की अर्थात् आत्मा को और बुद्धि आदि को एक दूसरे के समान समझना और मैं क्या हूं इसको न समझना । इस अविवेक से जो क्लेश उत्पन्न होता है उसका नाम अस्मिता है ।

तृतीय क्लेश है राग क्लेश :

राग क्लेश का लक्षण महर्षि पतंजलि जी ने यह किया है कि 'सुखानुशयी रागः ।' शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पांचों विषयों में सुख को अनुभव करना राग क्लेश कहलाता है । इस विषयासक्ति से जिस दुःख समूह को सब जीव भोगते हैं उस क्लेश का नाम राग है । सुरीले शब्दों के प्रलोभन में फंसकर हरिण शिकारी की बजायी बांसुरी को सुनकर अपने शत्रु के समीप आ जाता है शिकारी उसे पकड़ लेता है । ऐसे ही अन्य चार जीव भी विषय सुख के प्रलोभन में आकर मौत के मुंह में फंस जाते हैं यह तो शब्द के प्रलोभन का परिणाम है । स्पर्श विषय के प्रलोभन में हाथी फंसकर पकड़ा जाता है । शिकारी हथिनी की मूर्ति को जंगल में रख देते हैं हाथी उसको बुरी तरह से छूता है इसका बुरा परिणाम यह होता है कि वह शिकारी की पकड़ में आ जाता है । ऐसे ही पतंगा प्रकाश के सुन्दर रूप के प्रलोभन में बहुत गरम दीपक के समीप भी आकर जलकर मर जाता है । ऐसे ही मछली की बड़ी दुर्गति होती है । इसके विषय में एक कवि ने कहा है कि 'मछली आती खाने आटा, पर उसको चुभ जाता कांटा ।' मछियारा समुद्र, नदी आदि के किनारे आकर मछलियों को प्रलोभन में डालने के लिए जलाशय में आटे की गोलियां फेंकता है, रस के प्रलोभन में फंस कर मछलियें बड़ी खुशी से उन गोलियों को खा लेती हैं गोलियों से पकड़ी जाती हैं जिसके कारण मछलियों की मृत्यु हो जाती है । ऐसे ही गन्ध विषय की आसक्ति व प्रलोभन में फंसने वाला भंवरा सुगन्धित फूलों पर आकर बैठ जाता है और अधिक सुगन्ध लेने के लिए फूल में बन्द हो जाता है । प्रातःकाल होने पर वह फूल में ही बैठा-बैठा मर जाता है। इससे विदित हुआ कि बिषयासक्ति में सुख मानने से सब प्राणियों को बहुत दुःख भोगना पड़ता है । अतएव शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के प्रलोभन से बचकर हम सब मनुष्यों को अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस, अगन्ध, अनश्वर ओम् के ध्यान में निमग्न रहना चाहिए । इसलिए आदर्श वानप्रस्थी श्रीमान् भर्तृहरि जी ने ये शिक्षा दी है कि "वैराग्यमेवाभयम्" सच्चे सुख की प्राप्ति का उपाय वैराग्य ही है ।

आदित्य ब्रह्मचारी; अनेक गुरुकुलों के संस्थापक; गुरुकुल चित्तौड़ के प्राण; सात्विकदान विचारधारा के प्रबल समर्थक; महर्षि प्रतिपादित शिक्षा प्रणाली के पोषक

स्वामी व्रतानन्द सरस्वती

स्वामी व्रतानन्द सरस्वती

जन्म : संवत् १९४६

चतुर्थ क्लेश द्वेष क्लेश है :

इसका लक्षण महर्षि पतंजलि जी ने यह किया है कि दुःखानुशयीद्वेषः ।' संसार में परस्पर द्वेष करने का परिणाम बड़ा भारी दुःख है इसलिए हमारे शत्रु अंग्रेजों ने हमें चिरकाल तक परतंत्र करने के लिए हमारे में फूट व द्वेष फैला दिया था । इस द्वेष से वचने के लिए महर्षि पतंजलि जी ने यह उपाय बताया है कि हमें अहिंसा व्रत का पालन सर्वदा सर्वत्र करना चाहिए। इसलिए वेद मंत्र के द्वारा ओम् हमें बताता है कि अविद्वेष कृणोमिवः । हे मनुष्यो मैं तुम सबको द्वेष रहित करता हूं । इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि प्रेम के अनन्त भण्डार देव स्वरूप ओम् की प्रतिदिन स्तुति प्रार्थना और उपासना किया करें ।

पंचम क्लेश अभिनिवेश क्लेश है :

इसका अर्थ मरने से डरना है। अर्थात् मृत्यु के भय के कारण जो क्लेश होता है उसीको अभिनिवेश क्लेश कहते हैं । इस क्लेश की निवृत्ति के लिए गीता में योगीराज श्री कृष्ण जी ने बहुत श्रेष्ठ उपदेश दिया है कि—

वासांसि जीर्णानि यथाविहाय,
नवानिगृह्णाति नरोपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय, जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानिदेही ।।

गीता अध्याय २ श्लोक २२

इसका तात्पर्य यह है कि जैसे मनुष्य पुराने कपड़े को उतार नया कपड़ा पहने में सुख अनुभव करता है ठीक वैसे ही देहरूपी पुराने शरीर को छोड़ना ही मृत्यु है और नए शरीर को धारण करना ही जन्म है । इसलिए सच्चे आर्य मृत्यु से कभी नहीं डरते । इस प्रकार से अन्य पांच उपायों से भी इन क्लेशों की निवृत्ति होती है ।

—-०——

स्वामी व्रतानन्द जी का सन्देश

- कल (दिनांक २६-११-७७) मेरा जन्म दिवस है मैं भोजन में और भाषण में न्यूनता करके आत्मनिरीक्षण करूंगा । कल से मेरा छियासीवां बर्ष प्रारम्भ होगा । आत्मा में एवं हृदय में ओ३म् की भक्ति को बढ़ाऊंगा ।
- ओम् की ओर, ओम् की ही ओर, हम कदम बढ़ावें । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध वाले नश्वर पदार्थों की ओर नहीं ।

महाराजा भर्तृहरि के इस उपादेय उपदेश को सर्वदा सर्वत्र स्मरण रखिये —

"वैराग्यमेवाभयम्"

'वैराग्य ही आत्म सुख का प्रदाता है ।'

मानव जीवन का ध्येय

ले० स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक विद्यामार्तण्ड

स्वामी ब्रह्ममुनी जी

सिकन्दर ने अपने समग्र जीवन को धन सम्पत्ति के संग्रह में लगाया। अन्तिम समय पछताया, रोया, क्यों ? पाप से धन संग्रह किया, पापमय जीवन पर रोना ही था। पाप रहित धन संग्रह भी धनोपार्जन है न कि पुण्योपार्जन, तब भी रोना ही है। धन तो यहां का यहां ही रह जायेगा, यह मनुष्य के साथ जाने वाला नहीं है। किन्तु पुण्य ही साथ जाता है, काम आता है। "एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः"। मरणोपरान्त केवल धर्म ही मित्र है। जो समय प्रभु की उपासना में लगाया वही आत्मशुद्धि के माध्यम से प्रभुमिलन में सहायक हुआ। उपनिषद्कार ने कहा है कि —

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहा वेदीन्महती विनष्टिः

केनोपनिषद्

इस जीवन में ब्रह्म को जान लिया तो ठीक, मानव जीवन सार्थक, सफल। नहीं जाना तो महती क्षति, भारी हानि।

मनुष्य क्या आगे के लिए सोचता है और क्या हो जाता है ? मानव का आगे के लिए सोचना तो स्वाधीन है परन्तु होना तो कर्मानुसार ईश्वराधीन है। मनुष्य को अपने भविष्य का ज्ञान नहीं। क्या होगा, क्या कर सकेगा ? आगे जीवित रह सकेगा भी या नहीं ? निकट भविष्य में कहीं मृत्यु का ग्रास तो न बन जावे। न ही मृत्यु का ग्रास बने, जीवित भी रहे पर क्या पता जीवित रहने पर भी कोई गहन रोग अन्तस्तल को अघात पहुंचाने वाला या कोई स्थायी रोग जीवन भर साथ-साथ चलने वाला पीछे न लग जाये जिससे औषधोपचार में ही निरन्तर फंसा रहे। प्रभु स्मरण परमात्मोपासना को शान्ति से कर सके इसलिए यौवन काल से ही अध्यात्म साधना में मन को लगावे, पता नहीं फिर क्या गति होती है, क्या मति होती है —

को हि जानाति कस्याद्य
मृत्यु कालो भविष्यति

युवैव धर्मशीलः स्याद-
नित्यं खलुजीवितम् ।।

महाभारत शान्ति पर्व मो० अ० १७५

कौन जानता है आज किसका मृत्यु काल होगा, अतः युवा होता हुआ ही धर्मशील, धर्मपरायण हो। जीवन सदा नहीं रहता।

अध्यात्म साधना, परमात्मोपासना इस देह कुटीर का बीमा है, इस कुटी को आज आग लगी तो क्या, कल आग लगी तो क्या ? आन्तरिक सम्पत्ति, अध्यात्म सम्पत्ति, ब्रह्म सम्पत्ति तो आंच से परे है, सुरक्षित है, सम्प्राप्त है ही। फिर पछताने का काम नहीं, रोने का नाम नहीं। संसार में मानव जिस लिए आया, उसे पाया। बस यही जीवन की पूर्णता है, सफलता है, सत्यता है। नहीं तो पछताना, हानि उठाना, रोना और जीते जी मर जाना ही है।

शास्त्रों ने मानव के लिए चार पुरुषार्थ अर्थात् मनुष्य जीवन के प्रयोजन बताये हैं — धर्म, अर्थ, काम एवं

मोक्ष। आदि के तीन केवल साधन मात्र हैं, सीढ़ियां हैं, प्राप्तव्य तो मोक्ष ही है अर्थात् इस जन्म मरण के बन्धन से छूट कर एक बहुत लम्बे समय के लिए सर्वस्व सर्वान्तर्यामी परमात्मा के सान्निध्य में आनन्द पूर्वक रहना।

आर्य समाज में वर्तमान दलबन्दी के होते यह उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। आर्य समाज को केवल सामाजिक सुधार या शैक्षणिक संस्था न रह कर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे परस्पर प्रेम तथा ईश्वर के प्रति भक्ति-भाव पैदा हो।

- कौन अस्वीकार करेगा कि गुलाम की तरह मेहनत करने वाला, राजा की तरह भोजन करता है।
- जो प्रदर्शन करने के लिए दान देता है वह अन्धेरे में किसी को सन्तुष्ट नहीं कर सकता।
- यह ठीक ही कहा है कि अभिमान उपेक्षाभाव को बहुत कम छिपा सकता है।
- प्याले में तीव्र कड़वाहट का रहना ही ठीक है, ताकि उसमें कृत्रिम मुसकान मीठी न हो सके।
- यदि तुम्हें एक अच्छा मित्र प्राप्त है तो तुम्हें अपने प्राप्तव्य से अधिक ही मिल गया है।
- बुद्धिमानों का कथन है कि खेद और हर्ष एक दूसरे का अनुगमन करते हैं।

सुख-शान्ति का सच्चा मार्ग - आश्रम प्रणाली

ले. सुनीति एम.ए. पी-एच. डी.

आज के इस युग में चारों ओर अशान्ति का वातावरण है। व्यक्ति, परिवार, समाज राष्ट्र, सब नाना प्रकार की समस्याओं से पीड़ित हैं। स्वच्छन्दता, उद्दण्डता, हिंसा का बोल बाला है। नई पीढ़ी दिग्भ्रमित सी दिखाई दे रही है। कहीं वह पश्चिम का अन्धानुकरण करने में रत है तो कहीं किंकर्तव्य विमूढ सी। ऐसी परिस्थिति में हम जब अपने प्राचीन चिन्तकों की जीवन प्रणाली को देखते हैं तो आशा की एक किरण चमक उठती है। हमारी विनम्र सम्मति में मानव जाति यदि सुख और शान्ति के सच्चे मार्ग पर अग्रसर होना चाहती है तो अन्ततोगत्वा उसे इसी सांस्कृतिक धरोहर को अपनाना होगा। भारतीय संस्कृति का आधार यहां की जीवन प्रणाली ही तो रही है। केवल शास्त्रों का चिंतन ही किसी संस्कृति को चिरस्थाई नहीं बना सकता। चिन्तन के साथ आचरण की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यावर्त के पुनर्निर्माण का जो स्वप्न देखा था वह ऋषि मुनियों की जीवन प्रणाली की सुदृढ़ पृष्ठ भूमि पर ही आधारित था। महर्षि लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य आश्रम का सुधार ही सब सुधारों का सुधार है। आज समाज में जो उथल-पुथल मची हुई है उस का एक मात्र कारण ब्रह्मचर्य आश्रम का ही अस्त-व्यस्त होना है।

ब्रह्मचर्य आश्रम और वानप्रस्थ आश्रम का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। वानप्रस्थ आश्रम का आधार ही खिसक गया है। ऋषि मुनियों की जीवन प्रणाली का मुख्य अंग था वानप्रस्थ आश्रम। पचास वर्ष के उपरान्त अथवा पुत्र द्वारा घर का उत्तरदायित्व संभाल लेने के पश्चात् माता-पिता वानप्रस्थ की दीक्षा लेकर समाज की सेवा के लिए चल देते थे। ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति अपने ऊपर केन्द्रित रहता था। बल और ज्ञान की वृद्धि ही उसका लक्ष्य होता था। गृहस्थी बन कर व्यक्ति परिवार के पालन पोषण में व्यस्त हो जाता था और आयु के तीसरे भाग में परिवार की परिधि से बाहर निकल कर समाज निर्माण के गुरुतर दायित्व को वहन करने में जुट जाता था। वानप्रस्थ आश्रम का लक्ष्य अपनी आत्मिक उन्नति के साथ-साथ समाज के नव-व्यक्तियों का निर्माण भी था। वे अनुभवी व्यक्ति अपने जीवन में सीखे हुए ज्ञान को निःशुल्क एवं निःस्वार्थ भावना से नई पीढी के निर्माण में लगा देते थे। वस्तुतः व्यक्ति द्विज' बनता था इन्हीं के चरणों में बैठ कर। आज ऐसे नवयुवक अध्यापक बन जाते हैं जो न अपने ज्ञान में अनुभव का पुट रखते हैं और न नव-निर्माण की क्षमता ही। केवल अर्थ उपार्जन उनका लक्ष्य होता है। अपनी अनुभव हीनता के कारण वे विद्यार्थियों के साथ न्याय नहीं कर पाते। फलतः विद्यार्थी न ज्ञानवान् बन रहे हैं, न चरित्रवान्। अनुशासनहीनता व फैशनपरस्ती ने हमारे युवा वर्ग के चरित्र को एकदम खोखला बना दिया है। फिर उस में चलचित्रों की अश्लील कामुकता ने उन्हें कहीं का नहीं रखा है। माता पिता द्वारा श्रम से उपार्जित धन का जितना दुरुपयोग छात्र-वर्ग द्वारा हो रहा है उतना संभवतः और कहीं नहीं। और निर्माण के नाम पर जिस खोखली पीढ़ी का निर्माण हम कर पाये हैं वह सर्व विदित है। वानप्रस्थियों द्वारा अपने आश्रमों में यदि ज्ञान की धारा बहानी प्रारम्भ की जाय तो भारतवर्ष का भाग्य पलटा जा सकता है। विदेशों में हास्टेल पद्धति हमारी इसी आश्रम पद्धति का विकृत रूप है। परिवार में रह कर बच्चे पारिवारिक चिन्ताओं और समस्याओं से अछूते नहीं रह पाते। माता-पिता भी अपने गृहस्थ धर्म में डूबे हुए इनके निर्माण की ओर उचित ध्यान नहीं दे पाते। अतः निर्माण की दिशा में वानप्रस्थी व्यक्ति बहुत कुछ कार्य कर सकते हैं। यह आर्थिक दृष्टि से भी बहुत उपादेय सिद्ध होगा। शिक्षा की प्राचीन प्रणाली, गुरु शिष्य का वह आत्मीय सम्बन्ध, आचार्य का अन्तेवासी रह कर चरित्र का निर्माण, तभी संभव हो सकेगा जब सभी क्षेत्र के प्रबुद्ध योग्य व्यक्ति अपने जीवन के तीसरे भाग को समाज के लिए समर्पित करने के लिए दृढ़ निश्चयी होंगे। इससे एक ओर परिवारों

में, जहां दो पीढ़ियों का संघर्ष अनवरत चलता रहता है शान्ति का साम्राज्य छा जायेगा। दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति जो वृद्धावस्था में अपने को असहाय समझ कर हीन-भावना के शिकार हो रहे हैं समाज के लिए उपादेय सिद्ध होंगे। तीसरी ओर विद्यार्थी सचमुच कुछ विद्या सीखने की ओर उन्मुख होंगे। समाज में गृहस्थ आश्रम का ही बोलवाला है। जब तक ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ आश्रमों का पुनरुद्धार न होगा राष्ट्र का पुनरुद्धार भी असंभव ही है। आर्य समाज अपने सौ वर्षों में और कुछ न कर केवल आश्रम-प्रणाली का ही चलन प्रारम्भ कर देता तो देश की काया पलट हो जाती।

भारत की संस्कृति तपोवनों की संस्कृति है। त्याग जिस का मूल आधार है। केवल एक आश्रम गृहस्थ आश्रम ही भोग के लिए है। परन्तु आज व्यक्ति जीवन के प्रारंभ से लेकर अन्तिम क्षण तक भोग के मधु से चिपटा रहता है। अतः यह आसक्ति ही उस के जीवन की शान्ति को दूर भगा रही हैं। हमारी सन्तान का दूसरा जन्म भोगों से दूर शान्त वनों में होता था। त्यागियों के सान्निध्य में रह कर वह गुणवान्, ज्ञानवान्, बलवान् बनता था। हमारी संस्कृति के दो उच्चतम आदर्श राम और कृष्ण का निर्माण ऐसे ही उच्च वानप्रस्थियों के सान्निध्य में हुआ था।

कब तक हम अपने सिद्धान्तों का ढिंढोरा उत्सवों के माध्यम से मंच पर पीटते रहेंगे? इन सिद्धान्तों को मूर्त रूप देकर ही हम ऋषि के स्वप्नों को साकार कर सकते हैं। संन्यासी अथवा परिव्राट् बनना तो हरेक व्यक्ति के लिए न आवश्यक है न संभव ही। परन्तु जीवन के इन दो आश्रमों का पुनरुद्धार अत्यावश्यक है। हमारे यहां आश्रम का अर्थ किसी खास चहारदीवारी से न होकर खास प्रणाली से सम्बद्ध है। प्रभु पिता परमेश्वर हम भारतीयों पर ऐसा अनुग्रह करें कि हम वेदोक्त जीवन प्रणाली को अंगीकार कर सकें। भारत का भाग्योदय उसी दिन होगा और आर्यों की स्वर्ण जयन्ती तभी सार्थक होगी। घूमघूम कर धर्म प्रचार करना तो संन्यासियों का कार्य है। वानप्रस्थी तो आत्मिक उन्नति में लीन होकर भी निष्क्रिय नहीं होगा। नई पीढ़ी का निर्माण करना, जीवन से जीवन दीप जलाना उसका प्रमुख कार्य है। एक मुन्शीराम वानप्रस्थ ने देश को अनेकों व्यक्तित्व प्रदान किए। एक मुक्तिराम ने भी कई मुमुक्षुओं का निर्माण किया। आर्यों का भाग्योदय तभी होगा जब वानप्रस्थ आश्रम निर्माणों की कर्मस्थली के रूप में उठ खड़े होंगे और मानव निर्माण के ऐसे श्रमकेन्द्र वास्तव में अपने आश्रम नाम को चरितार्थ करेंगे।

- क्षणभर का आत्म विचार एक घण्टे के व्याख्यान से कहीं उत्कृष्ट है।
- अच्छाई को समझ करके भी जो उसे कार्य में परिणत नहीं कर पाता वह 'भीरू' शब्द की शोभा वृद्धि करता है।
- जो वस्तु जिस के पास नहीं है वह उससे कभी छीनी नहीं जा सकती।

तम्बाकू पर एक विहंगम दृष्टि

श्री कल्याण स्वरूप बी. ए., मन्त्री आर्य वाप्रस्थाश्रम (ज्वालापुर)

श्री कल्याण स्वरूप जी

इतिहास

बहुत पुरातनकाल से तम्बाकू अपने भयङ्कर विष को फैलाता आ रहा है परन्तु सन् १४९२ तक इसका उपयोग अमरीका निवासियों तक ही सीमित था। १४९२ में जब कोलम्बस भारत की खोज में निकला और मार्ग भूलकर अमेरिका में जा निकला। तब उसके साथियों ने *West Indies* के निवासियों को एक पौधे का धुआं पीते देखा उस स्थान का नाम क्यूबा था। अमेरिका के लोग तम्बाकू की बड़ी कदर करते थे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इसमें अनेकों गुण हैं। सन् १५०२ में दक्षिण अमेरिका में स्पेनिश लोगों ने तम्बाकू खाना भी आरम्भ कर दिया था अमेरिका में बीड़ी का आकार V का सा होता था, लोग इस बीड़ी के ऊपर के दो सिरों को तो नाक मे रखते और निचले सिरे को आग में जलती हुई तम्बाकू के धूएं में रखते और नाक से खूब धुआं पीते थे।

यूरोप में इस पौधे की खेती पहिले पहिल स्पेन के दूसरे फिलिप द्वारा सन् १५६० में कराई गई। उसने फ्रान्सिसको हरनानडीज नामक एक वनस्पति-शास्त्र वेत्ता को अमेरिका की वनस्पतियों और खनिज पदार्थों की खोज करने के लिए भेजा था। हरनानडीज वहां से अन्य वस्तुओं के साथ-साथ तम्बाकू का पौधा और उसके बीज भी लाया था, तबसे स्पेन में इसकी खेती होने लगी वहा से पुर्तगाल व इटली में इसका प्रचार हो गया। इंगलैन्ड में इसका प्रवेश सन् १५८६ में हुआ। वहां तम्बाकू पीने का प्रचार करने का श्रेय सरवालटर रैले पर है। वालटर साहिब ने वर्जिनिया में तम्बाकू की खेती प्रारम्भ की वहां से जहाजों पर लदकर तम्बाकू इंगलैन्ड आने लगा।

भारत में तम्बाकू का प्रचार पुर्तगीजों ने किया। सन् १६०५ में नवाबखां आजज ने पाहले पहिल पुर्तग्यंजा से तम्बाकू ली और बादशाह अकबर को बतौर औषधि के पेश की सम्राट अकबर ने तो इसे कभी न पिया पर जनता में इसका खूब प्रचार हुआ। सन् १८२९ में ईस्ट-इन्डिया कम्पनी ने तम्बाकू का बहुत प्रचार किया।

विरोध

प्रारम्भ से ही प्रत्येक देश के राजा व धर्माधिकारी इसके प्रचार का यथा शक्ति विरोध करते गये परन्तु मनुष्य को अभिशाप है कि वह बुराई को शीघ्र ग्रहण करता है इसका प्रचार बढ़ता ही गया। तुर्किस्तान में तम्बाकू पीने वालों के होंठ काट दिये जाते थे और सूंघने वालों की नाक। इंगलन्ड के बादशाह जेम्स प्रथम ने तम्बाकू पीने वालों पर टैक्स लगाया रूस में पहिली बार तम्बाकू पीने वाले को कठोर शारीरिक दण्ड दिया जाता था और दूसरी बार प्राण दण्ड। बादशाह जहांगीर ने तम्बाकू पीने वालों के लिये तशीर नामक दण्ड तजवीज किया था। इसके अनुसार पीने वाले का मुंह काला करके उसे गधे कीपुंछ की ओर मुंह करके बिठाकर शहर में घुमाया जाता था। ईरान के शाह अब्बासेन भी इसके प्रचार को रोकने के लिए ऐसी ही कठोर आज्ञायें जारी की थी जिससे तम्बाकू पीने वलो को अपने बचाव के लिए जंगलों में भागना पड़ता था। स्विट्जर लैण्ड में तम्बाकू पीना एक अपराध घोषित कर दिया गया था। बारहवें पोप इन्नोसेन्ट ने तम्बाकू पीने वालों के वहिष्कार की आज्ञा देदी थी। परन्तु इन सब प्रति-बन्धों के होते हुए भी प्रचार बढ़ता ही गया।

कहां से होता है?

आज तम्बाकू अमेरिका क्यूबा फ्रांस और भारतवर्ष में सबसे अधिक होता है। भारत में प्राय: सब प्रान्तों में बोया जाता है परन्तु बंगाल, बिहार, गुजरात, बम्बई व मद्रास में अधिकतर पैदा होता है। संसार में इस समय पांच छ: प्रकार का तम्बाकू बोया जाता है परन्तु भारत में केवल दो प्रकार का ही बोया जाता है। प्रथम *N. Tobaccum* और दूसरा *N. Rustica* । भारत में लगभग दस लाख एकड़ भूमि पर तम्बाकू की खेती होती है।

क्यों पीते हैं ?

तम्बाकू का प्रयोग करने वाले निम्नलिखित उत्तर देते है:—

१ किसान व मजदूर समझते हैं कि काम की थकान के बाद विश्राम करने का एक बहाना मिल जाता है।

२ यात्रा के समय मेलजोल बढ़ाने का एक सस्ता नुस्खा है। साथी को सिगरेट पेश करते ही बातचीत का आरम्भ होता है।

३. मनुष्यों व स्त्रियों का वजन बढ़ने से रोकता है। तम्बाकू पीने व खाने से शरीर पर मोटापा नहीं आता।

४. विदेशी नारियों का मत है कि यदि उनके पति सिगरेट पीने के ध्यान में लगे रहेंगे तो वे इधर-उधर अन्य स्थानों पर अपने अनुचित सम्बन्ध स्थापित नहीं करेंगे।

५ कुछ का विचार है कि हुक्का बीड़ी या सिगरेट पीने से प्रसन्नता आती है।

६. हुक्का पीने वालों को प्लेग जैसी भयङ्कर बिमारियों का असर कम होता है। क्योंकि रोग के कीटाणु तम्बाकू के धुएं से मर जाते हैं।

ये सब थोथी दलीलें तथा अनुचित विचार हैं इनके सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

कैसे उपयोग किया जाता है?

भिन्न-भिन्न देशों में तम्बाकू के प्रयोग के तरीके भिन्न-भिन्न हैं। मुख्यतया पीना खाना सूंघना ही प्रयोग के बड़े साधन हैं। पीने वाले हुक्का कली या नारियल द्वारा नमींदार धुंआ अन्दर खींचते हैं जो कम हानिकारक है। जितनी भी नली लम्बी होगी और आग व तम्बाकू की दूरी मुंह से जितनी दूर होगी उतना ही कम हानिकर होगा। खाने वाले पान के साथ या बगैर पान के ही मुंह रखकर चबाते हैं। कई भाई चूने में मिलाकर सुरती के नाम से भी इसका प्रयोग करते हैं। सूंघने वाले तम्बाकू को बारीक पीसकर उसमें कई प्रकार की सुगन्धित वस्तुएं मिलाकर नुसवार सी बनालेते हैं।

तम्बाकू महान् विष है

इसका एक प्रमाण तो यह है कि संसार का कोई भी पशु, पक्षी इसके पत्तों को मुंह नहीं लगाता। तम्बाकू के खेत में कोई जानवर नहीं जाता। ग्राम के लोग एक कहावत कहा करते हैं कि तम्बाकू को तो गधा भी नहीं खाता उसे भी इसके विष का ज्ञान है। केवल एक कीड़ा जो तम्बाकू के पत्तों पर ही जन्म लेता है वही इसे खाता है दूसरा प्रमाण यह है कि सर्प भी डर के मारे तम्बाकू के खेत में नहीं जाता, उसे भी तम्बाकू के विष का ज्ञान है। अगर सांप को पकड़ कर उसके मुंह में तम्बाकू डाल कर छोड़ दें तो थोड़े समय में वह मर जाता है। अगर सांप के बिल में हुक्के का पानी डालदें तो भी सर्प मर जाता है।

इस युग के वैज्ञानिकों ने तम्बाकू में २४ प्रकार के विषों का अनुसन्धान किया है जिनमें मुख्य विष छः प्रकार के हैं :—

(१) निकोटीन (२) प्रूसिक ऐसिड (३) पायरोडीन (४) कौलीडीन (५) अमोनिया (६) कार्बन मोनो ऑक-साइड। एक पौन्ड तम्बाकू से ३८० ग्रेन निकोटीन निकलती है जो ३०० मनुष्यों की जान लेने के लिए पर्याप्त है। तम्बाकू से *Empyreumatic* नामक तेल निकलता है। इसकी यदि एक बून्द बिल्ली के पेट में चली जाये तो वह पांच मिनिट मे मर जायगी

प्रूसिक ऐसिड पेट में जाकर सिर दर्द चक्कर व मतली पैदा करता है।

कोलोडीन की एक ग्रेन से बीस मेंढ़क मर जाते हैं कार्बन मौनो ऑक्साइड सांस की गति को बढ़ाता है। यह शरीर में ठन्ड मूर्च्छा और पक्षाघात उत्पन्न करता हैं।

सिगरेट में लगे कागज के जलने से एकोलीन नामक गैस बनती है जो मस्तिष्क के तन्तुओं को हानि पहुंचाती है और स्मरण शक्ति को कम करती है।

तम्बाकू पीने वाले मनुष्य का मस्तिष्क सूखा हो जाता है। उसमें खून नहीं रहने पाता, फेफड़े कमजोर हो जाते हैं। कोमल परमाणु तम्बाकू के धूंएं से सो जाते हैं और निम्नलिखित रोग मनुष्य में घुस जाते हैं—

क्षय, हृद्रोग, उदर-रोग, नेत्र-रोग, चरित्र, हीनता नपुंसकता और पागलपन इत्यादि।

इस विषय में डाक्टरों की राय देखिए

१. डा० रशबारन—तम्बाकू का विष दांतों को हानि पहुंचाता है।
२ डा० कैलाश—हमने जितने अजीर्ण के रोगी देखे वे सब तम्बाकू का सेवन करने वाले थे।
३. डा० हासके—तम्बाकू मंदाग्नि का मुख्य कारण है।
४. डा० रगवेस्टर—तम्बाकू से पाचन यन्त्रों की शुद्ध रक्त उत्पन्न करने की शक्ति कम होकर सब प्रकार के अजीर्ण सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।
५. प्रो० सीलीमेन—तम्बाकू पीने से श्वासनली व फेफड़े सड़ जाते हैं।
६. डा० रश—इसके पीने से स्वर बिगड़ जाता है।
७. विलियम अलकाट—आंखों को भारी हानि पहुंचाता है।
८ डा० एन्मिन्सन—इसमे निद्रा नष्ट हो जाती है।
९ डा० निकोलस—पीने का जननेन्द्रिय पर भी बुरा असर पड़ताहै। स्त्रियां वन्ध्या और पुरुष नपुंसक बन जाते हैं।
१०. प्रो० नेलसन-आयु को घटाता है।
११. इस्टवेन्स—तम्बाकू पीने से स्मरण-शक्ति दुर्बल हो जाती है।
१२. डा० फाडरल—यह बुद्धि का नाश करता है।
१३ डा० बोस—इसको पीने से मनुष्य आलसी हो जाता है। यदि हम अपने शरीर, इन्द्रियां, मन व बुद्धि को सही रखना चाहें तो यह आवश्यक है कि हम तम्बाकू जैसी विषैली वस्तु का प्रयोग न करें।

तम्बाकू से हानियां

ऊपर लिखे डाक्टरों के अनुभव के आधार पर यह निश्चित है कि तम्बाकू के प्रयोग का मनुष्य के दिमाग पर, आंखों की बीनाई पर, खून के दवाव पर, रक्त सञ्चार पर, दिल के कार्य पर, श्वास व फेफड़ों पर तथा पाचन क्रिया पर बहुत ही कुप्रभाव पड़ता है। पर्ल साहिब लिखते हैं कि एक सिगरेट पीने में जितना समय लगता है उसके दुगने से भी अधिक समय उसकीआयु में से कम हो जाता है।

आर्थिक हानियां

व्यक्तिगत स्वास्थ्य के अतिरिक्त आर्थिक हानि भी कम नहीं होती। सिगरेट पीने वाला चौथाई भाग तो अवश्य फेंक देता है। इस प्रकार दस सिगरेट पीने वाला तीन सिगरेट के बराबर तो कूड़े के ढेर में फेंकता है। दूसरे शब्दों में एक रुपये में से २५ पैसे अवश्य जाया करता है इसके साथ माचस का खर्च रहा अलग। पीते-पीते कितने ही व्यक्तियों की जानें आग लग जाने से गई। घर और झौंपड़े जल गए, कपड़े और रजाई ही नहीं किसी-किसी की तो मूंछें और दाढ़ी तक भी जल गई। जलती हुई बीड़ी व सिगरेट को बिना बुझाए फेंक देने से जंगल में खलियान जलकर राख हो गए। कारखानों में कई रुई के ढेर के ढेर जल गए और चीनी मिलों में खाण्ड की बोरियां राख हो गई। तेल के टैंकर जल उठे। गाँव के गांव बाजार के बाजार जलकर ढेर होने की खबरें प्रतिदिन समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलती हैं।

मनुष्यता का नाश

तम्बाकू पीने वाला हर जगह धुआं छोड़ता है और

वाला जब तम्बाकू में चूना मिलाकर हाथ पर हाथ मारता है तो वह उड़कर सामने वाले की नाक में जाता है। रेल में या बस में तम्बाकू सूंघने वाला जब सूंघकर अंगुली झाड़ता है तो हवा के जोर से उड़कर पीछे वाले की आंखों में पड़ जाता है। तीनों प्रकार से दूसरे मनुष्यों को कष्ट होता है। इसका तम्बाकू पीने खाने वालों के मन में कभी विचार नहीं आता। इस प्रकार तम्बाकू से स्वार्थ की भावना प्रबल होती है। कितने ही बच्चे व नौजवान तम्बाकू के कारण से चोरी करने लग जाते हैं। उन्हें बीड़ी सिगरेट पीने के लिए मांग कर या चोरी करके पैसा प्राप्त करना पड़ता है। एक नशा दूसरे नशे के लगने का कारण बनता है। शराब,जुआ इत्यादि कई प्रकार की बुरी आदतें पड़ जाती हैं और मनुष्य का नैतिक पतन हो जाता है।

राष्ट्रीय हानियां

प्रति वर्ष अरबों नहीं, पद्मों की संख्या में जो सिगरेट या बीड़ी बनती है उसके लिये लाखों टन तम्बाकू की आवश्यकता होगी, जो लाखों एकड़ भूमि में उगाया जाता है। कृषि विशेषज्ञों का कहना है कि जिस भूमि में तम्बाकू पैदा होता है उसकी उर्वरक शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

धूम्रपान से पैदा होने वाली बिमारियों के इलाज के लिए कितनी दवाइयां व अस्पतालों की आवश्यकता होगी और सरकार को उनका प्रबन्ध करने के लिए कितना खर्च करना पड़ता है, इसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

तम्बाकू कम्पनियां नगरों में, बाजारों में, मेलों में लड़कों को जनाना वेश धारण कराके नाच व गाने द्वारा बीड़ी का प्रचार करती हैं, उससे नौजवान पीढी की चरित्र हानि होती है।

इस प्रकार देश की भूमि, धन व चरित्र सब की क्षति होती है।

धूम्रपान और कैंसर

कैंसर क्या होता है ? यह एक प्रकार की रसौली होती है जो शरीर के किसी भी स्थान में-फेफड़ों : जिगर आमाशय अन्तड़ियों मुंह गुदा चमड़ी और स्त्रियों में बच्चेदानी व दुद्धी पर आरम्भ होकर पास वाले स्वस्थ भाग को घेरती हुई अन्दर या बाहिर-फूट निकलती है। उसमें से बदबूदार रेशा या मवाद और खून निकलता है, दर्द रहता है, भूख समाप्त हो जाती है, बुखार भी हो सकता है। शनैः २ रोगी कमजोर हो जाता है और रोग शैया पर से उठने नहीं पाता। यह बीमारी तम्बाकू बीड़ी सिगरेट के प्रयोग करने वालों को अधिक होती है। डाक्टरों की सम्मतियां देखिये—

१. डाक्टर अपङ्ग डब्ल्यू हिल

यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि प्रतिदिन के बढ़ते हुए फेफड़े के कैंसर का सिगरेट नोशी ही मुख्य कारण है।

२. प्रोफेसर पी. आर. पीकाक

फेफड़ों का कैन्सर सिगरेट न पीने वालों में बहुत ही कम होता है और पीने वालों में कैन्सर का बढ़ावा मिलता है।

३. डा. एडवर्ड ब्राउन

पुरानी खांसी वाला ऐसा कोई रोगी मैंने देखा ही नही जो सिगरेट न पीता हो।

४. डा. जौन हैगर

सिगरेट पीना, मोटर का धुआं और धूल मिश्रित वायु मण्डल ही कैन्सर के सबसे बड़े कारण हैं।

५. प्रो. ए. आई-सायर

रूस व मध्यएशिया में पैदा और मुंह के कैंसर का मुख्य कारण मुंह में रख कर तम्बाकू का चबाना है।

इस प्रकार सिद्ध हो गया कि धूम्रपान कैन्सर का सम्भावित ही नहीं वरन् निश्चयात्मक कारण है।

धूम्रपान से छुटकारा

तम्बाकू का प्रयोग करने वाले जब छोड़ने का मन बनाते हैं, निम्नलिखित कठिनाइयां उनके सम्मुख आती हैं —

१. बिना तम्बाकू खाये या पीए पाखाना नहीं आता।

२. बिना तम्बाकू पीए खाना हज़म नहीं होता।

३. रात्रि को काम करते समय जब नींद आने लगे तो उसे दूर करने के लिए तम्बाकू का सहारा लेना पड़ता है।

४. जब सर्दी के कारण जुकाम हो जाता है और नाक बन्द हो जाती है तो नाक को खोलने के लिये तम्बाकू सूंघना पड़ता है।

ऐसी वस्तुएं जो इन पांचों कार्यों को पूरा कर सकें वे हैं—सौंफ, अजवायन कालानमक व नीम्बू का रस इनके तीन नुस्खें निम्नप्रकार से हैं—

१. उन व्यक्तियों के लिये जिनकी वायु प्रकृति है कोई भी ठण्डी चीज अनुकूल नहीं आती और रात को काम करना पड़ता है—
   सौंफ ५० ग्राम
   अजवायन १५० ग्राम
   कालानमक ७५ ग्राम
   नीम्बू-दो नीम्बू का रस

२. उन व्यक्तियों के लिए जिनकी गरम प्रकृति है कोई भी गरम चीज अनुकूल नहीं आती--
   सौंफ १५० ग्राम
   अजवायन ५० ग्राम
   कालानमक ७५ ग्राम
   नीम्बू-दो नीम्बू का रस

३. सामान्य प्रकृति अर्थात् जिनको गरम व ठण्डी दोनों अनुकूल आती है—
   सौंफ १०० ग्राम
   अजवायन १०० ग्राम
   कालानमक ७५ ग्राम
   नीम्बू-दो नीम्बू का रस

नोट—कालानमक व नीम्बू का रस अपने स्वाद के अनुकूल कम व अधिक कर सकते हैं।

बनाने व खाने का तरीका

कालानमक बारीक पीसकर नीम्बू के रस में किसी शीशे या चीनी के प्याले में मिलादे, अगर रस कम हो तो थोड़ा पानी मिला सकते हैं सौंफ व अजवायन को साफ करके किसी कलई किये हुए या स्टेनलेस स्टील के बरतन में डालकर नमक व नीम्बू के रस को उसमें छोड़ दें और हाथों से मसल २ कर चारों को एक करके आग पर रखकर हिला हिला कर भूनलें और एक डब्बी में भरकर अपने पास रखलें। हर समय दो-दो चार-चार दाने मुंह में डालकर धीरे-धीरे चबाकर स्वाद ले लेकर खाते रहें। किसी समय मुख को खाली न रखें। क्योंकि मुंह को खाली रखने से फिर तम्बाकू पीने की तलब लगेगी। इस प्रकार खाने से, पूर्व लिखित पांच में से चार काम पूरे हो जायेंगे। पांचवें काम को पूरा करने के लिए जब नाक में सूंघने की इच्छा हो तो सूर्य के सन्मुख नाक ऊपर करके खड़े हो जावें, एक मिनट में छींक आकर नाक व मग़ज़ दोनों साफ हो जाते हैं और अगर छींक न भी आये तो भी नाक बिल्कुल साफ हो जाता है। तम्बाकू के बदले नाक में सूंघने के लिये कपड़ छान किया हुआ नमक भी ले सकते हैं। नीलगिरी का तेल भी नाक में रूमाल पर लगा कर सूंघ सकते हैं।

तम्बाकू छोड़ने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा का होना आवश्यक है। दृढ़ निश्चय भी मनोबल की वृद्धि से बनता है। यदि मनोबल दृढ़ हो तो छोड़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। जिनका मनोबल क्षीण है वे भी यदि तम्बाकू की बुरी आदत को छोड़ना चाहे तो लगातार १० दिन तक निकोटीन के समान एकतत्त्व (*Labeline Hydeo chler*) का इन्जेक्शन लगवावें। यह बदन के प्रत्येक अंग में निकोटीन की भांति काम करता है। पांच छः दिन के पश्चात धूम्रपान की इच्छा समाप्त हो जायेगी।

तम्बाकू का औषधि रूप में प्रयोग

परम पिता परमात्मा ने कोई वस्तु बेकार नहीं बनाई। मनुष्य का कर्तव्य है कि वस्तु के गुण दोषों को जान कर उसका सदुपयोग करें। तम्बाकू से निकले हुए विषों से कई प्रकार के इन्जेक्शन बन सकते हैं जो लाखों मनुष्यों की जान बचा सकते हैं और बिमारियों को दूर

कर सकते हैं। तम्बाकू के फूल से दमा की दवाई बनती है और तम्बाकू का पत्ता हरनिया की बीमारी में काम आता है। २१-६-६२ के "प्रताप" पत्र में कुछ नुस्खे छपे थे जिन्हें जनता की भलाई के लिए उद्धृत किया जा रहा है—

१. दांत दर्द की दवा—तम्बाकू के सूखे पत्ते बढ़िया किस्म के, गेरू, कालीमिर्च इन तीनों को एक जैसा वजन लेकर बारीक पीसकर कपड़ छान करले। इसे दान्त दर्द होने पर दांतों पर मलें आराम हो जायेगा।

२. हिलते दांतों की दवा-तम्बाकू ३ तोला, अकरकरा ७ तोला, कालीमिर्च ३ तोला, फटकड़ी भुनी हुई २ तोला, कपूर देशी १ तोला। पहिली चार चीजों को कूटकर कपड़छान करले फिर कपूर मिलाकर मजबूत कार्क वाली बोतल में डालकर सुरक्षित रखें। सुबह शाम दांतों पर खूब मलें, थोड़ी देर से कुल्ले करे दो सप्ताह में हिलते दांत स्थिर हो जायेंगे।

३. जखम भरने का तेल—हरे कच्चे तम्बाकू को खूब पीसकर उसमें से रस निकालकर उस रस के वजन के बराबर तिल्ली का तेल मिलाकर हल्की आंच पर पकावें। जब रस जल जावे और तेल बाकी रह जावे उतार कर, ठण्डा करके, छानकर बोतल में भर लेवें। यह तेल गंदे से गंदे जख्म पर चुपड़ने से जख्म शीघ्र अच्छा हो जाता है और जख्म में पीप नहीं पड़ेगी। अगर पड़ भी गई तो जल्दी ही सूख जायेगी। इस तेल से नासूर भी ठीक हो जाता है इस तेल को लगाने से मक्खी व मच्छर नहीं बैठता। सिर पर एक ही बार लगाने से जूएं व चम-जुएं मर जाते हैं।

४. शरबत तम्बाकू—तम्बाकू के हरे पत्तों का रस आधा सेर, चीनी (शक्कर) एक सेर, दोनों को आग पर पका कर गाढा होने पर उतार कर छानकर बोतलों में भरलें। यह शरबत एक तोला थोड़े पानी में मिलाकर एक ही समय पीने से दस्त व कै होंगी, घबराइये नहीं, दमा जड़ से चला जायेगा।

तात्पर्य

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर, तम्बाकू के गुण दोषों को भली भांति जानते हुए क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं कि हम यथा शक्ति इस का विरोध करें और इसका पीना खाना व सूंघना छोड़ दें। तम्बाकू के प्रयोग से मनुष्य को कोई लाभ नहीं होता, सैंकड़ों रोग चिमटते हैं धन नष्ट होता है। पहिले तम्बाकू पर, फिर बीमारियों के इलाज पर। अमेरिका में कानून बना दिया गया है कि प्रत्येक सिगरेट पर "सावधान, सिगरेट पीना आपके स्वास्थ्य के लिए हानिकर है" इस प्रकार का लेवल लगाया जावे। अमेरिका वासियों ने तम्बाकू पर बड़ी-बड़ी रिसर्च की, उसी का यह परिणाम है। हमारी राष्ट्रीय सरकार का भी यह कर्तव्य है कि तम्बाकू के प्रचार पर रोक लगावे और सिगरेट पर लेविल लगाने का कानून बनावे।

—o—

- यह विश्व सर्व श्रेष्ठ पुस्तक है। परन्तु जो इसे पढ़ नहीं सकता उसके लिए इसका बहुत कम उपयोग है।
- प्रत्येक छोटी मछली एक दिन ह्वेल बन सकती है।

वानप्रस्थ आश्रम और साधनायोग

लेखक — स्वामी गुरुचरणदास जी, अध्यक्ष–साधु-समाज, दिल्ली

वानप्रस्थ आश्रम बहुत पुराना है। इस आश्रम में सैकड़ों सद्‌गृहस्थ और संन्यासी रहते आ रहे हैं। यह वानप्रस्थ आश्रम आर्य-समाज का षट्-दर्शन-समन्वय और योग साधन के उद्‌देश्य एवं ज्ञान के लिए बनाया गया है। वानप्रस्थ शब्द का अर्थ है 'गृहाद्वनं प्रव्रजेत्' घर को छोड़ कर वन में चला जाये। वहां जाकर वानप्रस्थी पुरुष क्या करे, उसके लिए योग साधना के द्वारा स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर में रहने वाली आत्म-ज्योति को तीनों से पृथक् होकर अपने सत्‌चित आनन्द आत्म-बोध को जागृत करे और यह सोचे कि श्रेय पदार्थ एवं प्रिय पदार्थ, इन दोनों में अन्तर क्या है? इस बात को जानने के लिए प्रथम वानप्रस्थ से षट्‌दर्शन समन्वय और योग साधनों के द्वारा अथवा ज्ञान की भूमिकाओं के द्वारा आत्मा को प्रकृति से पृथक् समझे। प्राकृति और ईश्वर के जन्म-मरण के चक्कर से स्वतन्त्र होने का यत्न करे। यह ठीक है कि आत्मा स्वभावतः शुद्ध और चेतन स्वरूप है परन्तु यह वस्तुतः शारीरिक बन्धनों और मानसिक विकारों से युक्त रहता है, परन्तु अज्ञान के कारण यह चित्त के साथ अपना तादात्म्य सम्बन्ध कल्पित कर लेता है (अर्थात् भ्रमवश अपने को चित्त समझने लगता है) चित्त प्रकृति का प्रथम विकार है, जिस में रजोगुण और तमोगुण के ऊपर सत्वगुण की प्रबलता रहती है। चित्त स्वभावतः जड़ है, परन्तु आत्मा के निकटतम सम्पर्क में रहने के कारण वह आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हो उठता है। निर्मल होने के कारण उस पर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है। यहाँ पर यह शंका उठती है कि आत्मा का रूप और स्पर्श अपना धर्म नहीं हैं। रूप-रहित पदार्थ का प्रतिबिम्ब नहीं होता यथा वायु। वायु का रूप नहीं है, अतः उसका प्रतिबिम्ब भी नहीं होता। उत्तर–यद्यपि आत्मा का रूप नहीं है फिर भी उसमें चेतनता है वह चेतनता ही जड़ चित्त के साथ प्रतिबिम्ब न कहो, सम्बन्ध कहो, तब कल्पना संसार में कार्य हो जाता है। अतः चित्त के ऊपर आत्मा का आभास आ जाता है। तब चित्त का किसी विषय से सम्पर्क होता है। वह ज्ञान और कर्म इन्द्रियों द्वारा उसी विषय का आकार धारण कर लेता है। इन्हीं विषयों के अनुरूप चित्त विकारों से आत्मा को विषयों का ज्ञान होता है।

स्वामी गुरुचरणदास जी

यद्यपि आत्मा में स्वत: कोई विकार या परिणाम नहीं होता तथापि परिवर्तनशील चित्त वृत्तियों में प्रतिबिम्बित होने के कारण इसमें परिवर्तनशीलता का आभास होता है. जैसे नदी के हिलकोरों में प्रतिबिम्बिता जान पड़ती है। चित्त की वृत्तियाँ पांच प्रकार की होती है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति। प्रमाण तीन प्रकार के होते हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द । इनके विषय में जो सांख्य का मत है वह ही योग का भी है। विषयों के सम्बन्ध में मिथ्या ज्ञान को विपर्यय (भ्रम) कहते है। संशय भी इसी के अन्तर्गत आ जाता है । विकल्प का अर्थ है शब्द-जनित वृत्ति, जिसका लगाव वस्तु स्थिति से नहीं होता जैसे शून्य आकाश-कुसुम । इन शब्दों से अर्थ-बोध होते हैं पर उन वोधों के अनुरूप वस्तु नहीं है। निद्रा वह चित्तवृति है जिसमें तमोगुण का प्राधान्य होता है और उसके कारण जागृन और स्वप्न अवस्थाओं के अनुभव विलीन हो जाते हैं, इस अवस्था को सुषुप्ति कहते है। कुछ दर्शनों का मत है कि सुषुप्ति अवस्था में कोई भी मानसिक क्रिया नहीं होती और चैतन्य का लोप हो जाता है, परन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं । निद्रा भङ्ग होने पर हम कहते हैं कि मैं खूब सोया, ऐसा सोया कि किसी विषय का बोध नहीं रहा इत्यादि। अर्थात् निद्रा अवस्था की बात हमें स्मरण रहती है इससे सूचित होता है कि निद्रा अवस्था का प्रत्यक्ष अनुभव हमें अवश्य हुआ होगा तभी तो वह स्मरण आता है। इस तरह सिद्ध होता हैं कि सुषुप्ति अवस्था में भी मन अपना कार्य करता रहता है । विषय का अभाव ही इस वृत्ति का आलम्बन है। अत: निद्रा को "अभाव प्रत्यावलम्बा" कहते हैं। स्वप्न जागृत सुषुप्ति यह तीन अवस्थाएं कैसे होती हैं—

जब जड़ चित्त चेतन के सम्बन्ध से नेत्र में आता है तब तो सुषुप्ति होती है । इन तीनों अवस्थाओं को जानने के लिए वानप्रस्थ आश्रम में वानप्रस्थी प्रवेश करता है । गृहस्थ आश्रम में इन साधनों को गृहस्थ के झंझटों में आसक्त हुआ जीव कर नहीं सकता क्योंकि अन्त:करण पंच इन्द्रियों के द्वारा हर समय गृहस्थी की वृत्तियां विक्षिप्त और मूढ़ होती है। आश्रम का अर्थ होता है श्रमदान । इन्द्रियों के द्वारा जब जीव थक जाता है तब विश्राम चाहता है अत: यहां गृहस्थ आश्रम के झंझटों से थकता है तब यह जीव उसके विश्राम के लिए वानप्रस्थ आश्रम में जाता है । ख्याल रखना कि वानप्रस्थ आश्रम में जाकर मकान, दुकान, कुटुम्ब-परिवार की बातों की दुकान न खोल बैठे । वहां पर जाकर व्याख्यान देने वाले और वक्ता को ही न गुरु बनाये, किन्तु शम, दम, निदिध्यासन, समाधियोग, धारणा, ध्यान इन पर चलने वाले किसी साधन सम्पन्न विद्वान् जगत् से, उपराम अन्त:करण की वृत्तियों से उपराम जगत् से विश्राम साधन सम्पन्न किसी गुरु के पास बैठ कर

खोज करे । "कोऽहं किमासम" – मैं कौन हूं, कौन था, यह सोचे, यह न सोचे कि मैं दफ़्तर का बाबू था, दुकान का दुकानदार था। स्वभाव कैसे बदले।

यह वानप्रस्थ आश्रम की प्रथम कक्षा है । नारायण स्वामी जी द्वारा स्थापित आर्य-वानप्रस्थ आश्रम बहुत देर से चला आ रहा है। इससे बहुत से पढ़े-लिखे पुरुष-सज्जन रह कर अपना सुधार कर चले गये और कई रह रहे हैं। इस आश्रम के नियम, रहन-सहन का ढंग बहुत अच्छा है । कभी-कभी इसमें रहने वाले वानप्रस्थी गृहस्थ आश्रम के जीवित संस्कारों द्वारा वाद-विवाद के वितण्डावाद को न खड़ा करे तो अच्छा है। इस काल में, आश्रम मठ, मन्दिरों में वितण्डावाद बहुत हो रहा है। इन बातों की समाप्ति होनी चाहिए ।

॥ इतिशम ॥

दयानन्द वचनामृत

"जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं संध्योपासना नहीं करता, उसको शूद्र के समान समझ कर द्विज कुल से अलग कर के शूद्र कुल में रख देना चाहिए । वह सेवा कर्म किया करे और उसके विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिए । इस से मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जान कर पूर्वोक्त दो समयों में जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें।"

— ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका

० ० ०

"चाहे मरण पर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे, परन्तु गुणहीन, असदृश, दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर-कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करे।"

— संस्कारविधि

अज्ञेय की खोज में

श्री प्रियहंस

तुम्हें विश्वभर के नयन खोजते हैं,
सहस्रों विकल कण्ठ तुमको पुकारें।
किधर हो सकल सृष्टि के हे निवासी !
कहां रम रहे हो कि तुमको निहारें ? (१)

कभी भान होता कि तुम तो यहीं हो,
धरें ध्यान तो दूर ओझल कहीं हो !
नहीं हो-कि हो-एक उलझन बने हो,
विपद में सदा किन्तु तुम ही सहारे ॥ (२)

कहीं वन्दना है - विनय - प्रार्थना है,
कहीं साधना - मूर्त आराधना है।
कहीं ध्यान - चिन्तन कहीं गीत-नर्तन,
तुम्हारे मिलन के लिए यत्न सारे॥ (३)

मिले तुम किसे ? कौन पहिचान पाया ?
झलक है तुम्हारी कि है एक माया !
कहीं ज्योति हो तुम - कहीं दिव्य छाया,
अजब है-कि कैसे पतित तुमने तारे ? (४)

न देखा तुम्हें - मुग्ध तुम पर चराचर,
न जाना तुम्हें-प्राण फिर भी निछावर,
तरसते रहे भक्त तुम को न पा कर,
भटकते फिरे चांद - सूरज - सितारे ।। (५)

तुम्हारा पता - दूर - दुनियां बताती,
निकट हो कहीं - एक आवाज आती ।
यही एक अचरज कि जो जन्म साथी-
वही मिल न पाये हृदयधन हमारे !! (६)

न हम सिद्ध-तापस-यती-योगध्यानी,
न धर्मध्वजी - ब्रह्मविद् - तत्वज्ञानी ।
प्रभो ! प्रेम के सिन्धु तुम-मीन हैं हम,
डुबालो हमें या लगा लो किनारे ।। (७)

—ooo—

- आलसी अपने मस्तक पर योग्यता एवं कीर्ति का मुकुट कभी धारण नहीं कर सकता ।

- बचत दरिद्र का धन और धनिक की बुद्धिमत्ता है ।

महर्षि दयानन्द का यज्ञ विषयक वैज्ञानिक पक्ष

लेखक– पं. वीरसेन वेदश्रमी

यज्ञ में मंत्रोच्चारण कर्म के साथ आवश्यक है

महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने यज्ञ की एक अत्यन्त लघु पद्धति या विधि हमें प्रदान की जो १० मिनट में पूर्ण हो जावे। उसमें मन्त्र के साथ कर्म और आहुति का योग किया। बिना मन्त्र के यज्ञ का कोई कर्म, यज्ञ का अंग नहीं बन सकता। बिना मन्त्र उच्चारण किए किसी भी पदार्थ को अग्नि में जला देने से, वह यज्ञाहुति का स्वरूप प्राप्त नहीं कर सकती और न वह उस महान् लाभ को भी उत्पन्न करने में उतनी समर्थ हो सकती है। इस लिए विधिवत् यज्ञ करने से ही यथोचित लाभ होगा, अन्यथा नहीं।

यज्ञ की प्रथम क्रिया-और प्रथम मंत्र का भाव

भगवान् दयानन्द ने प्राणिमात्र पर अपार दया करके यज्ञ की प्रथम क्रिया प्रारम्भ करने के लिए एक छोटा सा मन्त्र दिया। कहा कि इस महान् कार्य के लिए अग्नि प्रदीप्त करना हो तो – ओ३म् भूर्भुवः स्वः – यह छोटा-सा मन्त्र बोलकर घृत का दीपक प्रज्वलित कर लेना। क्योंकि यही घृत दीप की मूलाधार प्रारम्भ ज्योति ही व्याप्त रूप में विराट बनकर भूः अर्थात् पृथिवी, भुवः अर्थात् अन्तरिक्ष और स्वः अर्थात् द्युलोक के लिए ओ३म् अर्थात् रक्षा करने वाली है। इसी घृत युक्त अग्नि शिखा में भूः अर्थात् प्राणों को उत्पन्न करने की शक्ति है। इसी में भुवः अर्थात् दुःख-नाशक शक्ति है और इसी में स्वः अर्थात् लोक और पर-लोक का समस्त सुख प्रदान करने की शक्ति है।

यज्ञ में द्वितीय क्रिया और उसका मन्त्र

केवल घृत का दीपक जलाने से यज्ञ नहीं हो जाता। इस घृत दीप की अग्नि से कपूर को प्रज्वलित कर उस पर चन्दनादि की समिधा रखकर उसे एक पात्र में रखना चाहिए और – ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना० — यह सम्पूर्ण मन्त्र बोल कर कुण्ड मध्य में उसे स्थापित करना चाहिए। मन्त्रों में जो अपूर्व विज्ञान भरा है वह मन्त्र बोलने से ही जाना जाता है। बिना मन्त्र के वह प्रकाशित नहीं होता।

द्वितीय क्रिया के मन्त्र का भाव

इस अग्न्याधान मन्त्र का भाव निम्न प्रकार हृदयंगम करना चाहिए। ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना = यह भूर्भुवः स्वः आदि तीन ज्योतियों से युक्त अग्नि हैं जो प्रकाशमय द्युलोक के समान महान् विशाल है और – पृथिवीव वरिम्णा = अन्तरिक्ष के समान महिमाशाली है, सामर्थ्यवान् एवं सर्व सुखोत्पादक है। तस्यास्ते पृथिवि देव-यजनि पृष्ठे - उस देव यजनि अर्थात् देवों की यज्ञस्थली पृथिवीके पृष्ठ के ऊपर - अग्निमन्नादं = अन्नों के पक्व करने वाली अग्नि को - अन्नाद्यायादधे = अन्नों को भोज्य रूप प्रदान करने के लिए स्थापित करता हूँ। अन्नों को भोज्य रूपता प्रदान करने का एक गूढ़ तात्पर्य यह है कि यज्ञ से जो अन्न की उत्पत्ति एवं पक्वता होती है उस अन्न में से विष का भाग दूर होता जाता है। उसमें रोगोत्पाद-कता का दोष नहीं होता और वह अन्न अत्यन्त स्वादिष्ट, बल, वीर्य, बुद्धि वर्धक तथा पुष्टि कारक हो जाता है।

तृतीय क्रिया उसका मन्त्र और भाव

इस प्रकार पूर्वोक्त मन्त्र पूर्वक अग्नि स्थापन क्रिया होने पर तीसरी क्रिया — ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने० मन्त्र से उस अग्नि को प्रदीप्त करने से सम्बन्धित है। उस स्थापित अग्नि को लक्ष्य में रख भावना करनी चाहिए कि- ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने = अर्थात् हे अग्नि तू ऊपर की ओर बढ़, प्रतिजागृहि = अत्यन्त प्रदीप्त हो, क्योंकि – त्वमिष्टा-पूर्ते संसृजेथाम् अर्थात् तुम हमारे लिए ईष्ट अर्थात् अभीष्ट सिद्धि, इष्ट भोगों के दाता हो, तुम ही हमारी समस्त

इष्टियां—यज्ञयागादि—के साधक हो और आपूर्त अर्थात् कुंवा, बावड़ी, तालाब, उद्यान, गृह, भवन आदि की पूर्ति करने वाले अर्थात् उन को भरने, पूर्ण करने वाले हो।

चतुर्थ क्रिया ३ समिधादान चार मन्त्रों से, ३ अग्नियों के लिए

यज्ञ की आधार भूत प्रक्रिया के पूर्वोक्त मन्त्र में समिधा का कार्य प्रथम है। अतः अग्नि प्रदीप्त होने पर उस में समिधादान की क्रिया करनी चाहिए। अतः ४ मंत्रों से ३ समिधा दान की क्रिया का विधान किया गया हैं। ४ मंत्र चारों दिशा अर्थात् समस्त दिशाओं के बोधक हैं। उन समस्त दिशाओं का पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ या भूः, भुवः-स्वः इन तीन रूप से विभाग है। इन तीनों स्थानों में तीन प्रकार की अग्नियां हैं। पृथिवी लोक की अग्नि को पवमान कहा गया – अन्तरिक्ष लोक की अग्नि को पावक कहा गया और द्यु स्थानीय अग्नि को शुचि कहा गया है। अतः तीनों अग्नियों के लिए ३ समिधा दान की क्रिया का विधान किया गया। इन तीनों समिधाओं द्वारा इस स्थापित यज्ञाग्नि को तीनों लोकों में क्रियाशील करके यज्ञ को ब्रह्माण्ड में व्याप्त किया जाता है। समिधा दान के चार मन्त्रों के अन्त में जो – इदं न मम – का पाठ है वह ध्यान देने योग्य है। प्रथम मन्त्र में इदमग्नये जातवेदसे, द्वितीय मन्त्र में इदमग्नये, तृतीय मन्त्र में – प्रथम मन्त्रवत् पाठ है और चतुर्थ मन्त्र में – इद मग्नये अङ्गिरसे – पाठ है। अर्थात् तीन ही अग्नि है। एक अग्नि, दूसरी अंगिरस, तीसरी जातवेद। अतः ३ अग्नियों की तीन ही समिधा हुई।

पांचवीं क्रिया पांच घृताहुतियां

समिधाग्निं दुवस्यत, इसके बाद-घृतैर्बोधयतातिथिम्-पद है। पहले पद समिधाग्निं दुवस्यत के अनुसार समिधादान की क्रिया संपूर्ण हो गई अतः – घृतैर्बोधयतातिथिम् – की क्रिया होनी चाहिए। अतः ५ घृता हुतियों का विधान किया गया।

पांच घृताहुति क्यों ? (१)

इस ब्रह्मांड में पूर्वोक्त तीनों लोकों में तीन अग्नियों से तथा तीन लोक रूपी समिधाओं से ५ अग्नियां क्रियाशील होती हैं। उससे सबकी रचना व पालन होता है। उपनिषदों में तथा शतपथ ब्राह्मण में उसे पंचाग्नि कह कर वर्णन किया है। अतः पांच अग्नियों के लिए ५ घृताहुति का एक कर्म रखा गया है।

पांच घृताहुति क्यों ? (२)

जगत् पर दृष्टिपात करें तो यह पांच भौतिक ही है। प्राणिजगत् को देखें तो यह पाँच प्राणों से ही जीवित है और मनुष्य की प्रधान रूप से पांच ही कामनायें – प्रजा, पशु, ब्रह्म, तेज, अन्न (भोजन) एवं उपभोग शक्ति है। पंच घृताहुति मन्त्र में इन्हीं पांच से अपने को समिद्ध एव समृद्ध करने की यज्ञ से प्रार्थना है। अतः ५ घृताहुति का विधान यज्ञ में करने से पंच भूत, पंच प्राण के लिए आहुति से उनकी पुष्टि पूर्वक अपनी पंच सूत्री योजना की पूर्ति का भाव है।

षष्ठक्रिया जलसिंचन

पंच घृताहुतियों से जब हमने अग्नि को – इध्यस्व वर्धस्व-किया तो अग्नि से उस स्थान विशेष में तापाधिक्य होगा ही। ताप की वृद्धि से उस तप्त वायु मंडल की परिधि के बाहर चारों ओर का जो वायु का आवरण होगा वह अपेक्षा कृत आर्द्रतापूर्ण होगा। अर्थात् ताप के चारों ओर आर्द्रता का मंडल स्वभावतः संचित या निर्मित होता है इसी रहस्य को यज्ञ में भी प्रकट करने के लिए पांच घृताहुतियों के पश्चात् जल सिंचन का विधान है। अर्थात् सृष्टि की कार्य प्रणाली में अग्नि होने पर, ताप होने पर जल अवश्य प्रकट होता है। उपनिषदकारों ने इसीलिए अग्नेरापः – अर्थात् अग्नि से जल की उत्पत्ति कहा है। हमारे शरीर में भी जब अग्नि-ताप बढ़ जाता है तो जल से ही उसका शमन, सन्तुष्टि होती है। अग्नि में यदि जल डालेंगे तो अग्नि शांत हो जायेगी। अग्नि को तो प्रदीप्त रखना है, अतः अग्नि के चारों ओर जल सिंचन करके जल

का मंडल बनाकर, ताप के चारों ओर आर्द्रता स्थापित एवं उत्पन्न की जाती है। जो सृष्टि विज्ञान के स्वरूप का प्रदर्शन ही है।

सप्तम क्रिया-आघारावाज्यआहुतियां

जल सिंचन के पश्चात् - अग्नये स्वाहा - की आहुति से सोम की उत्पत्ति होती है। क्योंकि ताप के साथ जलीय अंश मिश्रित होने लगा। उस उत्पन्न सोम के लिए आहुति सोमाय स्वाहा - से देनी चाहिए। इस दोनों अग्नि और सोम शक्तियों से प्रजनन अर्थात् प्रजापति शक्ति और बल, पराक्रम अर्थात् इन्द्र शक्ति का सृष्टि में संचार होता है। इसी को - प्रजापतये स्वाहा - और इन्द्राय स्वाहा - के रूप में आहुति देकर सृष्टि में इन शक्तियों को सामर्थ्यवान् बनाया जाता है।

यज्ञ प्रातःकाल एवं सायंकाल करना चाहिए

सृष्टि में अग्नि और सोम का उदगम तथा उनकी परस्पर में आहुतियां प्रातःकाल सूर्योदय होने पर प्रारम्भ होने लगती हैं जिससे प्रजापति एवं इन्द्र शक्ति - सामर्थ्य का बर्धन होता है। वही क्रम सायंकाल भी होता है। जब सृष्टि में प्रकृति का यह यज्ञ प्रारम्भ हों तो हमें भी अपना यज्ञ सूर्योदय एवं सूर्यास्त समय में करना चाहिए। अहोरात्र की सन्धियों में किया गया यज्ञ अहोरात्र में व्याप्त हो जाता है।

यज्ञ की २४ आहुतियों का काल से साम्य

यज्ञ में २४ आहुतियां हैं। काल भी अहोरात्र रूप से २४ घन्टों के रूप में विभक्त है। २४ घंटों का अहोरात्र का काल है। प्राचीन ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से ६० घटिका (घड़ी) का अहोरात्र होता है। जिससे एक घड़ी २४ मिनट की ही हो जाती है। इस प्रकार दैनिक यज्ञ का सम्बन्ध जहां सृष्टि के तत्वों से है वहां साथ ही अहोरात्र के काल से भी है। इस प्रकार काल सृष्टि से भी यज्ञ गायत्री स्वरूप में स्थित है।

अष्टम क्रिया प्रातःकालीन होम की ४ आहुतियां

इस प्रकार से यज्ञ पृथिवी से अन्तरिक्ष को क्रियाशील करता हुआ द्युलोकस्य अग्नि अर्थात् सूर्य से सम्बन्ध स्थापित करता है जिससे अग्नि में दी गई आहुतियां सूर्य मंडल में पहुँचतीं है। उस समय सूर्योज्योतिज्योतिः सूर्यः स्वाहा - आदि मन्त्रों से ४ आहुतियां दी जाती है।

नवम क्रिया ४ व्याहृति आहुतियां

सूर्य मंडल को प्राप्न आहुतियों से इस त्रिलोकी में, इस भूः, भुवः, स्वः लोकों में, अग्नि, वायु और आदित्य से प्राण, अपान और व्यान प्रवाह गति करता है। अतः भूरग्नये प्राणाय स्वाहा - आदि ४ मन्त्रों की आहुतियों का विधान किया गया है। इस प्रकार सृष्टि क्रिया विज्ञान रहस्य की प्रक्रिया के बोध के लिए यज्ञ का अनुष्ठान समादरणीय प्रतीत होने लगता है।

दसवीं क्रिया आपोज्यती० मन्त्र से आहुति

यज्ञ की पूर्वोक्त प्रक्रिया अब हमें परम लक्ष्य की ओर भी ले जाती है। सृष्टि में जो यज्ञ चल रहा है उस का संचालक परब्रह्म ओ३म् ही है। जल और अग्नि (तेज - ज्योति) ही इस विश्व में प्रधान रूप से कार्य कर रहे हैं। वृक्ष, वनस्पति, अन्न, फलादि में इन दोनों के कारण रस उत्पन्न हो रहा है। अर्थात् - आपो ज्योति रसः — यह क्रम चल रहा है और उस रस में - अमृतं - जीवन विद्यमान है। अतः मंत्र - आपो ज्योति रसो अमृतम् - इस क्रम से अमृत के संचार करने वाले जीवनदाता - ब्रह्म की ओर बढ़ने को कहता है। वही सर्वाधार, सर्वव्यापक, सब सुखों का दाता, सर्वदुःख हर्त्ता, सर्वरक्षक भूः, भुवः, स्वः इन तीनों लोगों में ऋग्यजुः साम में व्याप्त ओ३म् परम लक्ष्य है। उसे प्राप्त करने के लिए ओ३म् - आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा - मन्त्र से आहुति का विधान किया है। यह यज्ञ प्रक्रिया सृष्टि विज्ञान के माध्यम से अन्ततोगत्वा परब्रह्म तक हमें ले जाती है। आध्यात्मपक्ष में आपः ही श्रद्धा है उससे उत्तरोत्तर सूक्ष्मता प्रकाश,

आनन्द, अमृत, (मोक्ष सुख) ब्रह्म की प्राप्ति, ब्रह्म के भूर्भुवः स्वः भर्ग की प्राप्ति होती है जिससे जीवन उन्नत होता है।

ग्यारहवीं क्रिया ३ याचनायें प्रभु से

इस सम्पूर्ण यज्ञ क्रिया के करने के उपरांत ३ मन्त्रों से निम्न याचनायें की गई है —

(१) यां मेधां देवगणाः ० — इस मन्त्र से मेधावी करने की याचना।

(२) विश्वानि देव — इस मन्त्र से सर्व दुःखादि दूर और कल्याण कारण गुण कर्म स्वभाव की प्राप्ति की याचना।

(३) अग्ने नय सुपथा राये० — इस मन्त्र से ऐश्वर्य युक्त सुपथ की प्राप्ति की, निष्पाप जीवन करने की याचना है जिससे परमात्मा की उपासना, यज्ञादि शुभकर्मों में बार-बार प्रवृति होती रहे। अतः उपरोक्त तीन मंत्रों से आहुति का विधान यज्ञ में किया गया है।

बारहवीं क्रिया – पूर्णाहुति

यज्ञ की यह सौरभ सर्वत्र व्याप्त हो .. सभी को इसका शुभलाभ परमात्मा प्रदान करें और अपना शुभ आशीर्वाद प्रदान करें अतः ओ३म् सर्वं वै पूर्णं ० स्वाहा. मन्त्र को तीन वार बोलते हुए तीन आहुतियां प्रदान की जाती हैं। ओ३म् भूर्भुवः स्वः कह कर जिस यज्ञाग्नि को प्रदीप्त किया था जो तीन प्रकार की हैं, तीनों लोकों में व्याप्त है उसी के लिए अन्त में पुनः आहुतियों से यज्ञ क्रिया पूर्ण हो जाती है।

यज्ञ महाविज्ञान है

इस दृष्टि से देखने पर यज्ञ सृष्टि विज्ञान, प्रकृति-विज्ञान, मनोविज्ञान, अध्यात्मविज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, वायुमंडल शोधन विज्ञान, वातभेषज निर्माण, चिकित्सा-विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, मन्त्र विज्ञान आदि अनेक विद्या-विज्ञानों से ओत-प्रोत है। अतः यज्ञ महाविज्ञान है। इस संक्षिप्त लेख में इसका कुछ लाभ प्रदर्शित किया है। आशा है पाठकगण इस यज्ञ कार्य में रुचिग्रहण कर यज्ञ को अपनावेंगे।

—०—

- विज्ञापन सर्विस को सुलभ नहीं बना सकते।
- आक्रमण का शिकार बनने वालों की अपेक्षा धमकी का शिकार बनने वालों की संख्या सदा ही अधिक होती है।
- समय पालन व्यापार का प्राण होता है।
- वृक्षहीन प्रदेश में एरण्ड ही वृक्ष बन जाता है।

सती माता

(सत्य घटना)

लेखक — श्री इन्द्रदेव खोसला एडवोकेट, चण्डीगढ़
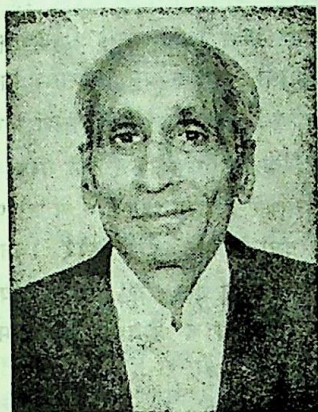
इन्द्रदेव खोसला

अंशुमाली अपनी दैनिक यात्रा समाप्त कर अस्ताचल की ओर झुक रहा था। पंछी मन्थर गति से उड़ते हुए अपने आवास वृक्षों की ओर उड़े जा रहे थे। ताजेवाला की श्मशान-भूमि में जलती हुई चिता को घेर कर खड़ी श्मशान यात्रियों की भीड़ की लम्बी छायाएं प्रेतों की तरह नाच रहीं थी। स्वर्गीय पं० रविशंकर के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करने के लिए समूची बस्ती ही एक प्रकार से उमड़ पड़ी थी। रविशंकर सुप्रसिद्ध ज्योतिषी थे और अपनी नम्र प्रकृति के कारण अत्यन्त जनप्रिय थे।

रविशंकर निस्सन्तान थे और उनकी और्ध्व दैहिक क्रिया सम्पन्न करने का कर्तव्य उनकी युवती पत्नि दया ने स्वयं स्वेच्छा से ही अपने ऊपर ले लिया था और श्मशान में उपस्थित होकर वह अत्यन्त शोकाभिभूत हुई एक तरफ खड़ी अपने पति के दग्ध होते हुए शरीर को देख रही थी। अपने छोटे से विवाहित जीवन के कितने ही मधुर क्षण अनन्तवियोग की इस वेला में उसे स्मरण आरहे थे। बीत गये थे, बीत गये थे, सदा के लिए वे मधु दिवस। नहीं लौटेंगे वे अब कभी। श्मशान में आते समय उसने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि वह अब श्मशान से नहीं लौटेगी। अपने पति के साथ ही चिता में जल कर सती हो जायेगी। न जाने कैसे उसके हृदय में यह परम विश्वास हो गया था कि सती स्त्री की सद्गति होती है अगले और जन्म में उसे पति की पुनः प्राप्ति होती है।

लोगों को उसके इस संकल्प का किसी तरह पता चल गया था और वे सभी एक स्वर से उसे वैसा करने के लिए मना कर रहे थे। मगर जब वह अपने आग्रह पर अविचल बनी रही और प्रयास करने पर भी उनके साथ वापस लौटने को सहमत नहीं हुई, तब एक युवती के चिता में भस्म होने के रोमांचक दृश्य को न देख सकने के कारण सभी श्मशान यात्री धीरे-धीरे बस्ती की तरफ लौट गए। उतरते हुए अन्धेरे में ठहरने का कोई साहस न कर सका।

धीरे-धीरे श्मशान भूमि जनशून्य हो उठी। साहस बटोर कर दया चिता की तरफ बढ़ने लगी और चिता में कूदने के लिए उद्यत होकर वह जैसे ही उसकी परिक्रमा करने लगी, हठात् चिता में से एक भयंकर विस्फोट हुआ जिससे समूचा वायुमंडल गूंज उठा। दया को लगा वह उसके पति का स्वर है। वे शायद उसे चिता में कूदने से मना कर रहे हैं। तभी एक और विस्फोट हुआ और जंगल एक बार फिर गूंज उठा। भयत्रस्त होकर दया का धैर्य छूट गया। उसके पैर एक तरफ भाग उठे। वह चिता की तरफ जाने का साहस न कर सकी।

अमावास्या की घोर रात्रि। जंगल का भयंकर एकान्त। वन में से आते हुए वन्यश्वापदों के डरावने आराव। सबने मिल कर उसे इतना संत्रस्त कर दिया कि वह कब किधर भाग उठी उसे कुछ भी पता न चल सका। कहां गया सती होने का संकल्प? कहां गया पति के अनुगमन का दृढ़निश्चय? उस अंधेरे में उसके पैर उसे किधर लिए जा रहे हैं, किस दिशा की ओर, वह कुछ भी न जान सकी।

ताजेवाला जनपद जिला स्यालकोट के अन्तर्गत था। जम्मू रियासत की सीमा वहाँ से छह-सात मील से अधिक दूर न थी। अन्त में दिग्भ्रम में फंसी दया भागते-भागते जब एक पक्की सड़क पर जा पहुंची उसकी घबराहट थोड़ी बहुत घट चुकी थी। यद्यपि अन्धेरे के कारण उसे कुछ पता न चल रहा था वह कहां है, मगर इतना तो वह समझ ही चुकी थी कि वह किसी बस्ती के पास आ पहुँची है। बस्ती ताजेवाला है उसे जरा भी सन्देह नहीं था। मगर बेहद थक जाने के कारण उसके पैर जवाब दे चुके थे। उस में आगे बढ़ने की शक्ति न रही थी। सड़क के किनारे ही एक वृक्ष दिखाई पड़ रहा था। जैसे तैसे वह उसके पास जा पहुंची और विश्राम के लिए उसके नीचे लेट गई। पंखा झलने वाली मैदानी हवा ने उसे कब निद्रामग्न कर दिया पता न चला।

(२)

वह जब जागी उसने अपने को एक सजे धजे कमरे में कोमल गद्दे वाले पलंग पर लेटे पाया। पास बैठी एक वृद्धा पंखा झल रही थी। उसे जागे देख, वह मीठे स्वर से आशीष देने लगी – अल्लामियां तुझे तन्दरुस्ती दे। दूध पूत से फले-फूले।

कहां आ पहुंची मैं ! कौन ले आया मुझे यहां ! वह विस्मित होकर सोचने लगी। उसे साहस नहीं हुआ वह वृद्धा से कुछ पूछे। उसने कुछ पूछा भी नहीं किसी के। केवल मीठे वचन, मीठी बातें, अत्यधिक आदर, यही सब उसे अपने चारों तरफ दिखाई पड़ने लगा। उसने देखा, उसे प्रसन्न करने मे कोई भी कसर शेष नहीं रखी जा रही। तब भी उससे यह छिपा न रहा कि वह अपने ताजेवाला में नहीं, जम्मू रियासत के एक मुस्लिम अधिकारी के घर में है। उसकी अतिथि। उसे यह भी पता चल गया कि उस युवक अधिकारी की पहली पत्नि का देहान्त हुए थोड़े ही दिन हुए हैं और अब वह दूसरी पत्नि की प्रतीक्षा में है। सटपटा गई वह और उस मीठे फन्दे से भाग निकलने का सुयोग ढूंढने लगी। मगर पहरा इतना सख्त था और व्यवहार इतना विनम्र था कि उससे न विरोध किया जा रहा था, न भागा ही जा रहा था। वह सोचने लगी, अब वह ताजेवाला में लौट कर करेगी भी क्या ? लोग न जाने उसे किस दृष्टि से देखें। तो अब जो भाग्य में है वही होने दो।

दस बारह दिन में ही उसका रुख बदल गया [और] मुस्लिम अधिकारी ने उसे दया से नसीबन बनाकर मुस्लि[म] विधि से अपनी बीवी बना लिया।

(३)

उस दिन पं० रविशंकर का दाह संस्कार कर [लो]ग जब अपने घर लौटे सभी के मन बहुत दुःखी थे। [औ]र यह सोचकर तो और भी दुखी थे कि उनकी पत्नि द[या] भरी जवानी में ही उनके साथ सती हो गई। वह कि[स] प्रकार चिता में कूदी होगी, किस प्रकार उसके जीवित शरी[र] को आग ने दग्ध किया होगा, जलते समय उसने कित[नी] भयकर पीड़ा पाई होगी, इन सभी बातों को सोच कर [वे] इतने व्याकुल होते रहे कि उस रात किसी को नींद न[हीं] आई। अगले दिन बड़े सवेरे ही लोग श्मशान में जा पहुं[चे] और वहां जब उन्होंने दया के जूते देखे और चिता [के] चारों तरफ परिक्रमा के पदचिह्न देखे, वे इसी निर्णय प[र] पहुंचे कि दया ने चिता में कूद कर अवश्य ही आत्मदा[ह] कर लिया है।

कुछ तो पं० रविशंकर की प्रतिष्ठा के कारण और कुछ दया के आत्मदाह के कारण, ताजेवाला व आसपास [के] गांव वाले लोगों में दया के प्रति अगाधश्रद्धा भर गई। [स]ब ने एक मत हो निर्णय किया कि दया की स्मृति में, ज[हां] वह सती हुई है, एक मन्दिर बनवाया जाए और उसकी देखरेख के लिए एक महन्त भी नियुक्त कर दिया जाये। थोड़े ही समय में मन्दिर का निर्माण हो गया और महन्[त] भी आ गए। यद्यपि महन्त सतराम अधिक पढ़े लिखे न[हीं] मगर लोक-व्यवहार में बड़े निष्णात थे। थोड़े ही समय [में] उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा जमा ली और धागे तावीज देने का धन्धा भी शुरु कर दिया। साथ ही यह भी प्रसिद्ध क[र] दिया कि सतीमाता में दिव्य शक्ति है। वह अपने आस्था[वान] भक्तों की मनोकामनापूर्ण करती है। बात दूर-दूर त[क] फैल गई और श्रद्धालु लोग अपनी मनोकामनायें लेकर आने लगे। चढ़ावे चढ़ने लगे। धन बरसने लगा। यात्रियों के ठहरने के लिए कमरे बन गए। बाग बगीचा लग गए और जिस दिन दया सती हुई थी उस दिन प्रति वर्ष भंडारा भी होने लगा।

बात दया के कानों में भी पहुंची। वह पछताने लगी क्यों सचमुच ही वह उस दिन चिता में न कूद पड़ी। [...]

लोगों की श्रद्धा सार्थक तो होती। मन्दिर का निर्माण भी सफल होता। मगर अब तो तीर छूट चुका था। वह पूरी तरह दल-दल में फंस चुकी थी और एक पुत्र की मां भी बन चुकी थी। उसके मुस्लिम पति के लिए यह पुत्र देवता का महान् वरदान था। उसकी माता की तो खुशी का ठिकाना न था। मुस्लिम होते हुए भी उसने हिन्दू सती माता से मांग करने में संकोच नहीं किया। और अब जब उसकी मनोकामना पूर्ण हो गई उसने सती माता के मन्दिर पर जाकर एक हजार रुपये का प्रसाद चढ़ाने का निश्चय किया। मन्दिर पर जाने से पहले सारे शहर में मिठाई बांटी गई और अगले ही दिन उसने अपने पौत्र सहित मन्दिर जाने की घोषणा कर दी।

इधर नसीवन के हृदय में सांप लोटने लगा। उस ने जाने से बचने के लिए बहुत बहाने बनाये। पर उसकी किसी ने नहीं सुनी। इस अप्रिय प्रस्ताव से उसे इतना धक्का लगा कि एक ही रात में वह पागलों का सा व्यवहार करने लगी। प्रभात होते ही जब उसके मुस्लिम पति की कार दरवाजे पर आ लगी उसने उस पर बैठने से साफ इन्कार कर दिया। तब एक प्रकार से उसे बलात् ही कार पर बैठा दिया गया। और कार सती माताके मन्दिर की तरफ दौड़ उठी। रास्ते में जब नहर का पुल आया, न जाने नसीवन में इतनी शक्ति कहां से आगई कि वह दौड़ती कार का अचानक ही दरवाजा खोल कर नहर में कूद पड़ी। जो काम उसने उस दिन अपने पति की चिता में नहीं किया था आज इस नहर में कूद कर प्रायश्चित्त के तौर पर उसे पूरा कर दिया। कार रोक ली गई और नसीवन का पति तथा सास भागते हुए नहर के किनारे पर जा पहुंचे। उन्होंने देखा नसीवन की लाश उनसे पचासों गज दूर नहर में वही जा रही है!

ताजेवाला का सती माता का मन्दिर आज भी उसी शान से खड़ा है। आस्थावान आज भी माता पर फूल-मालायें, प्रसाद व झण्डे चढ़ाते हैं और यह गाते हुए सुने जाते हैं —

झण्डे झूल दे पवन ते तेरे सती माये।
भुल चुक माफ करीं तेरे आये॥

——०——

- प्रहारो की अपेक्षा वाणी से सन्तुष्ट हो जाना अधिक अच्छा है।
- यदि सब विदूषक सफेद टोपी पहनने लगे तो हम सब हंसों का समुदाय दीख पड़ेंगे।
- कहते हैं कि आत्मप्रशंसा कभी भी सिफारिश का काम नहीं कर सकती।
- आलसी मनुष्य को पकड़ने में शैतान को अधिक श्रम नहीं करना पडता।
- सुदृढ़ हृदय दुर्भाग्य को कुचल डालता है।

वानप्रस्थ

ले० सत्यव्रत राजेश गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

मैं अपने जैसा सौभाग्यशाली किसी को नहीं समझता था, यद्यपि मैंने कभी पिता के दर्शन नहीं किये मेरे संसार में आकर आंख खोलने से पहले ही मेरे पिता ने सदा के लिये आंखे बन्द कर ली थी। मैं जन्म काल से ही विधवा का पुत्र हुआ था। पिता जी मेरे जन्म से तीन मास पूर्व ही इस लोक की यात्रा पूर्ण कर परलोक को प्रयाण कर गये थे। फिर भी मेरी माता ने कभी मुझे पिता का अभाव खटकने न दिया। घर में पैतृक सम्पत्ति बहुत थी पिता जी भी अपने जीवन में बहुत कुछ अर्जित कर छोड़ गए थे। माता जी का स्वभाव भी बहुत मधुर था। मैं बड़े लाड़ चावसे पला। अभाव नाम की कोई वस्तु मैंने अपने जीवनमें नहीं देखी। बिन मांगे सब कुछ मिला और बिना किए सब कुछ पाया।

पढ़ने में मेरी विशेष रुचि थी, अध्यापक जो भी पढ़ाते वह सब मुझे स्मरण हो जाता। अध्ययन मेरे लिए प्रिय कार्य था। मैं कक्षा में सदैव प्रथम रहता तथा मेरी प्रथम श्रेणी आती गुरुजनों तथा विद्यालय के लिये मैं गौरव की वस्तु था। द्वादश श्रेणी के अनन्तर जब माँ मुझे अपने से दूर इंजिनियरिंग में पढ़ने भेजने लगी तो उनकी आंखे छल छला आई, उनके अवरुद्ध कण्ठ से ऐसा प्रतीत होता था कि दुःख के महा सागर को अन्तर में समेट कर भी वह मेरे भविष्य के प्रति जागरूक थी। पीछे पता चला कि उन्होंने तीन दिन तक कुछ नहीं खाया तथा रात दिन रोती रहीं। यदि गुरु जी उन्हें न समझाते तो शायद वह पागल हो जातीं। मैं उनका सब कुछ था वे मेरे लिए ही जीती थी, प्रातः से लेकर सायं काल तक उन्हें मेरी ही सुखसुविधाएं जुटाने का कार्य था। मैंने देखा कि जब १५ दिन बाद मैं कालिज से घर आयां तो वे शरीर से पहचानी नहीं जाती थीं। वर्षों का रोगी भी ऐसा कमजोर नहीं होता फिर भी वे मुझे देखकर मुस्कराई थी तथा उनके अन्दर से मेरे उज्ज्वल भविष्य के लिये आशीर्वाद की धाराएं सी प्रवाहित होती थीं।

मेरी अवस्था भी विचित्र थी। मुझे भी कालेज में जब एकान्त मिलता तब मैं जी भर कर रोता। किन्तु मातृ स्नेह का स्रोत इतना विशाल था कि वह मानों सूखने में ही नहीं आता था माता जीं तथा गुरु जी ने एक यह बुद्धिमत्ता की थीं कि मेरी ही कक्षा के जिस विद्यार्थी ने मेरे साथ प्रवेश लिया था मुझे उसी के साथ कमरे में रखा दिया था तथा उसे मेरा सब प्रकार से ध्यान रखने को कह दिया था। वह मुझे प्रसन्न रखने का भरसक प्रयत्न करता फिर भी माता जी से पृथक् होने का दुःख मेरे हृदय से सर्वथा समाप्त हो गया था। यह कहा नहीं जा सकता मैं प्रतिदिन सोचता था कि कब मेरे पांच वर्ष का पाठ्यक्रम समाप्त हो और कब मैं माता जी के पास रहा करूं।

समय का पंछी लम्बे पांच वर्षों को पार कर गया। मैं प्रान्त भर में सर्वाधिक अंक ले कर उत्तीर्ण हुआ तथा प्रभु कृपा एवं माता जी आदि के आशीर्वाद से एक मास बाद इंजिनियर के पद पर नियुक्त होगया माताजी मेरे ही साथ रहती थीं। अब उनका ध्यान मेरे विवाह पर केन्द्रित था। रात दिन वही बात, चाहें मैं हूँ चाहे कोई मिलने वाला, वे मेरे ही विवाह की चर्चा रखती लोगों को भी जब ज्ञात हुआ कि उनकी इच्छा अब मेरे विवाह की है तो आने वालों का तांता लग गया। कन्याओं के गुणों का बखान सुनते सुनते मेरे भी कान पक गए। ऐसा एक भी व्यक्ति न था जिसकी चर्चा के अनुसार उसकी कन्या सर्वगुण सम्पन्न न हो। माता जी उच्च एवं धनी कुल को वरीयता देती थीं किन्तु मैं ऐसी सहचरी चाहता था जो मेरी माताजी का मेरे से भी अधिक ध्यानरखे। प्रभु कृपा से एक सामान्य परिवार की गुरुकुल शिक्षा प्राप्त संस्कृता एम० ए० कन्या से मैंने विवाह किया। उसके सम्मुख भी मैंने दहेज की शर्त न रख कर यही शर्त रखी कि वह मेरी माताजी की सेवा में त्रुटि न करे।

पत्नी ऐसी ही थी। हम दोनों को याद नहीं कि हमने माता जी से पूर्व कभी खाना खाया हो। मैं तथा मेरी पत्नी दोनों की ही वे आराध्यदेव थी। माताजी हमें झोलियां भर भर कर आशीर्वाद देती तथा अपने को परम सौभाग्यशा-

लिनी समझतीं, वे प्रभु को कोटिशः धन्यवाद देतीं तथा अपने जैसी भाग्य वाली सब को करने की कामना करतीं हम भी माता जी को प्रसन्न देख कर फूले न समाते।

ईशानुकम्पा से सुशीला तीन बच्चों की मां बन चुकी है, दो पुत्री तथा एक पुत्र। राजू आठ वर्ष का हो चुका है तथा अब वह चौथी कक्षा में पढ़ रहा है, माता जी कुछ अस्वस्थ हो गई थीं। उनका स्वभाव भी पहले जैसा नहीं रहा कुछ कृशता के कारण तथा कुछ बच्चों के स्वभाव के कारण। बच्चे अपने मन के होते हैं वे किसी की परवाह नहीं करते। अनेक बार माता जी की आज्ञा की भी अवहेलना कर देते है माता जी को कभी कभी उन पर क्रोध भी आ जाता है एक बार तो उन्होंने सावित्री पर भी बच्चों के बहकाने का आरोप लगाया सावित्री मौन रहीं किन्तु मैं देखता था कि अब उनकी माता जी के प्रति वह श्रद्धा नहीं रही बच्चे मां का हृदय होते हैं, उनके प्रति किए व्यवहार का माता पर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य पड़ता है। माता जी अब भी उसी पुराने व्यवहार की अपेक्षा करती थी, जब कि उसमें न्यूनता आना स्वाभाविक था। सावित्री का ध्यान भी बच्चों की ओर अधिक रहता था माता जी की ओर कम। यह भी माताजी को असह्य था। मन के भावों का बाह्य वातावरण पर भी प्रभाव पड़ता है। अब मैं अपने परिवार में एक खिंचाव सा अनुभव करता था। मेरी स्वयं की माता जी के प्रति वही श्रद्धा थी किन्तु अब उन के मुख पर वह प्रसन्नता नहीं मिलती थी कभी कभी तो वह अपने को भाग्यहीन भी कहने लगती थी।

एक दिन राजू किसी बात पर दादी से लड़ बैठा। उनकी प्रत्येक बात का उसने विरोधात्मक उत्तर दिया। माता जी के लिये यह व्यवहार नया था वे इसकी आदि न थीं वे दिन भर रोती रहीं उन्होंने भोजन न किया सावित्री भी भूखी रही जब मैं सायंकाल वापिस आया और मुझे यह सब पता चला तो मुझे राजू पर क्रोध आया, मैंने उसे बुला कर धमकाया। मेरे परिवार में यह प्रथम ही अवसर था जब दो पीढ़ियों का यह टकराव हुआ। राजू भी अपनी जिद पर अड़ा हुआ था उसने भी अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में आंसू भर कहा कि मैं जो कुछ करता हूँ वह अम्मा जी भी तो देखती हैं, उन्हें तो बुरा नहीं लगता फिर माता जी को क्यों बुरा लगता है। मेरे पास उसका कोई उत्तर न था फिर मैंने उसके गाल पर चपत मार ही दिया। कपोल रक्त वर्ण हो उठे तथा नेत्र सावन के बादल, मुझे स्वयं नहीं सूझता था कि मैंने यह अच्छा किया या बुरा, किन्तु मेरा मन मुझे बार बार धिक्कारता था। राजू को जब माता जी छुड़ाने आयी थी उस समय मेरे नेत्रों में भी श्रद्धा के स्थान पर अश्रद्धा का भाव था। माता जी ने कहा था "बेटा भूल बड़ों से भी होती है आज के बाद मैं किसी को कुछ न कहूंगी, आज तक मैं इसे गृहस्थी समझती थी किन्तु आज पता चला कि मेरा अब कुछ नहीं रह गया है।"

माता जी के इन वचनों तथा रोते राजू की आकृति मेरे अन्तःपटल पर अमिट सी हो गई थी मैंने दुःख के कारण दो दिन तक भोजन न किया। माता जी तथा सावित्री ने भी उपवास रखा, सावित्री तथा माता जी के बहुत समझाने बुझाने पर मैंने भोजन तो किया किन्तु मन हर समय अशान्त रहता था। न काम में मन लगता न घर में।

मेरे मित्र अशोक से मेरी यह स्थिति ओझल न रही, उन्होंने कारण पूछा तो मैंने मानसिक अशान्ति बतलाई उसने मुझे अपने साथ आर्य समाज में चलने को कहा। धर्म की ओर कभी ध्यान न देने वाला मैं भी उसके साथ आर्य समाज चलने को सहमत हो गया।

रविवार को जब हम दोनों मित्र आर्यसमाज पहुंचे तो वहां यज्ञ हो रहा था। मेरे लिए यह प्रथम अवसर था। सब के मुख पर शान्ति का साम्राज्य था तथा सब पवित्र वेद के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। मुझे लगा कि मैं स्वर्ग में आ गया हूं शोक की काली रेखा यहां अन्तः करण को स्पर्श भी नहीं कर सकती। यज्ञ के उपरान्त सन्ध्या हुई, भाषण मुनीश्वरानन्द जी सरस्वती का था। वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था का चित्रण करते हुए उन्होंने एक बात बहुत काम की कही उनका कथन था कि परिवार में दो पीढ़ियां ही रहनी चाहिए तीसरी पीढी हो जाने पर टकराव उत्पन्न होगा इसलिए पुत्र का पुत्र होने पर गृहस्थ को घर छोड़ देना चाहिए और वानप्रस्थ लेकर आत्मोत्थान में लगना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम को स्वामी दयानन्द ने सब

गृहस्थों के लिए अनिवार्य बतलाया है। यह पीढ़ी सघर्ष को बचाने का वैदिक उपाय है आज इसी के अभाव में घर-घर में संघर्ष हैं तथा पवित्र गृहस्थ नरक बन रहे हैं।

व्याख्यान के पश्चात् मैं पूज्य स्वामी जी से मिला तथा उन्हें बतलाया कि आज के जीवन सन्दर्भ में क्या कहीं ऐसा स्थान है जहां व्यक्ति घर छोड़कर आध्यात्मिक जीवन बिता सके उन्होंने आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर का नाम बतलाया।

अब मेरे सम्मुख यह प्रश्न था कि माता जी को वहां कैसे लाया जाय। बहुत सोचने के पश्चात् मैंने माता जी को वहां का वातावरण दिखाने का निश्चय किया मैंने सपरिवार हरिद्वार जाने की योजना बनाई अशोक से पूछ कर मैंने आर्य वानप्रस्थाश्रम के मन्त्री जी से एक सप्ताह वहां रहने की अनुमति प्राप्त कर ली बस से हम सायं ५ बजे आश्रम में पहुंचे। पीत-वसनधारी नर-नारियों को देख कर प्राचीन तपोवन का स्मरण हो आया प्रातः मध्याह्नोत्तर यज्ञ सत्संग तथा रात्रि में ईश्वर भक्ति के रस भरे भजनों को सुन कर माता जी का मन इतना रमा कि वे हमारे साथ हरिद्वार तथा ऋषिकेश आदि भी नहीं गईं पांचवे दिन मुझ से बोली कि "नरेन्द्र मैं घर जाना नहीं चाहती अपितु यहीं रहना चाहती हूँ।" उनकी बात सुन कर सावित्री की आंखों में जल भर आया। बच्चे भी दादी के अभाव को याद कर रोने लगे। वर्षों से चौड़ी होती हुई परिवार की खाई पट गई तथा आज सब सच्चे हृदय से एक दूसरे के समीप आ गए। जब हम माता जी से पृथक होने लगे तो सभी की आंखें नम थी। अब हमारे बच्चे दादी के पत्र की प्रतीक्षा करते रहते हैं तथा सारा परिवार सुख शान्ति के झूले में झूल रहा है। —०—

- जिसकी सावधानियां दूरगामी नहीं होतीं विपत्तियां उसकी परिक्रमा करती रहती हैं।
- सोते हुये दुर्भाग्य के पास बुद्धिमान दबे कदम पैर रखते हैं।
- निठल्ले मत बनो। तुम्हें कभी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।
- जब तक विवाहित नहीं हो जाता अधूरा रहता है। मगर विवाहित होते ही अस्तित्व खो देता है।
- मधु छत्ते से चिपटी रहने वाली मक्खी कभी मधु संग्रह नहीं कर सकती।

एक दृष्टि इधर भी !

० ० ०

० अनेक बार चालीस वर्ष का वृद्ध बनने की अपेक्षा सत्तर वर्ष का युवक बनना कहीं अधिक आह्लाद जनक होता है ।

—ओ० डब्ल्यू० होम्ज

० यौवन जीवन का समय नहीं होता, एक मानसिक अवस्था होती है ।

—कश्चित् दार्शनिकः

० यदि आप वार्धक्य की तरफ अग्रसर नहीं होना चाहते, तो आपको वार्धक्य का आभास दिलाने वाली बातों को सोचना और करना त्याग देना चाहिए ।

० जब तक मन स्वीकृति नहीं देता, शरीर वृद्ध नहीं होता । तुम्हें अपने आपको वृद्ध पुरुष या बृद्धास्त्री मानना छोड़ देना चाहिए ।

—आरिसन स्वेट मार्डेन

० अनेक ऐसे आदर्श व्यक्ति हैं, जो अपने से आधी आयु वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अपने आप को अधिक युवक मानते हैं । ऐसा लगता है जैसे उन्होंने यौवन के किसी ऐसे स्रोत की खोज कर ली हो जो उन की मानसिक स्थिति को बारहों मास चुस्त एवं पुष्ट बनाये रखता हो ।

- कर्मशील, स्नेहमय, दयायुक्त, सहानुभूतिपूर्ण, सहायक तथा चित्ताकर्षक बने रहना ये यौवन के शाश्वत स्तम्भ हैं । ये कभी वृद्ध नहीं होते । अत एव यदि तुम उनसे मित्रता कर लो तो ये तुम्हारे लिये उत्थापक यन्त्र का काम करेंगे ।

- अपने मनमें ये क्षुद्र विचार कदापि न आने दो कि तुम्हारा ह्रास हो रहा है अथवा तुम्हारी कार्यक्षमतायें निर्बल पड़ रही हैं । कभी मत सोचो कि तुममें उतनी स्फूर्ति नहीं रही जितनी पहले हुआ करती थी । यह भी कदापि मत सोचो कि तुम्हारे चेतना स्रोत शुष्क होते जा रहे हैं । मैं वृद्ध हो गया हूँ यह सोचने वाला शीघ्र ही वृद्धत्व को प्राप्त हो जाता है । मैं युवक हूं यह सोचने वाला युवक बना रहता है ।

—आरिसन स्वेट मार्डेन
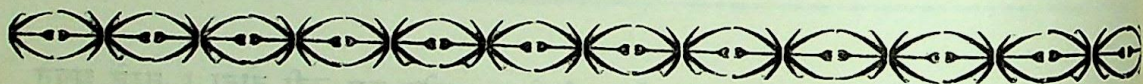
दयानन्द वचनामृत

"यह तो पशु-पक्षियों का भी स्वभाव है कि जब कोई उनके घर आदि को छीन लेने की इच्छा करता है तब यथाशक्ति युद्ध करते अर्थात् लड़ते ही हैं ।"

"मुक्ति को प्राप्त हुये जीव वहां सर्वदा नहीं रहते, किन्तु जितना ब्राह्म कल्प का परिमाण है उतने समय तक ब्रह्म में वास कर आनन्द भोग के फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं ।"

—'संस्कृत वाक्य प्रबोध' से
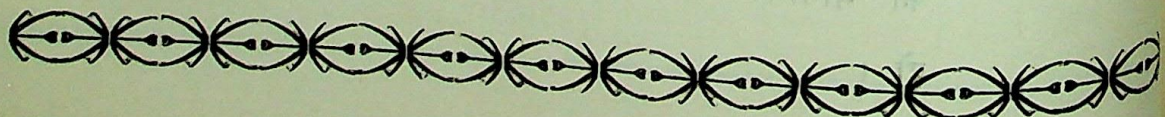
युग आ गया है !
अब आर्यसमाज मन्दिरों को ध्यान और आध्यात्मिक शान्ति का केन्द्र बनाना पड़ेगा

लेखक — पण्डित आनन्द प्रिय, प्रधान गुजरात प्रान्तीय आर्यप्रतिनिधि सभा, बड़ोदा

महर्षि दयानन्द जी ने आर्यसमाज की स्थापना कर वैदिक-पद्धति के अनुसार आर्यसमाज मन्दिरों में संन्ध्या-हवन होते रहें और फिर से भारत में ईश्वर की सच्ची पूजा और भक्ति-युग का प्रादुर्भाव हो जाये ऐसी धारणा की थी। इस हेतु प्रत्येक आर्यसमाज मन्दिर में यज्ञशालायें बन गई और बड़े प्रेम से सन्ध्या-हवन होता है। वैदिक सिद्धान्तों पर विद्वानों के प्रवचन होते हैं। परन्तु वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट है कि हमारे आर्यसमाज मन्दिर शुष्क तर्कवाद के स्थान बन रहे हैं और भक्ति-पूर्ण वातावरण का लगभग अभाव-सा ही है। आर्य सदस्यों के कुटुम्बी-जनों को हम आकर्षित नहीं कर पाये। सदस्य भी भाषण रसिक मात्र है। आध्यात्म शान्ति के केन्द्र हमारे आर्यसमाज मन्दिर नहीं बन पाये हैं। हमारे सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ बुद्धिगम्य होने पर भी हम जनता को आर्कषित न कर पाये। आर्यसमाज का द्वार तब ही खट-खटाया जाता है जब कोई सामाजिक समस्या का निराकरण कर रहा होता है। प्राय: कई आर्यसमाज मन्दिर विवाह कराने के मन्दिर का रूप धारण कर रहे हैं।

वास्तव में आर्यसमाज मन्दिर आध्यात्मिक शान्ति के केन्द्र होने चाहिएँ। जहां एक व्यक्ति सच्ची साधना द्वारा आत्मिक शान्ति प्राप्त कर सके, जहाँ प्रभु के सच्चे ध्यान का शिक्षण प्राप्त होता हो। अभी-अभी विश्व में महेश योगी Transiculation Meditation अर्थात् उच्चतम ध्यान योग के केन्द्र खोल कर सारे विश्व को आर्कर्षित किया है। उनके अनेक केन्द्र विश्व के प्रमुख नगरों में खुले हैं। जहाँ ध्यान योग का विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति पर हो रहा है। और उनके केन्द्र यह सिद्ध कर रहे हैं कि ध्यान से किस प्रकार मुमुक्षुओं को शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक लाभ हुआ।

वर्तमान में हमारी समाजों में जो सन्ध्या होती है वास्तव में वह सन्ध्या की ड्रिल है। इससे ध्यान प्राप्त नहीं होता और ना ही तोतापाठ करके बोले हुए मन्त्रों से भक्तजनों के हृदयों में भक्तिभाव उत्पन्न होते हैं। आर्य-शिक्षण-संस्थाओं में भी संध्या-हवन की ड्रिल कराई जाती है। यह निश्चित है कि अब केवल सामाजिक सुधार की बातें करके और राजनैतिक दलवन्दियों के भाषणों से आर्य-समाज के प्रति आकर्षण नहीं हो सकेगा। आवश्यकता यह है कि हमारे आर्यसमाज मंदिर और कांगड़ी जैसे गुरुकुल आध्यात्मिक शान्ति के केन्द्र हों, जहां प्रत्येक व्यक्ति आत्मिक शान्ति प्राप्त कर सके।

हमारे जूलूस में 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के नारे लगाये जाते हैं पर आज स्वामी प्रभुपाद जी ने, जो हरे राम, हरे कृष्ण आन्दोलन के प्रवर्तक हैं अमरीका के लोगों को चैतन्य महाप्रभु के समान कृष्ण भक्त बना दिया और आज विदेशों में अस्सी से ऊपर मन्दिर हैं और पांच हजार युवक-युवतियां ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके इनका काम कर रहे हैं । उन्होंने अमरीका में गुरुकुल भी खोले हैं । जहां अमरीकी बच्चे संस्कृत सीखते हैं और मन्त्र पाठ भी करते हैं ।

अब हमें हमारी संध्या को सच्ची संध्या बनाना होगा जिससे एक व्यक्ति को ध्यान योग की सिद्धियों का दर्शन हो । इसलिए हमें सन्ध्या का महत्त्व बतलाना होगा कि संध्या मनोवांछित आनन्द और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के लिए की जाती है । मनोवांछित आनन्द प्राप्त करने के लिए सबल और पवित्र बनना होगा । फिर प्राणायाम द्वारा मन को स्थिर करना होगा । फिर ईश्वर के नियमों को समझ उनका पालन करना होगा । उनका भंगमात्र ही पाप है, अघमर्षण मन्त्र के इस भाव को समझना होगा । इतनी तैयारी के बाद ऊपर-नीचे चारों दिशाओं में ईश्वर का दर्शन मन द्वारा करना होगा । और फिर उसकी महिमा को समझ उसे मन में स्थिर करके सौ वर्ष तक देखते सुनते, बोलते अदीन होकर जीने का यत्न करना होगा । उस प्रभु का ध्यान होने पर उसकी कृपा के लिए धन्यवाद देना होगा । संध्या योग के लिए शिविर लगा कर लोगों को संध्या के पूर्व ध्यान लगाने के लिए आसन और प्राणायाम का शिक्षण देना होगा । इसी प्रकार यज्ञ के महत्त्व को, जिस प्रकार 'गायत्री-परिवार' की प्रवृत्ति ने गायत्री महामन्त्र को महत्त्व दिया है, हमें समाज में देवपूजा संगति-करण तथा दान का महत्त्व समझा कर 'यज्ञ-परिवार' बनाने होगे । अर्थात् हमारे मंदिरों में लोग संध्या-यज्ञ योग से दीक्षित हो कर शान्ति प्राप्ति करेंगे ।

इस मार्ग पर चलने से आर्यसमाज मंदिर न चुनाव के अखाड़े रहेंगे न क्लब' के रूप में एक डिबेटिंग सोसाइटी रहेंगे । यदि आर्यसमाज मंदिर केवल तोतापाठ के संध्या-हवन के स्थान रहेंगे अथवा कोई पाठशाला वा स्कूल के रूप में रहेंगे तो आर्यसमाज का आकर्षण नहीं रहेगा । योग और आध्यात्मवाद के पिपासुओं को महेश योगी और इसी प्रकार के व्यक्ति जो योग द्वारा मानसिक शान्ति और ध्यान का मार्ग बतलायेंगे वहां चले जायेंगे ।

क्या हम आत्म-परीक्षण कर हमारे आर्यसमाज मंदिरों को ध्यान योग के केन्द्र बनायेंगे ? और वर्तमान के आर्यसमाज मंदिरों को आनन्द और शांति प्राप्ति के स्थान बना सकेंगे ?

--०--

कौन चैन की नींद नहीं सो सकते ?

लेखक– प्रो० रामप्रसाद, रीडर एवं अध्यक्ष, वेद विभाग गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रो० रामप्रसाद

अपने इस लेख में हम विदुर जी के अनुसार प्रजागर उन्निद्रता-नीन्द न आने के कारण से जो पीड़ित लोग हैं, उन पर विचार करते हुए यथाशक्ति उपाय सुझाने का भी प्रयास करेंगे जिससे कि ऐसे लोग चैन की नींद सो सकें। विदुर जी ने यद्यपि यहां उन्निद्रता से पीड़ित सभी प्रकार के लोगों को नहीं गिनाया है, हां प्रसंगानुकूल जो आवश्यक समझा उसकी चर्चा कर दी है।

वैशम्पायन जी कहते हैं, धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा कि "मैं विदुर जी से मिलना चाहता हूँ। अतः शीघ्र ही उन्हें यहां ले आओ।',

'द्वारपाल ने विदुर जी को बुला लिया। विदुर जी के आने पर धृतराष्ट्र बोले—हे विदुर ! सञ्जय आ गया है, और मेरी ही निन्दा करके मुझे बुरा-भला कहकर चला गया है। कल सभा के बीच में युधिष्ठिर की बात बतलायेगा। उस कुरुवीर युधिष्ठर की बात मैं आज न जान सका, यह बात मेरे अङ्गों को जला रही है और उसी ने मुझे उन्निद्र-उनीन्दा कर दिया है।

²जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि।
तद्ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थ कुशलो ह्यसि ॥

जागते हुए तथा (चिन्ता से) जलते हुए एवं बिस्तर पर करवटें बदलते हुए मनुष्य का जो भी कल्याण समझो वह मुझे बतलाओ। क्योंकि हे तात ! तुम हम सब में धर्म-अर्थ (राजनीति) के विषय में कुशल हो।

विदुर जी बोले—

³अभियुक्त बलवता दुर्बलं हीन साधनम्।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागरम् ॥
कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।
कच्चिच्च परवित्तेषु गृद्धयन्न परितप्यसे ॥

हे राजन् ! बलवान् से दबाए हुए, दुर्बल, साधनहीन, धन जिसका हर लिया गया हो या नष्ट हो गया हो ऐसे हृतस्व, कामी तथा चोर को उन्निद्रता आ घेरती है। कहीं इन महान् दोषों के शिकार तो आप नहीं हो गए हैं, या कहीं दूसरों के धन वैभवों के लोभ के वशीभूत होकर तो आप सन्तप्त नहीं हो रहे हैं !

यहां जो उन्निद्रता के ६ कारण बताए गए हैं वे ही इस लेख का अभीष्ट विषय हैं। अतः प्रकृत प्रसंग को छोड़ कर उन्हीं पर विचार करना आरम्भ करते हैं।

१ अभियुक्तं बलवता –

जो किसी बलवान् से दबाया हुआ हो उसे चिन्ता के कारण चैन की नीन्द नहीं आती है। और इस प्रकार वह रात भर करवटें बदलता हुआ बेचैन हो रहा होता है।

ऐसी परिस्थिति में बजाय इसके कि वह मनुष्य चिन्ता में मग्न होकर अपनी नींद हराम करे और अपने स्वास्थ्य की निरन्तर हानि करे, उसे चाहिए कि वह अपने को सबल बनाए – शारीरिक दृष्टि से, मानसिक दृष्टि से तथा आत्मिक दृष्टि से। यदि ऐसा सम्भव न हो सके तो उसे

१ सञ्जयो विदुर प्राप्तो गर्हयित्वा च मां गतः।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥
तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम् ॥
विदुर नीति १.९-१०

२ विदुरनीति १.११

३ वि० नी० १.१३, १.१४

उस समय किसी धर्मात्मा, बुद्धिमान्, बलवान् एवं किसी बड़े व्यक्ति का आश्रय या सहयोग ले लेना चाहिए अथवा यथा शक्ति पुरुषार्थ कर प्रभु पर सब छोड़ देना चाहिए। ऐसा कर लेने पर उसका आत्मबल, मनोबल तथा शारीरिकबल बढ़ जाएगा और उसकी यह चिन्ता किसी न किसी प्रकार मिट जायेगी।

२ दुर्बलम् –

जो मनुष्य शरीर से दुर्बल हों, कमजोर हों, खाया-पिया पचता न हो, पेट खराब रहता हो, अजीर्ण रहता हो, वायु प्रधान शरीर हो, पेट दर्द रहता हो आदि आदि, तो ऐसे दुर्बल व्यक्ति को जैसे अन्य अनेक व्याधियां आ-घेरती हैं, वैसे उन्निद्रता भी आ घेरती है। अतः ऐसे व्यक्ति को चाहिए कि औषधोपचार से, दवा और परहेज से, भ्रमण और व्यायाम से, अनुकूल भोजन आच्छादन से, स्वाध्याय और सत्संग से, अनुकूल चिन्तन और मनन से तथा ऋत, मित और हितभुक् बन कर अपने को सभी दृष्टि से स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करते हुए उन्निद्रता के रोग से अपने को मुक्त कर सुख से सोवे।

३ हीनसाधनम् –

जो व्यक्ति यथोचित साधनों से हीन हो उसे भी प्रजागर उन्निद्रता आ घेरती है। जैसे शीत ऋतु में शीत के निवारण के लिए अनुकूल वस्त्र कम्बल, रजाई आदि का न होना, बुभुक्षा-भूख के निवारण के लिए अन्नादि खाद्य पदार्थों का न होना, सन्तान के पालन पोषण केलिए धन, अन्न, वस्त्रादि का अभाव, शिक्षा-दीक्षा स्वास्थ्य आदि केलिए नानाविध साधनों का अभाव, यदि कोई रुग्ण हो गया हो तो उसके औषधोपचार के लिए अर्थ का अभाव, यदि कोई पुत्री युवती हो गई हो तो उसके विवाह आदि के लिए धन आदि समुचित पदार्थों का अभाव, इत्यादि भी मनुष्य को चिन्ताओं में डाल कर उन्निद्रता का शिकार बना देते हैं।

ऐसी अवस्था में निरन्तर चिन्ता मग्न रह कर अपने सुख चैन को समाप्त कर करवटें बदलते हुए अपने स्वास्थ्य को नष्ट करने की अपेक्षा अच्छा यही होगा कि वह व्यक्ति अपनी बुद्धि से कार्य लेकर शक्ति भर पुरुषार्थ करके धन आदि साधनों का उपार्जन करे। फिर जैसे भी उन संगृह किए हुए साधनों से सम्भव हो सके सबकी बुद्धि पूर्वक यथाशक्ति व्यवस्था करे, तथा उसी में ही सन्तोष का अनुभव करके प्रभु का धन्यवाद करे।

कई बार ऐसा भी देखा जाता है कि मनुष्य वास्तव में तो यथोचित साधनों से हीन नहीं होता परन्तु वह फिर भी अपने समीपवर्ती लोगों को नाना प्रकार के ठाठबाठ के साधनों या सुखसुविधाओं से सम्पन्न देख कर अपने आपको उन साधनों और सुख सुविधाओं से हीन अनुभव करता रहता है। जैसे कोई सोचता है कि अमुक की अपनी कोठी है, उस के पास कार है, टेलीवीजन है, रेडियो है ट्रांजिस्टर है, टेपरिकार्ड है, फ्रिज है, कपड़े धोने की मशीन है, गर्मियों में कमरा ठण्डा करने की मशीन है इत्यादि। अब चूंकि इन साधनों के अभाव में वह समाज में अपने आपको हीन अनुभव करता है, तो उसे 'कैसे इन सब की पूर्ति हो' यह चिन्ता होने लगती है। चिन्ता के परिणाम स्वरूप उसकी शांति और चैन समाप्त हो जाता है, तब उस बेचैनी में उसकी नींद विदा हो जाती है और वह अशांत मन हुआ-हुआ रात भर करवटें बदलता रहता है। यदि कहीं सौभाग्य से थोड़ी बहुत नींद थकान के कारण आ भी गई तो उसे वह अपना बड़ा सौभाग्य समझता है परन्तु जागने पर उसकी मनःस्थिति फिर वैसी ही हो जाती है। ऐसी स्थिति में उसे चाहिए कि वह विचार करे कि मेरी तरह इस संसार में करोड़ों व्यक्ति ऐसे हैं जिन के पास न कोठियां हैं, न कारें हैं, न स्कूटर हैं, न टेलीवीजन हैं न रेडियो हैं, न फ्रिज हैं, फिर भी वे जी रहे हैं, हंस रहे हैं, खा रहे हैं, पी रहे हैं, चैन से सो रहे हैं। मेरे पास तो साईकल है, रहने को अपना निजी मकान है, बजाने को बाजा-हार्मोनियम है, खाने पीने और पहनने ओढ़ने के लिए सुखद साधन भी पर्याप्त हैं। पर मेरे से भी आगे कई ऐसे व्यक्ति संसार में हैं जिन के पास इन साधनों का तो क्या कहना, दो समय का भोजन तथा तन ढकने के लिए यथोचित वस्त्र भी नहीं हैं, तब भी वे जी रहे हैं, हंस रहे हैं, गा रहे हैं, खेल रहे हैं, नाच रहे हैं और रात को निश्चिन्त हो कर सुख से सो रहे हैं। यह सब देख सुन और विचार कर अपने जीवन और साधनों पर सन्तोष करना चाहिए तथा साथ में उस प्रभु का इस सब के लिए धन्यवाद करते

रहना चाहिए जिसने कृपा करके यह सब कुछ प्रदान किया हुआ है। यदि इससे भी सन्तोष न हो तो बजाय इसके कि बेचैन होकर अपनी नींद हराम करे, अच्छा यह है कि शक्ति भर पुरुषार्थ करके अर्थ का उपार्जन करे और फिर जो-जो उस अर्थ से सम्भव हो क्रय करके उसी में सन्तोष अनुभव करना आदि भी उस उन्निद्रता के निवारण का एक सुन्दर उपाय है।

४ हृतस्वम् -

जिस के स्व का—धन वैभव, जमीन, जायदाद या किसी सम्बन्धी आदि का हरण कर लिया जा चुका हो, या स्वयं ही कुछ या कोई खो गया हो, गुम हो गया हो, नष्ट हो गया हो या जेब काट ली गई हो अथवा आग पानी आदि द्वारा धन, जन आदि की हानि हो गई हो या अन्य किसी प्रकार से धन वैभव आदि नष्ट हो गया हो, तो ऐसे व्यक्ति को भी प्रजागर उन्निद्रता आ घेरती है।

इसी प्रकार किसी का अपना या किसी प्रिय जन का स्वास्थ्य बिगड़ गया हो, अथवा अपने या प्रियजन के स्वास्थ्य को किसी भयंकर रोग ने आ घेरा हो, या कोई प्रियजन मृत्यु का ग्रास बन गया हो इत्यादि बातें भी मनुष्य को कई बार ऐसा बेचैन कर देती हैं कि उसकी नींद हराम हो जाती है।

ऐसी अवस्था में रोने धोने और चिन्ताओं को छोड़ कर यथाशक्ति उपाय करना चाहिए, और जी जान से उपाय करने - प्रयत्न करने पर भी यदि वह हरण किया हुआ धन, वैभव, जमीन जायदाद या खोया हुआ धन, जन स्वास्थ्य या विनष्ट हुई धन सम्पत्ति या मरण को प्राप्त हुआ प्रिय जन आदि हाथ न आ सके, तो "प्रभु को ही ऐसा स्वीकार होगा" यह सोचकर सन्तोष कर लेने से या अन्य स्वाध्याय सत्संग भजन पूजन आदि उपायों से अपने मन को उधर से हटाकर उपर्युक्त कारण से होने वाली उन्निद्रता से मनुष्य मुक्त हो सकता है।

५ कामिनम् –

जो कामी हो, सदा विषय वासनाओं में, भोग-विलासों में जिसका मन लगा रहता हो, उसे भी चैन से नींद नहीं आ सकती अर्थात् उसे भी प्रजागर-उन्निद्रता आ घेरती है।

कामी का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि वह विषय-भोगों में ही सदा प्रवृत्त रहता हो, अपितु इसका एक और बड़ा अर्थ यह भी है कि जिसके हृदय में सदा कामनाओं का प्रवाह प्रवाहित रहता हो। अर्थात् कामनाओं से जिसका हृदय ओत-प्रोत रहता हो वह भी कामी है। एक के बाद दूसरी, दूसरी के उपरान्त तीसरी, तीसरी के अनन्तर चौथी और चौथी के पश्चात् पांचवी कामना जिसमें प्रवाहित रहती हो। तात्पर्य यह कि वह ९९(निन्यान्वे) के फेर में पड़ गया हो। काम नहीं था, तब यह इच्छा थी कि किसी प्रकार काम लग जाय। काम लग गया, रोजी चल गई तो फिर विवाह की इच्छा हुई। विवाह होगया तो सन्तान की कामना हुई। सन्तान हो गई तो उसके पालन-पोषण की, शिक्षा-दीक्षा की उसके रोजी रोजगार की, उज्ज्वल भविष्य की कामना हुई। फिर निजी मकान की, पुत्र के विवाह की, पोते-पोतियों की, पुनः उज्ज्वल एवं सुखद भविष्य की इत्यादि। जो यह सोचता हो कि मेरा तो जीवन चल जायगा आराम से क्योंकि इतना ऐश्वर्य तो है, पर मेरे बाद इन बच्चों का क्या होगा? अतः इतना तो और होना ही चाहिए कि जिससे इनका सम्पूर्ण जीवन भी सुख सौभाग्य से व्यतीत हो जाय, जैसे कि उन बच्चों के हाथ पैर ही न हों और न ही बुद्धि हो कि जिससे वे स्वयं कुछ कमा खा सकेंगे इत्यादि।

इस प्रकार के व्यक्ति सदा कामनाओं के प्रवाह में प्रवाहित होते रहते हैं। जहां एक कामना अभी समाप्त नहीं हुई कि अगली तैयार रहती है। ऐसे व्यक्ति कभी चैन की, आराम की नींद नहीं सो सकते, क्योंकि उन्हें निरन्तर ये कामनाएं घेरे रहती हैं तथा उनके आराम और चैन में बाधा डालती रहती हैं।

ऐसे व्यक्तियों को वेद के शब्दों में "अकामो धीरोऽमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तोः……।" इत्यादि मन्त्रों के द्वारा उस "अकाम" सर्वथा निष्काम प्रभु की उपासना करनी चाहिए उसकी पावन छत्र-छाया में अपने आपको अनुभव करते हुए जो उचित, मर्यादित, आवश्यक और उत्तरदायित्वपूर्ण कामनाएं हैं, वे ही करनी चाहिएं तथा उनके लिए यथोचित पुरुषार्थ करने पर जो कुछ भी प्रभु प्रदान करे उसी में सब

व्यवस्था करके सन्तोष का अनुभव करना चाहिए। क्योंकि शक्तिभर पुरुषार्थ करने पर और अन्यों से यथोचित परामर्श कर लेने पर भी यदि जो कुछ नहीं हो पाता, तो उसके लिए व्यर्थ में चिन्ता करना अपने आपको वर्तमान में उपलब्ध सुख-चैन से भी वञ्चित करना है। अतः शेखचिल्ली के समान अत्यधिक कामनाएं न करके अपनी शक्ति एवं परिस्थिति के अनुसार उचित एवं मर्यादित कामनाएं करके ही सन्तुष्ट रहना आदि ही अपनी इस उन्निद्रता की चिकित्सा है। यों कामनाओं का तो कोई अन्त नहीं है। जैसा कि एक ऋषि अपना अनुभव लिखता है —

आ मृत्युतो नैव मनोरथानामन्तोऽस्ति विज्ञातमिदं मयाद्य।
मनोरथासक्तिपरस्यचित्तं न जायते वै परमार्थ सङ्गि॥

मैंने आज यह रहस्य भलीभांति जान लिया है कि मृत्यु पर्यन्त कामनाओं को भोगने पर भी हमारा तो अन्त हो जाता है पर इन कामनाओं का, मनोरथों का अन्त नहीं होता। और इस के अतिरिक्त इन मनोरथों की आसक्ति में तथा संलग्न चित्त परमार्थ का पथिक भी नहीं बन सकता। मनु जी भी लिखते हैं—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
२.९४॥

काम कामनाओं के, इच्छा इच्छाओं के उपभोग से कभी शांत नहीं होती है, प्रत्युत घृत से अग्नि के समान वह तो और भी अधिक बढ़ती जाती है। हां यह बात पृथक् है कि शरीर में उनके भोगने की सामर्थ्य ही न रहे, पर शरीर के वृद्ध और जरजरीभूत हो जाने पर भी ये मन की कामनायें बूढ़ी नहीं होतीं — जीर्ण नहीं होती। अतः इनकी चिकित्सा तो इनके त्याग से ही सम्भव है या फिर धर्म की, शास्त्र की मर्यादाओं में दृढ़ता पूर्वक वर्तमान रह कर ही इनका भोगना उचित है। ऐसा करने पर ही हम कामनाओं के कारण होने वाली उन्निद्रता से मुक्त हो सकेंगे।

एक सज्जन से किसी ने कहा, "मेरे प्यारे मित्र! देखो आप तो इस ६० वर्ष तक के जीवन में भी इस अपने मकान को ठीक ठाक करके सुन्दर नहीं बना सके, पर हमने तो आपसे छोटी आयु में ही बहुत सुन्दर कोठी बना ली है।" उस सज्जन ने उत्तर दिया कि "मेरे प्यारे एवं हितैषी मित्र! मैं तो अपने इस साधारण से मकान को भी बहुत जल्दी छोड़ कर वानप्रस्थ ले रहा हूं और अब इस से भी साधारण कुटिया में निवास करके आत्मनिरीक्षण करूंगा एवं तब इस साधारण से मकान के क्रय करने और ठीक-ठाक कराने में भी जो जो मैंने पाप किए हैं उन पर भी प्रायश्चित्त करके अपनी आन्तरिक भावना को निर्मल एवं सुन्दर बनाने का प्रयास करूंगा।" उस व्यक्ति के इस सुन्दर उत्तर को सुन कर प्रथम सज्जन विचारने लगा कि "देखो कितना सुन्दर और प्रेरणाप्रद विचार है। एक ओर तो यह इसे भी छोड़ कर आगे जा रहा है और दूसरी ओर मैं इतनी बड़ी कोठी बनवा कर भी और अधिक कामनाओं के प्रवाह में प्रवाहित होता हुआ अपनी सुख चैन की नींद हराम कर रहा हूँ। कितनी दयनीय दशा है मेरी।" यह सोच कर वह भी जीवन में ऐसी करवट लेता है कि फिर जो प्रभु ने दिया है उस पर ही सन्तोष कर उस का धन्यवाद करता हुआ चैन से अपना शेष जीवन व्यतीत करता है।

६ चोरम् –

चोर को भी प्रजागर आ घेरता है। जिसने चोरी कर ली या करने जा रहा हो, उसको सदा अपने पकड़े जाने का भय बना रहता है। यह भय प्रथम तो चैन से उस चोर को सोने नहीं देता और यदि वह बहुत अधिक थकान आदि के कारण सो भी जाए तो स्वप्नों में भी उसे अपने निगृहीत हो जाने का भय बराबर सताता रहता है। फिर चुराए हुए धन वैभव को कहां सम्भाल कर रखूं, यह चिन्ता भी बराबर उसे बनी रहती है। यदि इस प्रश्न का उत्तर कुछ सूझता है कि चलो उनके पास रख दूं तो झट पुनः सन्देह होने लगता है कि कहीं वह व्यक्ति ही इस सब को हजम न कर जाय या कहीं उनके यहां भी यह भेद खुल न जाए, इत्यादि सारी चिन्ताएं उसको घेरे रहती हैं, जो उस को चैन से सोने नहीं देतीं।

चोर ने जिस भी प्रकार की चोरी की हो धन की,

अन्न की, वस्त्राभूषण की या किन्हीं अन्य पदार्थों की या कोई काला धन्धा किया हो अथवा कहीं चोरी का विचार ही कर रहा हो या किसी के धन वैभव आदि पर लोभ की दृष्टि बन गई हो या किसी के भाग, हिस्से या अधिकार पर छापा मारने का, उसको हड़प कर जाने का विचार मन में उत्पन्न होता रहता हो इत्यादि, तो ऐसे व्यक्ति को भी उन्निद्रता आघेरती है। क्योंकि इस प्रकार के कार्य या चिन्तन करने से उसके मन की शांति भंग हो जाती है। अशान्त मन फिर नाना प्रकार की चिन्ताओं से, भयों से, आशंकाओं से ओत-प्रोत हो जाता है। तब भला वह कैसे चैन से सो सकता है? इस लिए प्रभु अपने को यथोचित मार्ग से जो कुछ भी प्रदान करे या न्याय के अनुसार जो अपने भाग में आए उसी पर सन्तोष करना तथा किसी के भी धन वैभव जमीन जायदाद पुत्र कलत्रादि पर लोभ की दृष्टि न करना ही इस प्रकार की उन्निद्रता निवारण का उपाय या चिकित्सा है।

इस प्रकार विदुर ने धृतराष्ट्र को उन्निद्रता के, नींद न आने के और यहां तक कि मखमली गद्दों पर भी, सेवकों के हाथ, पैर, सिर, टाँगे दबाने पर भी, करवटें बदलते तथा चिन्ता के कारण नींद न आने के उपरांत बड़े स्पष्ट शब्दों में अन्त में निवेदन किया — 'हे धृतराष्ट्र! जरा आप आत्म-निरीक्षण तो करके देखो कि कहीं इन छः महा-दोषों के शिकार तो नहीं हो गए हो? इतने पर भी राजा न समझा हो, तो विदुर जी ने उनके सम्मुख उनका वह महादोष और भी खोलकर स्पष्ट रूप में रख दिया — "राजन्! जरा विचार तो करो कि कहीं दूसरों के धन, वैभव पर' जमीन जायदाद पर, वास्तविक अधिकार पर आप लोभ की वृत्ति बनाए रख कर तो परितप्त नहीं हो रहे हो?"

धृतराष्ट्र ने अपनी उन्निद्रता की यह समस्या विदुर जी से आज से लग-भग पांच सहस्र वर्ष पूर्व रखी थी और महान् विदुर ने उसकी उन्निद्रता रूप रोग का निदान प्रस्तुत कर उसकी चिकित्सा का सुन्दर उपाय भी उसे सुझाया था। परन्तु उस महान् विदुर से अपने रोग के मूल कारण को पहचान कर भी उनके वचनानुसार वह अपनी चिकित्सा के उपाय न कर सका। अतः परिणाम में वह सतत दुर्गति और अपयश को ही प्राप्त होता रहा। केवल तभी तक उसका अपयश रहा हो ऐसी बात नहीं अपितु आज तक भी समाज उसको उस के कार्यों के लिए कोसता आ रहा है।

जो प्रश्न विदुर ने धृतराष्ट्र से अन्त में किया था कि "हे धृतराष्ट्र! कहीं तुम इन छः महादोषों के शिकार तो नहीं हो रहे हो, या कहीं दूसरे के धन-वैभव पर लोभाभि-भूत हो कर तो तुम सन्तप्त नहीं हो रहे हो?" वही प्रश्न यदि हम अपने आप से करें, तो पूर्ण विश्वास है कि हमें अपनी उन्निद्रता के कारणों का पता लग जायेगा और तदनुरूप चिकित्सा करने या किसी अनुभवी व्यक्ति से कराने पर निस्सन्देह हम चैन की, सुख की नींद प्राप्त करने के अधिकारी बन सकेंगे।

वैसे आजकल उन्निद्रता के निवारण करने के लिए वैज्ञानिक उपायों का भी आविष्कार हो चुका है और उनके अनुसार आराम से नींद भी आ जाती है तथा सुख चैन से रात्रि व्यतीत हो जाती है। कई महानुभाव मदिरा आदि मादक द्रव्य या पदार्थ खा पीकर भी अपने आपको मदहोश करके चैन से नींद लेने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु इस प्रकार नींद की गोलियों के सेवन करने से या शराब आदि के पीने से केवल उसी रात को नींद आ जाती है या बेहोशी में चिन्ताओं से कुछ काल के लिए मुक्ति मिल सकती है सदा के लिए नहीं। प्रथम तो यह क्षणिक उपाय है। इन से रोग की निवृत्ति नहीं होती केवल क्षणभर के लिए परदा पड़ जाता है। परन्तु जहां होश आई या नींद खुली फिर वही हाल। इसके अतिरिक्त इन गोलियों आदि के निरन्तर सेवन करने से या मदिरा आदि मादक द्रव्यों के पीने से शरीर को बहुत बड़ी हानि पहुँचती है, साथ में पहले रोग की निवृत्ति तो होती नहीं उल्टा कुछ दिनों में एक नया रोग और गले पड़ जाता है अतः मदिरा-पान और नशे की गोली सेवन करना," ये वास्तविक उपाय नहीं हैं, क्योंकि इनसे उन्निद्रता के कारण वैसे के वैसे वर्तमान रहते हैं। तभी तो जागने पर या होश में आने पर बेकारण पुनः उस व्यक्ति को व्यथित करने लगते हैं। अतः उचित उपाय तो उन्निद्रता के मूल कारणों को दूर

करना ही है। और ऐसा करने पर ही हम चैन की नींद सो सकते हैं, अपने मन को सुन्दर अवस्था में रख कर दिन को भी अव्यथित ही नहीं अपितु मुदित अवस्था में रख सकते हैं।

दोनों उपाय हमारे सम्मुख हैं। अब यह हम पर निर्भर है कि हम चैन की नींद सोने के लिए कौन से उपाय को अपनाते हैं। जैसा उपाय करेंगे वैसा ही फल मिलेगा।
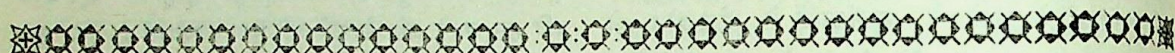
दयानन्द वचनामृत

"अग्नि या परमेश्वर के लिये, जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञा पालन के अर्थ होत्र जो हवन अर्थात् दान करते हैं, उसे अग्निहोत्र कहते हैं। .... होम करने से पवन और वर्षा जल की शुद्धि करके शुद्ध पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता होती है, उससे सब जीवों को परम सुख होता है। तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है। ऐसे ऐसे प्रयोजनों के अर्थ अग्निहोत्रादि का करना अत्यन्त उचित है।"

— पञ्चमहायज्ञ विधि
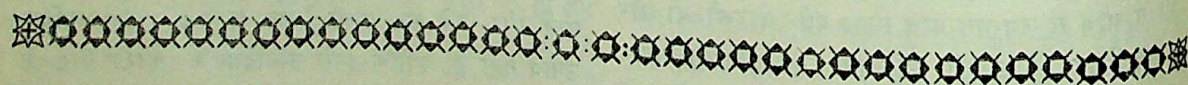
वैदिक योगपरम्परा का—एक समीक्षात्मक—अध्ययन

लेखक — प्रो० जयदेव वेदालंकार दर्शनविभाग, विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)

हम भगवान् का द्वार तभी खटखटाते हैं जब हम दुःखी और निराश हो जाते हैं। हमारी सहन शक्ति का सामर्थ्य जब बिलकुल समाप्त हो जाता है तब हम सभी ओर से पूर्णतः निराश होकर भगवान् की शरण में जाते हैं। किन्तु उस निराशावस्था की प्रीतक्षा ही क्यों की जाये ? क्यों न हम प्रतिदिन प्रार्थना एवं निष्ठा द्वारा तथा योगाभ्यास से अपनी शक्ति का विकास करते जायें ताकि परमकृपालु परमात्मा के परमानन्द की प्राप्ति हो जाय। योगविद्या के वास्तविक स्वरूप को यदि हम जानना चाहें तो हमें वेद की ओर पुनः जाना होगा, वेदज्ञान हमें शाश्वत् काल से ज्ञान रूपी प्रकाश से प्रकाशित करता रहा है। महर्षि दयानन्द ने योग ज्ञान के लिये वेद की कुञ्जी हमारे हाथों में प्रदान की है, महर्षि ने लिखा है कि "सब वेद वाक्यों में ब्रह्म का ही विशेष करके प्रतिपादन है। कहीं २ साक्षात् रूपेण और कहीं कहीं परम्परा से। इसी कारण वह परब्रह्म, वेदों का परम अर्थ है।"[1]
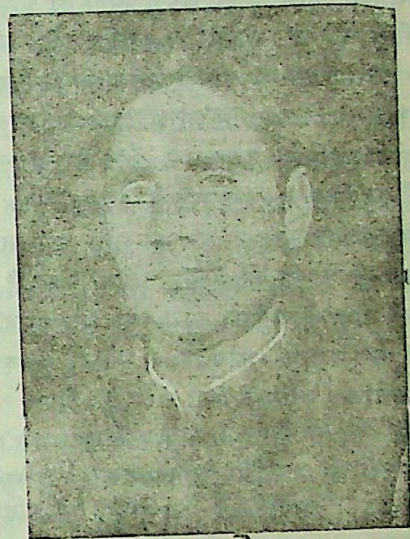
प्रो० जयदेव विद्यालंकार

वेदों में अधिकाश ऐसे मन्त्र हैं जिनका केवल योगपरक अर्थ ही होता। मनुष्य योग द्वारा मन के देवता चन्द्रमा को उद्दीप्त करता है, इसी प्रकार वह अपने चाक्षुष आत्मा से सूर्य नामक तत्त्व की जागृति करता है, प्राण नामक आत्मा से वायु, मुख या वाक् से अग्नि, इन्द्रनाभि या मध्यस्थान से अन्तरिक्ष, आत्मा सेतुविधरण, शिर या पूर्वार्ध से द्यौ, श्रोत्र से दिशायें और लोक, पाद से भूमि। यह सब उपरोक्त सृष्टि-रचना योगी की आत्मिक अति सृष्टि-रचना कही जा सकती हैं जिन्हें योगी अपने इसी शरीर के मर्त्यप्राणों से अमृतत्व और अमर्त्य देवताओं को जागृत या उद्दीप्त करके ज्योति के सागर में आनुभूतिक ज्योतिष्मती डुबकियों में मग्न रहता है। इसी प्रकार ऋग्वेद के ४-२६, १०-४८, १०-४६, १०-१२५, ४-४२, १०-१५६, १०-१८३, इत्यादि सूक्तों में योग का अति सुन्दर और रमणीय विवेचन हुआ है।

स्तुतयों में सलग्न जाग रूक[1] विप्र ऋषि विष्णु के परमपद को उद्दीप्त करते हैं। इसी प्रकार ऋग्वेद के १-३४-६ में पूछा है कि बतलाइये कब रूप वेगवान व बलवान् रासभ का ब्रह्म के साथ योग हो सकेगा जिससे हे नासत्य तुम उस सत्यनामक अमृतत्व या विकासमय यज्ञ या यज्ञस्थल को प्राप्त हो सकोगे[2] "युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं"[3] ब्रध्न-नामक आदित्य से या सूर्य तत्त्व से अरुष नामक अग्नि और गतिमय वायुदेवता ये दोनों जब आसन स्थित इन ऋषियों से संयुक्त या सम्बद्ध हो जाते हैं, तब इनके शरीर के आभ्यन्तर लोकों में स्वर्गीय ज्योति बिखर पड़ती है (तै.ब्रा. ३-४-६७) यह साक्षात् रूप से योग क्रिया का ही वर्णन है

---

१. तदेव ब्रह्मसर्वत्र वेदवाक्येषु समन्वितं प्रतिपादितमस्ति। क्वचित् साक्षात् क्वचित् परम्परया च। अतः परमोऽर्थो वेदानां ब्रह्मैवास्ति।
(ऋग्वेदादि भाष्यभूमिक। वेद विषय विचार)

---

१. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत्परमंपदम् (ऋ० वे० १-२२-२१)।

२. कदा योगो वाजिनो रासभस्य येनसत्यंनासत्योपयाथः। (ऋ०वे०१-३४-६)

३. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः रोचन्ते रोचना दिवि। (ऋ० वे० १-६-१)

(काम्याहरी)[1] मर्त्यामर्त्य प्राणरूप अश्वों को उसब्रह्मनामक सूर्य से संयुक्त करते हैं। "स घा नो योग आभुवत" में तो स्पष्ट रूपेण प्रार्थना की है कि वह इन्द्र हमारे योग में साधक हो। और १-१८-७ के मन्त्र में तो ब्रह्मणस्पति के बारे में लिखा है कि उसके बिना तो कोई योग आदि यज्ञ सिद्ध नहीं हो सकता[2]। क्योंकि वह ज्ञानमयतत्त्व है। सब प्राण ज्ञानमय होते हैं, उनका योग साधक यही देवता है। १-३०-७ के मन्त्र में तो और अधिक स्पष्ट है कि हम योग प्रक्रिया में प्रत्येक यज्ञ में तेरा आह्वान करते हैं क्योंकि तुम ही बलशाली संरक्षक हो[3]। आभ्यन्तर योग-यज्ञ में हम तुम्हारे बल या शक्ति की तथा ब्राह्य-यज्ञ में वाग्यज्ञ में बल की मुहुर्मुहु प्रशंसा करते हैं। यजुर्वेद (११-२) योग की प्रक्रिया को "सवे" या "प्रसवे" या अतिसृष्टि के रूप में हम एकाग्र मन से सविता[4] भगवान् की आराधना अलौकिक शक्ति के लिये करते हैं। फिर ११-३में कहा है कि वह सविता[4] ईश्वर योग द्वारा मोक्षधाम की ओर जाते हुए प्राणों को अलौकिक शक्ति देकर ज्योतियों से जगमगा देता है। आगे ११-३ में कहा है, वह सविता[5] ईश्वर योग द्वारा मोक्षधाम की ओर जाते हुये प्राणों को उनके देवताओं से सम्बद्ध करके अलौकिक ज्योति उत्पन्न करने वाले देवों को प्रेरित करता है और ११-४ में योग प्रक्रिया का स्पष्ट व्याख्यान किया है। वहां स्पष्ट लिखा है कि वैदिक दार्शनिक योगी[5] ऋषिगण तुम्हारी अनुभूति के लिये अपने मन तथा प्राणों (धिया) का योग करते हैं। यजुर्वेद के ये मन्त्र एक ही क्रम में हैं। अतः यहां पर पूरा वातावरण ही योगमय है। इसमें सन्देह को कोई स्थान नहीं हो सकता।

वेदों में योगियों के नाम मुनि और यति दिये गये हैं जिन्हें मलिन वस्त्र रूप मर्त्य भौतिक शरीरधारी भी कहा गया है। उनके दैवी तेजस्वी ज्योति रूप दिव्य में मर्त्य भौतिकात्मीय शरीर कृष्ण वर्ण का या मलिन सा प्रतीत होता है। ऐसा वर्णन करके जितनी अद्भुत उपमा दी है, ऐसी उपमा अन्यत्र दुर्लभ है। "मुनयो वात-रशनाः पिशङ्ग वसतेमला" आदि। वास्तव में वेदों के अन्दर अनेक प्रकार से योग का वर्णन आया है। इस योग विद्या का नाम सोम भी आया है। कुछ भाष्यकारों ने सोम को आर्यों की शराब माना है। परन्तु वास्तव में सोम एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति का नाम है जो योग के द्वारा एक विशेष अलौकिक ब्रह्म की ही शक्ति साधक में उत्पन्न हो जाती है जो हमेशा उसे समाधि एवं ब्रह्म के नशे में ऐसा मस्त कर देती है कि वह सदैव परमानन्द को उपलब्ध करता रहता है।

सोम के विषय में स्वयं वेद क्या कहता है? यह विस्तार पूर्वक एवं मनन पूर्वक देखना चाहिए। सोम क्या है? उसका स्वरूप क्या है? उसे कौन पान करते हैं। उसका पान करने का परिणाम क्या होता है? आदि। क्रमशः यहां सोम का वर्णन करते हैं। जो लोग जडी-बूटी को पीसकर घोटकर छानकर यह समझ लेते हैं कि उन्होंने सोम का पान कर लिया, वे बहुत भोले हैं। ब्राह्मण, दार्शनिक, ऋषिगण जिसको सोमनाम से पुकारते थे उसको तो कोई भी इस प्रकार खा पी नहीं सकता। वह तो अनुभूति का विषय है खाने पीने की वस्तु नहीं है। हे सोम तुम को तो बृहती छन्दाक्षरों के तत्त्वाक्षरों के नियमित स्वरूप या स्थान में अनेक प्रकार के कोशों के विधानों के आभ्यन्तरीय भाग में निगूढ़ रखा गया है, यद्यपि वह अखण्ड ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। जो लोग सोम को केवल सिलबट्टा या पत्थर पर घिसकर पीने का विधान करते हैं वे वास्तव में लोगों को ठगते हैं। वास्तव में यह जो

---

१. युञ्जन्त्य काम्याहरी विवक्षसारथे। शोणा धृष्णु नृवाहसा ।। ऋ० १-६-१
२. यस्मादृते नसिध्यतियज्ञोविपश्चितश्चन स धीनांयोग-मिन्वति । (१-१८-७)
योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्र-मूतये (१-३०-७)
३. युक्तेनमनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या ।। (११-२)
४. युक्त्वाय सविता देवान्स्वर्यतोधियादिवं बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ।।
(यजु० ११-३, श्वेताश्व उप०)
५. युञ्जतेमनउत युञ्जतेधियो विप्राविप्रस्यबृहतो विपश्चितः। (यजु० ११-५ श्वे०उ०)

---

१. सोमं मन्यते पपिवानयत्सम्पिषन्त्योषधिम्। सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्नतस्याश्नाति कश्चन ।।

कहीं कहीं भौतिक सोम वर्णन आया है, वह भी ऐसी सात्विक औषधि है जो भगवान् की प्राप्ति में साधक थी। यह कहीं अभिनयमात्र भी वर्णन हुआ है। जिस प्रकार भाप निकाल सोम निकालने का वर्णन करते हैं वह तो वास्तव में आपोमय प्राण शरीरों के पात्रों को अग्नि से उत्तप्त करके वह अमृत ज्योति रूप सोम स्तवन किया जाता है, खींचा जाता है। आगे सोम का अद्‌भुत एवं अनेक प्रकार का वर्णन करते हुए वेदों का महत्त्व इस प्रकार जाना जा सकता है कि वह मही[1] या पृथ्वी या वेदी में निवास करने वाला महिष नामक सोम तो महतो महान् है। यह इस अखिल ब्रह्माण्ड को प्रकाशमान करने वाला राजमान तत्त्व है और प्राणरूप प्रजा को दैवी रूप में प्रस्तुत करता है और प्राणों के आसुरी सागर को पार कर जाता है। वह इस पृथ्वीरूप पर्वत की चोटी में अव्यय चोटी में बहुत रूपचन्द्र किरणरूप पवित्र ज्योति को चुभाता हुआ वर्षणशील वृषण या वृषभ कहलाता है[2]। यह सोम प्राणों में ज्ञान ज्योति का जनक है। उसी से यह पृथ्वी या ब्राह्मण्ड भी निर्मित होता है। उसी से वैश्वानर की उत्पत्ति होती है वह इन्द्र, विष्णु और ब्रह्म की नाना शक्तियों का जनक है[3]। यहां सोम का ईश्वर के रूप में स्पष्ट वर्णन हुआ है। यह सोम देवों का योग यज्ञ कारक मनोरूप ब्रह्मा है। योगियों के योग यज्ञ का मार्ग दर्शक या पदवी है। वास्तव में वेद में वर्णित जो सोम है उसके अनेक अर्थ ही आध्यात्मिक हैं। कभी वह सोम भक्ति का वाचक है। कभी वह समाधि द्वारा प्राप्त आनन्द का वाचक है, कभी साक्षात् ब्रह्मविद् आत्मा वाचक है। कभी ब्रह्म के अर्थ में ही सोम शब्द आया है।

१. महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्‌गर्भोऽवृणीतदेवान्। अधादिन्द्रेपवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ऋ० म० १

२. अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन्प्रजा भुवनस्यराजा। वृषापवित्रे अधिसानोऽव्ये बृहत्सोमो वावृधे सुवानु इन्दुः ॥

३. सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जातीपृथिव्याः। जनितारग्ने जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ (ऋग्वेद १-९६-४)

वेद में सोमयागी साधक का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया गया है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के ११९वें सूक्त में उस भक्तिरूपी सोम का पान करने वाले की महिमा का वर्णन बड़ा ही सुरम्य ढंग से किया गया है। जब योगी योग करता हुआ अपने मनोभावों को इतना संयम कर लेता है कि वह उद्‌घोषणा करता है कि मेरी वे गौ और अश्वादि सम्पत्तियां, इन सब को दान में दे दूं। क्योंकि मैंने इस प्रभु भक्ति रूपी सोम रस का पूर्णरूपेण पान किया है अब ये संसार के सभी पदार्थ मुझे तुच्छ लगते हैं[1]। केवल भगवान के उस सोम अर्थात् ध्यान योग ही में मेरा मन लगा रहता है। अगले मन्त्र में फिर साधक कहता है कि झकझोर देने वाली झञ्झावात के समान पान किये हुए ये सोम रस अथवा भक्ति रस खूब आप्लावित कर रहे हैं[2]।

अर्थात् संसार के विषयों से मैं पूर्णरूप से उपराम होता जा रहा हूं। जैसे शीघ्रगामी घोड़े रथ को अपने लक्ष्य की ओर उड़ा ले जाते हैं[3] उसी प्रकार जब से मैंने संसार से मोह कम कर योगाभ्यास कर, उस प्रभु की दिव्य ज्योति के दर्शन के लिये भक्ति रूपी सोम का पान किया है मेरा लक्ष्य या वह सोम रूपी योग मुझे मेरे लक्ष्य की ओर उड़ाये ले जा रहा है। जैसे अपने प्रियवत्स के पास गौवें रंभाती हुई चली[4] आती हैं उसी प्रकार योग करने के बाद भगवान् की कृपा वृष्टियां भी अनायास ही मुझे प्रभु के आनन्द में मस्त कर जाती हैं। आगे कहा है, जैसे कुशल[5] कारीगर अपनी कला से प्रत्येक वस्तु का कलात्मक निर्माण करता है उसे सुन्दर बनाकर सब का मन मोह लेता है, उसी प्रकार जब से मैंने अपनी एक-एक

१. इति वा इति मे मन गामश्वं सनुयामिति कुवित्सोमस्यापामिति।

२. प्रवाता इव देधत उन्मा पीता अयंसत। कुवित्सोमस्य पामिति।

३ उन्मापीता अयंसत रथमश्वाइवाश्वः। कुवित् सोमस्यापामिति।

४. उपमा मतिस्थित वाश्रा पुत्रमिवप्रियं। कुवित् सोमस्यापामिति।

चित्त वृत्ति[1] को वश में करके पवित्र जीवन यापन करना प्रारंभ किया तभी से भक्ति रूपी सोम का आस्वादन मुझे सरलता से आने लगा है। वास्तव में जब मनुष्य योगाभ्यास करता हुआ समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह आनन्द कैसा होता है ? इसकी तुलना संसार के किसी भी भोग एवं पदार्थ से नहीं की जा सकती है। मैत्रायण्युपनिषद्[1] में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि समाधि की अवस्था में पहुंचने पर साधक का चित्त पूर्ण रूप से योगाभ्यास द्वारा निर्मल हो जाता है। सब प्रकार के मल धुल जाते हैं। उस अवस्था में जो ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है, उसका वर्णन लेखनी द्वारा तथा वाणी के द्वारा नहीं किया जा सकता। वह तो केवल अनुभव करने का विषय है, कहने सुनने का नहीं।

---

१. अहं तष्टेव बन्धुरंपर्यचामि हृदा इति। कुवित् सोमस्यापामिति

२. अजीजनो हि वरुण स्वधावन्नथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्।
तस्मा उ राधः कृणुहि सुप्रशस्तं सखा नो परं च बन्धुः ॥ अथर्व० ५-११-११

---

१. समाधिनिर्धूत मलस्य चेतसो निवेशितस्यात्म-
नियत्सुख भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरातदा स्वयं
तदन्तः करणेन गृह्यते। (मैत्र० ४६)

—०—

• मूर्ख जब आत्मश्लाघा में लगा होता है बुद्धिमान की कीर्ति आकाशीय तारों में चमक उठती है।

० अपने दुःख का कारण अपने से भिन्न किसी और को मत समझो, क्योंकि दुःख अपने किये दुष्कर्मों का ही फल है।

० अपनी निर्बलता को अपनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न करो।

० अपनी ओर से किये हुये सद्व्यवहार के बदले में अपने अनुकूल व्यवहार की आशा नहीं रखनी चाहिये।

कुछ अतीत संस्मरण

लेखक — श्री वैद्य विजय शास्त्री, योगी फार्मेसी, कनखल.

हरिद्वार का महत्त्व जहाँ सम्पूर्ण विश्व में गङ्गा एवं आध्यात्मिक संदेश देने वाले महात्माओं के कारण बना, वहां आर्य-संस्कृति के आदर्श उद्यान 'आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर' के कारण भी सम्पन्न हुआ है। आर्य-जगत् के संस्कारित पुष्प भारत के कोने-कोने से आकर इस संस्था में सुगन्ध का आधान करते रहते हैं। इसकी स्थापना वीतराग महात्मा नारायण स्वामी के कर-कमलों से हुई थी। बाद में स्वामी वेदानन्द जी, महात्मा हरप्रकाश जी एवं कविराज हरनामदास जी प्रभृति अनेक आर्य व्यक्तियों ने अपने तन, मन, धन से इसे उन्नत करने का प्रयास किया। आज वह एक दिव्य सुगन्धिमय पुष्प बन कर देश भर के जिज्ञासुओं को अपनी तरफ आकर्षित कर रहा है। मुझे इस तपोवन-तरु की छाया विगत तीस वर्ष से मिलती आ रही है।

मुझे याद है मैं जब गुरुकुल कांगड़ी में द्वितीय श्रेणी में पढ़ रहा था तब एक दिन स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी हमारे घर पधारे और कुछ दिन ठहर कर जब विदा होने लगे तो मेरे पूज्य पिता श्री बूड़ीराम जी ने स्वामी जी का थोड़ा सामान पहुँचाने के लिए मुझे उनके साथ भेजा। वानप्रस्थाश्रम के दर्शन करने का यह मेरा प्रथम ही अवसर था। स्वामी जी का सामान यथास्थान पहुँचा कर मैं जब वापस लौटने लगा तो स्वामी जी ने मुझे बुला कर कहा — 'ब्रह्मचारी ! आते तथा जाते दोनों समय नमस्कार करना चाहिए।' जिस सहजभाव से उन्होंने मुझे यह शिक्षा दी, वह आज भी मुझे स्मरण है। तब उन्होंने यह भी कहा कि समय निकाल कर मेरे पास आना। बड़े बनने का एक अमोघ मन्त्र तुम्हें दूंगा।' कुछ दिन बाद जब मैं अपने पिता जी के साथ स्वामी जी से मिलने वानप्रस्थाश्रम गया तो उन्होंने मुझे गायत्री मन्त्र का महत्त्व बताते हुए कहा कि तुम्हें जो भी चाहिए इस मन्त्र के श्रद्धा एवं विश्वास सहित जाप करने से उपलब्ध हो जायेगा। मैंने बाल्य सुलभ कौतुक से पूछा 'क्या मिठाई भी ?' उत्तर मिला — 'अवश्य।' आज मैं कह सकता हूँ कि उनका वह निश्चयात्मक उत्तर सर्वथा सही था। बाद में तो मैं कई बार स्वामी जी के दर्शनार्थ आश्रम में गया और हर बार वे मुझे गायत्री-मन्त्र के जाप के लिये प्रेरणा देते रहे।

आश्रम में उन दिनों थोड़े से ही साधक रहते थे, जो प्रातः सायं यज्ञादि के साथ विशेष पर्वों पर बड़े यज्ञ भी करते थे। दिवंगत श्रीयुत् पूज्य महात्मा प्रभु आश्रित के दर्शन भी मुझे यहीं प्राप्त हुए ! तब उन्होंने वर्तमान पुस्तकालय में एक विशेष शिविर आयोजित किया था। अपनी पूज्या माता जी के साथ मैं निरन्तर इसमें सम्मिलित होता था। वहां मुझे योग तथा आसन सम्बन्धी निर्देशों के अतिरिक्त अभिमान पर विजय पाने के उपायों पर विशेष निर्देश मिले थे। उन्हीं दिनों लायलपुर निवासी महाशय

ठाकुरदास जी के दर्शन करने का भी सौभाग्य मिला। वे छोटे बच्चों को अपने पास बुला कर संध्या के मन्त्र याद कराते थे। जो बच्चा पूरी तरह नहीं रट पाता था उसे बार-बार रटाया करते थे। साथ ही महर्षि दयानन्द तथा बन्दा वीर वैरागी आदि के जीवन से सम्बन्धित कहानियाँ भी सुनाया करते थे। बच्चों को अपने पास से मिठाई भी देते थे। आर्यसमाज के नियम भी याद कराते थे।

जिन दो महानुभावों को मैं कभी नहीं भूल सकता वे थे महात्मा हरप्रकाश जी तथा श्री लक्ष्म देव जी गुप्त। एक बार उक्त दोनों ही महानुभाव हमारे यहां भी पधारे थे। तब हम कृष्णानगर कालोनी में रहते थे। बातों ही बातों में प्रसंग उठ गया कि हमारा मकान छोटा है, बड़ा होना चाहिए। हमने कहा कि मकान के लिए जमीन तो ले ली गई है, किन्तु भवन निर्माण कला से अनभिज्ञ होने के कारण हमने नये मकान के निर्माण को विचाराधीन रखा हुआ है। तब तो क्या था। दोनों ही महानुभाव अगले दिन मकान का कच्चा मानचित्र बना लाये और उनके आशीर्वाद से एक ही सप्ताह में काम भी चालू हो गया। वे दोनों समय आते और मिस्त्री को अत्यन्त निरीह तथा निस्वार्थ-भाव से अगले दिन के कार्य का प्रारूप देते एवं दैनिक कार्य का निरीक्षण भी करते। घर का कोई भी सदस्य जब उनके इस उपकार के लिए धन्यवाद देने लगता तो वे तुरन्त ही उसे टोक कर प्रभु का धन्यवाद देने की प्रेरणा करते।

मेरा यह विश्वास है कि वानप्रस्थ के इन भूतपूर्व संरक्षकों के अनथक प्रयत्न के कारण ही आज का वानप्रस्थ इस उच्च स्थिति को प्राप्त हुआ है।

---o---
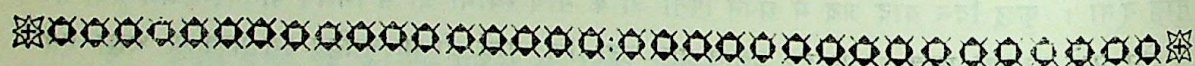
- जब स्वर्ण अपना भाषण शुरू करता है तो सभी श्रोता बन जाते हैं।
- जल्दबाजी में बनाये गये प्रस्ताव अधिक सुरक्षित होते हैं, बशर्ते वे जल्दी ही रद्द कर दिये जायें।
- वाचाल व्यक्ति न कभी सुन सकता है न सीख सकता है।

वैदिक त्रैतवाद

लेखक– श्री देवमुनि

परमात्मा व आत्मा अथवा ईश्वर व जीव तथा प्रकृति तीन तत्व संसार में हैं और तीनों ही अनादि व अनन्त हैं। यह तीनों कैसे एक साथ हैं अथवा आपस में क्या सम्बन्ध हैं, यह आगे दर्शाया जावेगा।

श्री देवमुनि

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

यह मन्त्र अथर्व वेद काण्ड ९ सूक्त १४ का २०वां है। तथा ऋग्वेदमंडल १ सूक्त १६४ का २०वां है। श्वेताश्वतरोपनिषद् के अध्याय ४ का ६वां है। मुण्डकोपनिषद् (तृतीयमुण्डक) प्रथम खण्ड का प्रथम मन्त्र है।

अर्थ – सदा साथ रहने वाले तथा परस्पर सख्य-भाव रखने वाले दो पक्षी (परमात्मा व आत्मा अथवा ईश्वर व जीव) एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर (हृदय सर्पी घोंसला में) रहते हैं। उन दोनों में से एक (परमात्मा अथवा ईश्वर) केवल देखता रहता है किन्तु दूसरा (आत्मा अथवा जीव) उस वृक्ष के फलों (कर्म फलों) को स्वाद ले लेकर खाता है।

भगवान् कृष्ण की गीता में संसार को वृक्षरूप में दो पक्षी ईश्वर व जीव मानकर इस का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार कठोपनिषद् में परमात्मा और आत्मा को गुहा में प्रविष्ट धूप व छाया के रूप में बताकर वर्णन किया गया है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यथमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।

साथ रहने वाले परमात्मा अथवा ईश्वर को पहचान लेता है और उस के भक्तों द्वारा सेवित परमात्मा की [illegible] ही शोक रहित हो जाता है और संसार के भोगो से मुह मोड़ लेता है।

परमात्मा अथवा परमेश्वर

भगवान् कृष्ण का अर्जुन को उपदेश --

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पद संग्रहेण प्रवक्ष्ये।।
गी०अ० ८, ११।।

वेद के जानने वाले जिस परमपद परमात्मा को ओ३म् नाम से कहते हैं और राग रहित यति लोग जिस में प्रवेश करते हैं तथा जिस परमपद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस परमपद (परमात्मा) को तेरे लिये संक्षेप से कहूंगा।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादि मत्परमं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।
गी० अ० १३. १२।।

जो जानने के योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य परमानन्द (परमात्मा) को प्राप्त होता है उसको अच्छी

प्रकार कहूंगा। वह आदि रहित परम ब्रह्म न स्थूल रूप से (अर्थात् नेत्रों से) और न अभाव रूप से कहा जाता है।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥
गीता १३।१५ ॥

चराचर सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है और चर अचर रूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर में भी स्थित है।

ज्योतिषामपि तज्ज्योति स्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥
गीता १३।१७

वह परमात्मा ज्योतियों का भी ज्योति तथा अन्धकार से अति परे कहा जाता है। (तथा वह परमात्मा) बोध स्वरूप जानने के योग्य है। वह तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला और सब के हृदय में स्थित है।

समस्त उपनिषदों का समर्थन

अणोरणीयान्महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।
श्वेता० ३ २० ॥

वह परमात्मा सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म बड़े से भी बहुत बड़ा इस मनुष्य के हृदय रूप गुफा में छिपा हुआ है। सब की रचना करने वाले परमात्मा की कृपा से उस संकल्प रहित परमेश्वर की महिमा को जान लेता है तथा सब प्रकार के दुःखों से रहित हो जाता है।

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगत विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनोहि प्रवदन्ति नित्यम्।
श्वे० अ० ३।२१ ॥

वेद के रहस्य का वर्णन करने वाले विद्वान जिस के जन्म का अभाव बतलाते हैं तथा जिसको नित्य बतलाते हैं, इस व्यापक होने के कारण सर्वत्र विद्यमान, सबके आत्मा, जरा, मृत्यु आदि विकारों से रहित, पुराण पुरुष परमेश्वर को मैं (परमात्मा का उपासक भक्त) जानता हूँ।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्
कठो० २।१२, श्वेता० ६।१२

जो सब प्राणियों का अन्तर्यामी अद्वितीय सबको वश में रखने वाला अपने एक रूप को बहुत प्रकार से प्रकट करता है, उस अपने अन्दर रहने वाले परमात्मा को जो ज्ञानी पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं उन्हीं को सदा रहने वाला वास्तविक सुख मिलता है, दूसरों को नहीं।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे
कठो० अ० १ व २।१८

नित्य ज्ञान स्वरूप परमात्मा न तो जन्मता है और न मरता है, यह न तो स्वयं किसी से हुआ है न कोई इससे हुआ है अर्थात् न तो किसी का कार्य है और न कारण ही है (अर्थात् आत्मायें या जीव इससे उत्पन्न नहीं हुये हैं जीव भी अनादि हैं) यह अजन्मा, नित्य सदा एक रस रहने वाला पुरातन है अर्थात् क्षय व वृद्धि से रहित है शरीर के नाश किए जाने पर भी इसका नाश नहीं होता।

अर्थात् परमात्मा शरीरों में भी है परन्तु शरीरों के नाश होने से वह नष्ट नहीं होता।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धम पापविद्धम्
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू र्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।
ईशो० ८। यजु० अ० ४०।८

वह (परमात्मा) परमतेजोमय, काया रहित, छिद्र रहित या क्षय रहित, शिराओं से रहित (अर्थात् स्थूलपंचभौतिक शरीर से रहित) दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप, शुभाशुभ कर्म सम्पर्क शून्य, सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ एवं ज्ञानस्वरूप, सर्वोपरिविद्यमान् है। न किसी का कारण न कार्य, स्वयं स्थित, अनादि काल से सब जीवों (आत्माओं) को कार्यानुसार यथायोग्य सम्पूर्ण पदार्थों का विधान करता है अर्थात् फल देता है।

आत्मा (जीव)

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।
गीता० अ० २।१२ ।

न तो ऐसा ही है कि मैं (कृष्ण) किसी काल में नहीं था अथवा तू (अर्जुन) नहीं था, अथवा यह राजा लोग (जो कुरुक्षेत्र रणभूमि में खडे हैं) नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे ।

भावार्थ – भगवान् कृष्ण ने स्वयं कहा कि उनकी आत्मा तथा रणभूमि में उपस्थित सभी व्यक्तियों में आत्मा समानरूप से विद्यमान है । सभी जनों की आत्मा कर्म के बन्धन में थी अर्थात् आवागमन के चक्र में थी । सभी परमात्मा से शासित थे, स्वयं परमात्मा नहीं थे ।

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तर प्राप्ति धीरस्तत्र न मुह्यति ।।
गी० २।१३ ।

जैसे शरीरधारी को इस देह में कुमार, युवा और वृद्ध अवस्था होती है वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है अर्थात् शरीर का परिवर्तन होता है । उस विषय में धीर पुरुष नहीं मोहित होते ।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा,
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।
गीता अ० २।२२ ।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही आत्मा (जीव) पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नये शरीर को प्राप्त होता है ।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।
गीता अ० २।२३ ।

इस आत्मा (जीव) को शस्त्रादि नहीं काट सकते हैं और इसको आग नहीं जला सकती है, और इसको जल नहीं गीला कर सकता है और वायु नहीं सुखा सकता है ।

स्वराज्य आन्दोलन अथवा स्वतन्त्रता संग्राम में इस मन्त्र अथवा श्लोक का भारत के नव युवकों में खूब प्रचार हुआ । सुविख्यात क्रान्तकारी खुदीराम बास को सन् १६०६ में जब फांसी पर लटकाया गया तो इसी का उच्चस्वर से पाठ करते हुए उसने अपनी बलि दी । परिणाम यह हुआ कि समस्त भारत में नवयुवकों को मृत्यु का भय जाता रहा । वह टोलियां बनाकर नगरों मे यही पाठ करते निकलते थे । तत्कालीन अंग्रेज सरकार अत्यन्त चिन्तित थी कि किस कानून के अन्दर दण्ड दिया जावे ।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितु मर्हसि ।।
गीता अ० २।३० ।

भारत (हे अर्जुन) यह देहधारी (आत्मा, जीव) सबके शरीर में सदा ही अवध्य (जिनका बध न किया जा सके) है, इस लिए सम्पूर्ण भूत प्राणियों के लिये(जो मर गए है) तू शोक करने के योग्य नहीं है ।

प्रकृति (माया)

परमात्मा तथा आत्मा के अतिरिक्त एक तृतीय तत्व है, जो उन दोनों के समान अनादि व अनन्त है परन्तु अचैतन्य है । इसके द्वारा ही परमात्मा आत्मा पर शासन करता है ।

भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है :

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान् ।।
गीता अ० १३।१६ ।

सत, रज तथा तम, त्रिगुणमयी तत्व और आत्मा (जीव) अर्थात् क्षेत्रज्ञ इन दोनों को ही तू अनादि जान और राग-द्वेषादि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान ।

कार्य करणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृति रुच्यते।
पुरुषः सुखदुखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥
गीता अ० १३।२०।

कार्य और कारण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी और शब्द स्पर्श, रूप, रस व गन्ध का नाम कार्य है। बुद्धि व अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना व क्षेत्र और घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा इन १३ का नामकरण है। आत्मा (जीव) सुखदुखों के भोगने में हेतु कहा जाता है, जिसका संकेत अथर्ववेद काण्ड ९ सूक्त १४ के - वें मन्त्र तथा ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६४ के २०वें मन्त्र में किया गया है।

सर्व योनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनि रहं बीज प्रदःपिता॥
गी. अ० १४।४॥

हे अर्जुन! नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं उन सब में त्रिगुणमयी प्रकृति गर्भधारण करने वाली माता है, और बीज को स्थापन करने वाला परमात्मा (परमेश्वर) पिता है।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः।
निवध्नन्ति महावाहो देहे देहिनमव्ययम्॥

हे अर्जुन! सत्त्वगुण, रजो गुण और तमोगुण यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण अविनाशी आत्मा (जीव) को शरीर में बांधते हैं।

सर्व द्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदातदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत॥
गी० १४।११।

जिस काल में इस देह में तथा अन्त करण और इन्द्रियों में चेतनता और बोध शक्ति उत्पन्न होती है उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्त्वगुण बढ़ा है।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ॥
गी० १४।

हे अर्जुन! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ और प्र अर्थात् सांसारिक चेष्टा तथा सब प्रकार के कर्मों का बुद्धि से आरम्भ एवं अशान्ति अर्थात् मन की चंचलता विषय भोगों की लालसा यह सब उत्पन्न होते हैं।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरु नन्दन॥
गी० १४।

हे अर्जुन! तमोगुण के बढ़ने पर अन्तःकरण इन्द्रियों में अप्रकाश एवं कर्त्तव्य कर्मों में अप्रवृत्ति प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अन्तःकरण मोहि वृत्तियां यह सब ही उत्पन्न होते हैं।

धर्मात्मा विद्वान् कुल (माता-पिता) में, अर्थात् वातावरण, में जहां आगे आत्मोन्नति के साधन उप हों उत्पन्न होता है।

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलनि स्तमसि मूढयोनिषु जायते॥
गी० १४।१

रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण बढ़ने पर मरा हुआ पुरुष, कीट, पशु आदि की मूढयोनि में उत्पन्न होता है।

कर्मणः सुकृतस्यातुः सात्त्विकं निर्मलम फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥
गी० १४।१

सात्त्विक कर्म तो सात्त्विक अर्थात् सुख ज्ञान वैराग्यादि निर्मल फल कहा गया है। और राजस कर्म फल दुःख तथा तामस कर्म का फल अज्ञान कहा गया है।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।
गी० १४।२

हे अर्जुन ! जो मनुष्य सत्त्वगुण के कार्य रूप प्रकाश को और रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्य रूप मोह को भी, न तो प्रवृत्त होने पर बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करता है।

प्रकृति तथा उस में स्थित सत्त्व, रज व तम और उस का प्रभाव मनुष्य पर किस प्रकार पड़ता है आदि का परिचय देने के पश्चात् अब श्वेताश्वतर उपनिषद के एक मन्त्र का भाव उद्घृत किया जाता है :-

सर्वज्ञ और अज्ञानी सर्व समर्थ और असमर्थ, वे दो अजन्मा है तथा इनमें सिवा भोगने वाले जीवात्मा के उपयुक्त भोग्य सामग्री से युक्त अनादि प्रकृति एक तीसरी शक्ति है, इन तीनों में से जो ईश्वर तत्त्व है वह शेष दो से विलक्षण है। क्योंकि वह परमात्मा अथवा परमेश्वर अनन्त सम्पूर्ण रूपों वाला और कर्तापन के अभिमान से रहित है। जब मनुष्य इस प्रकार ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों को ब्रह्म रूप में प्राप्त कर लेता है तब वह सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

एक दृष्टान्त देकर इस मन्त्र का भावार्थ प्रकट किया जाता है।

भारत चाहता है कि संसार के समस्त देश एक दूसरे के साथ मित्र बनकर रहें और कभी भी कोई देश किसी देश पर आक्रमण न करे।

भारत नाम में भारत के राष्ट्रपति, शासक तथा राजा के रूप में समस्त भारतवासी, शासित तथा प्रजा के रूप में और यहां का शासकवर्ग प्रधानमन्त्री से लेकर चपरासी तथा पुलिस का सिपाही सभी मिलकर शासन है, जिसके द्वारा अपराधी को दण्ड मिलता और देश भक्त देशोन्नति के निमित शुभ कार्य करने वाले को पुरस्कृत किया जाता है। ऐसे ही परमात्मा शासक अथवा राजा है, समस्त आत्मायें अथवा जीव समुदाय शासित वर्ग अथवा प्रजा है और प्रकृति शासन है जिसके द्वारा परमात्मा दुःख सुख के नाम से प्रत्येक आत्मा अथवा जीव को दण्डित अथवा पुरस्कृत करता है। जब कोई आत्मा प्रकृति के सत्व, रज, तम रूपी तीनों बन्धनों से ऊपर हो जाता है तब वह शरीर रहित होकर परमात्मा के साथ परमानन्द को प्राप्त कर लेता है अर्थात् मुक्त हो जाता है। इस उपमा से भारत के ब्रह्म का स्थान में विश्व व्यापी भावार्थ भली प्रकार प्रकट हो जाता है।

—०—

- संसार से सच्ची निराशा परम बल है।
- अपने को सब सांसारिक विषयों से हटा कर अपने में ही प्रभु का चिन्तन अथवा अनुभव करना अनन्य भक्ति है।
- स्वधर्म पालन में आई हुई कठिनाइयों को दृढ़ता पूर्वक सहन करना परम तप है।

यज्ञमय जीवन

लेखक — श्री महात्मा दयानन्द

ओं अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरूदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥

ऋ० ७-७३-१

१. देवयन्तः स्तोमं प्रति दधानाः

आर्य संस्कृति में त्य उसी को माना जाता है जहां मन, वचन, कर्म की समानता हो। यही सत्यनारायण की वास्तविक पूजा है यज्ञ द्वारा देवों की स्तुति सही तभी होगी जब यज्ञ भावना बनी हुई हो यज्ञ में एकाग्रता, पवित्रता, सत्कार, उदारता इत्यादि बने रहें । यज्ञ उपरान्त भी शेष जीवन, व्यवहार सब याज्ञिक सिद्धान्तों पर सुदृढ़ता से चले । यज्ञमय-जीवन के दो रूप आर्य आचार्यों ने बतलाये हैं—

(अ) अपने प्रति – निर्मलता, खोट-रहित, संग्रह-रहित, ओजस्विता हो ।

(आ) दूसरों के प्रति – प्रकाश, ताप, गति, सुगन्धि दें ।

अपने प्रति (क) निर्मलता=मलिनता आती है चरित्र में राग-द्वेष के कारण यही दोष अन्याय पक्षपात कराते हैं । जीवन निन्दनीय बन जाता है ।

कारण — इन दोषों के कारण हैं (१) हम अपने जीवन के उद्देश्य भूल गये । (२) परमेश्वर की सर्वज्ञता, सर्वविद्यमानता और न्यायकारिता को भूल गये । फलतः स्वार्थ संकीर्णता उपजी व बढ़ती गई ।

दण्ड — ऐसे मलिन जीवन वाले को घृणा, ईर्ष्या, द्वेष भावनाएँ सदैव जलाती रहती है, वह निद्रा तक में भी अनिष्ट चिन्तन करते रहते हैं तथा अशान्त, चिन्तातुर, भयभीत रहते हैं ।

(ख) खोट-रहित – खोट उसे कहते हैं जो असल नहीं या असलीयत से कम है परन्तु वाह्य दिखावा असल जैसा बना रखा है । आध्यात्मिक भाषा में खोट को 'दम्भ' कहते हैं ।

दम्भ — बुराई + कमी पर पर्दापोशी का प्रयास पर्दे के नीचे छिपी बुराई रोग समान बढ़ती हैं, छुटकारा न होगा ।

कारण — दम्भ का कारण मिथ्या अहंकार होता है । हम मन्त्र द्रष्टा ऋषि तो नहीं हैं, परन्तु दूसरों के सामने बनने का प्रयत्न करते हैं ।

दण्ड — चिन्ता बनी रहती है कि कली खुल न जाये, कमजोरी प्रत्यक्ष न हो, जो किसी ने स्पष्ट कर दी अथवा शंका उठा दी तो क्रोध उपजता है प्रतिकार के संस्कार जागते हैं, प्रचण्ड अशान्ति होती है ।

(ग) संग्रह-रहित – यहां भाव पार्थिव वैभव वस्तुओं का है, गुणों के संग्रह का नहीं । पार्थिव वैभव भार रूप है । चिन्ता-जनक है । चले जाने पर शोक रूपी शाप दे जाता है । उर्दू भाषा में इसे दौलत कहते हैं ।

दौलत -- दो लत = आये तो छाती पर लात मारे, मानव अकड़ जाए तो पीठ पर लात मारे कमर तोड़ जाए । पार्थिव वैभव ले जाना भी अवश्य होता है सृष्टि का नियम ही ऐसा है । संयोग-वियोग एक के बाद दूसरे ने आना ही है संसार एक हिंडोले का रूप हैं जो प्रभु देव की ईक्षण शक्ति से सदैव गतिमान है इसे भला कौन रोक सकता है ।

कारण -- लोभ प्रवृत्ति = विश्व भर की शक्ति में अविश्वास का होना । स्वार्थ प्रवृत्ति = हम सुखी हों संसार मरे तो मरे ।

दण्ड -- सम्पत्ति का बिगाड़ ह्रास अवश्य होगा ही—बनी ने बिगड़ना है । मोह युक्त अज्ञानी शोकग्रस्त हो मस्तिष्क संतुलन को खो बैठते हैं, माथा पीटते व आत्मघात करते हैं ।

(घ) ओजस्विता – वह दिव्य शक्ति जो अवगुणों को जला दे । प्रभुदेव की इस शक्ति की समझ उपमा से आवेगी । कोयले या लोहे के गोले को अग्नि में अर्पित किया उसने अपने तन्तु-तन्तु में अग्नि को धारण किया तो अग्निवत् बने वही रूप पाया अग्नि का कर्म अपनाया । जो अर्पित नहीं होते तो अग्नि भी धारण न हो पाती उसके रूप व गुण भी प्राप्त न हो पाते । ओजस्विता नहीं मिलेगी ।

कारण — जो प्रभु पूजा की आड़ में अपने लिए सेवा सत्कार पाने की चेष्टा बनी होगी ।

दण्ड — जीवन व वाणी प्रभावहीन हो जावेगी । मलिनता त्यागने से निर्मलता प्राप्त होगी । खोट दग्ध करने पर खोट-रहित होसकेंगे । संग्रह की भावना को त्याग कर शान्त निश्चिन्त होंगे । अवगुण त्यागने पर ओजस्वी बन पावेंगे । एक अवगुण पर विजय पाने वाले को दूसरे अवगुणों को निकालने की हिम्मत, साहस बल मिलता है ।

दूसरों के प्रति (१) प्रकाश = जीवन निर्मल हो, याज्ञिक भावनाओं से ओत-प्रोत हो, तो वह स्वतः ही प्रकट होता है। ऐसा जीवन दूसरे का मार्ग-दर्शक बन जाता है जैसे अंधेरे में सितारे। Life speaks louder than the lips.

उपमा = महर्षि दयानन्द जी की मृत्यु ने नास्तिक गुरुदत्त को आस्तिक बना दिया जब कि उपदेश परिवर्तित न कर पाये थे।

(२) ताप = कर्तव्य परायणता यह साधु स्वभाव व्यक्ति को सदैव प्रेरित करता है कि वह नरक में डूब रहे, व्यक्तियों को उबारने हेतु स्वयं अपने प्राण संकट में डाल उन्हें बचाने के लिए मुश्किलों से जूझता है।

तपस्वी पाप को दूर भगाते हैं, स्वयं सदैव दम्भ दिखावे से अछूते होते हैं। प्रायः अपने आपको ढक कर, छिपा कर रखते हैं। तपस्वी जीवन वाला सज्जन प्रभु विधान का स्वागत करता है, सहर्ष स्वीकारता है। वह हर मुसीबत में परमेश्वर की रहमत को तलाश करता है, विश्वास है कि प्रभु हितैषी हैं।

(३) गति= जीवन में गति ही तो जिन्दगी का चिह्न होता है। तीन व्यक्ति गति नहीं कर पाते अथवा अत्यन्त मन्द होंगे—

क. आलसी जिसे अपनी देह का मोह होता है, कष्ट की आशंका से भयभीत रहता है।

ख. निरुत्साही जिसे न अपनी हिम्मत न प्रभु का सहारा, अविश्वासी, सब प्रकार के साधन उपलब्ध होने पर भी कुछ नहीं कर पाते यह अभागे।

ग. जिनके पास भार बहुत है, संग्रह की भावना वाला उन में अहं, ममत्व भरा रहता है। ऐसे व्यक्ति पर-पीड़ा पर कभी पसीजते नहीं।

शरीर जीवन का उपयोग हो, भविष्य उज्ज्वल बनाया जाए प्रभु से दान का सुअवसर मिला है सदुपयोग कर लें महा दानी का आशीर्वाद, प्रसन्नता प्राप्त करने के इच्छुक ही गति करते हैं, जीवन की अग्नियों का उपयोग करते हैं।

(४) सुगन्धि=जीवन की सर्वश्रेष्ठ सुगन्ध तो चरित्र ही है। यह गन्ध निर्बाध हो कर फैलती है, क्योंकि तप की अग्नि गन्ध को विस्तृत करती है। जीवन-यज्ञ में भी मुख्यतः तीन चीजें पड़ती हैं —

समिधा स्थानीय – सुसंस्कृत सुप्रेरित दसों इन्द्रियां ।
घृत - स्थानीय – सरल निःस्वार्थ प्रेम, प्राणिमात्र के प्रति ।
सामग्री स्थानीय – शिव संकल्प, मातृबुद्धि ।

२. अस्य तमसः पारं अतारिष्मः

ऐसे दिव्य यज्ञमय जीवन अन्धकार दूर करते हैं । अन्धकार = पाप = राक्षस वृत्तियां – अराती वृत्तियां (यजु १ । ७), पाप सदैव अन्धेरे में किये जाते हैं, जिनका परिणाम है असुर योनियां (यजु ४० । ३) ।

इलाज क्या ?

३. अश्विना गीः

ज्ञानी याज्ञिक माता-पिता (मम्मी डैडी नहीं) यह सर्व प्रथम आध्यात्मिक वैद्य है जो राम, कृष्ण, दयानन्द, शिवा पैदा करते हैं ।

गृहस्थियो ! यदि चाहते हो ससार नरक से निकलें तो अपना जीवन निर्मल, निष्पाप उत्साह पूर्ण यज्ञमय तपस्वी बनावो । स्वयं बनो, संसार को बनाओ, तब समाज संसार का सुधार होगा ।

वेदादेश

४. पुरुतमा पुरुदंसा पुराजा

ओ श्रेष्ठतम कर्म करने वालो ! अग्रणी बन कर आगे-आगे चलो, प्रकाश की ओर चलो, संसार स्वयं पीछे आवेगा । कर्मनिष्ठ बन कर चलते चलो रुको नहीं, यज्ञ को त्यागो नहीं, तुम्हारे जीवन की स्वस्थता, स्थिरता, निष्ठा, श्रद्धा, सुव्यवस्था, स्नेहमयी सेवा को देख संसार पीछे आवेगा ।

५. अमर्ता हवते

जनसाधारण को चाहिये कि ऐसे ज्ञानी याज्ञिकों की प्रशंसा करें, अपने मध्य में बुलावें, ताकि हमारी कुरीतियां दूर हों आर्यत्व का प्रचार प्रसार हो ।

———o———

महर्षि दयानन्द और विश्व-शान्ति

लेखक — श्री आर्यभिक्षु, प्रधान—आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

महर्षि जैमिनी के पश्चात् ऋषि परम्परा में स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रथम महापुरुष हैं, जिन्होंने शाश्वत सनातन तथा सार्वभौम मानव-धर्म वेद धर्म की दुहाई ही नहीं दी, अपितु उसके लोप होने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न संसार के समस्त मत, तन्त्र तथा सम्प्रदायों की विधिवत् समीक्षा की (सत्यार्थ-प्रकाश ११ से १४ वें समुल्लास तक) । वह स्वयं स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखते हैं 'ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त ऋषि-मुनियों द्वारा अनुमोदित और प्रतिपादित सनातनधर्म ही हमारा धर्म है । इसे मानना व मनवाना अपना अभीष्ट । किन्तु कोई भी नूतन मत, पन्थ अथवा सम्प्रदाय चलाने की किञ्चित्मात्र भी इच्छा नहीं है ।' ऐसा लिखने में उनका हेतु उनके शब्दों में स्पष्ट है । 'सर्व सत्य का प्रचार कर सब को एक मत में करा, द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है ।'' इस कथन में उनके हृदय में विश्व-शान्ति के लिए एक ठोस रचनात्मक पुरोगम की स्पष्ट आभा मिलती है ।
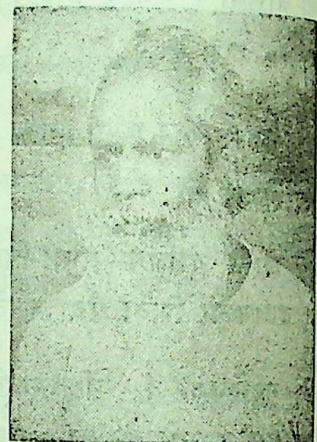
श्रीयुत् आर्यभिक्षु

संसार में अशान्ति के हेतु दो ही मौलिक हेतु हो सकते हैं । प्रथम भोग सामग्री की वितरण व्यवस्था और द्वितीय, भोक्ता का भोग के साथ सम्बन्ध । प्रथम स्थिति का समाधान सामाजिक क्रान्ति तथा राजनैतिक उथल-पुथल से होता रहता है । द्वितीय के लिये स्थान, समय तथा परिस्थिति के आधार पर पुरुष विशेष द्वारा उपस्थित विचार तथा विधि कार्य करते हैं । पहले के विस्तार स्वरूप राजतन्त्र से लेकर लोक तन्त्र तक की व्यवस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ और दूसरे के विस्तार स्वरूप मत, ग्रन्थ तथा सम्प्रदाय के रूप में पारसी, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन इत्यादि आचार पद्धतियों का प्रादुर्भाव हुआ । (जिन्दावस्ता, बाइबिल, कुरान, धम्मपद, त्रिपिटक) । इन्हीं दोनों पाटों के बीच विश्व की शान्ति पिसती रही और आज अपने शिखर पर पहुँच चुकी है । विश्व में अशान्ति के मूल कारणों में दो प्रमुख हैं । राजनीतिक मान्यताओं की रस्सा-कसी और मत-मतान्तरों की संख्या वृद्धि में होड़ की प्रवृत्ति । विश्व के इतिहास में जारशाही और उसका दुःखद अन्त एक ओर है, तो ईसाई मत की ही दो शाखाओं, कैथलिक और प्रोटेस्टेन्ट के मध्य की रक्त-रंजित बीभत्स गाथायें दूसरी ओर है । इस प्रकार जब दोनों ओर की स्थिति अत्यन्त भयावह तथा नाशकारी स्वरूप में विद्यमान थी तब इस धरा-

धाम पर बाल-ब्रह्मचारी, युगपुरुष, कान्ति-द्रष्टा भगवान दयानन्द का प्रादुर्भाव आर्यावर्त की पवित्र ऋषि भूमि में सम्पूर्ण अविद्या तथा अज्ञान का नाश करके विश्व-शान्ति स्थापनार्थ उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ ।

महर्षि दयानन्द दया का था सागर,
जगत की व्यथा का दवा बनने आया ।
तिमिर छा रहा था अविद्या का घरघर,
गगन में दिवाकर नया बनके आया ।।

महर्षि ने इस व्यापक अविद्या, अज्ञान तथा सत्य का भेद न करते हुए सिंहनाद किया, "मेरा अपना मन्तव्य वही है जो सब को तीन काल में एक सा मानने योग्य है । मेरी कोई अपनी नवीन कल्पना नहीं है, अपितु जो सत्य है उसे मानना और मनवाना और जो असत्य है उसे छोड़ना और छुड़वाना अपना अभीष्ट है ।" इसी सत्य के प्रकाशन संदर्भ में उन्होंने विश्व के समस्त नागरिकों के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक जय घोष दिया — 'अपने देश में अपना राज्य' इस प्रकार संसार के समस्त पराधीन राष्ट्रों की एक नूतनचेतना तथा स्फूर्ति इस दिशा में प्राप्त हुई और अपने देश के साथ ही अन्य पराधीन राष्ट्र भी स्वाधीनता के लिए खड़े हो गये । अनेकों ने परिणाम स्वरूप वर्षों की दासता से मुक्ति पाई और आज भी अनेक इस दिशा में संघर्षरत हैं । यह सब भगवान् दयानन्द के एक मन्त्र का चमत्कार है । उर्दू के एक कवि ने ठीक ही कहा है—

तू नहीं, पैगाम तेरा हर किसी के दिल में है ।
जल रही अब तक शमा रोशनी महफिल में है ।।

महर्षि ने इस दिशा में स्थायित्व लाने के निमित्त एक आन्दोलन का भी सूत्रपात किया – वह था संसार के श्रेष्ठ पुरुषों का संसार के कल्याण के लिए एक वेदी पर उपस्थित होना । इस आन्दोलन को निरन्तर चालू रखने के लिये संगठन का गठन भी किया जिसे आर्यसमाज अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का संगठन "Society of the noble men" कहते हैं । महर्षि ने इस आन्दोलन के तीन चरण निश्चित किये – एक ईश्वर, एक धर्म तथा एक विश्व "One God, one religion and one world" संसार में अनेक महापुरुषों ने इस दिशा में अपनी योग्यता तथा क्षमता के अनुसार कार्य किया किन्तु इस मौलिक त्रिसूत्र के अभाव में उनके सम्पूर्ण प्रयास विफल रहे । उदाहरण स्वरूप, मार्क्स का सर्वहारा दर्शन तथा गांधी जी का सर्वोदय । यहाँ एक ईश्वर से तात्पर्य एकप्राप्तव्य — 'One distinction and one God" से है । एक धर्म से अभिप्राय एक आचरण-संहिता से है और एक विश्व से अर्थ एक परिवार से है । जिस प्रकार से एक परिवार में रहने वालों का एक आदर्श इसकी प्राप्ति का एक माध्यम अर्थात्

सभी साधकों के साधन तथा साध्य का सामञ्जस्य । महर्षि ने इसके लिए तर्क युक्ति, प्रमाण तथा प्रयोग के आधार पर संसार के प्रमुखतम आचार्यों से वार्ता की और अपेक्षित प्रयास भी किया । उनके शब्दों में विश्व की अशान्ति का मूल कारण इस प्रकार के भेदों के माध्यम से उत्पन्न होने वाला घृणा और द्वेष का वातावरण ही है । "यद्यपि प्रत्येक मत, पन्थ तथा सम्प्रदाय में कुछ-कुछ अच्छी बातें हैं तथापि आचार्यों में परस्पर मतभेद होने के कारण अनुयायियों में मतभेद कई गुणा बढ़ कर घृणा और द्वेष की उत्पत्ति करता है । क्या ही अच्छा होता कि सभी आचार्य प्रवर एक स्थल पर बैठ कर मनुष्यमात्र के लिए सर्वतन्त्र, सार्वभौम तथा सनातन नियमों का संकलन कर पाते, जिससे मानव समाज घृणा और द्वेष से मुक्त होकर श्रद्धा और स्नेह की पवित्र स्थिति को प्राप्त होता ।" उन्होंने चांदपुर (उत्तर प्रदेश) में एक धर्म मेला के अन्दर इस प्रकार के विचार-विमर्श की व्यवस्था भी की । उसमें पादरी, मौलाना, पण्डित सभी उपस्थित थे । महर्षि ने तर्क, युक्ति, प्रमाण और प्रयोग से उन सब को सहमत न होते देख अन्ततोगत्वा एक अद्वितीय विधि उपस्थित की । सब अपने-अपने मत के श्रेष्ठ विचार पृथक्-पृथक् पत्रों पर लिखें । पुनः सब को एक साथ एकत्रित किया जाये और जो-जो विचार तथा आचार उपस्थित हों उनमें से सर्वमान्य विचार-आचार एक स्थल पर संकलित कर लिये जावें और हम सब उन पर हस्ताक्षर कर देवें, जिससे यह आचरण संहिता संसार के सभी मनुष्यों के लिए मान्य, व्यावहारिक तथा उपयोगी घोषित हो जावे और इस प्रकार परस्पर विभिन्न मतमतान्तरों के आधार पर विभाजित मानव समाज एकता के सूत्र में बंध कर विश्व में शान्ति स्थापित कर सके । उपस्थित किसी भी प्रतिनिधि (हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई तथा ब्राह्म-समाज) ने इसका स्वागत अपने क्षुद्र स्वार्थ तथा नेतागिरि के कारण नहीं किया ।

महर्षि भौतिक जगत् में भी अर्थ के दूषित वितरण के परिणाम का समाधान बताते हैं जो आज की समस्या का एकमात्र हल है । आज मजदूर जहां एक ओर कम से कम काम करना चाहता है, वहीं दूसरी ओर अधिक से अधिक वेतन चाहता है और इसी प्रकार महाजन जहां एक ओर अधिक से अधिक काम लेना चाहता है वहीं दूसरी ओर कम से कम वेतन देना चाहता । तात्कालिक समाधान के रूप में इस विषम मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप है मजदूर यूनियन, कर्मचारी संघ तथा मर्चेंट एसोसियेशन का विश्व में जाल बिछा दीखता है । समाधान तो ऋषि इसे पूर्णतया उलट देने में मानते हैं । अर्थ क्या हुआ ? मजदूर अधिक से अधिक काम करें और कम से कम वेतन लेने की इच्छा रखें और महाजन कम से कम काम लेकर मजदूरों को अधिक से अधिक देने की कामना करें । विश्व-शान्ति के लिए व्यक्ति को कम से कम समाज से लेना होगा और अधिक से अधिक समाज को देना होगा तभी वर्तमान अशान्ति, अनिश्चिन्तता तथा अराजकता का अन्त होगा अन्यथा कदापि नहीं । मुझे कहने दीजिए — आज हमें भोग में बासा — होटल की प्रवृत्ति से हट कर परिवार में पाकशाला प्रवृत्ति में आना होगा । हम जब होटल में भोजन करते हैं तो कम से कम होटल वाले को देकर अधिक से अधिक खा लेना चाहते हैं । किन्तु जब हम परिवार में भोजन करते हैं तो कम से कम खा कर अधिक से

अधिक परिवार के अन्य सदस्यों के लिए छोड़ना चाहते हैं । ऐसा मन कब बनेगा ? जब तन के निखार निमित्त दर्पण की भांति हमें मन के सुधार के लिए दर्शन मिलेगा । यह दर्शन जिस आचरण-संहिता में उपलब्ध है वह परमात्मा द्वारा प्रदत्त अपनी प्रजा के निमित्त विधि-निषेधात्मक वेद-ज्ञान है, जो सम्पूर्ण सृष्टि की अवधि के भीतर (चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष) उपस्थित विश्व के सभी श्रेष्ठतम उपभोक्ताओं मनुष्यमात्र के लिए समान रूप से सुखदायक तथा उपयोगी है । उससे हम न्यूनतम परिश्रम द्वारा अधिकतम सुख की प्राप्ति कर सकते हैं । इसे उपभोग के नियम – लातगयर कवायद "**Laws of Consumption**" कहते हैं । इसके अनुकूल चल कर हम शाश्वत सुख-आनन्द-मोक्ष की प्राप्ति कर सकतेहैं । जो मानवमात्र का एकमात्र अभीष्ट लक्ष्य है । इस आचरण-संहिता का प्रमुख भाग कर्मफल मीमांसा कहलाता है और वह इस प्रकार है -- दर्शनकारी की व्यवस्था में आयु. जाति तथा भोग मनुष्य को पूर्व जन्म के आधार पर ही मिलते हैं (यहां जाति शब्द का तात्पर्य योनि - – पशु, पक्षी, पतंग, मनुष्य आदि से है) । भोग दो प्रकार के हैं – एक सुखद तथा दूसरा दुःखद । दुःखद भोग में हम किसी का सहयोग प्राप्त कर ही नहीं सकते । कौन होगा ऐसा जो मेरे पचास बेत के दंड में कुछ स्वयं सहन कर मेरा सहयोग करना चाहेगा । किन्तु सुखद भोग में हम किसी को भी अपना भागीदार बना सकते हैं, और कोई भी भागीदार बनने को तैयार हो सकता है । उदाहरणार्थ मेरे पास भोग के पचास आम हैं । हम सब स्वयं भी खा सकते हैं और इनमें से आवश्यकतानुसार तथा इच्छानुसार चार आम खा कर शेष इक्कीस आम किसी को भी खाने को दे सकते हैं । स्वयं सम्पूर्ण खा जाने पर भोग मूलतया समाप्त हो जाता है । किन्तु कुछ खाकर और शेष दूसरों को खिला कर हम दूसरों को खिलाये हुये आमों के भोग के द्वारा अपने लिये नूतन कर्म का सृजन कर लेते हैं जो हमें पुनः इस जन्म अथवा दूसरे जन्म में मिलेगा । इस दर्शन के प्रचार और प्रसार में प्रत्येक व्यक्ति खाने के चक्कर से निकल कर खिलाने की होड़ में खड़ा हो जायेगा । तब विश्व में अशान्ति का प्रश्न ही नहीं रहेगा और स्थायी शान्ति स्वतः उपस्थित हो जायेगी । आज हम व्यवहार पक्ष में ऐसा मानते हैं--'**Foolish men invite or wisemen eat**"मूर्ख व्यक्ति खिलाते हैं और बुद्धिमान व्यक्ति खाते हैं । किन्तु स्थिति तब बदल जावेगी और नई लोकोक्ति तैयार होग — "**Wise men invite and foolishmen eat**" बुद्धिमान व्यक्ति खिलाते है और मूर्ख व्यक्ति खाते हैं । परिणाम स्वरूप समस्त मानव समाज एक परिवार की संज्ञा को प्राप्त हो जावेगा जिसका प्रत्येक सदस्य कम से कम उपयोग करके अधिक से अधिक दूसरों के उपभोग निमित्त छोड़ने में अपने सम्पूर्ण विवेक और कौशल को लगा देगा, जिससे विश्व-शान्ति का महर्षि कल्पित रूप साकार हो उठेगा ।

"अपनी आवश्यकता से अधिक पर अपना अधिकार मानना सामाजिक हिंसा है ।" इससे बचना ही विश्व-शान्ति का एकमात्र हल है ।

— — ० ——
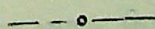
यज्ञ - सौरभ

लेखक — श्री पंडित वीरसेन वेदश्रमी, वेद-विज्ञानाचार्य
वेद सदन, महारानी पथ, इन्दौर

सुगन्धित वायु सब को प्रिय है

सुगन्ध सभी को प्रिय है। मनुष्यों को भी प्रिय है, देवों भी प्रिय है। वृक्ष वनस्पतियों को भी प्रिय है। जब कभी कोई व्यक्ति देवकर्म, यज्ञ, पूजा या शुभ कर्म प्रारम्भ करता है तो बिना सुगन्ध द्रव्य से नहीं करता, चाहे वह किसी देश या समुदाय का हो। जब परमात्मा ने सृष्टि की रचना करके मनुष्यों की उत्पत्ति की उस समय वसन्त ऋतु थी। सर्वत्र वृक्षों में नवांकुर प्रकट हो रहे थे। पुष्पों से वृक्ष लदे हुए थे। उनकी सुमधुर गन्ध वायु मण्डल में व्याप्त हो रही थी। मनुष्य ने जो प्रथम श्वास पृथ्वी के वायु मण्डल में ग्रहण किया था वह सौरभ युक्त था। वसन्तोऽस्यासीदाज्यम् (यजुर्वेद ३१।१४) मन्त्र के अनुसार सृष्टि यज्ञ में वसन्त ऋतु घृत बन कर सुगन्धित, सुरभित घृत बन कर आहुति प्रदान कर रही थी। परमात्मा के उस यज्ञ-सौरभ से मनुष्य ने जीवन धारण किया।

सृष्टि के प्रारम्भ में यज्ञ सौरभ व्याप्त था

इस में प्राण है। इसमें आह्लादक गुण है। इस में मन को शान्ति एवं स्थिर करने की शक्ति है। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार को बाह्य विषयों से हटाकर अन्तर्मुख करने की इसमें शक्ति है तथा ध्यानावस्था में प्रवेश कराने की भी सामर्थ्य है। सुगन्ध युक्त वायु जब नासिका के अग्रभाग का स्पर्श करती है तुरन्त दीर्घ श्वास के द्वारा सभी उसको अपने अन्दर धारण करते हैं। मानो प्रिय प्राणों को अपना प्रिय प्राप्त हो गया हो।

उत्तम विचारों के प्रादुर्भाव के लिये यज्ञ सौरभ आवश्यक

सुगन्धित, सुरभित वातावरण में दैवी विचारों को पुष्टि मिलती है और बल मिलता है। ये 'मनः शिव संकल्पमस्तु' (यजु. ३४।१) के अनुसार शिव अर्थात् कल्याण कारिणी सौरभ से हमारा मन भी शिव संकल्पों से युक्त होता है। यदि सृष्टि की सौरभमय यज्ञ प्रक्रिया के साथ हम भी यज्ञ करें और उसमें सुगन्धित पदार्थ युक्त घृत की आहुति दें, तो उस यज्ञ सौरभ से हमारा पर्यावरण, हमारा वायु-मण्डल, हमारा अन्तरिक्ष मण्डल अवश्य विशेष सुगन्धित होगा, जिससे दुर्गन्धि का विनाश होगा।

जीवन के लिये सुरभित वायु ही उपयोगी है

दुर्गन्ध युक्त वायु में प्राण शक्ति नहीं होती। अतः वह प्राणों को प्रिय नहीं लगती। उसे बाहर ही रोकने का प्रयत्न करना पड़ता है। कोई उसे अपने अन्दर ग्रहण नहीं करना चाहता। वह अप्रिय

ही लगती है । जो प्राणों को अप्रिय हैं वही प्राण घातक है । अतः दुर्गन्धित वायु प्राण शक्तिहीन, प्राणघातिनी आसुरी शक्ति है । हमें अपने जीवन के लिए, आरोग्यता के लिए तथा स्वास्थ्य के लिए आसुर प्राण=दुर्गन्धयुक्त वायु की आवश्यकता नहीं है, अपितु दुर्गन्ध रहित, शुद्ध तथा सुरभित वायु की आवश्यकता है । इससे हमारे अन्दर शुद्धता होती है ।

यज्ञ की सौरभ में जीवन है

सौरभ का अर्थ सुगन्ध है । सौरभ शब्द का मूल सुरभि है । सुरभि का अर्थ सुगन्ध के अतिरिक्त गौ भी है । सुरभि अर्थात् गौ से उत्पन्न पदार्थ सौरभ वाची हुए । गो घृत ही गौ का सौरभ है । उस गो घृत को जब यज्ञ में आहुति रूप से प्रदान करते हैं तो यज्ञ की सौरभ और भी सार्थक तथा समर्थ हो जाती है । जिस स्थान में यज्ञ की सौरभ व्याप्त रहती है वहां स्वास्थ्य एवं जीवन का सागर विद्यमान रहता है और जहाँ यज्ञ सौरभ विद्यमान नहीं रहती वहाँ के लिए ही कहा गया कि स्वाहा स्वधाकार विर्वजितानि श्मशान तुल्यानि गृहाणि तानि – अर्थात् यज्ञ-रहित गृह श्मशान के समान है ।

गो घृत का श्रेष्ठ उपयोग आहुति में है

गौ घृत का जब कोई भोजनादि में उपयोग करता है तो पदार्थ घृत की सौरभ से युक्त हो कर स्वादिष्ट हो जाते हैं और स्वास्थ्य को भी अपूर्व लाभ पहुँचाते हैं । इतना ही गौ घृत जो एक मनुष्य भोजन में अपने लिए खाकर तृप्त पुष्ट होता है यदि उसे यज्ञ में आहुति के रूप में प्रयुक्त करें तो उससे कई गुना लाभ उसको तथा अन्य सभी को होगा । जिन परिस्थितियों या रोगों में वर्तमान चिकित्सक घृत के प्रयोग का निषेध करते हैं – उनमें भी अपूर्व, अद्भुत लाभ होता है । अतः यज्ञ सौरभ से भयभीत नहीं होना चाहिये । यजुर्वेद अ० १, मं० २३ में कहा है – मा भेः – अर्थात् यज्ञ से मत डरो – मा संविक्थाः – अर्थात् यज्ञ से विचलित मत होवो । यज्ञ से विचलित होना, यज्ञ का अनुष्ठान न करना रोग, शोक, दुःख दारिद्र्य को आमन्त्रित करना है ।

वायु मण्डल को निर्विष करने के लिए गौ घृत समर्थ है

गौ घृत में विषनाशक शक्ति है । जब कोई विष खा लेता है तो उसका उपचार गौ घृत से सरलता से हो जाता है । जब सांप काट लेता है तो उसको भी गौ घृत पिलाने से जीवन मिलता है । इसी प्रकार इस विषाक्त वायु मण्डल का विष भी गौ घृत के द्वारा नष्ट होता है । वायु मण्डल में घृत को व्याप्त करने का एक ही प्रकार है कि अग्नि में घृत की आहुतियां प्रदान कर वायु मण्डल को यज्ञ सौरभ से पूर्ण कर दिया जावे, जिससे वायु मण्डल निर्विष हो सके । इससे सरल एवं कम व्यय का अन्य कोई उपाय है ही नहीं ।

घृताहुति की सामर्थ्य

घर में घृत का घड़ा भरा हुआ है। दुकान में कई टीन घृत के विद्यमान हैं और घी की मण्डी में मनों घी उपस्थित है। परन्तु वह अन्तरिक्ष के वायु मण्डल को शुद्ध नहीं कर पाता। वह वायु की दुर्गन्ध को नष्ट नहीं करता और न वायु मण्डल को सुगन्धित ही करता है। यदि मनों घृत में से केवल ६ माशा घृत की एक आहुति प्रज्वलित अग्नि पर दी जाये तो तुरन्त दुर्गंध का नाश हो कर घृत की सौरभ व्याप्त हो जायेगी। जिसने आहुति पड़ते नहीं देखा तथा आहुति का स्थान भी नहीं देखा और स्वाहा की ध्वनि भी नहीं सुनी, उसको भी उसकी गन्ध का ज्ञान हो जाता है। वह सौरभ किसी को अप्रिय नहीं प्रतीत होती। उसको सभी प्रिय अनुभव करते हैं।

यज्ञ द्वारा रोग निवारण का हेतु

यज्ञ की वह प्रिय सौरभ नासिका मार्ग से प्रवेश करके फेफड़ों में प्रवेश करती है तो फेफड़ों (लंग्स) के अन्दर जो छोटे-छोटे वायु के कोष विद्यमान हैं, उनमें यह व्याप्त हो जाती है। उसके प्रवेश से फुफ्फुस के वायु कोषों के अन्दर का अशुद्ध भाग शुद्ध होने लगता है। इस प्रकार यज्ञ के वायु मण्डल में बार-बार दीर्घ श्वास प्रश्वास सें वायु कोश शुद्ध हो जाते हैं। यज्ञ की वह सौरभ शुद्धि के साथ पुष्टि भो करती है तथा उसमें प्रविष्ट रोग कीटाणुओं का नाश भी करती है।

यज्ञ से रक्त शुद्धि

फेफड़ों में वायु कोषों के साथ रक्त के भी कोष हैं जिनमें वह शुद्ध होने के लिये आता है। वायु कोषों से प्राण वायु रक्त कोषों में चली जाती है और रक्त शुद्ध हो जाता है। रक्त की अशुद्धि वायु कोषों में प्रविष्ट होकर प्रश्वास द्वारा वाहर निकलती रहती है। यदि फुफ्फुस ही रोग युक्त हो जायें तो उसकी रक्त शोधन की क्षमता कम हो जायेगी और शरीर में रक्त का वल क्षीण हो जायेगा, जिससे निर्बलता, रोग, क्षयादि से अनेक कष्ट होते हैं। अत: यज्ञ सौरभ वायु को जब कोई रोगी ग्रहण करता है तो उसके रक्त पर भी शुद्धि, पुष्टि तथा आरोग्यता का प्रभाव पड़ता हैं। जो असाध्य रोगी अनेक प्रकार की चिकित्सा और औषधोपचार से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त नहीं कर पाते वे यज्ञ के सौरभ से अति शीघ्र तथा आश्चर्यजनक रूप से रोग मुक्त हो कर स्वास्थ्य लाभ एवं जीवन लाभ प्राप्त करते हैं।

यज्ञ के प्रभाव से गूंगी कन्या बोलने लगी

सूरत में एक ११ वर्षीय जन्म से गूंगी ज्योति नाम की वालिका की बहुत चिकित्सा गूंगेपन को दूर करने के लिए की गई थी – परन्तु उसको कुछ भी लाभ नहीं हुआ था। सूरत में एक बड़े यज्ञ का आयोजन श्री पंडित आनन्द प्रिय जी आर्य कन्या महाविद्यालय, बड़ौदा ने आयोजित कराया। कन्या की

बुआ ने मुझ से कहा कि यह गूंगी है । कहीं लाभ नहीं हुआ इसे वाणी प्राप्त हो इसलिए इसको यज्ञ में बैठाइये । उसको यज्ञ में नियम से बैठाया गया । ८-९ दिन में वह अच्छी प्रकार बोलने लगी ।

यज्ञ का हृदय रोग पर अद्‌भुत प्रभाव

हृदय के रोग से आक्रमित रोगियों पर भी यज्ञ प्रक्रिया का आश्चर्यजनक लाभ देखा । रोग का आक्रमण हुए ७-८ दिन हुए थे । चिकित्सकों ने उनको बिस्तर पर पड़े रहने की सलाह दी थी तथा उनमें २०-२५ पग चलने की भी सामर्थ्य नहीं थी । ऐसे जामनगर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को यज्ञ में थोड़ा-थोड़ा बैठाया । केवल ९ दिनों के अन्दर ही उनमें अपूर्व सामर्थ्य. बल आ गया और एक पूर्ण स्वस्थ की भांति कार्य करने लगें ।

यज्ञ का धूम हानिकारक नहीं

एक ऐसे ही व्यक्ति को जिसे हृदय रोग का तीसरा आक्रमण हुआ था, जो रुग्ण शय्या पर था, प्रतिदिन ४-४ घंटे यज्ञ में एक मास तक बैठाया । यज्ञ प्रारम्भ होते ही उसकी सब अशक्ति दूर हो गई और यज्ञ के धूयें से पुनः हृदय रोग के आक्रमण का भय निर्मूल हो गया । इस यज्ञ में तो यज्ञ समय में भयंकर रूप से धूम रहता था क्योंकि ५ फुट × १० फुट के एक कमरे में जिसमें ३ फुट लंबी चौड़ी गहरी वेदी बनी थी और वर्षा के कारण समिधा भी पूरी सूखी नहीं थी तथा आहुति दाता भी उसमें भी ८ से १२ व्यक्ति रहते थे. कमरे में केवल २ ही द्वार थे और खिड़की भी नहीं थी । उस में कितना अधिक धुआं हुआ होगा इसका अनुमान करें । ४ वर्ष इस को हो गये अभी तक वह स्वस्थ है । अर्थात् यज्ञ के धूम या यज्ञ के सौरभ से अपूर्व लाभ होता है ।

यज्ञ से आम्रवृक्ष में फल आने लगे

श्री गंगाराम जी मेहता चेम्बूर बम्बई में रहते हैं । उनके बंगले की भूमि में कुछ आम के वृक्ष हैं । एक आम के वृक्ष में बौर भी नहीं आता था तो फल कहां से आवे । उन्होंने अपने यहां यज्ञ के लिए आमन्त्रण दिया । सौभाग्य से यज्ञ वेदी उसी आम के वृक्ष के नीचे ही बनाई गई । ७ दिन यज्ञ हुआ । उस वर्ष उसमें बौर भी आया और पत्ते भी आये । इसी प्रकार से वृक्ष वनस्पतियों के ऊपर तथा अनेक रोगियों पर यज्ञ का अद्भुत लाभ हुआ ।

यज्ञ करने से आक्सीजन की वृद्धि होती है

यज्ञ करने से जितना आक्सीजन घटता है उससे कई गुना आक्सीजन बढ़ जाता है । इसका कारण यह है कि यज्ञ की सौरभ जब वृक्षों को प्राप्त होती है तो उनकी जीवन शक्ति बढ़ जाती है और आक्सीजन उत्पन्न करने की सामर्थ्य भी बढ़ जाती हैं ।

यज्ञ से कार्वनडाइआक्साइड की वृद्धि नहीं होती

कार्बन डाइ आक्साइड काष्ठ ईंधन जलाने से उत्पन्न होगा । यज्ञ में ईंधन कम जलाया जाता है और उस थोड़े से ईंधन को घृताहुति द्वारा प्रचण्ड रखा जाता है । जो ईंधन से कार्बनडाइ आक्साइड उत्पन्न होता है उसको गोघृत को आहुति तुरन्त नष्ट कर देती है । रशिया के वैज्ञानिकों का दल कुछ वर्ष पूर्व भारत आया था तो उसने बताया था कि हमारे साइबेरिया में कार्बनडाइ आक्साइड की वृद्धि एवं संग्रह से ऋतुवैपरीत्य होने लगी थी, वैज्ञानिकों ने बताया कि कार्वनडाइ आक्साइड को नष्ट करने में गौ घृत की आहुति को सर्वोत्तम समर्थ उपाय उन्होंने परीक्षणों के आधार पर मान्य किया है।

कैंसर के निराश रोगी पर यज्ञ का अद्भुत प्रभाव

अभी २ वर्ष के भीतर की घटना है । इन्दौर के डा० कैप्टिन टी० आर० सोलंकी की धर्मपत्नि को डाक्टरों ने कैंसर बताया था । कैंसर हास्पिटल में चिकित्सा भी हुई । निराशा और अति चिन्ताजनक स्थिति से उसको देखकर यज्ञ में गिलोय का प्रयोग तथा उसी का स्वरस पिलाने को मैंने परामर्श दिया । ८-१० दिन पश्चात् ही स्थिति आश्चर्य-जनक रूप से परिवर्तित हो गई । नव-जीवन संचालित हो गया । यज्ञ की सौरभ ने पुनर्जीवन प्रदान किया । अतः यज्ञ की सौरभ महौषधि है ।

यज्ञ शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति भी उत्पन्न करता है

एन्टीबेक्सिन पद्धति से रोग प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न की जाती है । अनेक रोगों के लिए ऐसे अनेक एन्टीबेक्सिन हैं । कुम्भ आदि मेलों में जाने के समय लोगों को कालेरा का इन्जैक्शन लगा कर सरकार जाने देती है, जिससे उनको हैजा होने का भय नहीं रहता । ऐसे इन्जेक्शन उन्हीं रोगों के कीटाणुओं से बनते हैं । इन्जेक्शन द्वारा शरीर में वे प्रविष्ट होकर हैजा का प्रतिरोध करते हैं । ठीक इसी प्रकार यज्ञ में जो ४ प्रकार के होम पदार्थों का महर्षि दयानन्द जी ने विधान किया है उनसे समस्त रोग दूर होते हैं और वे रोग प्रतिरोधक शक्ति भी उत्पन्न करते हैं ।

उन्माद रोगी को यज्ञ से तुरन्त लाभ

इटावा (उत्तर-प्रदेश) शहर में स्नातक कृष्णदेव जी आयुर्वेद शिरोमणि अच्छे ख्याति प्राप्त वैद्य है । उनके पुत्र को उन्माद रोग हो गया । आयुर्वेदिक तथा एलोपेथिक चिकित्सा, उपचार और आधुनिक प्रयोग द्वारा चिकित्सा में कोई कमी उन्होंने नहीं रखी । परन्तु लाभ यथोचित नहीं हुआ । ऐसी परिस्थिति में यज्ञ का मार्ग उन्हें ग्रहण करना पड़ा । एक हजार गायत्री मंत्र से यज्ञ किया । आश्चर्यजनक परिणाम यह हुआ कि एक दम ६५ प्रतिशत

लाभ हो गया । यज्ञ में घृत, हव्य-पदार्थ, समिधा आदि के अतिरिक्त मंत्र की ध्वनि का भी प्रभाव पड़ता है। यज्ञ में इन सब का अपूर्व सम्मिश्रण है ।

दिव्य द्रष्टा महर्षि दयानन्द की घोषणा

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती महान् योगी थे । महान् भविष्य द्रष्टा थे। संसार का उपकार करने में सर्वाग्रणी थे । उन्होंने प्राचीन यज्ञ प्रणाली को जीवित किया और घोषणा पूर्वक कहा कि यज्ञ करने से वायु शुद्ध होगी। रोग, दुःख, दारिद्रय दूर होंगे। सुमति प्राप्त होगी। अर्थात् अशुद्ध एवं दुर्गंधित वायु में जीवन व्यतीत करने से रोग, दुःख और दारिद्रय बढ़ेंगे । यह पृथिवी नरक के दुःखों से पूर्ण हो जायेगी। स्वर्ग इस पृथिवी पर यदि आ सकता है तो यज्ञ करने से ही आ सकता है। स्वर्ग के सुख इसी पृथिवी पर इसी जीवन में प्राप्त हो सकेंगे। वास्तव में यह सत्य ही है परम सत्य है ।

वर्तमान समय में वायु प्रदूषण की वृद्धि

आज के वायु मण्डल में लाखों टन डीजल, पेट्रोल, मोबाइल का दुर्गंध युक्त धुवां पृथिवी पर व्याप्त हो रहा है । स्कूटर, कार, ट्रक, बस, रेल इंजन वायु यान हजारों लाखों की संख्या में तेजी से गति करते हुये समस्त दिशाओं में दुर्गंध की सहस्र धारायें वेग से प्रवाहित कर रहे हैं । लाखों कल-कारखानों, फैक्ट्री दुर्गंध युक्त धूम के साथ विषैली गैसों का प्रसारण करके पृथिवी, जल, वायु, वृक्ष, वनस्पति, अन्न सभी को दूषित एवं विषाक्त कर रही हैं ।

पञ्जाबी प्रश्नोत्तरी : स्वामी दयानन्द सरस्वती ब्रह्मचारी

लेखक — श्री गीताराम जी 'वीर'', उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, शिमला (हिमाचल-प्रदेश)

किस दे बिना जनानी की कदर नाहीं ?	)
किस दे बिना उजाड़ हो जावे क्यारी ?	) स्वामी
दस्सो प्यारेओ धर्म दा मूल की है ?	दया
किसनूं लभ दी फिरे एह खलक सारी ?	आनन्द
किसने कर लिया सारा संसार काबू ?	)
बान बाणां दा मार बलवान कारी ?	) सरस्वती
दस्सो मौत तों नहीं है कौन डरदा ?	ब्रह्मचारी
स्वामी दयानन्द सरस्वती ब्रह्मचारी ॥	

आर्य-समाज की दार्शनिक भित्ति

लेलक— डा० रामेश्वर दयाल गुप्ता एम. ए. पी-एच. डी., ग्रार्य नगर-ज्वालापुर

डा० रामेश्वर दयाल गुप्त

ग्रार्य समाज की दार्शनिक भित्ति वैदिक त्रैत-वाद है। इस दर्शन में ईश्वर, जीव एवं प्रकृति की ग्रनादि सत्ता मानी गई है—ईश्वर प्रकृति में विकृति करके भोग पदार्थ उपस्थित करता है जो कि जीव के उपयोग के लिए हैं। परन्तु हरेक जीव हरेक भोग-पदार्थ पर ग्रधिकार नहीं रखता यह भोग उसे ग्रपने कर्मानुसार ईश्वरीय न्याय व्यवस्था से मिलते हैं। वैदिक समाज व्यवस्था भी इसी दर्शन पर ग्राधारित है।

२- वैदिक साहित्य ग्रौर तत्कालीन लोक साहित्य, भारतीय महाकाव्यों ग्रौर कथानकों में सर्वत्र ही प्रचुरता से ग्रात्मा के जन्म जन्मान्तर की ग्रपरिहार्यता का उल्लेख ग्राया है। इससे तात्पर्य यह है कि सदा रहने वाले ग्रनादि-ग्रमर ग्रात्मा द्वारा कर्म-फलानुसार भिन्न-भिन्न योनियों के स्थूल शरीर-धारण कर प्रकट होना होता है वही इसका भौतिक जन्म है। यों तो इन सब जन्म-जन्मान्तरों में एक रस रहने वाला व्यक्तित्त्व ग्रपने संस्कारों का बोझ लादे हुए वह एक ही है। वह किसी एक काल में निर्मित नहीं है। क्षण-भंगुर भी नहीं है। पार्थिव पदार्थों से वह परे है। माता-पिता के रज-वीर्य से तो शरीश बनता है। उसमें वह ग्राकर उस का ग्रध्यक्ष बन जाता है। वह जाता ही ऐसी परिपक्व योनि में है जहां उसके कर्म के संस्कार उसे जाने पर मजबूर करते हैं।

कर्म के दो रूप हैं एक भौतिक तथा एक संस्कार जन्य सूक्ष्म। भौतिक विभाग का फल इसी जन्म में तुरन्त मिल जाता है जैसे मदिरा से नशा तथा विष से मृत्यु। पर सूक्ष्म विभाग जीव पर सूक्ष्म-शरीर तथा कारण शरीर बन कर ग्रात्मा पर छा जाता है ग्रौर ग्रपना रंग लाता रहता है। इस प्रकार इस जन्म में किये हुये शुभाशुभ कर्मों का उचित फल ग्रागामी जन्मों में मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् में राजा जनश्रुति को रैक्व मुनि ने इस प्रक्रिया का तारतम्य यों समझाया है :-

३- जब मृत्यु का समय ग्राता है तब सब इन्द्रियों की वृत्ति वाणी में लय हो जाती है। वाणी की वृत्ति मन में ग्रौर मन की वृत्ति तब प्राण में परिवर्तित हो जाती है। जागृत अवस्था में पांच कर्मेन्द्रियां ग्रौर पांच ज्ञानेन्द्रियां मन की इच्छाग्रों पर नाचती थीं। पर मृत्यु के समय मन भी प्राण-चैतन्य के वश में चला जाता है। तब प्राण ही जीवन की स्थिति के ग्रनुरूप नये निर्माण में जुट जाते हैं। वह निर्माण चाहे ग्रच्छा हो या बुरा उसका निर्णय चेतना के शरीर छोड़ते समय ही हो जाता है। जिन्होंने इस जन्म में अपने को विकसित किया होता है वे ग्रनेक गुणों ग्रौर संस्कारों से युक्त सुन्दर जीवन पाते हैं। पर जिनकी इन्द्रियों के प्रति लालसा जागृत बनी रहती है वे जन उन इच्छाग्रों की पूर्ति के लिए पुनः कोई शरीर धारण करते हैं।

४- जब तक सृष्टि का प्रत्येक जीव पूर्णता प्राप्त नहीं कर लेता, यह क्रम जारी रहता है। जब जीव के सूक्ष्म शरीर में पशु के संस्कार ग्रात्मसात हो जाते हैं तब हम कहते हैं कि ग्रमुक ने तो ग्रपने को पशु सा बना लिया है। पर ऐसा होने पर उसका व्यक्तित्त्व पशु के शरीर ही में व्यक्तीकरण पा सकता है। उसका ग्रारम्भ यहीं हो जाता है ग्रौर मर कर ऐसा व्यक्ति पशु योनि में चला जाता है। भिन्न-भिन्न योनियों में भिन्न प्रवृत्तियों की स्वाभाविक

(Natural Selection) छंटाई होती है और तब नये परिवर्तन का सूत्र पात होता है। अनिष्ट प्रवृत्तियों के लोप और इष्ट प्रवृत्तियों के आगम के लिये ही भिन्न-भिन्न योनियों की व्यवस्था है। दोष से प्रवृत्ति जन्मती है। और मिथ्या ज्ञान दूर होने से दोष दूर होता है। प्रवृत्ति तब नष्ट हो जाती है। पर यदि शरीर छूटते समय कोई वासना शेष न हो तो पुनर्जन्म आवश्यक नहीं है। वह तो कैवल्य अर्थात् मुक्ति पथ की ओर जाना है अन्यथा जन्म जन्मान्तर होता रहता है।

५- हमारा हरेक कर्म बहुप्रभावी होता है। उसका एक प्रभाव तो हमारे चित्त पर पड़ता है और दूसरा विश्व पर भी पड़ता है। यह जो दूसरा प्रभाव है उसी में वह अपने भावी जीवन का वातावरण भी तैयार करता है। वातावरण कोई बाहर से उत्पन्न चेतन शक्ति नहीं है। उसे तो हम स्वयं निर्माण करते हैं।

इन्हें क्रियमाण-कर्म कहते हैं। विचार करना स्वयं में एक कर्म है प्रत्येक विचार कार्य-कारण भाव की अनन्त शृंखला की एक कड़ी होती है। प्रत्येक कार्य साथ ही साथ किसी दूसरे कार्य का कारण बनता है। इस अखण्ड शृंखला की प्रत्येक कड़ी तीन अवयवों इच्छा, विचार और क्रिया की सङ्घटक (co-ardinator) है। इच्छा विचार को पैदा करती है। विचार क्रिया का रूप धारण करता है। क्रिया आगे आने वाले भाग्य का नाता बाना बुनती है।

मानसिक कार्य भी फल देते हैं, यद्यपि हम उन्हें पूरा नहीं कर पाते हैं। उन्हीं से सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है। मानसिक पाप और व्यभिचार से वह अन्दर की चादर मैली तो होती ही है। जो मन ही मन दूसरे की वस्तु के प्रति स्वार्थ पूर्ण लोभ रखता है, तो उसके आगामी जन्म में चोर बनने की आशंका है। वैसे ही बंठे २ किसी से अकारण द्वेष और प्रतिकार की भावना रखने से हत्यारा बन जाने की आशंका है।

६- प्रारब्ध पूर्व जन्म का पुरुषार्थ है इस जन्म का पुरुषार्थ अगले जन्म प्रारब्ध का निर्माता है। जीवात्मा की यात्रा जिस स्थान से प्रारम्भ हुई थी, वहीं से फिर शुरू हो जाती हैं। यदि मनुष्य अपने जीवन को संवारने, सुधारने और ऊर्ध्वगामी बनाने में लग जाता है तो पिछले जीवन के अशुभकार्यों का फल भोगते हुए भी उसका जीवन उदात्त हो जाता है। यदि इस नये जन्म में भी पूर्व प्रारब्ध कठिन पड़ा तो अघानन्तर जीवन मे जन्म श्रीकुल में मिलता है। हर बार मृत्यु एक विधि व्याख्या है। मात्र संयोग नहीं है। वह परमात्मा की नियन्त्रित व्यवस्था है।

७- हां मनुष्यों में फल वितरण की समस्या ऐसी है जिसके विषय में कतिपय विचारकों ने यह कहा है कि यह स्वचालित है। उसके लिए किसी अधीक्षक की आवश्यकता नहीं है। जैन दर्शन इस व्यवस्था को यों समझाता है कि कर्म के परमाणु होते हैं। जैसे जैसे मनुष्य कर्म करता है, यह परमाणु उसकी आत्मा में चिपट जाकर उसे बद्ध कर देते हैं। मनुष्य जैसे-जैसे तपस्वी, चरित्रवान और विरक्त होता जाता है, इन कार्मिक परमाणुओं का निर्जर होता है और अंत में जीव मुक्तावस्था में आ जाता है।

परन्तु यह तो एक ऐसी कल्पना है जैसी ईथर की। हरेक शक्ति के स्पन्दन के लिए एक माध्यम (Medium) चाहिए। शब्द वायु में होकर फैलता है। विद्युत लोहे आदि में होकर फैलती है। प्रश्न उठा, प्रकाश का माध्यम क्या है जो सूर्य से आता है जो एक लाख छियासी हजार मील दूर है। इतनी ऊंचाई पर तो वायु होती नहीं है। तब कल्पना की गई कि यह ईथर में होकर आती है। पर यह तो समझाने का ढंग मात्र है। वास्तव में ईथर की हस्ती है नहीं। इसी प्रकार कर्म के परमाणुओं की कल्पना है जो ब्लैक-बोर्ड पर विद्यार्थियों को समझाने के समान है।

८- वास्तव में हम जो कुछ कर्म करते हैं, उसके दो परिणाम होते हैं :—

अ- तुरन्त फल, जो शरीर विज्ञान से सम्बन्धित है।

ब कर्म की एक वासना का जन्म होना जो संस्कार बन कर आत्मा से चिपट जाती है। वह आत्मा को अपने बोझ से ऐसी योनि में बरबस ले जाती

है, जहां उन संस्कारों का प्रस्फुटीकरण हो। अतृप्त आकांक्षा पूर्ण हो, फिर उसका विग्रह होकर उसकी छाप मिट जावे।

इनमें से तुरन्त फल का उदाहरण यों है कि भांग पी है तो शरीर में नशा आवेगा। अपच्य पदार्थ खाया है तो विरेचन होने लगेंगे। सात्त्विक फलों तथा कंदमूल का सेवन किया है या दुग्ध पान किया है तो बुद्धि का विकास होगा। मांस, मिर्च, प्याज, लहसुन खाया है तो स्मृति-नाश, क्रोध-वृद्धि और कामेच्छा का उद्वेग आवेगा ही। लोग कहते हैं कि इसमें ईश्वर की कहा आवश्यकता है ? परन्तु सत्य यह है कि हमारे इस शरीर का संचालन हम तो करते ही नहीं हैं। हमें नस-नाड़ी हृदय और उनके कार्य करने की व्यवस्था का ज्ञान ही नहीं है। इस क्रिया को भी कोई दूसरा ही करता है। यह शरीर रूपी रथ और मोटर तो किसी ने निर्माण करके हमें दे दिया है। हम तो मात्र ड्राइवर हैं। तनिक सी खराबी आने पर फिर किसी के पास जाते हैं। यह मशीन कब कार्य बन्द कर देगी, यह भी निश्चय करना हमारे हाथ में नहीं है। यह सब फलादि कोई और ही नियोजित करता है।

९- जहां तक संस्कार जन्य फलों का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि सारे कर्मों का संक्षिप्त रस आत्मा पर छा जाता है और उसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इनका और सार रस बनता है, उसे कारण शरीर कहते हैं। मरणोपरान्त यह दो शरीर साथ जाते हैं। और कर्मानुसार योनि की ओर बरबस ले जाते हैं, मुक्ति में कारण शरीर फिर भी रह जाता है जो मुक्ति की अवधि समाप्त हो जाने पर फिर आत्मा को संसार में खींच लाता है। इसी लिए कहा है कि मरने पर कर्म संचित होकर साथ जाता है। तदन्तर मुक्ति, अथवा मनुष्य या पशु योनि में से किसी एक में हम चले जाते है जहां कि हमें अपने किये का फल भोगना पड़ता है। इस भोगने में स्वेच्छा न होकर परवशता है। स्वेच्छा से तो कोई अपने अकर्म या कुकर्म का कटु फल नहीं भोगना चाहता है।

१०- कर्म वासनाओं के माध्यम से स्वत: फलीभूत हो जाते हैं। वासनाओं द्वारा कर्मों का कालान्तर में फलीभूत होना ईश्वरीय नियम (विधान) का केवल एक अंश मात्र है। किसी कर्म का फल क्या, कितना, कब और किस प्रकार मिलेगा, यह निर्णय तो विधिवेत्ता, नियामक और अनुशासक ही कर सकता है। कर्म तो जड़ है। उसके कीटाणु तो कल्पना मात्र में हैं। वह कर्म की गहराई, अच्छाई, बुराई को स्वयं नहीं तोल सकता। वह तो किये पीछे स्वयं नष्ट हो जाता है।

११- अस्तु यह नियम और अनुशासन जिसका गुण है वह पदार्थ अवश्य होना चाहिए। गुण स्वतन्त्र नहीं रह सकता। किसी द्रव्य (पदार्थ) का ही कुछ गुण होता है। नियमन और अनुशासन जिस सत्ता का गुण है वह ही इस सृष्टि का अध्यक्ष है, न्यायकर्त्ता है। वैत दर्शन में उसे ईश्वर कहते हैं वैदिक मत इस विषय में इस प्रकार है–

"परमात्मा के राज्य में कोई अन्याय नहीं है। न वहां किसी की सिफारिश चलती है; न कोई मित्र कुछ सहायता कर सकता है। वहां तो पूर्ण न्याय है। जो जैसा करेगा, उसको वैसा ही फल मिलेगा।"

(अथर्ववेद १२।३।४८)

दयानन्द सरस्वती ने इसी बात को यों कहा है :-- मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता, वैसे ही किये हुये अधर्म का फल भी शीघ्र नहीं होता, किन्तु धीरे-धीरे अधर्म-कर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है। पश्चात् अधर्मी दु:ख ही भोगता है। ईश्वर के द्वारा न्याय करवाने में एक आसानी है कि वह घट-घट वासी है और मनुष्य के द्वारा किये जाने वाले हर कार्य का स्वयं साक्षी और गवाह है। सर्व-व्यापक होने से उसने हर आत्मा के द्वारा किये जाने वाला हर कार्य देख लिया होगा। वह निर्गुण है अर्थात् सत्व रजस तमस जो प्रकृति के अंग, गुण या प्रथम विकृति हैं उनसे वह अछूता है, अत: उसकी किसी जीव विशेष में कोई रुझान या पक्षपात नहीं है। उससे अवश्य न्याय की आशा की जा सकती है।

१२- ईश्वर ने न्याय का अर्थात् कर्मानुकूल भोग वितरण का तथा जीवन-यापन की सामग्री सबको उपलब्ध

कराने का कार्य स्वयं अपने ऊपर ले रक्खा है। मुक्त जीव, अजन्मे जीव तथा पशु-पक्षियों की व्यवस्था स्वयं उसके हाथ में है। मनुष्यों को बुद्धिमान समझ कर उसने राज्य-व्यवस्था का सुन्दर ढांचा उसे भेंट कर दिया है। पृथ्वी पर राज्य प्रभू की मनुष्यों को देन है। इस राज्य-व्यवस्था पर भी वह नियन्त्रण रखता है कि थोड़े से मनुष्य (Oligarchical element) या बहुत से मनुष्य (Debased democratic element or mobocracy) न्याय का गला न घोंट दे। अन्यायी व्यवस्था का वह अन्त करता और हर व्यवस्था के द्वारा सम्पादित न्याय की कमी को वह स्वयं पूरा करता है।

१३- भारत में केवल चारवाक ने ही इस सर्व सम्मत सिद्धान्त का विरोध किया है। ऐन्द्रियिक सुख ही इसी जीवन का लक्ष्य उसने माना है। जब तक जीवित रहो आनन्द से रहो। जीवन दुबारा नहीं मिलता। जिस काम में अपनी भलाई कमाई और सुख की प्राप्ति हो वही काम अच्छा है। कामनाओं की पूर्ति करने ही का नाम जीवन है। वर्तमान आनन्द को भविष्य में आनन्द मिलने के भरोसे पर नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि भविष्य के बारे में कोई कुछ नहीं जानता। मरने के पश्चात् दुःख सुख भोगने वाला कोई शेष नहीं रहता। स्वर्ग, नरक और मोक्ष कोई वस्तु नहीं है।

यावज्जीवेद् सुखं जीवेत्। ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।

परन्तु इसके तर्क हास्यास्पद हैं। चिन्तकों का बहुमत सदैव इसके विपरीत ही रहा है।

- उन सभी प्रवृत्तियों का अन्त कर दो जो किसी की पूर्ति अथवा हित का साधन नहीं है।
- उन सभी संकल्पों का अन्त कर दो जिनको समाज के सामने दृढ़ता तथा निर्भयता पूर्वक प्रकाशित नहीं कर सकते।
- अन्न, वस्त्र, धन आदि वस्तुओं को शारीरिक हित तथा परोपकार के भाव से ही ग्रहण करो।
- आवश्यकता के अतिरिक्त केवल स्वार्थ अथवा विलासिता के भाव से जन समाज से मत मिलो।

आर्यसमाज की स्थापना का उद्देश्य

लेखक – महामहोपाध्याय आचार्य विश्वश्रवा व्यास, एम० ए० वेदाचार्यः

(आचार्य विश्वश्रवा जी का यह विद्वत्तापूर्ण लेख विचार के योग्य है !) –सम्पादक

इस समय ऐसा प्रतीत होता है कि समस्त आर्यजगत् यह भूल गया कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने आर्य समाज की स्थापना किस लिए की थी। इतना ही सब समझ रहे हैं कि परोपकार का कार्य करने के लिए आर्यसमाज की स्थापना हुई है। या देश भाषा विस्तार एवं देशरक्षा आर्यसमाज का उद्देश्य है अथवा शिक्षा का प्रसार आर्यसमाज का कार्य है। अतः समस्त आर्यजगत् बाढ़पीड़ितों, तूफान पीड़ितों की बातें करता है या औषधालय, वाचनालय, स्कूल, आर्यसमाजों ने अपनी-अपनी समझ के अनुसार बना रखे हैं, या रह गये हैं। भारत माता की जय हिन्दी भाषा अमर रहे इत्यादि नारे।

परन्तु यदि हम गम्भीरता से जानना चाहें कि महर्षि का उद्देश्य आर्यसमाज की स्थापना का क्या था तो उसको हम तीन स्थानों से जान सकते हैं।

१– आर्यसाज की स्थापना के समय बम्बई में रजिस्ट्रार आफिस को स्वामी जी ने क्या लिखकर दिया था कि मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज की स्थापना करके रजिस्ट्री किस काम के लिए करा रहा हूँ। वहां देखो।

२– आर्यसमाज का पहला रजिस्टर मैंने तलाश करके महात्मा हंसराज जी को दिया था, उन्होंने उस रजिस्टर को डी०ए०बी० कालिज लाहौर के अनुसंधान विभाग में सुरक्षित रखदिया था। उस समय मैं भी वहां कार्य करता था उस रजिस्टर में भी आर्य समाज की स्थापना का उद्देश्य लिखा है। वहां देखो।

३– स्वामीजी को विश्वास पहले यह था कि मेरी आयु ४०० वर्ष होगी फिर उनको ज्ञान हो गया कि मेरी आयु १०० वर्ष भी नहीं है। फिर उन्हें पता चल गया कि अब शरीर छूटने वाला है। तब स्वामी जी ने लिखकर रख दिया कि मेरा शरीर छूटने पर तुम क्या क्या कार्य करना ? वहां देखो।

इन तीनों स्थानों पर समान रूप से एक बात पाई जाती है कि महर्षि ने वेदों के कार्य के लिए आर्यसमाज की स्थापना की थी। वेदों पर कार्य यह करना था –

१– हम सिद्ध करते कि वेदों में सब विद्याएं हैं। जो भी ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल धरती पर है यह सब वेदों में विद्यमान है।

२– पाश्चात्य विद्वानों ने जो वेदों की दुर्दशा अपने अंग्रेजी आदि भाषाओं के अनुवादों में की है कि वेद जंगली व्यक्तियों के गीत हैं जो समय समय बनते रहे बाद में इक्ट्ठे कर दिए गए। इन का हमें उनकी ही भाषाओं में जवाब देना था जिससे जो लोग उस भाषा को जानते हैं वे उसी भाषा में हमारे जवाब पढ़ सकें।

३– पौराणिक भाष्यकारों ने अपने भाष्यों में दिखाया है कि वेदों में मांस, शराब, जुआ, गोहत्या आदि सब है। ये सब संस्कृतभाष्य आज भी भारत तथा संसार के सब विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जाते हैं। हमें इस सम्बन्ध में कार्य करना था।

४– स्वामी जी ने क्या सोचकर संस्कृत भाषा में वेद भाष्य रचा। यह कभी सोचा ?

५– स्वामी जी के पत्रव्यवहार को पढ़ो क्या लिखा है –

स्वामी जी अपने पत्रों में तथा वसीयतनामे में अपना हृदय प्रकट करते हैं कि —

"जब तक द्वीप-द्वीपान्तर, देश-देशान्तर की भाषाओं में वेद तथा वैदिक साहित्य का सही अनुवाद नहीं होगा तब तक संसार वेदों को ठीक नहीं समझ सकेंगा।"

हमने अब तक क्या किया ?

१- आर्यसमाज में स्वामी जी के बाद जो चारों वेदों के आर्य भाषा में अनुवाद हुए या छपे क्या उनसे यह समस्या हल हो गई कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है ।

२- क्या हमने संसार की भाषाओं में स्वामी जी के वेद-भाष्य का अनुवाद करके भेज दिया ।

३- क्या हमारे अंग्रेजी भाषा में हुए कुछ वेदों के अनुवादों को पढ़ कर संसार यह समझ लेगा कि वेदों में सब सत्य विद्याएं हैं ।

४- क्या भारत तथा संसार के विश्वविद्यालयों के कोर्स मे से सायण तथा विलसन आदि के अनुवादों को हम निकाल सके ।

५- ऋषि देवता आदि पर अनेक ग्रन्थ पाश्चात्य विचार धारा वालों ने छाप रखे हैं कि ये मधुच्छन्दा आदि ही मन्त्र कर्ता है । क्या इन बड़े-बड़े पोथों का जो अंग्रेजी आदि भाषाओं में बने हैं, उनका उत्तर हम दे चुके ।

६- स्वामी जी का वेद भाष्य एक बार बनारस के कोर्स में रखाया गया पर निकाल दिया गया या विकल्प में सायण कर दिया गया, क्योंकि स्वामीजी का वेदभाष्य छात्रों और अध्यापकों के पठन-पाठन में नहीं चलता, हम ने स्वामी जी के भाष्य को इस योग्य उसकी व्याख्या करके क्यों नहीं बनाया जो पठन-पाठन में आ सके ।

७- क्या कारण है कि गुरुकुल कांगड़ी आदि में स्वामी जी का वेदभाष्य नहीं पढ़ाया जाता ।

वेदों पर क्या कार्य होना चाहिये ?

हमने वेदों का डंका आलम में बजवा दिया । यह ठीक किया । वेद संसार के सामने आ गया । पर महर्षि दयानंद सरस्वती जी के वेद भाष्य के बाद जितने वेद भाष्य आर्य-समाज में हुए उनसे यह सिद्ध नहीं हुआ कि " वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है " । ये आर्यसमाजी वेद भाष्य धातुपाठी वेद भाष्य हैं। यदि ये ठीक हैं तो " वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है" यह बात असत्य है ।

चारों वेदों पर भाष्य एक व्याधि है

यह 'चारों वेदों का भाष्य, चारों वेदों का भाष्य' रोग पहले पौराणिकों में फैला । सायण आदि ने चारों वेदों पर भाष्य रच के रख दिये । उसका परिणाम यह हुआ कि कोई बुरी बात संसार में ऐसी नहीं जो वेदों में न हो । जैसे शराब, जुआ, गोहत्या, अनाचार आदि सब बातें वेद में हैं ।

फिर यह चतुर्वेद भाष्य रोग योरोप में फैला । मेक्स-मूलर आदि ने चारों वेदों पर अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद करके रख दिये । उनका परिणाम यह हुआ कि शराब, मांस, आदि तो वेदों में है ही साथ में यह भी सिद्ध हुआ कि वेद जंगली गडरियों के गीत हैं ।

फिर यह चतुर्वेद भाष्य रोग आर्य समाज में फैला । उसका परिणाम यह हुआ कि वेदों में केवल—ईश्वर, राजा प्रजा और व्यवहारिक बातों के अतिरिक्त कुछ नहीं है । यहां तक अन्याय इन धातुपाठी वेद भाष्यों ने किया कि जितने मन्त्र वैज्ञानिक बातों के थे उनके भी अर्थ धातुपाठ के बल पर राजा-प्रजा ईश्वर कर डाले । वे सब सत्यविद्या वाले मन्त्र कहां चले गये ।

१- महर्षि ने चारों वेदों के प्रत्येक मन्त्र पर विषय बताते हुए एक ग्रन्थ लिखा था जिसका नाम 'चतुर्वेद विषय सूची' है । इस की उपेक्षा आरम्भ से लेकर आज तक सबने की है । उसको सामने रख कर भिन्न-भिन्न विषय के वैज्ञानिकों को वेदाचार्यों के साथ बैठा कर वेद भाष्य फिर से कराये जावें ।

२- भारत तथा संसार के सब विश्वविद्यालयों में वेद मंत्रों के सिलेक्शन पढ़ाये जाते हैं उतने ही वेद मन्त्रों पर यदि स्वामी जी का भाष्य है तो उसकी व्याख्या सहित छपवा कर बटवाया जावे । बिना मूल्य उन छात्रों को दो जो छात्र परीक्षा में वेद ले रहे हैं । जिन पर ऋषि का भाष्य नहीं है उनकी युक्ति तर्क पूर्वक व्याख्या कराओ।

३- वेद के विरुद्ध जिस भाषा में कोई ग्रन्थ छपा है उसी भाषा में उत्तर दो ।

४- ऋषि के वेद भाष्य के कठिन होने से समझ में नहीं आता, अतः ऋषि के वेद भाष्यों पर विस्तृत पाण्डित्य पूर्ण टीका लिखो । अंग्रेजी, आर्य भाषा और संस्कृत में । ०

वानप्रस्थ में क्या करें

"योगाभ्यास—ऋषि दयानन्द"

ले० स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती
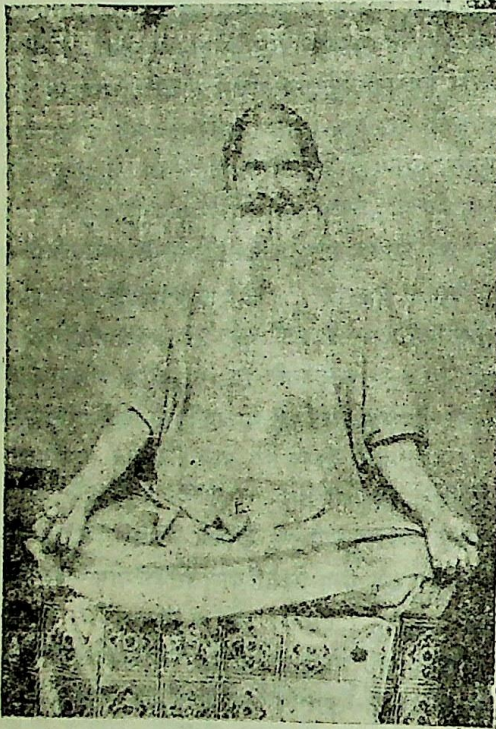
स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती

योगेश्वर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने संस्कार-विधि में वानप्रस्थ आश्रम का विधान और विधि लिखी है। ऋषिवर वेद को ही परम प्रमाण मानते हैं। मनघड़न्त ऊहापोह या कल्पनाओं के वे पक्षपाती नहीं थे। अपनी मान्यताओं में सदा वेद को तथा तत्पोषक आर्ष ग्रन्थों को ही उद्धृत किया। अत: वे स्वत: प्रमाण थे उनके अपने पोषण के लिए वकीलों या वकालत की अपेक्षा नहीं थी।

वानप्रस्थ संस्कार में ऋषिवर ने ४३ आहुतियां दिलाने का विधान किया है। उनमें से १६ आहुतियां एक ही मन्त्र में १६ बार आये स्वाहां से दिलाई हैं। ये १६ आहुतियां ही वेद के वानप्रस्थ के लिए १६ आदेश हैं।

श्रुति: -

आयुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ।
प्राणो यज्ञेन कल्पतां स्वहा ।
अपानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा
व्यानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा
उदानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ।
समानो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ।
चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा
श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा
वाग् यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ।
मनो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ।
आत्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा
ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां स्वाहा
ज्योतिर यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ।
स्वर यज्ञेन कल्पतां स्वाहा ।
पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां स्वाहा
यज्ञो यज्ञेन कल्पतां स्वाहा

यजु:—२२।३३

ऋषि का भाष्य तत्व देखिये :—

परम कारुणिक भगवान् वानप्रस्थों को उपदेश है:—तुम को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि आयु, शरीर, तप, जप और ईश्वर प्रणिधान रूप अच्छी योग क्रियायें दान ,परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार, योग विद्या आदि दान के साथ समर्पित हो प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, पांचों प्रधान प्राण भी अच्छी इन क्रियाओं और

योगाभ्यास आदि के लिए समर्पित हों। तभी योगाभ्यास में समर्थ हो सकोगे। चक्षु और श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रियां भी तपादि अच्छी क्रियाओं और योगाभ्यास आदि के लिए पूर्ण तया समर्पित हो। वाणी आदि कर्मेन्द्रियां भी अच्छी तपादि क्रियाओं और योगाभ्यास आदि के लिए समर्पित हों। मन अर्थात् अन्तःकरण भी तप आदि उत्तम क्रियाओं और योगाभ्यास आदि के लिए सम्यक्तया अर्पित हों। आत्मा जीव भी तप आदि उत्तम क्रियाओं और योगाभ्यास आदि के लिए भली भान्ति समर्पित हों। ब्रह्मा चारों वेदों का जानने वाला भी तप आदि उत्तम क्रियाओं और योगाभ्यास आदि के लिए पूर्णतया समर्पित हो। ज्ञान का प्रकाश भी योग आदि समर्थ हो ऋतंभर हो जावे। आनन्द सुख भी सांसरिक न हो परमात्मा के आनन्द में पलट जावे। शेष सब शेष प्रश्न शंकायें भी योग से समाहित हों। परमात्मा भी योग से अपने साथ साक्षात् हो।

भावार्थ :—वानप्रस्थ मनुष्य को चाहिए जितना अपना जीवन शरीर, प्राण, अन्तःकरण, दशों इन्द्रियां और सब से उत्तम सामग्री हो उस को यज्ञ योग के लिये समर्पित करें। जिससे पाप रहित कृत कृत्य हो के परमात्मा को प्राप्त कर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुख को प्राप्त होवे।

इस मन्त्र में आयुः से अन्नमय कोष, प्राणः आदि से प्राणमय कोष, मनः आदि से मनोमय कोष, श्रोत्र आदि से विज्ञानमय कोष स्वः से आनन्दमय कोष को योग से समर्थ शक्तिशाली -स्वस्थ बनाने को लिखा है।

अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में भी ९ वें समुल्लास में पांचों कोषों कोषो का विवेचन -साक्षात् करना लिखा है। :-एक–अन्नमय कोष, दूसरा- प्राणमय कोष, तीसरा–मनोमय कोष, चौथा–विज्ञानमय कोष, पांचवा–आनन्दमय कोष, ये पांच कोष कहाते हैं। इनका निश्चय अवश्य करें। पृथक्२ जानें। सत्यार्थ प्रकाश पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ के लिए विधान किया। —

१ सब ग्राम नगर के आहार भोजन और शहरी वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़े।

२ सब पात्रों सहित अग्नि होत्र को ले के ग्राम से निकले।

३ दृढ़ेन्द्रिय हो वन में जा के बसे। स्वाध्याय अर्थात् अध्यात्म शास्त्र भाग को पढ़े पढ़ावे। अन्य पाठ्य ग्रन्थ नहीं।

४ नाना प्रकार सामा आषि अन्नों के अन्न, सुन्दर शाक मूल, फल, फूल, कन्दादि से निर्वाह करें। पंच महा यज्ञों को इन्हीं से करें।

५ वन में तप, धर्मानुष्ठान, और सत्याचरण करके भिक्षाचरण करते हैं।

६ यजुर्वेद २०।२४ के मन्त्र के आधार पर लिखा है।

(क) मैं को अहंकार को अग्नि में होम कर दें।

(ख वानप्रस्थ दीक्षा ले, व्रत, सत्याचरण, और श्रद्धा को प्राप्त हो।

(ग) नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करें।

संस्कारविधि में वानप्रस्थ संस्कार के अन्त में सार लिखा :–

१ अग्नि होम की सामग्री सहित जंगल जावे।
२ एकान्त में निवास करे।
३ योगाभ्यास करे।
४ शास्त्रों (अध्यात्म शास्त्रों) का विचार करे।
५ महात्माओं का सङ्ग करे।
६ स्वात्मा और परमात्मा का साक्षात् करने में प्रयत्न किया करे।

इस प्रकार वानप्रस्थ धर्म का पालन करने से ही अपना, अपने देश और समस्त संसार का कल्याण हो सकता है। जिस दीपक में प्रकाश नहीं वह प्रकाशित नहीं कर सकता। दयानन्द देदीप्यमान भास्कर था। सब को भास्कर कर गया। हम भी उसी के पद चिह्नों पर चल सकें। यही वानप्रस्थ के लिए कल्याण का मार्ग है!

गायत्री मन्त्र में योगदर्शन

लेखक — श्री कल्याणस्वरूप, मन्त्री पातञ्जल योग साधक समाज, आर्य-नगर, ज्वालापुर

गायत्री मन्त्र को महामन्त्र, सावित्री मन्त्र, गुरु मन्त्र इत्यादि कई नामों से जाना जाता है इसका माहात्म्य भी भिन्न-भिन्न विद्वानों एवं साधकों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णित किया है। इसका महत्त्व इसी से स्पष्ट है कि यह मन्त्र ऋग्, यजु साम तीनों वेदों में आता है और यजुर्वेद में तो चार बार। इसका जप सैंकड़ों में नहीं हजारों और लाखों में किया जाता है। इस मन्त्र का थोड़ा-सा जप करने से ही ऐसा प्रतीत हुआ जैसे इस मन्त्र में योग विद्या या ब्रह्म विद्या का मूल निहित है।

श्री कल्याणस्वरूप जी

मन्त्र के तीन चरण

तत्सवितुर्वरेण्यम्।
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।

प्रथम चरण में 'वरेण्यम्' अर्थात् वरण करने के योग्य शब्द प्रभु के स्वरूप के लिये प्रयुक्त हुआ है। जिसको हम वरण करने के योग्य मानते हैं उसी के प्रति तो पूर्ण श्रद्धा एवं निष्ठा से अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिये तैयार हो जाते हैं। जिसको हम वरण के योग्य ही नहीं मानते. उसके लिये हम किसी प्रकार का तप त्याग क्यों करेंगे। या यों कहिये कि हम उसे वरण करने के योग्य नहीं मानते, इसलिये सांसारिक विषयों के सुख को उसके लिये नहीं छोड़ पाते। प्रभु मिलन की आधार-शिला यही है कि उसमें अनन्य भक्ति हो। कैसे हो? इसका उत्तर इसी चरण में है. प्रभु का 'सविता' के रूप में चिन्तन। जिस प्रकार सूर्य प्राण देता है, प्रकाश देता है, उष्णता देता है, उसी प्रकार भगवान् हमें जीवन देता है, वेद रूपी ज्ञान देता है और कार्य करने की क्षमता एवं साधन भी प्रदान करता है। हमारे जीवन का आधार वही तो है। हम जिन वस्तुओं का उपयोग करते हैं, उनका स्वामी भी तो वही है, वही तो हमारा सर्वस्व है। इस प्रकार निरन्तर चिन्तन से प्रभु के प्रति अगाध श्रद्धा एवं अनन्य भक्ति उत्पन्न हो जाती है और प्रभु मिलन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

इस प्रक्रिया को महर्षि पातञ्जलि ने 'अभ्यास' एवं 'वैराग्य' की संज्ञा दी है। अभ्यास के लिये यम, नियम. आसन एवं प्राणायाम का विधान किया है। इस अभ्यास से साधक प्रत्याहार की ओर बढ़ता है। चक्षुरादि इन्द्रियां अपने-अपने विषयों (रूपादि) से विमुख होकर विरक्तता की ओर बढ़ती है

और अभ्यास को बढ़ाते-बढ़ाते पूर्ण वैराग्य की स्थिति पैदा हो जाती है। महर्षि पातञ्जलि ने बहिरंग योग के नाम से योग-दर्शन में गायत्री महामन्त्र के प्रथम चरण की व्याख्या प्रस्तुत की है।

द्वितीय चरण में "धीमहि" शब्द विचारणीय है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस शब्द के अर्थ "ध्यायेमहि" और "दधीमहि" किये हैं। यह धारणा एवं ध्यान का संकेत है। धारणा एवं ध्यान किसका? "देवस्य भर्गः" का। अर्थात् जड़ चेतन देवताओं को दिव्य गुण देने वाले उस देवों के देव भगवान् के शुद्ध स्वरूप का। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, राम, कृष्ण इत्यादि की मूर्ति के रूप में उसके अशुद्ध स्वरूप का चिन्तन यदि हम लाखों वर्ष भी करते रहें तब भी सृष्टि नियन्ता भगवान् का सान्निध्य नहीं पाप्त कर सकेंगे। उसके शुद्ध स्वरूप का वर्णन महर्षि पतञ्जलि ने निम्न सूत्र में किया है—

"क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टाः पुरुष विशेष ईश्वरः" "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्"

इनकी व्याख्या पुनः कभी प्रस्तुत की जायेगी। सर्वप्रथम तो उसके शुद्ध स्वरूप को जानना आवश्यक है फिर धारणा ध्यान समाधि द्वारा उसको आत्मसात् करना। महर्षि पातञ्जलि का निम्न सूत्र भी ध्यान देने योग्य है—

"योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः"

अर्थात् योग के उपर्युक्त आठों अङ्गों का अनुष्ठान करने से अविद्यादि क्लेशों से उत्पन्न अशुद्धि धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है और सम्यग्ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है। जब अशुद्धि सम्पूर्णतया नष्ट हो जाती है तो स्वतः ही सम्यग् ज्ञान हो जाता है। उसी को 'विवेक ख्याति' कहते हैं। उस समय प्रज्ञा "ऋतम्भरा" अर्थात् केवल सत्य का ही ग्रहण करने वाली हो जाती है।

तृतीय चरण में "प्रचोदयात्" शब्द विचारणीय है। जिस समय ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय हो जाता है उस समय वेदादि सच्छास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रहती। उस समय तो हमारी शुद्ध बुद्धि का प्रेरणा स्रोत या मार्ग-दर्शक स्वयं सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रभु हो जाता है। इसी को महर्षि पतंजलि ने योग के नवम अङ्ग "संयम" का नाम दिया है। वे लिखते हैं—

"त्रयमेकत्र संयमः" "तज्जयात् प्रज्ञालोकः"

अर्थात् "संयम" सिद्ध हो जाने पर प्रज्ञा बुद्धि में एक अद्भुत प्रकाश उत्पन्न हो जाता है जिस के माध्यम से "ऋत" हो दृष्टि-गोचर होता है, अनृत का लेशमात्र भी नहीं रहने पाता।

इस प्रकार गायत्री महामन्त्र के तीन चरणों में योगदर्शन के तीनों खण्ड—बहिरंग योग, अन्तरंग योग और संयम क्रमशः बीजरूप में विद्यमान् हैं। ऐसा लगता है जैसे योगदर्शन शायद गायत्री महामन्त्र का महर्षि पतंजलि कृत भाष्य ही रहा हो। —०—

व्यावहारिक जीवन में योग का महत्व

लेखक श्री योगेन्द्र पुरुषार्थी, योगानुसन्धाता

योगेन्द्र पुरुषार्थी योगानुसन्धाता

योग शब्द दो धातुओं से निष्पन्न होता है। 'युज् समाधौ' से निष्पन्न 'योग' का तात्पर्य अध्यात्म-ब्रह्म विद्या से है। 'योग' और 'समाधि' दोनों शब्द समानार्थक है। 'युजिर योग' से बने हुए 'योगे शब्द की उपसर्गों के साहचर्य से चार शब्दों की एक वाक्यता है। बाह्य विषयों से इन्द्रियों को उपरक्त कर चितवृत्तियों का अवरोध कर परमात्मा से योग करना 'संयोग' है। ईश्वरीय सत्ता को न स्वीकार कर आत्मसंयोग न करना ही 'वियोग है। चित्तवृत्तियों के अवरोध हेतु अपनाये गये यम नियम, अभ्यास वैराग्य, तप, स्वाध्याय ईश्वर प्राणिधान आदि साधनों द्वारा समाधि तक पहुंचने का नाम प्रयोग है। यही उपक्रम परमानन्द प्राप्ति का एक मात्र साधन है।

'हिरण्यगर्भ' योग विद्या का आदि प्रवक्ता है जिसका प्रणयन सर्गारम्भ में ही हुआ। यह वैदिक मान्यता है कि वैदिक मन्त्रों की रचना योगाभ्यास की उच्चतम भूमिकाओं का ही परिणाम है। आत्म साक्षात्कार करके परमानन्द प्राप्ति तक पहुचना योग विद्या का ही कार्य हैं। योग मानव जीवन का श्रेय मार्ग परम कर्त्तव्य एवं अन्तिम लक्ष्य है यही सबसे बड़ा धर्म है। यथा—

'अयं तु परमो धर्मः यद् योगेनात्मदर्शनम्।

वैदिक साहित्य के परिशीलन से पता चलता है कि प्रत्येक शास्त्र में योग की महिमा विशेष रूप से वर्णित है। जो जनसमुदाय प्रयोग से वञ्चित है भौतिक चकाचौंध के प्रबलतर प्रयोगों कोदेखकर अनायास यह कहने लगता है कि जिस योग की इतनी विशेषता या महानता बताई जाती है, इसका व्यवहारिक जीवन में हमें तो कोई उपयोग दिखाई नहीं देता। आज किसके पास इतना खाली समय है कि इतने लम्बे समय तक बैठे रहें। मशीनों (यन्त्रों) के पुर्जे के समान अपने नियत स्थान पर चक्कर लगाने वाले विवेक शून्य जन यह भी कह देते हैं कि परमात्मा को पाने की आवश्यकता ही क्या है? दिन रात में हमारे सामने तो ऐसा कोई समय स्थित नहीं होता, जब परमात्मा की सहायता की आवश्यकता पड़ती हो। जैसा हम कर्म करेंगे फल वैसा ही अवश्य मिलेगा फिर परमात्मा का बीच में क्या प्रयोजन? अनेकानेक ऐसी भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल कर मानव को मानवता की परिधि में रहने के लिए पारस्परिक व्यवहार में योग साधना की क्या उपयोगिता है? इन सभी का समाधान यहां प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

व्यवहारिक जीवन में उपयोग—

व्यवहारिक जगत् में हम कुटुम्बीजनों से, सम्बन्धियों से, मित्रों से, पड़ोसियों से, नवागन्तको से तथा अधिकारियों से जो भी पारस्परिक व्यवहार करते हैं चाहे वह लेन देन का हो या, बोल चाल का हो, खाने खिलाने का हो, सुनने सुनाने का हो, देखने दिखाने का हो, या पारस्परिक सहयोग का हो, दोनो पक्षों के मनुष्य यही चाहते हैं कि हमारे साथ मानवता का प्रेम, का सत्य का, सौहार्द का, ईमानदारी का,सदाचार का एवं निष्कपटताका व्यवहार हो।

संसार में कौन है जो न चाहता हो कि मुझे कोई सताये नही, मेरे व्यक्तिगत -सामाजिक एवं राष्ट्रीय कार्यों में बाधा न पहुंचावे। सभी चाहते हैं कि मुझे घर मेंऔर घर से बाहर मनुष्य अथवा अन्य जन्तु कोई न सतावे। शरीर से ही नहीं, वाणी मात्र से भी पीड़ित न करे। बेईमान आदमी ईमानदार साथी चाहता है। कितना भी झूठ बोलने वाला हो, दूसरे से सत्य का व्यवहार चाहता है। धोखा देने वाला

स्वयं यह अपेक्षा रखता है कि मैं किसी के धोखे में न आऊं। अर्थात् उसे धोखे से घृणा है। चोर डाकू भी यही चाहते हैं कि हमारे पास जो भी है उसे कोई न ले जाय। यहां तक कि लूट के माल पर प्राय: झगड़ा हो जाता है। दुराचारी व्यक्तियों के सगे सम्बन्धियों के साथ या स्वयं के साथ यदि कोई दुराचार कर देता है तो वह सहन नहीं करता, उसका प्रतिकार करने की मन में ठान लेता है। सोचता है, मेरे साथ ऐसा क्यों किया। परिग्रही–आवश्यकता से अधिक धन माल का संग्रह करने वाला कब चाहता है कि मेरे बराबर कोई संग्रह करे।

उपर्युक्त प्रकार के समस्त व्यवहारों में हम यह देखते हैं कि मनुष्य अपने साथ जो व्यवहार चाहता है वह दूसरों के साथ करने को नितान्त भी तैयार नहीं होता। ऐसा क्यों?

इसके मुख्य कारण है :—ऐसे मनुष्यों ने योग के प्रथम अंग यम का भली भांति पालन नहीं किया। यमों में अहिंसा का प्रथम स्थान है। जो अहिंसा का व्रत[1] पूरा कर लेगा वह स्वयं जब अन्यों को मारने या सताने की मन में भावना तक न रखेगा, दूसरा मनुष्य या जन्तु कैसे सतावेगा उसे? किसी से भय नहीं रहेगा। यही नहीं, ऐसे अहिंसा सिद्ध व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले शाश्वतक विरोधी भी अपना वैरभाव त्याग देते हैं। मनुष्य के अच्छे बुरे गुणों की तरगे वातावरण को प्रभावित करती हैं उसी प्रकार का वातावरण अन्य प्राणियों के अन्त:करण को प्रभावित करता है। यही अहिंसा की सिद्धि सभी आगामी यमों की जननी है।

सत्य की सिद्धि का फल–

सत्य[2] की सिद्धि होने पर वाणी में अमोघ शक्ति का संचार हो जाता है। साधक अपने हृदय से वाणी द्वारा जैसा कह देता है वैसा ही होता है। वाणी व्यवहार का मुख्य साधन है जिसकी वाणी इतनी बलवती हो, भला वह अन्यों के साथ असत्य व्हवहार क्यों करेगा। ऐसा व्यक्ति सामाजिक व्यवहार में कितना उपयोगी होगा।

अस्तेय सिद्धि का फल–

जिस साधक के मन, वचन एवं कर्म से चोरी के भाव समाप्त हो गये हों उसके लिए संसार के सभी रत्न उपस्थित जैसे ही रहते हैं।[3] व्यवहार में चोरी के दुर्गुण के कारण बड़े बड़े अधिकारी, नेतागण अपमान पाते हैं। चोरी के विचार बने रहने के कारण मनुष्य किसी का विश्वास पात्र नहीं बन सकता। न वह राष्ट्र के विश्वस्त् स्थानों पर नियुक्ति पा सकता। इसलिए अस्तेय की सिद्धि मानव को अत्यन्त श्रेष्ठ बना देती है। वह सचमुच देव कोटि का अधिकारी बन जाता है। ऐसे व्यक्ति से कौन व्यवहार नहीं करना चाहता। उसे लोभ, लालच छल, कपट, से काम ही क्या है।

ब्रह्मचर्य की सिद्धि का फल–

योग साधना में ब्रह्मचर्य का महत्वपूर्ण स्थान हैं। दोनों का अन्योन्याश्रय है–अर्थात् योग साधना से ब्रह्मचर्य पालन सम्भव है तथा ब्रह्मचर्य सेवन से योगाभ्यास सम्भव है। इस ब्रह्मचर्य की अखण्ड सिद्धि से साधक तेजोमय-बलवान ओजवान हो जाता है[4]। कोई रोग नहीं सताता, मृत्यु को भी जीत लेता है। ऐसा साधक अन्यों के साथ मन बचन, कर्म से किसी भी अवस्था में दुराचरण कैसे कर सकता है। जब यही भाव प्रत्येक के अन्दर विद्यमान होगा तो समाज से दुराचार बिलकुल समाप्त हो सकता हैं।

---

१ अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सनिधौ वैर त्याग:।

२ सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।

३ अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

४ ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठयां वीर्यलाभ:।

अपरिग्रह की सिद्धि का परिणाम—

आवश्यकता से अधिक धन और सुख साधनों को एकत्रित करना आत्मिक उन्नति तथा सामाजिक विकास के लिए बड़ा घातक है। इसी सामाजिक न्यूनता के कारण पूंजीवाद तथा सामन्तवाद का उदय होता है। ऊंच-नीच के भाव बनते हैं, प्रेम भाव कम रहते हैं। अपने पुरुषार्थ तथा ईश्वर पर विश्वास नहीं रहता। उसे अहंकार आ घेरता है। योग साधक विरक्त भावना से जब वास्तविकता को समझ लेता है, तो संग्रह करना पसन्द ही नहीं करता, अपनी उन्नति में बाधा समझता है। साथ ही यह भी जान लेता है कि मैं पूर्व जन्म में कौन था, अब कैसी अवस्था है? आगे मेरी क्या गति होगी, इस प्रकार भूत भविष्य और वर्तमान का ज्ञाता हो जाता है[1]। अधिक संग्रह न होने पर न सुरक्षा के लिए भय, न नष्ट होनें का भय, पुरुषार्थ तथा सन्तोष का सहारा लेकर अन्यों के प्रति स्वाभाकि रूपेण अनुराग बन जाता है।

इन सिद्धियों के परिणाम स्वरूप हम जान सकते हैं, की योगाङ्गों में प्रथम अङ्ग की यम की साधना व्यवहारिक जीवन के लिये, समाज के लिये कितनी उपयोगी है। इससे यह कहना व्यर्थ सिद्ध हो जाता है कि व्यवहारिक जीवन में योग का महत्व नहीं।

———

१ अपरिग्रहस्थैर्यं जन्म कथन्ता संबोध:।

योगमल :—

जो मनुष्य कहते हैं कि इतना खाली समय हमारे पास कहां, जो लम्बे समय तक बैठ सकें ऐसों को विचारना चाहिए कि कोई व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए हर समय नहीं लगा रह सकता। उसे नित्य कर्म भी करने पड़ते हैं। भोजन विश्राम भी आवश्यक है। समय समय पर मनोरंजन भी करना पड़ता है। इसके साथ साथ शारीरिक-मानसिक व्याधियां भी सताती है। आलस्य प्रमाद भी घेरता हैं। काम करने की इच्छा भी नहीं होती, कुछ समय संघर्ष में भी व्यतीत होता है। कभी कार्य करते करते मध्य में रुक जाना पड़ता है। कोई भ्रान्त धारणा भी कार्यविरोध उत्पन्न कर देती है कार्य करते हुए लम्बा समय व्यतीत हो जाने पर भी सफलता के कोई चिन्ह नहीं दिखाई देते। कार्य करते हुए अथवा साधना करते हुए चित्त एक स्थान पर या एक विचार पर स्थिर ही नहीं होता[2] इन सभी अन्तरायों में न चाहते हुए भी समय बिना प्रयोजन-व्यर्थ नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त निन्दा चुगली राग द्वेष युक्त वासनाओं में कितना समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है जिसकी गणना तक नहीं कर पाता। जिस योगाभ्यास करने से शारीरिक- मानसिक व्याधियों का निवारण, सौन्दर्य, आत्मिक शान्ति, पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती हो उसके प्रयोग करने के लिए समय न लगाना या समय लगाना व्यर्थ समझना नितान्त भ्रान्त धारणा है।

———

२ व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानव स्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तराया:।

---o---

- बड़ी से बड़ी कठिनाई अपने पर भी हार स्वीकार मत करो।
- सत्य की खोज के लिए सर्वस्व अर्पण कर दो।
- प्रत्येक कार्य आरम्भ करने से पहिले हित अहित की दृष्टि से उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर लो।

वर्णाश्रम व्यवस्था में वानप्रस्थ का स्थान

लेखक– यशपाल आर्यबन्धु, मुरादाबाद

'शतायुर्वै पुरुषः' के अनुसार मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी गई है। प्राचीन वैदिक ऋषियों ने मनुष्य की सौ वर्ष की इस आयु को चार भागों में विभक्त किया था और प्रत्येक भाग का नाम आश्रम रखा था – ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा सन्यास आश्रम। आयु के प्रथम पच्चीस वर्षों में अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में सदाचारपूर्वक विद्याध्ययन करना तथा अपनी शारीरिक, बौद्धिक तथा चारित्रिक शक्तियों का विकास करना होता है। नींव जितनी मजबूत होती है भवन भी उतना ही सुदृढ़ हुआ करता है, इसी भावना से इस आश्रम में सभी प्रकार की विद्याओं तथा शक्तियों का संग्रह कर मनुष्य आगे बढता है गृहस्थ की ओर। आगे के पच्चीस वर्षों में मनुष्य विवाह करके संसार के सुखोपभोग करता हुआ सन्तान उत्पत्ति द्वारा पितृऋण से उऋण होने का प्रयत्न करता है। गृहस्थाश्रम पर अन्य तीनों आश्रमों के आश्रित होने से यह आश्रम ज्येष्ठ माना जाता है। पचास वर्ष की आयु तक गृहस्थाश्रम में रहकर उसके उत्तरदायित्व का पूर्णतया निर्वाह करके, सम्पूर्ण गृहकार्य अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर वानप्रस्थ आश्रम की ओर अग्रसर होता है। और वन में जाकर सदा, संयमित और कठोर जीवन व्यतीत करके सन्यास की तैयारी की जाती है। किन्तु आज जितनी उपेक्षा इन आश्रमों की की जा रही है उतनी किसी अन्य वस्तु की नहीं। पचास पचपन वर्ष की आयु के पश्चात् भी गृहस्थी बने रहने की प्रवृत्ति आज समाज में व्याप्त है। यह अत्यन्त दूषित मनोवृत्ति है। इस से अनेक पारिवारिक उलझने खड़ी हो जाने के साथ एक अन्य दुष्प्रभाव जो परिवार के बच्चों पर पड़ता है वह है उनके स्वावलम्बी बनने में अनावश्यक विलम्ब। दूसरे वानप्रस्थी के रूप में समाज को जो कार्यकर्ता मिलने होते हैं समाज उन से वंचित रह जाता हैं। अतः यह मानना पड़ेगा कि सामाजिक संरचना में वानप्रस्थ का अति महत्वपूर्ण स्थान है। इस के बिना समाज पंगु ही है।

वानप्रस्थ किस भावना का नाम है ?

वर्णाश्रम व्यवस्था में वानप्रस्थ के स्थान की समीक्षा करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि वानप्रस्थ किस भावना का नाम है ? जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है, वानप्रस्थाश्रम में गृहस्थाश्रम के सुखोपभोग को तिलांजलि देकर गृहस्थी को आगे बढ़ना होता है। यदि हम स्वेच्छा से उन भोगों, लिप्साओं तथा अधिकारों को नहीं छोड़ेंगे तो समाज हठात् हम से उन्हें छीन लेगा और परिवार तथा समाज में अशान्ति का, कलह का वातावरण उत्पन्न हो जायेगा। इसी लिए वानप्रस्थी स्वतः ही अधिकार तथा मोह लिप्सा छोड़ता हुआ आगे बढ़ जाता है। आज जो चारों ओर बाप-बेटे, सास-बहू आदि में परस्पर वैमनस्य तथा कलह दिखाई देती है इस का मूल कारण वानप्रस्थ की भावना का नितान्त अभाव है। त्याग भावना के इस अभाव के कारण ही हमारा पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन दुःखमय बना हुआ है। प्राचीन ऋषियो ने वानप्रस्थाश्रम की व्यवस्था देकर इस समस्या का समुचित समाधान प्रस्तुत किया था। उन्होंने संसार को यह विचार दिया कि जब अन्त में संसार को छोड़ना ही है तो धक्के खाकर अपमानित होकर क्यों छोड़ा जाये ? क्यों न स्वेच्छा से इसे स्वयं ही छोड़ दिया जाये ? आर्यों की इस त्यागमय वृत्ति को वैदिक ऋषियों ने वैज्ञानिक रूप देकर इसका नाम वानप्रस्थाश्रम रखा। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् 'ड्यूसन' इस विचारधारा की प्रशंसा करता हुआ लिखता है – "सम्पूर्ण मानव-जाति के इतिहास में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो महानता में इस विचार की तुलना कर सके।" अतः सिद्ध है कि वानप्रस्थ त्याग की भावना का नाम है अर्थात् मोह के त्याग, भोगों के त्याग, अधिकारों की लिप्सा के त्याग का नाम वानप्रस्थ है। डा० सत्यव्रत सिद्धांतालंकार इस सम्बंध में ठीक ही लिखते हैं—"संसार में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों हैं, अपने अपने स्थान पर दोनों ठीक हैं। प्रवृत्ति को शास्त्रों में प्रेय कहा है, निवृत्ति को श्रेय कहा है। प्रेय के बाद श्रेय आना चाहिए, प्रवृत्ति के बाद 'निवृत्ति' आनी चाहिए। संसार को भोगने के बाद संसार को छोड़ना आना चाहिए। भोगने के बाद छोड़ना, प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति ही वानप्रस्थ की भावना है। ————

वानप्रस्थ केवल जंगल में भाग जाने का नाम नहीं है, वानप्रस्थ 'निवृत्ति-त्याग-अपरिग्रह' का नाम है। 'परिग्रह' शब्द 'परि' तथा 'ग्रह' से बना है। 'परि' का अर्थ है, चारों तरफ से, ग्रह का अर्थ है ग्रहण कर लेना, चिपट जाना। संसार को चारों तरफ से चिपट जाना, छुड़ाये भी न छोड़ना 'परिग्रह' है, और उसे समय आने पर खुद छोड़ देना 'अपरिग्रह' है। क्या फल पक जाने पर स्वयं वृक्ष से टपक नहीं पड़ता ? 'वानप्रस्थ' की भावना पक जाने पर फल का डाली से अलग हो जाना है।" (संस्कार चन्द्रिका पृष्ठ ४५८-४५९)।

कर्म त्याग की भावना का नाम वानप्रस्थ नहीं

जब हम वानप्रस्थाश्रम में त्याग की भावना की बात करते हैं तो उस का तात्पर्य यह नहीं कि कर्तव्य कर्मों का भी त्याग कर दिया जाये। यहां तो भोग एवं अधिकार लिप्सा के त्याग की बात कही गई है न कि कर्तव्य कर्मों के त्याग की। कर्तव्य की भावना को दृष्टि में रखते हुए ही महर्षि दयानन्द ने मनु के आधार पर सांगोपांग अग्निहोत्र को वन में साथ ले जाने का विधान सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कारविधि में किया था। वानप्रस्थी की भावना मनुष्य को आलसी बनाना नहीं अपितु उस का अर्थ है कि अब वानप्रस्थी का प्रत्येक कर्म स्वार्थ भावना से ऊपर उठ कर लोक कल्याण तथा परलोक सुधार की भावना से किया जाने योग्य है।

वानप्रस्थ का स्थान

वैदिक युग में वर्णाश्रम व्यवस्था में वानप्रस्थ का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था। वानप्रस्थी वन में बैठा हुआ जहां एक ओर सन्यास आश्रम की तैयारी हेतु तपस्या करता था वहां संसार के नवनिर्माण का पवित्र कार्य भी सम्पादन करता था। तब राष्ट्र के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व वानप्रस्थी पर होता था। वह गृहस्थियों के बच्चों को, नई पीढ़ी को सम्भालता था। एक वानप्रस्थी वन में बैठा राष्ट्र की उस शिक्षा की समस्या का समाधान करता था जिसे आजकल के प्रगतिशील राष्ट्र भी करोड़ों अरबों रुपये व्यय करके भी नहीं कर पाते। तब प्रत्येक वानप्रस्थी का आश्रम एक गुरुकुल होता था, जहां सैंकड़ों विद्यार्थी बिना किसी भेद-भाव के निःशुल्क शिक्षा ग्रहण करते थे। इन गुरुकुलों में जहां समाजवाद का सर्वोच्च आदर्श था वहां शिक्षा भी पूर्ण मनोवैज्ञानिक ढंग से दी जाती थी। श्रीयुत क्षितीश कुमार जी वेदालंकार ठीक ही लिखते हैं – "गृहस्थाश्रम के मोह से निकले परिपक्व आचरण वाले वानप्रस्थी ही बच्चों के मनोविज्ञान को ठीक-ठीक समझ सकते हैं और उनके सामने सदाचारी जीवन का आदर्श उपस्थित कर सकते हैं। गृहस्थी बनने को आतुर या सद्योविवाहित २४-२५ वर्ष के नवयुवक, जिन्हें आजकल शिक्षकों के रूप में नियुक्त करने का प्रचलन है, बच्चों के मनोविज्ञान को क्या समझेंगे और उन्हें सदाचार की क्या शिक्षा देंगे ? यही कारण है कि आजकल के छात्र अपने छात्र जीवन में ही अनेक अनाचारों में पारंगत हो जाते हैं।" (आर्य समाज की विचार-धारा पृष्ठ ७)।

वैदिक युग में शिक्षा देने वाले ऐसे वानप्रस्थियों को आचार्य की संज्ञा दी गई थी। और आचार्य कहते ही उसी को हैं जो शिष्य को सदाचरण की शिक्षा देकर उस का चतुर्दिक विकास करता है। महर्षि के शब्दों में – "जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण करा के सब विद्याओं को पढ़ा देवे, उसको आचार्य कहते हैं।" माता निर्माता होती है किन्तु उसके गर्भ में बालक के शरीर का निर्माण होता है जबकि आचार्य के गर्भ में बालक के मस्तिष्क एवं चरित्र का विकास होता है। संत कबीर का कथन है —

> गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, घढ़-घढ़ काढ़े खोट।
> अन्दर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट॥

स्पेन्सर का कथन है कि : "**Character is the ultimate aim of education.**" (Spencer) अर्थात् चारित्रिक विकास ही शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है। किन्तु वैदिक युग का वानप्रस्थी आचार्य पूर्व से ही इस रहस्य से भली भांति विज्ञ था। तभी वह "आचारः परमो धर्मः" का पाठ शिष्य को पढ़ाता था। अतः वानप्रस्थ का स्थान एक चरित्र निर्माता का था, राष्ट्र निर्माता का था। वह नैतिकता का, मानवता का विकास करने वाला माना जाता था। वर्णाश्रम व्यवस्था में उसका वही स्थान था।

जो किसी सभ्य समाज में एक शिक्षक का होता है। वह सामाजिक रोगों का एक कुशल वैद्य था। यद्यपि अन्य सभी आश्रमों का आधार होने के नाते गृहस्थाश्रम अन्य सभी आश्रमों से ज्येष्ठ माना जाता है किन्तु वास्तविकता यह है कि भावी पीढ़ी के नवनिर्माण द्वारा राष्ट्र एवं विश्व के नवनिर्माता के रूप में वानप्रस्थी का सर्वोच्च स्थान माना जाता रहा है। और सत्य तो यह है कि इसी देश के वानप्रस्थियों के चरणों में बैठकर संसार भर के मानवों ने चरित्र की शिक्षा ग्रहण की थी। यथा —

" एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।"

दुःख है आज वानप्रस्थाश्रम की सर्वाधिक उपेक्षा की जा रही है किन्तु वास्तविकता यह है कि आज जब हम समाज के सम्मुख उपस्थित सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हैं तो एक ही परिणाम निकलता है और वह है – वानप्रस्थ की भावना का नितान्त अभाव। आज संसार में यदि किसी भावना की आवश्यकता है तो वह वानप्रस्थ की भावना जागृत करने की है, यदि संसार को किसी संदेश की आवश्यकता है तो वह वानप्रस्थ के त्याग-संदेश की। यही आज की सामाजिक समस्याओं का समुचित समाधान है।

o———o

समय का महत्व

(१) कभी मत भूलो कि समय जा रहा है। समय से धन, जन, मान सब मिल सकते हैं परन्तु समय इन वस्तुओं के बदले नहीं मिल सकता। इस लिए एक-एक क्षण का सदुपयोग करना सीखो।

(२) जो समय की कद्र करते हैं वे ही संसार में कद्र पाते हैं।

(३) समय सब वस्तुओं से अधिक मूल्यवान् है। संसार की सब सम्पदाओं को देकर भी एक क्षण वापिस नहीं आ सकता।

(४) कोई अपनी साधारण सी वस्तु को भी बिना कीमत के किसी को नहीं देता और कोई-कोई तो मरते दम तक भी टूटे-फूटे भाण्डों को भी सम्भाल कर रखते देखे गये हैं। पर समझ नहीं आता कि समय जो अमूल्य है उसकी हम सबसे अधिक हत्या कैसे करते रहते हैं? सम्पूर्ण जीवन का हिसाब लगाना तो छोड़ो, एक दिन के २४ घण्टों का हिसाब लगाकर देखो तो पता लगेगा कि हमारा कितना समय गप-शप और व्यर्थ के कामों में नष्ट होता है।

(५) बचे हुए समय को स्वाध्याय-सत्संग और परोपकार (जन सेवा) के कामों में लगाइये।

— सत्यानन्द सूक्ति-सुधा से।

कर्मफल और विश्व के दार्शनिक

लेखक—डा० आर० डी० गुप्त

डा० रामेश्वर दयाल गुप्त

महावीर स्वामी (५५० Bc) एवं जैन धर्म मान्यता – प्रत्येक संसारी जीव अपने अच्छे या बुरे कर्मों के कारण शरीर धारण करता है। अतएव शरीर पवित्र नहीं है। पर प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है और वह आप ही अपने अच्छे या बुरे भावों से पाप या पुण्य के कर्म बांधता है और वही अपने अच्छे और पवित्र भावों से कर्मों का नाश करके मुक्ति पा सकता है। जीवात्मा को उसके कर्मों के अतिरिक्त और कोई सुख दुःख देने वाला नहीं है। जैसे खाना-पीना और भोजन इत्यादि स्वयं रक्त, वीर्य और रस बनकर अपना फल देते हैं, उसी प्रकार अच्छे और बुरे कर्म भी सूक्ष्म शरीर में अपना प्रभाव उत्पन्न करके जीवात्मा को सुख और दुःख की ओर ले जाते हैं। जीवात्मा आवागमन द्वारा अपने सुख दुःख का भोग करते हैं। जीवात्मा में जब तक कमी रहती है, वह जीवन मरण के चक्कर में फंसा रहता है। जब वह कमी दूर हो जाती है वह परमात्मा के समान स्वतन्त्र हो जाता है। जिस समय तक कर्म अपना फल देना प्रारम्भ नहीं करते वह अबाध काल है। क्रम से बंधे कर्म इस जन्म का फल इस जन्म में भी और अगले जन्म में भी दे दिया करते हैं। कर्मों की यह स्थिति कर्म स्वयं किया करते हैं। पर पुरुषार्थ से पाप कर्म हटाया जा सकता है। पाप कर्म अच्छे कर्म में बदले जा सकते हैं।
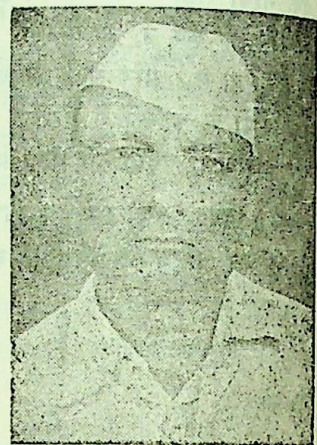
गौतमबुद्ध (६०० Bc) एवं बौद्ध धर्म – कर्मों के कारण ही इस नाम और रूप वाले शरीर को (आत्मा को नहीं) संसार में बार-बार जन्म लेना पड़ता है। और कर्मों का चक्र समाप्त करके ही वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है। पाप को छोटा नहीं समझना चाहिए। पाप अपना फल दिये बिना रह नहीं सकता। कर्म का क्षय होने पर मुक्ति प्राप्त होती है। जो मरते ही निर्वाण प्राप्त करले वह अनागामी, जो मृत्युपरान्त एक बार फिर जन्म लेकर निर्वाण प्राप्त करे वह सुकदागामी तथा जो सात बार जन्मधारण करके निर्वाण प्राप्त करे वह शोतापनि कहलाता है। आवागमन में शरीर ही दुखादि भोगता है। कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों में जाना भी बुद्ध मानते थे। बौद्धों का मध्यम मार्ग है। अर्थात् न तो संसार को त्यागना और न ही उसमें आसक्त होना।

शंकर स्वामी (७८८–८२०) – जीव की पृथक सत्ता नहीं मानते थे। उनके अनुसार सुख दुःख और भय इत्यादि गुण जीव के नहीं वरन् हृदय और बुद्धि के हैं। जिस जीव को जितना ज्ञान हो जाता हैं, उसके अज्ञान का उतना नाश चेतन ब्रह्म के सहारे मे हो जाता है। शेष अज्ञान बना रहता है. और वही जन्म-मरण का पुनः कारण बनता है। अथवा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होने पर कर्म की आवश्यकता नहीं होती। ब्रह्म और जीव में भेद न मानना ही ब्रह्म ज्ञान है। ब्रह्म ज्ञानी, करने योग्य और न करने योग्य दोनों ही प्रकार के कर्म छोड़ देता है। उसके हृदय में कोई इच्छा शेष नहीं रहती। हाँ, वह प्रत्येक कार्य करता तो दिखाई देता है, किन्तु वास्तव में वह कुछ भी करता नहीं है। संसार मायावत भ्रमजाल है। उसके पचड़े में पड़ना ही नहीं चाहिए।

ब्रह्म ज्ञानी का शरीर उसकी प्रारब्ध के अनुसार स्थिर रहता है, अर्थात् जब तक उसका प्रारब्ध शेष है, शरीर स्थिर रहता है, और तब तक शरीर के कार्य जारी रहते हैं। प्रारब्ध समाप्त होने पर शरीर का नाश हो जाता है। फिर जन्म नहीं होता। मुक्त होकर जीव ब्रह्म एक हो जाते हैं, यह स्थिति अनन्त काल तक रहती है।

नानकदेव (१४६६-१५३६) – तमाम जीव अपने कर्मानुसार आवागमन के चक्कर में पड़कर सुख दुःख

भोगते हैं। मनुष्य के अतिरिक्त समस्त जीवधारी प्राणी मनुष्य की सेवा के लिए बनाये गये हैं।

कालान्तर में खालसा दर्शन के व्याख्याकारों ने भृगु-संहिता से एक उद्धरण लिया है कि मनुष्य बन जाने के बाद फिर वह निम्न योनि में नहीं जाता चाहे कर्म कैसे ही करे। एक सिक्ख वक्ता ने इसके समर्थन में यह उदाहरण दिया कि एम० ए० पास करने फिर मैट्रिक श्रेणी में विद्यार्थी नहीं जाता। यह उदाहरण हास्यास्पद है। नैतिकता और चरित्र के मामलों में कागज की डिग्री का उदाहरण चरितार्थ नहीं हो सकता। अब तो विपरीत चाल-चलन वाले की डिग्रियां भी विश्वविद्यालय केन्सिल करने लगे हैं। हाई कोर्ट अनैतिक कार्य करने पर वकील का लायसैन्स रद्द कर देती है।

राजाराम मोहनराय (१७७४) और ब्रह्म समाज: ईश्वर ने अपनी शक्ति से जीवों को उत्पन्न किया है। जीव अनन्त है। और जीवों के पाप, दयालु होने से, ईश्वर क्षमा कर सकता है। जीव उन्नति करते करते अपरिमित शक्ति प्राप्त कर सकता है। पश्चाताप करने से भी ईश्वर पाप क्षमा कर देता है।

कर्म फल के विषय में विदेशी दार्शनिकों का समर्थक चिन्तन

पारसी मतानुसार सृष्टि में २ शक्तियां कार्य करती हैं। एक पवित्र शक्ति (**Good Spirit**) और दूसरी अपवित्र शक्ति (**Evil Spirit**) अच्छी बातें स्पेंटामन्यु से और बुरी बातें अंग्रामैन्यु से उत्पन्न होती हैं। मनुष्य यों कर्म करने में स्वतन्त्र है, पर फल भोगने में अहरमजदा (ईश्वर) के आधीन है। बिना कारण किसी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिए। कर्म फल का भोगना जन्म-जन्मान्तर में आवागमन के द्वारा प्राप्त होता रहता है। अहुरमजदा ने ससार के प्राणियों के कर्मों की देख भाल के लिए फरिश्ते नियुक्त कर रखे है। प्रलय के पश्चात तमाम मुर्दे जिन्दा किये जावेंगे और उनसे उनके कर्मों का हिसाब लिया जावेगा। पवित्र विचार, पवित्र शब्द और पवित्र कर्मों से मनुष्य का जीवन उच्च होता है। कर्म स्वातन्त्र्य के कारण मनुष्य स्पेन्टामन्यु तथा अंग्रामैन्यु—दोनों में से किसी का भी साथ चुनने को स्वतन्त्र है। शरीर छोड़ने के चौथे दिन जीव के कर्मों की जांच आरम्भ होती है। जरदुश्त की सिफारिश के अनुसार स्वर्ग या नरक मिलता है। स्वर्ग में सुन्दर तथा नरक में एक एक भद्दी तरुणी मिलती है।

पैथागोरस और औरफियस (५८२-५०६) यह विश्वास रखते थे कि जीवात्मा को इतना पवित्र और शुद्ध बनाया जावे कि यह फिर आवागमन के चक्कर में न फंसे।

सुकरात (४७०-३६६ Bc) ने यह बल पूर्वक कहा कि उच्च जीवन बनाकर जीवात्मा दूसरे लोकों में ज्ञानमय ईश्वर के साथ रह कर परमानन्द प्राप्त कर सकता है।

अर (३८४-३२२ Bc) – बुद्धिमानों को मौत से कभी नहीं डरना चाहिए, वरन् अपने को अमर जान कर कार्य करते रहना चाहिए।

ईसाई धर्म के अनुसार कर्मफल के सिद्धान्त

अ – " धोखा न खाओ, ईश्वर ठट्ठा में नहीं उड़ाया जाता, क्योंकि मनुष्य जो कुछ बोता है, वही काटेगा।

(ग्लेतून आ० ७ आ० ७)

ब – क्योंकि यीसू अपने बाप के प्रकाश और तेज में अपने फरिश्तों के साथ आयेगा, उस समय प्रत्येक को उसके कर्मानुसार बदला देगा।

(मत्ती० १६।२७)

स – फिर उसने कहा, "होशियार हो जाओ! क्या तुम सुनते हो" जिस नाप से तुम नापते हो उसी से तुम्हारे लिए नापा जावेगा।

(मत्ती ७।६)

परन्तु मूल बात यह है कि ईसाई–धर्म में पाप क्षमा किए और कराए जा सकते हैं।

"क्योंकि ईश्वर ने संसार में ऐसा प्रेम रक्खा कि उस ने अपना इकलौता बेटा अर्पण कर दिया ताकि जो कोई

उस पर ईमान लावे, वह मारा न जावे, वरन् सदैव अमर रहे। जो उस पर ईमान लाता है, उस पर दण्ड की आज्ञा नहीं। और जो उस पर ईमान नहीं लाता है उसपर दण्ड की आज्ञा लागू हो चुकी है।

(युहन्ना अध्याय ३, आयत १६-१६)

पुनश्च

यीसू ने कहा " जो मुझ पर ईमान नहीं लाएगा, वह पाप में मरेगा। (युहन्ना ६-२४)

यसू ने कहा कि मुझे पृथिवी पर पाप क्षमा करने का अधिकार है। (मत्ती ६।६)

"जो कोई पापों की क्षमा के लिए प्रायश्चित्त कर के यसू के नाम पर बपतिस्मा लेगा, तो वह पवित्र आत्मा में पुरस्कार पावेगा। (ऐमाल २।३८)

असमानता का कारण ईश्वरेच्छा

ईश्वर अपने अनुमान से जो समझता है, वह प्रत्येक को देता है। यदि वह किसी को लंगड़ा या लूला, अच्छा या बुरा, अमीर या गरीब, दुःखी या सुखी इत्यादि उत्पन्न करता है, तो वह इसलिए करता है कि ऐसा करने से ईश्वर के कार्य उसमें ज्ञात हों। ईश्वर अपनी इच्छानुसार प्रत्येक को शरीर देता है। (यहुन्ना ६।१-३)

इस्लाम

इस्लाम हजरत मुहम्मद (५७०-६३३) कुरान कर्मफल के विषय में ३ दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है – एक तो यह कि कर्मफल अवश्य भोगना पड़ेगा। खुदा ने कुछ फरिश्ते जासूसी करने तथा मनुष्यमात्र के अहवाल की देख भाल को छोड़ रक्खे हैं। वे मनुष्यों के अच्छे और बुरे कामों के नोट लिख लेते हैं। हिसाब के दिन वे ईश्वर के सामने साक्षी देने को नियुक्त हैं। उस दिन खुदा के न्याय के लिए नरसिंहा फूके जाने पर सब मुर्दे जी उठते हैं और कर्मानुसार सदा के लिए स्वर्ग या नरक में भेज दिये जाते हैं। वहिश्त में दूध, शहद और शराब की नहरें है। सजे हुये सोने-चांदी के पलंग। मकान और उनमें सुन्दर कुंवारी लड़कियें तथा जवान लड़के मिलते हैं। नरक में सदैव झुलसाने वाली आग जलती रहती है। कहा है " औरत हो या मर्द, जिस ने नेक काम किए और वह मुसलमान है तो वही स्वर्ग में जावेंगे और उन पर तिलभर अत्याचार न होगा।

(सु० ४ अ० १०३)

दूसरा दृष्टि कोण यह है कि फैसले के समय सब नबी व पैगम्बर आ जाते हैं और वे अपने पर ईमान लाने वालो के पाप अल्लाह से माफ करवा देते हैं। पर काफिरों के पाप क्षमा होने का प्रविधान नहीं है। कहा है— अल्ला जिसे चाहे बक्शेगा और जिसे चाहेगा दुःख देगा।

(सु० २, अ २८३)

तीसरा दृष्टिकोण यह है कि मनुष्य को जो इस जन्म में कुछ सुख, दुःख संताप व्याधि कष्ट आराम मिलता है वह उनके कर्मों का परिणाम न होकर खुदा की मर्जी है।

यहूदी (१८०० ई० पूर्व) आवागमन को नहीं मानते। पर जन्नत और दोजख को मानते हैं। हिसाब के दिन मुर्दे जी उठते हैं और तब कर्मानुसार तथा मूसा की सिफारश पर उन्हें जन्नत या दोजख में सदैव को भेज दिया जाता है। जिहोवा (ईश्वर) बाप, दादा के पापों का दण्ड उसके बेटे पोतों को तीसरी और चौथी पीढ़ी तक देता है।

यूनानी दार्शनिक जेनोफेन्स यद्यपि आस्तिक था, पर वह आवागमन के सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखता था। उसका मत था कि नाश होने पर सारी वस्तुयें उसी ईश्वर में जा मिलती हैं।

एपीक्यूरस – (३४२ Bc) ने आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व का खण्डन किया और यह कहा कि मरने के बाद कुछ शेष नहीं रहता। मनुष्य को चाहिए कि जब तक जियें आनन्द से जीवन व्यतीत करे। खाना पीना आनन्द करना यही जीवन का वास्तविक ध्येय है। पश्चिम के अन्य देशों में एपीक्यूरस के सिद्धांत पहुंचे और उन्होंने आनन्द के मुख्य साधन का सिद्धान्त Hendonism फैलाया, जिसमें येन-केन-प्रकारेण इच्छाओं का पूरा करना ही जीवन का उद्देश्य बताया गया। Cyrenaics भी इन्हीं की शाखा कहे जा सकते हैं। हाब, गसैंडी हैलवीत्यिस तथा मैन्डीवाइल इसी मत के थे।

लाभवादी (Utilitarians) भी इसी पंगत में आते हैं। इनका सिद्धान्त यही था कि औचित्य का माप इसी में है कि किसी वस्तु से आनन्द मिलता है कि नहीं। वे आनन्द की मात्रा तो मानते थे पर आनन्द की गहराई नहीं। बाद में इस में यह संशोधन हुआ कि अधिक से अधिक मनुष्यों को अधिक से अधिक लाभ मिले, इसी से औचित्य सिद्ध होता है। कर्मफल युक्त दर्शन की इन्होंने अवहेलना की। प्रजातन्त्रवाद इसी चिन्तन का फल है। बेन्थल – (१७४८-१८४२) जानस्टुअर्टमिल – (१८०६-१८७३)आदि इस दर्शन के प्रस्तोता थे।

और अन्त में यह विरोध साम्यवादी दर्शन का अंग मान लिया गया है। वे न ईश्वर को मानते हैं न जीव को। यदि मेरा अस्तित्व ही नहीं है तो यह सुख दुःख एवं संस्कृति हैं क्या ? इस प्रकार यह संसार दो विचारधाराओं में बटा है। आप अपना मार्ग स्वयं चुन सकते हैं।

———o———

ऋषि-ऋण

आर्य भाइयों को हित दृष्टि से चेतावनी देता हूँ वे सोचें और समझें कि उनके ऊपर ऋषि का कितना ऋण है। ऋषि ने अपना सम्पूर्ण जीवन तप और त्याग में बिता कर और अन्त में विषपान कर तुम्हारा कितना अन्धकार (अज्ञान) मिटाया। अब तुम्हारा यह कर्तव्य है कि शेष अन्धकार (अज्ञान) को मिटाने में अपना जीवन लगा दो।

आर्य भाइयो ! महर्षि दयानन्द का ऋण चुकाने के लिए ५० वर्ष की आयु के पश्चात् वानप्रस्थ या सन्यास लेकर धर्म प्रचार करना चाहिये। यह परमावश्यक कर्तव्य है।

— सत्यानन्द सूक्ति-सुधा से

योग विवेक विचार

लेखक—डा० हरिदत्त जी शास्त्री 'कुलपति' गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (सहारनपुर)

युज् समाधौ इस धातु से अथवा युजिर योगे से 'योग' शब्द निष्पन्न होता है। समाहित्त होना या परमात्मा के साथ जीवात्मा का संयोग कराना ही योग शब्द का अर्थ है। यह योग मन निरोध के बिना नहीं होता, मन के रोकने के उपायों में दो या तीन प्रकार बताये हैं जिनका नाम हठयोग राजयोग अथवा सम्प्रज्ञात योग है। हठयोग से मन ऐसा हो जाता है कि जैसे चारों पैरों के बांधने पर घोड़ा, उछल कूद मचायेगा यदि पैर खुले होंगे। इसी प्रकार प्राणायाम रूपी रस्सी से मन को बांध दिया जाता है। विचार रूपीरज्जू से विषय दोष दर्शन के द्वारा मन को रोकना राज योग कहलाता है।

विचार से अविद्या को अविद्या ही समझा जाता है। अनित्यों को अनित्य, अपवित्र काया को अपवित्र, और दुःखों को दुःख माना जाता है। हठ योग के 'हकार' और 'ठकार'का अर्थ सूर्य और चन्द्रमा हैं या दक्षिण नासास्वर या वामनासास्वर है। दक्षिण नासारन्ध्र से प्राणवायु का खींचना और छोड़ना शरीर में गर्मी लाता है। वामनासारन्ध्र से प्राणवायु का लेना और छोड़ना शरीर में ठण्डक उत्पन्न करता है। चित्त वृत्ति निरोध का प्राणायाम भी एक उपाय है, किन्तु यह निकृष्ट उपाय है। राज योग विषय दोष दर्शन या भोग्य विषयों का विश्लेषण है, जिसके द्वारा भोगों की ओर मन की प्रवृत्ति नहीं होती क्योंकि भोग्यों का भोग उनके सुन्दर और आकर्षक रुप को देखकर होता है। तथा उस ओर प्रवृत्ति भी भोगों में सुख मानकर होती है जब भोग गत सुख भावना हट जाती हैं तो उसमें प्राणायाम कारण नहीं होता, किन्तु विचार या अर्थ विश्लेषण कारण होता है। इसीलिए इसे राजयोग कहते हैं इसमें मन को समझा कर विषयों से हटाना होता है।

यच्छेद्वाङ० मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥

कभी कभी मन की स्थिरता में महात्माओं का आशीर्वाद भी कारण हो जाता है, क्योंकि उनकी आध्यात्मिक शक्ति अत्यन्त प्रबल होती है। योग दर्शनकार इसी विषय विशेष में मन की स्थिति करने से या यथाभिमत ध्यान से भी चित्तवृति का निरोध मानते है।

(योग दर्शन सूत्र ३५,३६,समाधि पाद)

ज्ञातृज्ञेय और ज्ञान की एकता समापत्ति कहलाती है। जो कि सवितर्क और निर्वितर्क भेद से दो प्रकार की है जिसमें शब्द अर्थ का पृथक् २ ज्ञान रहें, वह सवितर्क समापत्ति है। अर्थ मात्र का ज्ञान जिसमें रहे वह निर्वितक समापत्ति है। सूक्ष्म विषयक समापत्ति सविचार और निर्विचार भेद से दो प्रकार की है। —इसके होने से पांचों प्रकार के क्लेश नष्ट हो जाते हैं। तथा क्लेशों के नाश से कर्माशय या संसार का ही नाश होता है तथा विवेक जन्य द्वारा साधक मोक्ष पथ का अनुयायी होता है। धारणा, ध्यान और समाधि को एक साथ करने से मनुष्य संयमी बन जाता है। संयमी को ऋद्धि और सिद्धि योग-मार्ग से भ्रष्ट करने के लिए उदित होती है,यह योग दर्शन के ही निर्दिष्ट मार्ग को ग्रहण करने से क्या लाभ,—क्योंकि अन्य दर्शनकारों ने चित्त निरोध का उपाय बतलाया हैं यह संख्या ठीक नहीं।

क्यों कि अन्य दर्शनों में योग मार्ग का विचार अति संक्षिप्त है यदि कहो कि योग दर्शनकार ने क्षणिक विज्ञान वाद का खन्डन क्यों किया तो इसका समाधान यह है कि-

क्षणिक होने से मन सदा ही स्थिर रहता है अतः मन की स्थिरता का उपाय ढूढना व्यर्थ हैं। अतएव योगोपयोगी स्थायी चंचल चित्त को स्थिर करने के लिए क्षणिक वाद का खन्डन किया है। इस प्रकार योगदर्शन का प्रत्येक विषय योग की प्राप्ति के लिए ही है। यह समझना चाहिए कि ध्यान और निदिध्यासन दोनों एक ही हैं।

क्योंकि स्कन्दराचार्य ने—

ध्यानद्वादशते नैव समाधिरभिधीयते, कहा है।

विश्वरूपाचार्य ने भी कहा है कि "ध्यानदास्पन्दन बुद्धेः समाधिरभिधीयते ॥

इस प्रकार समाधि ध्यान और योग ये तीनों शब्द पर्यायवाची ही है। याज्ञवल्क्य महर्षि ने —

समाधिः समताऽवस्था जीवात्मरमात्मनोः।
संयोगो योग इत्युक्तः जीवात्परमात्मनो : ॥

यह कहा हैं जो कि कहीं कहीं समाधि और योग का भिन्न भिन्न लक्षण किया है वह सम्प्रज्ञात समाधि से लेकर विवेक ख्याति तक जितनी भी ज्ञान प्रसाद उत्पन्न करने वाली अवस्थायें है उन सबको ही योग शब्द से व्यपदिष्ट करने के लिये है। केवल यमादि योगाङ्गों के मध्य जो समाधि शब्द प्रयुक्त है वह योग शब्द से नहीं कहा जाता। किंच निदिध्यासन क्षणयाम अर्द्धयाम पर्यन्त चित्त की एकाग्रता जब मन को हो जाती है तब बढ़ते २ एक दिन या एक पक्ष तक होने वाली चित्तैकाग्रता, धर्ममेघ ऋतंभरा प्रज्ञा, प्रसंख्यान की पराकाष्ठा असम्प्रज्ञात समाधि जीवन मुक्तावस्था, निर्विकल्प समाधि आदि शब्दों से की जाती है। अतएव कहा है कि—

योगाभ्यास रतः शान्तः परम ब्रह्माधि गच्छति।
अयं तु परमो धर्मः यत् योगे नात्म दर्शनम ॥

यहां यह शंका की जा सकती हैं कि प्रसंख्यान को प्रभा करणों में परिसंख्यातन करने से प्रसंख्यानजन्य ज्ञान अप्रमा माना जायेगा। यह कथन ठीक नहीं। क्योंकि अप्रमात्व बाधितविषयत्वेन होता है। प्रसंख्यान जन्मत्वेन नहीं तथा प्रसंख्यान संस्कृत मन ही ब्रह्म साक्षात्कार का कारण माना जाता है। क्यों कि यह साक्षात्कार अन्तःकरण की वृत्ति विशेष है। कुछ लोग मन को इन्द्रिय नहीं मानते इस विचार को यहां अप्रासंगिक होने से नहीं कर रहे।

यह विषय भी बड़ा विवेचनीय हैं अतः फिर किसी अवसर पर इसका विचार किया जावेगा प्रत्यक्ष का कारण या आत्म साक्षात्कार का हेतु शब्द नहीं होता किन्तु प्रसंख्यान होता हैं। यदि कहो कि—

'दशमः त्वमसि, इसके समान महाकाव्यों के द्वारा भी आत्म साक्षात्कार होता है अतः शब्दों से भी प्रत्यक्ष ज्ञान की उत्पत्ति माननी चाहिए यह कथन ठीक नहीं। —

क्योंकि यह महाकाव्य या त्वमसि वाक्य साक्षात् प्रत्यक्ष जनक नहीं होते, वे तो विपरीत भावना के निवर्तक माने गये हैं।

अतएव सर्वज्ञात मुनि ने संक्षेप में शारीरिक में मछुं की कथा से इस सिद्धान्त की स्थापना की है। कथा इस प्रकार है कि मछुं नाम का ब्राह्मण राजा को अत्यन्त प्रिय था। अतएव मन्त्री तथा अन्य अधिकारी उससे द्वेष करते थे। एक बार उसकी आखें बन्द कर अन्य व्यक्तियों ने उसे जंगलों में छुड़वा दिया तथा राजा से कह दिया कि मछुं मर गया। एक बार वह नगर के समीप आया पर राजा तक न पहुचने दिया और राजा के कान भर दिये कि वह भूत बन गया एक बार राजा जंगल में गया और मछुं को देखकर ब्रह्म राक्षस समझा। इसी प्रकार दोषरहित नेत्रों से उत्पन्न प्रमाण भूत मछुं के बारे में बुद्धि मछुं मर गया और भूत बन गया इस प्रकार के असम्भावना रूप चित्त के दोष से सत्य ज्ञान को उत्पन्न नहीं होने देती इसी प्रकार निर्दोष महावाक्य जन्म प्रमाण भूत – – – "अहं ब्रह्मास्मि" बुद्धि विपरीत भावना से कटिबद्ध होने के कारण से अज्ञान की निवृत्ति करने में समर्थ नहीं होती। विपरीत भावना निदिध्यासन या योग के द्वारा हटायी जा सकती है जब कि श्रवण मननादि से पूर्ण हो चुके होने हैं। अतः योग के द्वारा ही परमात्माय विषयक प्रत्यक्ष होत है यही योग शास्त्र की सर्वश्रेष्ठ उपयोगिता है।

मधु वाहन रथ

लेख संग्रहकर्ता — श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं यार्थस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३४, मन्त्र २

इस वेद मन्त्र का अर्थ महर्षि दयानन्द ने इस प्रकार किया है—

पदार्थः — हे अश्वि अर्थात् वायु और बिजली के समान सम्पूर्ण शिल्प विद्याओं को यथा[वत्] जानने वाले विद्वान् लोगो ! आप जिस (मधुवाहने) मधुर गुणयुक्त द्रव्यों की प्राप्ति होने के [हेतु] (रथे) विमान में (त्रयः) तीन (पवयः) वज्र के समान कला घूमने के चक्र और (त्रयः) ती[न] (स्कम्भासः) बन्धन के लिए खंभ (स्कभितासः) स्थापित और धारण किये जाते हैं, उनमें सि[द्ध] अग्नि और जल के समान कार्य सिद्धि करके (त्रिः) तीन बार (नक्तम्) रात्रि और (त्रिः) ती[न] वार (दिवा) दिन में इच्छा किये हुये स्थान को (उपयाथः) वहां भी आपके बिना कार्य सि[द्धि] कदापि नहीं होती मनुष्य लोग जिसमें बैठ के (सोमस्य) ऐश्वर्य की (वेनाम्) प्राप्ति को करती हु[ई] कामना वा चन्द्रलोक की कान्ति को प्राप्त होते और जिसके (आरभे) आरम्भ करने यो[ग्य] गमनागमन व्यवहार में (विश्वे) सब विद्वान् (इत्) ही (विदुः) जानते हैं उस (उ) अद्भु[त] रथ को ठीक-ठीक सिद्ध कर अभीष्ट स्थानों में जाया आया करो ॥२॥

भावार्थः — भूमि समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने की इच्छा करने वाले मनुष्यों को योग्य है [कि] तीन-तीन चक्र युक्त अग्नि के घर और स्तम्भ युक्त यान को रच कर उसमें बैठ करके एक दिन-रात [में] भूगोल समुद्र अन्तरिक्ष मार्ग से तीन-तीन वार जाने को समर्थ हो सकें । इस यान में इस प्रकार [के] खम्भ रचने चाहियें कि जिसमें कलावयव अर्थात् काष्ठ लोष्ठ आदि के अवयव स्थित हों फिर व[हां] अग्नि-जल का संप्रयोग कर चलावें । क्योंकि इसके बिना कोई मनुष्य शीघ्र भूमि, समुद्र, अन्तरिक्ष [में] जाने आने को समर्थ नहीं हो सकता । इसमें इनकी सिद्धि के लिए मनुष्यों को बड़े-बड़े यत्न अवश्य कर[ने] चाहियें ॥ ३ ॥

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती हमें बतलाते हैं कि मधुवाहन रथ द्वारा अन्तरिक्ष लोकों [की] यात्रा करने के लिये वेद मानवों को प्रेरणा देते हैं ।

—

श्रुति सम्मत त्रैतवाद

लेखक– श्री देवमुनि

परमात्मा व आत्मा तथा प्रकृति ये तीन तत्व संसार में हैं और तीनों ही अनादि व अनन्त हैं। यह तीनों कैसे एक साथ हैं अथवा इनका आपस में क्या सम्बन्ध हैं, संक्षेप में इनका स्पष्टिकरण निम्न प्रकार है--

श्री देवमुनि

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

अथर्व वेद काण्ड ९ सूक्त १४ मंत्र २०वां

अर्थ – सदा साथ रहने वाले तथा परस्पर सख्य भाव रखने वाले दो पक्षी (परमात्मा व आत्मा अथवा ईश्वर व जीव) एक ही वृक्ष (शरीर) का आश्रय लेकर (हृदय रूपी घोंसला में) रहते हैं। उन दोनों में एक परमात्मा अथवा ईश्वर केवल देखता रहता है किन्तु दूसरा आत्मा अथवा जीव उस वृक्ष के फलों (कर्म फलों) को स्वाद ले लेकर खाता है।

गीता में संसार को वृक्ष रूप में और दो पक्षी ईश्वर व जीव मानकर इस का वर्णन किया गया है। कठोपनिषद में परमात्मा और आत्मा को गुहा में प्रविष्ट धूप व छाया के रूप में बताया गया है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यथमीशमग्य महिमानमिति वीतशोकः।।

जीव साथ रहने वाले परमात्मा अथवा ईश्वर को पहचान लेता है और उस के भक्तों द्वारा सेवित परमात्मा की आश्चर्यमयी महिमा को मान लेता है और तब वह तत्काल ही शोक रहित हो जाता है और संसार के भोगों से मुह मोड़ लेता है।

परमात्मा अथवा ईश्वर

वहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।

गीता १३।१५ ।।

चराचर सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है और चर अचर रूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर में भी स्थित है।

ज्योतिषामपि तज्ज्योति स्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।

गीता १३।१७

वह परमात्मा ज्योतियों का भी ज्योति तथा अन्धकार से अति परे कहा जाता है। (तथा वह परमात्मा) बोध स्वरूप जानने के योग्य है। वह तत्वज्ञान से प्राप्त होने वाला है और सब के हृदय में स्थित है।

उपनिषदों द्वारा समर्थन

अणोरणीयान्महतो महीया नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।

ईश उ० बल्ली २।२० ।। श्वेता० ३।२० ।।

वह परमात्मा सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म बड़े से भी बहुत बड़ा है इस मनुष्य के हृदय रूपी गुहा में छिपा हुआ है। सब

की रचना करने वाले परमात्मा की कृपा से उस संकल्प रहित परमेश्वर की महिमा को जान लेता है तथा सब प्रकार के दुःखों से रहित हो जाता है।

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनोहि प्रवदन्ति नित्यम्।
श्वेत० उ० ३।२१ ॥

वेद के रहस्य का वर्णन करने वाले विद्वान जिस के जन्म का अभाव बतलाते हैं तथा जिसको नित्य बतलाते हैं, इस व्यापक होने के कारण सर्वत्र विद्यमान, सबके आत्मा, जरा, मृत्यु आदि विकारों से रहित, पुराण पुरुष परमेश्वर को (परमात्मा का उपासक भक्त) मैंने निश्चय जान लिया है।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्य माने शरीरे ॥
कठो० २।१८ ।

नित्य ज्ञान स्वरूप परमात्मा न तो जन्मता है और न मरता है, यह न तो स्वयं किसी से हुआ है न कोई भी इससे हुआ है अर्थात् न तो किसी का कार्य है और न कारण ही है (अर्थात् आत्मायें या जीव इससे उत्पन्न नहीं हुये हैं, जीव भी अनादि हैं) यह अजन्मा, नित्य सदा एक रस रहने वाला पुरातन है अर्थात् क्षय व वृद्धि से रहित है। शरीर के नाश किए जाने पर भी इसका नाश नहीं होता। अर्थात् परमात्मा शरीरों में भी है परन्तु शरीरों के नाश होने से वह नष्ट नहीं होता।

वेद द्वारा समर्तन

स पर्यगाच्छु क्रमकायम व्रणमस्नाविरं शुद्धम पापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू र्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
ईश० ८ ॥ यजु० अ० ४०।८ ॥

वह परमात्मा परमतेजोमय, काया रहित, छिद्र रहित या क्षय रहित, शिराओं से रहित अर्थात् स्थूलपंचभौतिक शरीर से रहित दिव्यसच्चिदानन्द स्वरूप, शुभाशुभ कर्म सम्पर्क शून्य, सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ एवं ज्ञानस्व[रूप] सर्वोपरिविद्यमान् है। न किसी का कारण न कार्य, स्वयंसि[द्ध] अनादि काल से सब जीवों (आत्माओं) को कार्यानु[सार] यथायोग्य सम्पूर्ण पदार्थों का विधान करता है अर्थात् [...] देता है।

आत्मा (जीव)

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा,
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
गीता अ० २।२२।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे न[ये] वस्त्रों को ग्रहण करता है वैसे ही आत्मा (जीव) पु[राने] शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥
गीता अ० २।२३

इस आत्मा (जीव) को शस्त्रादि नहीं काट सक[ते] और इसको आग नहीं जला सकती है। न इसको ज[ल] ही गीला कर सकता है और न ही वायु इसको सु[खा] सकता है।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितु मर्हसि ॥
गीता अ० २।३०।

भारत (हे अर्जुन) यह देहधारी (आत्मा, जीव) सबके शरीर में सदा ही अवध्य (जिसका बध न किया जा सके) है, इस लिए सम्पूर्ण भूत प्राणियों का, जो मर गए। तू शोक मत कर। वह शोक करने के योग्य नहीं है।

प्रकृति (माया)

परमात्मा तथा आत्मा के अतिरिक्त एक तृतीय तत्व है, जो उन दोनों के समान अनादि व अनन्त है परन्तु

अचैतन्य है। इसके द्वारा ही परमात्मा आत्मा पर शासन करता है।

भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है :—

प्रकृति पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान्॥
गीता अ० १३।१६।

सत्व, रज तथा तम, त्रिगुणमयी तत्व, आत्मा (जीव) अर्थात् क्षेत्रज्ञ, इन दोनों को ही तू अनादि जान और राग-द्वेष आदि विकारों को तथा त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण पदार्थों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न हुए जान।

कार्य कारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृति रुच्यते।
पुरुषः सुखदुखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते॥
गीता अ० १३।२०।

कार्य और कारण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति कही जाती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी और शब्द स्पर्श, रूप, रस व गन्ध का नाम कार्य है। बुद्धि व अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना व नेत्र और घ्राण एवं बाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा इन १३ का नामकरण है। आत्मा (जीव) सुखदुःखों के भोगने में हेतु कहा जाता है।

सर्व योनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनि रहं बीज प्रदःपिता॥
गी० अ० १४।४॥

हे अर्जुन! नाना प्रकार की सब योनियों में जितनी मूर्तियां अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं उन सब में त्रिगुणमयी प्रकृति गर्भधारण करने वाली माता है, और बीजका स्थापन करने वाला परमात्मा (परमेश्वर) पिता है।

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः।
निवध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ गी.अ. १४।५

हे अर्जुन! सत्त्वगुण, रजो गुण और तमोगुण यह प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुण अविनाशी आत्मा में बांधते हैं।

तात्पर्य यह कि इस ब्रह्माण्ड में दो चेतन तत्व हैं। एक अद्वितीय सर्व व्यापक सर्वज्ञ ब्रह्म और दूसरा अल्पज्ञ जीव। यह दोनों ही अजन्मा अविनाशी हैं। इन में पहला ब्रह्म है जो सर्व शक्तिमान है और सारे संसार पर शासन करने वाला है और दूसरा जीव अल्पज्ञ शक्ति वाला है। उसका शासन अपने शरीर तक ही सीमित रहता है। इन दो चेतन तत्वों के अतिरिक्त सत्व रज तमात्मक असंख्य परमाणुओं का समूह भी है जो प्रकृति नाम से पुकारा जाता है। वह भी मूलरूप में अविनश्वर है। असंख्य जीवों के लिए योग्य पदार्थों को सृजन करना इसका कार्य है। परमात्मा असीम है और समस्त संसार को उत्पन्न करने वाला है। वह निराकार और आप्तकाम होने के कारण प्रकृति के भोगों से सदा परे रहता है। बस यही एक वैदिक त्रैतवाद है, जो महान त्रिक भी कहलाता है। जो इस रहस्य को भली प्रकार जान लेता है वह सब लौकिक बन्धनों से मुक्त होता है।

—o—

- जब तक जितेन्द्रियता स्वाभाविक न हो जावे तब तक किसी भी व्यक्ति (स्त्री-पुरुष) से एकान्त में अधिक बातचीत मत करो
- अपने ऊपर आने वाले सुख दुःख का शासन अपने ऊपर मत होने दो।

शान्तिप्रदाता - वानप्रस्थाश्रम

(शिखरिणी छन्द)

लेखक—योगेन्द्र पुरुषार्थी, योगानुसन्धाता

सुनो प्रेमी प्यारे, विकल मन त्यागो तम निशा ।
सदा से ही भोगे, सुखदुःख भरे भोग भव में ।।
निराशा ही पायी, विकट मग, पायी नहिं दिशा ।
मिले स्वामी कैसे, तज तनिक धन्धे नहिं तपे ।।१।।

गयी बाल्यावस्था, पढ़-लिख लगे काम करने ।
पिता-माता-भार्या, भवन धन पाले सुत-सुता ।।
कभी ना यों सोचा, इह जगत में प्राण धरके ।
किया क्या मैंने रे ! प्रभु शरण पाया नहिं अभी ।।२।।

चलो 'वानप्रस्थ' श्रुतिविहित पालो नियम को ।
वहां त्यागो चिन्ता चपल चित चाहा मत करो ।।
जहाँ प्रातः सायं, नियमित लगा ध्यान दिल में ।
करो आत्मासाक्षात्, परमपद चाहो यदि मिला ।।३।।

वहीं घी-सामग्री, प्रतिदिन रचो यज्ञ मिलके ।
कथा-वार्ता-व्याख्या, विबुध जन गाले नित सुनो ।।
भगे भारी भ्रान्ति, भ्रम रहित भागो भुवन में ।
सुधी सेवो शान्तिः सबल 'पुरुषार्थी' सब बनो ।।४।।

सुख कहां ?

लेखक — स्वामी विवेकानन्द सरस्वती, प्रभात आश्रम, मेरठ

मनुष्य ही नहीं, अपितु प्रत्येक प्राणी में सुख-प्राप्ति की अभीप्सा की नैसर्गिक प्रवृत्ति तथा तत्-साधनभूत अनुष्ठानों के अनुष्ठान की प्राकृतिक प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। यह बात दूसरी है कि बुद्धिभेद तथा सामर्थ्य के न्यूनाधिक होने के कारण साधनों में भेद है और साधनों में भेद होने के कारण उस साधन के उपयोग में भेद होना स्वाभाविक है। अन्य प्राणियों की तो बात ही क्या स्वयं मनुष्य के साधनों में और उनके अनुष्ठान के प्रकारों में भी एकता का अभाव ही दृष्टिगोचर होता है, यह बड़ी विचित्रतापूर्ण विडम्बना है कि जितना सुख की ओर दौड़ लगाई जाती है सुख उतना ही दूर और सर्वथा दूर होता चला जाता है। इसका क्या कारण है, बस यही आज विचारना है।

सुख दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है। पहला है किसी बाह्य वस्तु के संसर्ग के अनुकूलता की अनुभूति, दूसरा है — जो अपने दुःख हैं उसकी निवृत्ति। जैसे किसी के शरीर पर उसकी सामर्थ्य से अधिक भार रखा है और वह उस भार से मरा जा रहा है उस भार को उतार देने से उसको सुख की अनुभूति होती है ऐसे सुख को दुःख निवृत्यात्मक सुख कहते है तथा पहले सुख को संसर्ग जन्य सुख कहते हैं। इस सुख में दूसरी वस्तु से सुख की अनुभूति होती है जैसे मृदु मधुर सुगन्धयुक्त पदार्थ का स्पर्शन आस्वादन एवं आघ्रण। इस प्रकार दुःख भी दो प्रकार का होता है। संसर्गज और अभावज तलवार वृश्चिक दश, अग्नि स्पर्श से उत्पन्न होने वाला दुःख संसर्गज है और किसी वस्तु के न मिलने से या हानि होने से अभावज दुःख होता है जैसे धन-धान्य पुत्र-पौत्रादि के अभाव में।

इस प्रकार सुख-दुःख का एक अनवरत प्रवाह प्रवाहित हो रहा है, जिसमें पड़ा हुआ मनुष्य भी अन्य प्राणियों की भांति किं कर्तव्य विमूढ़ होकर कराह रहा है। ऋषियों ने उसकी इस असहाय अवस्था पर दया करके बताया कि जिस दुःख में तुम डूब रहे हो वह कोई ऐसा नहीं जिससे तुम छूट न सको। दुःख की अत्यन्त निवृत्ति ही तो अपवर्ग है। तुम्हारे दुःख का कारण संसार की प्राकृतिक वस्तुयें नहीं हैं किन्तु तुमने जो अपने आपको अन्य वस्तुओं के साथ बांध रखा है वही तुम्हारे दुःख का कारण है। वास्तव में मनुष्य भोगों में सुख को ढूंढता हुआ भूल से अपने ऊपर दुःख का पहाड़ खड़ा कर लेता है, जिससे जन्म-जन्मान्तरों तक नीचे धंसता चला जाता है। सुख का मार्ग स्व में निहित है पर वो यहां सभी अवस्थाओं में दुःख का मूल ही है। पर वस्तुओं से अपने आपको हटा कर अपने स्व में लीन होना ही सुख है। इसी साधना का उपाय योग कहा जाता है। जहां-जहां बाह्य वस्तुओं में हमारी वृत्तियां विकीर्ण हैं उनको तत्तत् स्थानों से निरुद्ध कर

अपने में अवरुद्ध करें 'योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः' और, तब होगा 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' द्रष्टा के स्वरू में अवस्थान । इस अवस्थान के पश्चात् मनुष्य को संसार की कोई भी बाहरी वस्तु प्रभावित नहीं क सकती और वह अपवर्ग का अनुभव करता हुआ निश्चिन्त विचरता है । संसार की वस्तुओं से जब त राग नहीं समाप्त होगा, हमारे दुःखों का अन्त नहीं हो सकेगा और राग निवृत्ति का एकमात्र उपाय है प्रभु भक्ति (ईश्वर प्रणिधान) जिस दिन ईश्वर प्रणिधान हमारे जीवन में आ जायेगा उस दिन प पदों के लिए आपा-धापी, धन के लिए भाग-दौड़ तथा मान-सम्मान का भूत अपने आप कहां भा जायेगा, इसका हमें पता भी नहीं लगेगा ।

विषयों को भोग कर विषय भोग की इच्छा की समाप्ति का दिवा स्वप्न देखना उस भों मनुष्य के कार्य के समान होगा, जो जले हुये को और जला कर कटे हुए को और काट कर त सांप को दूध पिला कर उसे ठीक करना और उसके विष को शान्त करना चाहता है । क्योंकि मनु जितना-जितना विषयों का सेवन करता है इन्द्रियां उतनी अधिक विषय भोगने में कुशल होती जाती और विषयों के प्रति प्रवृत्ति बढ़ती जाती है "हविषा कृष्ण वर्त्मेवभूय एवाभि वर्धते" ।

प्रभु हमें सामर्थ्य प्रदान करें कि हम वृत्तियों के विस्तार में नहीं किन्तु उसके निरोध में सन्त सुख को अनुभव कर उस ओर प्रवृत्त होवें ।

ये ते पवित्र उर्मयो अभिक्षरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृडय ।। ऋग्वेद

।। इति ।।

---

० बच्चों की तथा निर्बलों की सेवा करते हुये हर्ष अथवा विषाद मत होने दो ।

० मृतक प्राणी का चिन्तन मत करो ।

० नूतन बालकवत् स्वभाव बनाने का प्रयत्न करो ।

वैदिक आश्रम व्यवस्था

लेखक — श्रीमती शान्तिदेवी

नर तन का पाना बड़ा दुर्लभ है। "हंसगीता" में कहा है कि "न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्" मानव देह सृष्टिकर्ता प्रभु की सर्वोत्तम कृति है। जब शुभ कर्मों का आधिक्य होता है तब जीवात्मा पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि चौरासी लाख योनियों रूपी जेलखानों से मुक्त हो कर ऐसे देह को प्राप्त करता है जिसमें बैठकर वह स्वतन्त्र चिन्तन एवं मनन कर सकता है। इस स्वतन्त्र चिन्तन एवं मनन की क्षमता के कारण ही इसे मनुष्य कहा जाता है इस देह को धारण करके जीवात्मा स्वतन्त्रापूर्वक उन उपायों के विषय में सोच सकता है जिनको कार्यान्वित करने से उसे पुनः मनुष्येतर योनियों में न जाना पड़े।

श्रीमती शान्तिदेवी

इस नर तन को पाकर जीवात्मा को अपने वास्तविक उद्देश्य की प्राप्ति का यत्न करना चाहिये। वह उद्देश्य क्या है? त्रिविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति। सब प्रकार के बन्धनों से मुक्ति। अपने सखा परमात्मा के स्वरूप में स्थिति। शास्त्रकारों ने, वैदिक मनीषियों ने तथा स्मृतिकारों ने इस उद्देश्य की कई प्रकार से व्याख्या की है।

इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर मानव जीवन को चार खण्डों में विभाजित किया गया है जिनका नाम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम रखा गया है। इनको आश्रम इसीलिये कहते हैं कि इन चारों में भिन्न-भिन्न प्रकार का शारीरिक एवं मानसिक श्रम करना आवश्यक है। स्पष्ट है कि बिना श्रम के एक छोटे से उद्देश्य की भी पूर्ति नहीं हो सकती। नर तन का उद्देश्य तो महान् है उसके लिये तो अत्यधिक श्रम आवश्यक है। इस दृष्टिकोण पर बल देने के लिये इनको केवल श्रम नहीं आश्रम नाम दिया गया है। आङ् उपसर्ग संस्कृत में "समन्तात्" अर्थात् सब ओर से, सब प्रकार से इत्यादि अर्थों में प्रयुक्त होता है।

ब्रह्मचर्य आश्रम मानव जीवन की आधारशिला है। इसमें बालक शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों का विकास करता है। शारीरिक शक्ति को विकसित करने के लिये नियमित आहार, एवं व्यवहार, व्यायाम तथा ब्रह्मचर्य आदि के व्रतों का पालन करता है तपस्या का जीवन बिताता है।

मानसिक शक्ति के विकास के लिये यम नियमों का पालन तथा आसन प्राणायाम आदि का अभ्यास करता है और बौद्धिक शक्तियों का विकास वेद-वेदाङ्गों तथा सच्छास्त्रों के अध्ययन द्वारा करता है। २५ वर्ष की आयु तक निरन्तर कठोर परिश्रम एवं घोर तप के बाद वह गृहस्थ के उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने की क्षमता अर्जित करता है।

गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर नवयुवक एवं नवयुवतियां समाज के अभिन्न अंग के तौर पर समाज की सेवा करते हैं। समाज को स्वस्थ, सुन्दर, सच्चरित्र एवं उस प्रकार की कार्य-कुशल सन्तान देते हैं। जो सच्चे अर्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बन सकें। जो राष्ट्र में ब्रह्मचर्य वर्चस्वी विद्वान्, शूरवीर योद्धा तथा आर्थिक समृद्धि की ओर ले जाने वाले व्यापारी बन सकें। समाज में प्रचलित कुरीतियों, व्यसनों तथा भ्रष्टाचार को दूर करके समाज को स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनाते हैं। समाज के कमजोर अंगों को उन्नति के पथ पर अग्रसर करते हैं। इन सेवाओं के साथ ही गृहस्थ आश्रम मनुष्य को अपनी कामनाओं की पूर्ति का अवसर प्रदान करता है। मुख्य कामनायें तीन हैं जिन्हें पुत्रैषणा वित्तैषणा एवं लोकैषणा कहा जाता है। मनुष्य अच्छा या बुरा जो कुछ करता है वह इन कामनाओं की पूर्ति के लिये ही करता है। पुत्रैषणा काम व मोह की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। वित्तैषणा स्वार्थ लोभ एवं कृपणता की वृत्ति को बढ़ावा देती है और लोकेषणा अभिमान व ईर्ष्या की वृत्ति को बढ़ावा देती है। मनुष्य में ये एषणायें और ये वृत्तियां स्वाभाविक हैं क्योंकि इस मानव देह को पाने से पहिले जीवात्मा पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि भोग योनियों में चक्कर खा चुका होता है।

प्राचीन भारतीय मनीषी क्रान्त दर्शी थे, उन्होंने गृहस्थाश्रम का विधान किया जिसमें मनुष्य इन एषणाओं की पूर्ति के रस का आस्वादन कर लें और उनकी निस्सारता को भलीभांति समझ कर इनसे विरक्त हो सके। इस तरह २५ वर्ष तक सांसारिक ऐश्वर्य को भोग कर और उस भोग की निस्सारता को हृदयंगम करके तीसरे आश्रम में प्रवेश करे।

वानप्रस्थ आश्रम में मनुष्य एकान्त में बैठ कर स्वाध्याय एवं योगाभ्यास से अपने आपको सब प्रकार की एषणाओं से ऊपर उठाने का यत्न करता है, वह शहर व ग्राम को छोड़ कर जंगल में निवास करता है। सारा जीवन, जिसमें कम से कम आवश्यकता हो, व्यतीत करता है। उसका सारा प्रयत्न मन, बुद्धि की पवित्रता के माध्यम से आत्मा को स्वच्छ व निर्दोष करने के लिये होता है। मनु के शब्दों में वानप्रस्थ का जीवन निम्न १२ व्रतों पर आधारित है—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्य मनादाता सर्वभूतानुकम्पया॥

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशया ।
शरणेष्व ममश्चैव वृक्ष मूल निकेतनः ॥

— मनु० ६ । ८ व २६

अर्थ – स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने-पढ़ाने में नित्ययुक्त, जितात्मा, सबका मित्र इन्द्रियों का दमन शील, विद्यादि का दान देने हारा और सबपर दयालु, किसी से कुछ भी पदार्थ न लेवे इस प्रकार सदा वर्तमान करे । शरीर के सुख के लिये अति प्रयत्न न करे. ब्रह्मचारी रहे, भूमि पर सोवे, अपने आश्रित वा स्वकीय पदार्थों में ममता न करे और वृक्ष के मूल में सुख से बसे ।

इन बारह व्रतों पर आचरण करने से मनुष्य तीनों एषणाओं से ऊपर उठ जाता है इस स्थिति को पाकर ७५ वर्ष की आयु में संन्यास आश्रम में प्रवेश करे ।

संन्यास आश्रम में मनुष्य सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखता है स्वयं निर्भय हो कर विचरता है और सब प्राणियों को अभय प्रदान करता है । अपना सारा समय परोपकार और योगाभ्यास में व्यतीत करता है । भिक्षा से भोजन करता है और परिव्राजक रहता है । अर्थात् एक स्थान पर अधिक समय नहीं ठहरता । यह विधान इसलिये किया गया है जिससे वह अभिमान और मोह, ममता से दूर रहे ।

इस प्रकार ऋषियों ने अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि के लिए इन चार आश्रमों की व्यवस्था की है । इन आश्रमों में से ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ आश्रम प्रत्येक व्यक्ति के लिये अनिवार्य हैं । ये आश्रम क्रमशः गृहस्थ एवं संन्यास की तैयारी के लिये हैं । यदि तैयारी हो जाये अर्थात् गृहस्थ एवं संन्यास आश्रम के उत्तरदायित्वों को पूर्ण करने की क्षमता पैदा हो जाये तो गृहस्थी या संन्यासी बने अथवा नहीं । आजकल बिना तैयारी के गृहस्थ एवं संन्यास आश्रम में प्रवेश ले लिया जाता है उसी के परिणामस्वरूप समाज को स्वस्थ एवं सच्चरित्र व्यक्ति नहीं मिलते और सच्चा संन्यासी तो ढूंढे से भी सम्भव है, कोई न मिल पावे । गेरवे वस्त्रधारी तो बहुत हैं परन्तु तीनों एषणाओं से ऊपर उठे हुए व्यक्ति मिलने दुर्लभ है । राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जाने के लिए इस आश्रम व्यवस्था का पुनरुद्धार आवश्यक प्रतीत होता है ।

—o—

आश्रम - व्यवस्था

लेखक — श्री महेन्द्रदेव शास्त्री विद्याभूषण

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम को स्थापित हुये ५० वर्ष हो गये और अब वह अपनी स्वर्ण-जयन्ती मना रहा है आत्म-निरीक्षण का समय भी यही है । ५० वर्ष का समय कुछ कम नहीं होता, उसमें हम कितने उन्नत हुये अथवा हमने ऋषि-ऋण को कितना चुकाया तथा हमसे आश्रम की कितनी प्रतिष्ठा बढ़ी यह देखने की बात है । आर्यसमाज की स्थापना करते हुए ऋषि दयानन्द ने उसकी उन्नति के लिये तीन बातों पर बड़ा बल दिया है। सबसे पहली बात १६ संस्कार हैं । इनका मुख्य प्रयोजन आत्मा को सुसंस्कृत करना है । जन्म से नहीं अपितु गर्भस्थ शिशु के ही अन्दर संस्कार प्रक्रिया से गर्भाधान करने का शास्त्रोक्त निराला ढंग है जिसे ऋषि ने बड़ा विचार करके लोक-हितार्थ आर्यों के लिये अत्यावश्यक बताया । गर्भाधान से भी पूर्व माता-पिता को अपने विचारों में पवित्रता लाने का सदुपदेश है । तीन संस्कार तो बालक के जन्म से पूर्व ही हो जाते हैं फिर जातकर्म संस्कार से लेकर समस्त संस्कारों की रूपरेखा ही ऐसी है जिससे सारी आयु में मृत्यु से पूर्व तक जीवात्मा को शरीर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि सहित पवित्र और सुसंस्कृत होने की प्रेरणा है । पुराकाल में संस्कारों पर बड़ा ध्यान दिया जाता था, किन्तु अब शनैः शनैः उनकी उपेक्षा होती जा रही है । परिणाम यह हुआ है कि कुसंस्कृत लोगों से भारत भूमि कलङ्कित हो रही है । दूसरी बात वर्ण-मर्यादा या वर्ण-व्यवस्था है यह भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने शुभ कर्मों को करते हुए जीवन यापन करें तो संसार के समस्त दुःखों की निवृत्ति हो जावे, किन्तु इस समय सभी वर्ण अपने-अपने धर्मों को छोड़ बैठे हैं तथा सभी वर्णों का दूषित रूप ही रह गया है । आर्यसमाज इस वर्ण-व्यवस्था को गुण, कर्म और स्वभाव से मानता है जन्म से नहीं । चार प्रकार के वर्ग संसार में कार्य कर रहे हैं । कुछ लोग ज्ञान की विशेष प्राप्ति करते हैं और ज्ञान का ही प्रचार भी करते रहते हैं उन्हें आप ब्राह्मण नाम से न पुकार कर किसी भी नाम से पुकार सकते हैं किन्तु यह केवल नामभेद मात्र होगा । दूसरा वर्ण जो रक्षा के कार्य में संलग्न रहता है जैसे फौज और पुलिस के सिपाही । इनसे भी संसार कभी खाली नहीं रहा है । इन को आप क्षत्रिय कह सकते हैं या किसी दूसरे नाम से पुकार सकते हैं, ऐसा वर्ग भी संसार के कल्याण के लिये अत्यावश्यक है और संसार में सदा रहा है

श्री महेन्द्रदेव शास्त्री

और रहेगा भी । तीसरा वर्ग है व्यापारी वर्ग जो खेती करता है, गौओं का पालन-पोषण करता है और व्यापार करता है, जिसे वैश्य कहते हैं इसके बिना भी संसार की स्थिति नहीं रह सकती । इस वर्ग को भी आप वैश्य नाम से पुकारिये या किसी दूसरे नाम से, वह भी नामभेद मात्र ही कहलावेगा । चौथा वर्ग वह है जो समाज की तथा देश की सेवा का कार्य करता है इसको आप शूद्र कहे या अन्य अनेक नामों से पुकारें । अब बतलाइये वर्गहीन समाज कैसे बन सकता है । गीता में श्री कृष्ण ने कहा है—

ब्राह्मणक्षत्रिय विशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः ।। गीता १८ । ४१

हे अर्जुन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के भी कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के कारण ही विभक्त किये गये हैं । उन-उन स्वभावों के कारण उन स्वभावों के विपरीत गुण तथा कर्मों का होना ही असम्भव है ।

वेद भी कहता है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।। यजुः ३१-११

(अस्य) पूर्णव्यापक परमात्मा की सृष्टि में जो मुख के सदृश सबसे मुख्य उत्तम हो वह ब्राह्मण (बाहू) 'बाहुर्वैबलम्, बाहुर्वैवीर्यम्'' इस शतपथ ब्राह्मण के अनुसार जिसमें बल अधिक हो वह क्षत्रिय (ऊरू) कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम ऊरू है । जो ऊरू के बल से सब चीजों को इधर से उधर ले जावे वह वैश्य और जो मूर्खत्वादि गुणों से युक्त हो वह शूद्र कहाता है ।

तीसरी बात आश्रम व्यवस्था है । यह भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । प्रत्येक आश्रम के दो-दो विशेष कार्य हैं उनको यदि सुचारु रूप से पूर्ण किया जाता है तो मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति होती है, आयु, ज्ञान, सब प्रकार के बल और यशः प्राप्ति भी होती है । प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम है । एक प्रकार से यह आश्रम गृहस्थाश्रम का पूरक तथा सहायक है जिसने नियमानुसार ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्ण किया उसको ही गृहस्थाश्रम में पूर्ण सुख प्राप्त हो सकता है । स्कूल, कालेज, संस्कृत विद्यालय तथा गुरुकुलों तक में इस व्रत की उपेक्षा की जाती है । इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा तथा शारीरिक बल में अधूरे ही छात्र दृष्टिगोचर होते हैं । दूसरा आश्रम गृहस्थाश्रम है । इसके भी दो विशेष कार्य हैं । एक अर्थोपार्जन तथा दूसरा उत्तम सन्तानों की प्राप्ति । प्रायः धर्म, अधर्म, पुण्य-पाप का ध्यान न रखते हुए किसी भी ढंग से अर्थोपार्जन किया जाता है और ऐसे उपार्जित धन से फिर कष्ट ही भोगना पड़ता है । सन्तान भी इरादे की नहीं होती । प्राकृतिक विवशता के कारण जैसी भी सन्तान प्राप्त

हो जाती है उसी पर निर्भर रहना पड़ता है । इसीलिये ऐसी सन्तान माता-पिता को सुख-शान्ति नहीं दे सकती । इस आश्रम को भी लोगों ने स्वयं ही बिगाड़ लिया है ।

तीसरा आश्रम वानप्रस्थाश्रम है । इसके भी दो प्रधान कार्य हैं – एक स्वाध्याय तथा दूसरा ईश्वर भक्ति । गृहस्थाश्रम में कार्य व्यस्त रहने के कारण समयाभाव से जो स्वाध्याय न हो पाया था अथवा ज्ञानवृद्धि न हो पाई थी उसे समस्त गृहस्थ के झंझटों से मुक्त हो कर पुनः प्राप्त करना । देखा जावे तो वानप्रस्थाश्रम संन्यासाश्रम का पूरक ही है । जो यथाविधि वानप्रस्थाश्रम को पूर्ण कर लेता है उसका ही संन्यासाश्रम में प्रवेश उचित है ।

चौथा आश्रम संन्यासाश्रम है । इसमें सबसे अधिक योग्य व्यक्तियों को दीक्षित होना चाहिये । जो वीतराग न हों अथवा जिनमें अपने को उन्नत करने की तथा दूसरों को उन्नत बनाने की शक्ति न हो वे दूसरों का क्या भला कर सकते हैं अथवा क्या उपदेश दे सकते हैं । आज भारत में ५६ लाख से अधिक साधु हैं जो गेरुये कपड़े पहन कर क्षेत्रों में भोजन करना मुख्य कर्तव्य समझते हैं । वास्तव में तो इस आश्रम के भी दो ही मुख्य कार्य हैं । एक ईश्वर-भक्ति तथा दूसरा लोगों को सन्मार्ग पर लाने के लिए उपदेश, किन्तु यह आश्रम भी अपवित्र कर दिया गया है । मनुष्य चाहे आश्रम में रहे या घर में वह अपनी वृत्तियों के आधार पर ही कार्य करता है —

> वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्, गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
> अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते, निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ।।

रागियों में वन में रहते हुये भी दोष उत्पन्न हो जाते हैं, किन्तु राग-रहित तथा निन्दित काम न करने वाले गृहस्थों का भी घर तपोवन बन जाता है । महात्मा नारायण स्वामी जी ने मानव-कल्याण की भावना से ही प्रेरित होकर इस आश्रम की स्थापना की थी । हमें उस ही भावना से प्रेरित होकर इसकी रक्षा करनी चाहिये । वास्तव में ऊंचाइयां केवल गुणों में ही छिपी रहती हैं । यदि हम दोषमुक्त होकर गुणान्वित होने के आधार पर ऊंचे उठते हैं तो हमारा आश्रम भी ऊंचा उठता है । यदि हमारे सत्य व्यवहार के आधार पर हमारी आस-पास की बस्तियों में प्रतिष्ठा बनी हुई है और लोग हमें आदर की दृष्टि से देखते हैं और पास बिठा कर हमसे कुछ गुण ग्रहण करना चाहते हैं तो यह हमारा और हमारे आश्रम का गौरव है, इसलिये इस स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर हमें गम्भीरता पूर्वक विचार करके अपने उच्च आदर्शों को समझते हुए अपने जीवन की दिनचर्या बनानी चाहिये । हमारी स्वर्ण-जयन्ती की सफलता तभी मानी जावेगी जब हमारा जीवन शुद्ध स्वर्ण के समान बन जायेगा, अन्यथा इसको प्रदर्शन समारोह या थोथा समारोह ही कहा जावेगा । प्रभु हम को ऐसी शक्ति दें कि हमारा जीवन निर्दोष होकर ऊंचा बने । हमारे अच्छे आचरणों के द्वारा हमारे आश्रम की प्रतिष्ठा बढ़े और ५० वर्षों के बाद मनाया जा रहा यह स्वर्ण-जयन्ती समारोह सफलता पूर्वक सोल्लास सम्पन्न हो । इसी में सारी सफलतायें समाहित है ।

--०--

वैदिक त्रैतवाद

लेखक—विद्याभूषण सांख्ययोगाचार्य ओंकार मिश्र प्रणवशास्त्री, एम. ए., आर्यनगर फिरोजाबाद

सार क्या है ? क्यों है ? इसको किसने जाना था ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर मध्यकालीन विचारकों ने जब-जब, जो-जो दिया है उस सबको एकत्रित कर यदि विश्लेषण किया जाये तो वर्तमान काल में उसके तीन प्रमुख भेद हो सकते हैं।

प्रथम यह कि संसार में केवल एक ही ईश्वर की सत्ता है। न जीव है, न प्रकृति। इस विचारधारा को मानने वाले प्रमुखत: नवीन वेदान्ती हैं जो यह मानते हैं कि एक ब्रह्म से ही समग्र सृष्टि का सृजन हुआ है।

द्वितीय यह, कि संसार में केवल जीवात्मा का ही अस्तित्व है। ईश्वर तथा प्रकृति की कोई सत्ता नहीं है। जीवात्मा श्रेष्ठ कर्म करते-करते उस श्रेणी को प्राप्त कर लेता है जिसको लोग ईश्वर अवतार या तीर्थङ्कर मानने लग जाते हैं। इस विचारधारा को मानने वाले अधिकांश बौद्ध व जैन मत के अनुयायी हैं।

तृतीय यह कि संसार में केवल प्रकृति की सत्ता है। न ईश्वर है न जीव। प्रकृति के परमाणुओं में लगातार परिवर्तन होते-होते एक चेतन अमीबा की उत्पत्ति हो जाती है तथा विकासक्रम के आधार पर संसार के समस्त प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं। इस विचारधारा को मानने वाले डर्विन के अनुयायी चार्वाक अथवा नवीन वैज्ञानिक कहे जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त ईश्वर जीव प्रकृति, इन तीनों पदार्थों का एक कालाविच्छेदन अनादिकाल से मानने वाली वैदिक विचारधारा है जिसकी पुन: संस्थापना इस युग में महर्षि दयानन्द ने की तथा जिसका प्रचार तथा प्रसार ऋषि का उत्तराधिकारी संस्थान आर्यसमाज कर रहा है। अब थोड़ा सा यजुर्वेद के निम्नलिखित मंत्रांश के आधार पर पाठक विचार करें।

॥ ओ३म् ॥ नतं विदाथ यइमा जजान अन्य
युष्माक मन्तरं बिभूविथा
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासु
तृप उक्थ शासश्चरन्ति ॥

इसका सीधा सादा सरलार्थ इस प्रकार है— तुम लोग उस प्रभु को नहीं जानते जिसने इस सम्पूर्ण संसार की रचना की है। वह तुम से पृथक् है एवं तुम्हारे ही अन्दर है। तुम सब अज्ञान के कुहरे से ढके हो। प्राणों का भरण पोषण करने वाले हो और योगाभ्यासादि साधनों से रहित होकर जीवन बिता रहे हो।

ऊपरलिखित सम्पूर्ण अर्थ पर दृष्टिपात न करते हुये मन्त्र के प्रथमांश पर ही ध्यान दीजिये। "तुम उसको नहीं जानते" जिसने इस संसार की रचना की है इतना मात्र वाक्य ही एक कालाविच्छेदन तीन सत्ताओं की ओर संकेत करता है। अर्थात् एक तो इस वाक्य को कहने वाला, द्वितीय जिसको यह कहा जा रहा है। तृतीय जिसके विषय में कहा जा रहा है अर्थात् संसार इन त्रिकों में से किसी भी एक सत्ता को पृथक् करदें तो दो शेष वस्तुयें व्यर्थ हो जाती हैं। इसी प्रकार, ईश्वर जीव प्रकृति इन तीनों में से किसी एक सत्ता का ही अभाव मानलें तो शेष दोनों सत्तायें सर्वथा निष्क्रिय एवं प्रयोजन-हीन हो जाती हैं। अब क्रमानुसार संक्षेपतया उल्लिखित विचारधाराओं पर आप ध्यानाकृष्ट कीजिए—

प्रथम—संसार में केवल ईश्वर की ही सत्ता है। इस अनुक्रम में नवीन वेदान्त की मान्यता पर भी विचार कीजिये। नवीन वेदान्त के अनुसार "एकोऽहं बहुस्याम" आधार पर ब्रह्म ने बहुत होने की इच्छा की तो समस्त संसार इस प्रकार ब्रह्म से उद्भूत हो गया जिस प्रकार ऊर्ण नाभि मकड़ी अपने ही शरीर से जाला बना देती है और उसी में वास करती है।

इस विषय में थोड़ा दार्शनिक दृष्टिकोण से ध्यान दीजिये। दर्शनशास्त्र का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है—

'कारण गुण पूर्वक: कार्य गुणो दृष्ट:'

अर्थात् प्रत्येक कार्य अपने निमित्त कारण के गुणों से परिपूर्ण होता है। जिस प्रकार मृत्तिका से निर्मित घर में मिट्टी के गुण विद्यमान रहते हैं इसी प्रकार यदि संसार को ब्रह्म से उत्पन्न माना जावे तो संसार ब्रह्म के गुणों से श्रोत-प्रोत होना चाहिये। जैसे कि ब्रह्म अखण्ड तथा अच्छेद्य है संसार भी अखण्ड तथा अच्छेद्य होना चाहिये, तथा ब्रह्म अदृश्य है तो संसार भी अदृश्य होना चाहिये।

इस विषय में जो मकड़ी का निदर्शन दिया जाता है वह भी तर्क तुला पर ठीक नहीं बैठता क्योंकि नवीन वेदान्त जिस मकड़ी को एक पदार्थ मान रहे हैं वह दार्शनिक दृष्टिकोण से दो पदार्थ हैं। अर्थात् एक तो दृश्य जड़ शरीर तथा द्वितीय अदृश्य जीवात्मा। प्रभु के सृष्टि रचना के अद्भुत कौशल के धरातल पर ही चेतन जीवात्मा जड़ शरीर से तार बनाता रहता है। यदि इस जीवात्मा के पास शरीर नहीं होता, कभी भी वह तार नहीं बना सकता था। जैसे कि कितना ही चतुर व बुद्धिमान वैज्ञानिक कुम्भकार अथवा स्वर्णकार हो वह मिट्टी तथा स्वर्ण के अभाव में कभी घर अथवा भूषण नहीं बना सकता। इसी प्रकार ब्रह्म भी बिना प्रकृति उपादान कारण के जगत की रचना नहीं कर सकता।

द्वितीय विचारधारा यह है कि केवल जीवात्मा की ही सत्ता है। उस समय प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि केवल जीवात्मा ही है तो यह विशाल सृष्टि, पृथ्वी, पर्वत, सूर्य चन्द्र, लोक लोकान्तर, सागर, वन, वृक्ष, लता, विद्युत अग्नि, वायु, जल आदि तथा मनुष्य पशु पक्षी, कृमि कीट आदि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म शरीरों को रचना किसने की। क्योंकि संचित ज्ञान सामर्थ्य एवं क्रियावान जीवात्मा ऐसी अद्भुत रचना कदापि कथमपि नहीं कर सकता। इस विषय में बौद्ध, जैन सम्प्रदाय इस प्रश्न का उत्तर यह देता है कि जगत् की रचना कभी नहीं हुई यह अनादि काल से ही इसी प्रकार वर्तमान है और अनन्त काल तक इसी प्रकार विद्यमान रहेगी। जब जगत की रचना ही नहीं मानते तो रचयिता को मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

इस भ्रान्त धारणा पर आचार्य यास्क ने निमित्त पदार्थों की प्रामाणिकता में छः सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं।

"षड् भाव विकारा भवन्ति, जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते अपक्षीयते विनश्यति।"

अर्थात् संसार में जो पदार्थ बनाये गये हैं वे इन छः वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के घेरे में रहते हैं।

१ जैसे कोई पदार्थ उत्पन्न होता है या बनाया जाता है।
२ उसी को "है" ऐसा कहा जाता है।
३ अस्तित्वावच्छिन्न पदार्थों में परिवर्तन होता रहता है।
४ परिवर्तन की दिशा में ही वह बढ़ता है।
५ बढ़ा हुआ पदार्थ क्रमशः ह्रास की ओर जाता है।
६ ह्रास में जाने वाला पदार्थ यथासमय विनष्ट हो जाता है।

इस प्रकार संसार का कोई "अणोरणीयान् महतो महीयान्" पदार्थ (भौतिक) ऊपरलिखित छः वैज्ञानिक प्रक्रियाओं की अवधि से बाहर नहीं जा सकता। इसलिये दृश्यमान जगत के प्रत्येक पदार्थ का निर्माण अवश्य हुआ है। निर्मित पदार्थों के लिये निर्माता की सत्ता प्रत्येक दशा में माननी पड़ेगी। केवल जीवात्मा की सत्ता मानने वालों को परमात्मा का अस्तित्व अवश्य ही मानना पड़ेगा।

तृतीय विचारधारा यह है कि केवल प्रकृति की सत्ता है। ईश्वर तथा जीवात्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। ऐसी दशा में संसार एक विविध प्रकार के निर्मित पदार्थों की रचना तथा चेतनता की उत्पत्ति का प्रश्न अनायास ही उपस्थित होगा। प्रकृति पोषक सभी मत मतान्तरों की धारणा है कि यद्यपि पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये सभी तत्व जड़ हैं किन्तु पारस्परिक संयोग से ये चेतनता अपने अन्दर उसी प्रकार उत्पन्न कर लेते हैं जिस प्रकार दधि गोमय के संयोग से विच्छु कृमि की उत्पत्ति हो जाती है।

यद्यपि उल्लिखित उदाहरण केवल जन-श्रुति मात्र ही है परीक्षण संभवतः किसी ने ही किया हो। 'दुर्जन तोषण न्यायेन।' इस जनश्रुति को यदि सत्य ही मान लिया

जावे तो इस प्रसंग में भी यह अपरिहार्य आशंका उपस्थित होती है कि प्रथम तो दधि और गोमय यह दोनों पदार्थ स्वयं उत्पन्न नहीं हैं। यह दोनों पदार्थ चेतन गौ से उत्पन्न विकार हैं। इन में भी दधि तो चेतन मनुष्य की एक विशेष प्रक्रिया के आधार पर दुग्ध का ही परिवर्तित रूप है।

द्वितीय दधि और गोमय दोनों जड़ पदार्थों में वृश्चिक उत्पत्ति की इच्छा ज्ञान तथा क्रिया का सर्वथा अभाव है। ऐसी स्थिति में बिना चेतन के सम्पर्क से जड़ पदार्थ सर्वथा गति हीन एवं प्रयोजन रहित ही सिद्ध होगा। संसार में प्राकृतिक पदार्थों को छोड़ कर जितना भी निर्माण दृष्टि-गोचर होता है उस सब में चेतन जीवात्मा के अद्‌भुत ज्ञान तथा कौशल तथा क्रिया का ही चमत्कार दिखाई पड़ता है। अतः प्रकृतिवादी विचारधारा को चेतन सत्ता को मानने के लिए विवश होना पड़ेगा।

इस सब ऊहा पोह के धरातल में वेदानुमोदित ऋषि प्रतिपादित एवं आर्यसमाज द्वारा प्रचारित त्रैतवाद का ही सिद्धान्त युक्तियुक्त तथा तर्क-संगत सिद्ध होता है।

इस वैज्ञानिक विवेचन के आधार पर यह मानना ही होगा कि परम पिता प्राणेश ने जीवों के कर्मफल भोगने के लिए एवं उनका कल्याणमार्ग में अनुसरण कराने के लिये प्रकृति (उपादान कारण) से स्वभाविक रूप में इस ब्रह्माण्ड की रचना की हैं।

इसी अभिमत को—

"सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथा तथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छा श्वतोभ्यः समाभ्यः" इत्यादि श्रुतियां प्रमाणित करती हैं।

अतः इस पवित्र आश्रम के स्वर्णजयन्ती समारोह के अवसर पर हम सब वेदानुयायी इस बात का दृढ़ संकल्प लें कि सम्प्रति, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, अहं ब्रह्मास्मि, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या आदि भ्रान्त धारणाओं का जो घोर अन्धकार मानव मानस-पटल पर छा जाने की तैयारी कर रहा है, उसको हम सब त्रैतवाद की समुज्वलमशालों से छिन्न भिन्न कर दें ताकि ऋषि ऋण से आंशिक मुक्ति के भागी बन सकें।

शमित्योम्

- निर्बलताओं को मिटाने के लिये व्याकुलता पूर्वक भगवान् से प्रार्थना करो।
- यथाशक्ति बुराई का उत्तर अच्छाई से देने का स्वभाव बनाओ।
- दूसरों की कीगई बुराई का प्रभाव अपने ऊपर मत होने दो क्योंकि तुम स्वयं निर्मल हो।

लेखक—सत्यवती, प्रभाकर

प्रकृति की अनुपम शालायें

—ooo—

सीख रे मानव ! तू कुछ सीख,
प्रकृति की अनुपम शाला से, मिला करता जो पाठ पुनीत ।
सीख रे मानव ! तू कुछ सीख ।।

जन्म से सह कर दुःख अनेक,
कष्ट से ही कर निज अभिषेक,
बढ़ा है वृक्ष तनिक तो देख,
झेल कर आतप, वृष्टि, शीत ।
सीख रे मानव तू कुछ सीख ।।

उसी का कितना त्याग महान् !
किया सब कुछ परहित बलिदान !!
न रक्खा अपने पन का ध्यान,
पथिक की हरी पीर बन मीत ।
सीख रे मानव ! तू कुछ सीख ।।

पुष्प का भी तो है यह प्रण,
रिझाये मधुलोभी अलिगण,
अनिल को दे सुरभि कण कण,
दिखा कर पूत हृदय की प्रीत ।
सीख रे मानव ! तू कुछ सीख ॥

अनिल भी पा कर सुखद सुवास,
नहीं रखता कुछ अपने पास,
करे वितरण नहीं माने त्रास,
इसी में समझी उस ने जीत ।
सीख रे मानव ! तू कुछ सीख ॥

यही बहती नदिया का काम,
न ले पल भर को भी विश्राम,
रहे शीतल सुन्दर अभिराम,
सुनाये मधुर मनोहर गीत ।
सीख रे मानव ! तू कुछ सीख ॥

सभी साधा करते परमार्थ,
प्रकृति को व्यापा है नहीं स्वार्थ,
देख यह समझे तत्व यथार्थ,
इसी से होते कभी न भीत ।
सीख रे मानव ! तू कुछ सीख ॥

यही गीत का सुन्दर सार,
कर्म ही जीवन का आधार,
किये जा कर्म न टूटे तार,
किन्तु फल आशा रहित अतीत ।
सीख रे मानव ! तू कुछ सीख ।।

प्रकृति की अनुपम शाला में, ध्वनित होता जो मधु संगीत ।
सीख रे मानव ! तू कुछ सीख ।।

—o o o—

परोपकार

ईश्वर की दी हुई बुद्धि रूपी पारसमणि बटिया से हमें हर समय परोपकार रूपी स्वर्ण बनाना चाहिए । परन्तु हम उस अमूल्य बटिया से विषयभोग रूप चटनी ही पीस कर खाते रहते हैं । यदि हम शुद्ध बुद्धि से इस जीवन को परोपकार में लगा दें तो हम अमृत रूप मोक्ष को प्राप्त कर ईश्वर के दर्शन कर सकते हैं ।

खाया हुआ अपना नहीं होता, अपितु पचाया हुआ अपना होता है । इसी प्रकार कमाया हुआ (धन) अपना नहीं होता अपितु परोपकार में लगाया हुआ (धन) अपना होता है ।

"सत्यानन्द सूक्ति-सुधा" से

मैं क्या हूँ अथवा कौन हूँ ?

लेखक —इन्द्र बहादुर सक्सेना

मानव, प्रकृति तथा ईश्वर सत्ता के तीन ही प्रधान अंग माने गये हैं। ज्ञान के तीन ही प्रमुख क्षेत्र हैं। गायत्री ३ ही पदों की होती है। निरुक्तकार मुख्यतः तीन ही देवता मानते हैं। अग्नि भी तीन ही प्रकार की मानी गई है (१) गार्हस्पत्य, (२) आह्वनीय, (३) दक्षिणाग्नि। शास्त्रीय ऋण भी तीन ही हैं (१) ऋषि, (२) देव, (३) पितृ। सांख्य शास्त्र ने तीन ही गुण माने हैं (१) सत्त्व, (२) रजस्, (३) तमस्। ३ ही पदार्थ अनादि प्रतीत होते हैं। पुराणों ने भी ३ ही देव माने हैं। (१) ब्रह्मा, (२) विष्णु, (३) महेश। यज्ञ के भी ३ ही धर्म माने जाते हैं। (१) देव पूजन, (२) संगतिकरण, (३) दान। ओ३म् शब्द में भी तीन ही अक्षर हैं।

अब विचारना यह है कि यह सब तीन ही तीन का क्या रहस्य है। ओंकार के यह तीन अक्षर ज्ञान देते हैं कि यह जगत् तीन ही पदार्थों से विभूषित है। (१) ईश्वर, (२) जीव (३) प्रकृति, यह सब ऊपर लिखित ही इसी तथ्य का अनुमोदन करते हैं। यह तीनों पदार्थ एक दूसरे से संबद्ध है और तीनों से ही समग्र सत्ता बनी है और इनको यथावत् जानने से ही मनुष्य परम सुख को प्राप्त होता है जो कि 'मैं' तथा आत्मा का परम लक्ष्य है।

भारतीय संस्कृति में " मैं क्या हूँ अथवा मैं कौन हूं " को अपनी जिज्ञासा का प्रधान प्रश्न बनाया हुआ है यहां तक कि लोक परमपरा का अंग बन गया है। लोग त्यागी बने, संन्यासी बने और इसी खोज में अनुभवी पुरुषों को ढूंढते फिरे। इन्हीं में से एक व्यक्ति महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती बहुत परिश्रम के पश्चात् एक योगी का पता चला पाया जो अपनी कुटि के किवाड़ बन्द किए पड़ा रहता था। उसने उस योगी का द्वार खटखटाया। अन्दर से आवाज आई "तू कौन है ?", स्वभाविक रूप से जिज्ञासू ने उत्तर दिया, यही तो पूछने तथा जानने की उत्कट इच्छा लेकर आया हूं।

" मैं क्या हूं", मैं शरीर हूं, प्राण हूं, चिन्तनशील मन हूं, अथवा शान्त तटस्थ आत्मा हूं, या यह सब हूं ? अच्छा यदि मान लूं कि मैं यह सब हूं, तो मुख्य रूप से क्या हूं ? शरीर, मन, प्राण और आत्मा को किस क्रम में रखना होगा ? जीवन की स्थिति बड़ी रोचक है। हम 'मैं' को लगभग हर वाक्य में बोलते हैं। 'मैं बैठा हूँ', 'मैं खा रहा हूँ', 'मैं सोया हुआ था', 'मुझे भूख लगी है', 'मैं चिन्तित हूँ', अनगिनत प्रसंगों में यह 'मैं' आता है और हर प्रसंग में 'मैं' का रूप पृथक ही है। हम समझते हैं कि वह एक ही 'मैं' सब में है। परन्तु यह सत्य नहीं। हर प्रसंग में 'मैं' और ही है। अपने शरीर की अवस्था को जानकर ही मैं अपने शरीर की रक्षा अधिक कर पाता हूँ। अपने मन की अवस्था से अधिक परिचित हो जाता हूं तो चित्त की प्रसन्नता की रक्षा करना कुछ सुगम हो जाता है। जब कोई अपनी अपनी अधिष्ठात्री आत्मा का संकेत पा लेता हूं तो अपने शरीर, प्राण और मन तीनों का संचालन अधिक अच्छी प्रकार कर पाता हूं। यही प्रत्यक्ष भी है कि मैं यदि अपने आपको ही नहीं जानता, जीवन के स्वरूप को नहीं पहिचानता, इस के आदर्श उद्देश से ही अपरिचित हूं तो इसका संचालन भला किस प्रकार कर सकूंगा। यदि जीवन का संचालन ठीक नहीं तो इस में कृतकार्यता तथा तृप्ति कैसे उपलब्ध हो सकती है।

भारत ने प्रकृति तत्व की उपेक्षा की, परन्तु आत्मा और परमात्मा की खोज इसकी बड़ी प्रबल रही है। फल-स्वरूप जीवन में तृप्ति तथा अमरत्व की भावना असाधारण रूप में, जगत् भर के इतिहास में, इसे उपलब्ध रही है। जबकि पश्चिम ने प्रकृति को विशेष रूप से अपनाया और एक पूरी नई संस्कृति का निर्माण कर डाला। अतः जगत में वस्तुओं का बाहुल्य हो गया और उनका उपभोग भी मानव को प्राप्त है पर क्या वास्तव में आज मानव संतुष्ट है, तृप्त है ? इस प्रश्न का उत्तर मानव स्वयं अपने गरेबान में मुंह डालकर देखे तो मैं यही कहूंगा कि पश्चिम का मानव अपनी करनी से ऊब गया है और सच्ची शान्ति के

लिए देश विदेश भटक रहा है। (Gardener Murphy) गार्डनर मर्फी एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक स्वीकार करता है कि मानव के सम्बन्ध में तो हम बहुत कुछ जानते हैं परन्तु मानव अपने आप में क्या है बिल्कुल नहीं जानते। एक दूसरा मनोवैज्ञानिक जंग (Jung) कहता है कि मन के सब द्वन्द्वों से परे एक द्वन्द्वरहित व्यक्तित्व का केन्द्र हमें अवश्य मानना पड़ेगा। यह केन्द्र ही व्यक्ति को विशिष्ट भाव देता है तथा सब अनुभवों और संस्कारों को संगठित करता है। यह माना कि आज वस्तुओं के बाहुल्य में मानव अपने आपको अधिक विक्षिप्त अनुभव करता है और पश्चिम की विज्ञान भूमिका पूरब की आतमभावना से साम्य रखती है। यह जिज्ञासा 'मैं क्या हूं' अनिवार्य रूप से प्रेरित करती है।

आत्मज्ञान की ओर पहला पग

मन की सत्ता का क्षेत्र अति विस्तीर्ण है। उसके एक सिरे पर हमारा यह स्थूल शरीर है और दूसरे पर एक सूक्ष्मतम तत्व, जिसके विषय में हमने केवल पढ़ा और सुना ही है। चर्चा करने पर जिज्ञासा बढ़ सकती है, परन्तु अनुभूति बिना सतत प्रयास के संभव नहीं। इस 'मैं' की खोज 'मैं' को ही करनी होगी। उसे प्राप्त करने के लिए अन्तर्मुखी होकर स्थूल से सूक्षम की ओर जाना होगा।

शरीर से संलग्न निकटतम सूक्ष्म तत्व हमारा मन प्राण है जिस से सभी परिचित हैं। 'मैं' के इस कक्ष में प्रायः सदैव एक असंयत कलहपूर्ण चहल पहल सी मची रहती है। आत्म तत्व के अन्वेषक को इसे शान्त करके अन्तः जगत में सजग होना पड़ेगा तथा निरन्तर जागरूक रहना होगा क्योंकि 'मन' बड़ा चंचल है हठी है और प्रति-क्षण परिवर्तनशील है। अशान्ति पैदा करने वाले पथ-भ्रष्ट करने वाले विचारों और संकल्पों को उठते ही दबा देना होगा। साधना के प्रति रुचि पैदा करनी होगी। मन पर पूर्णरूपेण अधिकार जमाना होगा। कायिक, वाचिक तथा मानसिक क्रियाओं का निष्पक्षता पूर्वक निरीक्षण करना होगा। धीरे-धीरे यह निरीक्षण प्रभावशाली होने लगेगा और अन्त में ऐसी स्थिति आजाएगी कि कलुषित भाव के उठते ही साधक संभल जाएगा और उसे रोक सकेगा। इस प्रकार मन स्वतः नियन्त्रित हो जायेगा। मन की सूक्ष्मतर प्रसन्नता के बनाये रखने के लिए 'यम नियम' का पालन, विनम्रता, कृतज्ञता, ईश्वर में अटल विश्वास कि वह जो कुछ भी करता है अच्छा करता हैं, यथाशक्ति पुरुषार्थ, हृदय में सब के प्रति समान प्रेम, भ्रातृभाव तथा सदभावना का होना अति आवश्यक है। तदुपरान्त साधक अपनी प्रकृति के अनुसार शनैः शनैः अन्य सूक्ष्मतर स्तरों से, अवगत होता हुआ 'मैं' के यथार्थ स्वरूप को देख सकेगा। मुंडक उपनिषद् खण्ड १ मन्त्र ५ पुष्टि करता है।

"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन,
ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अंतः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यंपश्यन्ति
यतयः क्षीणदोषाः॥"

अर्थ : – यह आत्मा सत्य से, तप से, यथार्थज्ञान से, और नित्य ब्रह्मचर्य से प्राप्त किया जाता है। यह ज्योति-मंय और शुद्ध आत्मा शरीर के अन्दर स्थित है। जिन लोगों के दोष दूर हो गये हैं वही यती उसे देखते हैं।

भले पुरुष की यात्रा में 'सत्य' आरंभ है, 'सत्य' मध्य है, और 'सत्य' ही अन्त है। 'सत्य' से ही देव मार्ग खुलता है।

मैं क्या हूँ ?

यह विषय अत्यन्त आवश्यक तथा महत्त्व का है। स्वयं को जाने बिना हम अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित नहीं कर पाते और जिस जीवन का कोई लक्ष्य नहीं वह जीवन एक सफल जीवन नहीं कहा जा सकता। जीवन को सफल बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं –

(१) दमन— इन्द्रियों तथा मन को वश में रखना।

(२) दान— दान देना।

(३) दया—निर्बलों पर दया।

सच्चा आतम सुख इन्द्रियों पर विजय पाने से ही मिलता है :—

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥"
(कठोपनिषद् १.३.३)

अर्थ – आत्मा को रथी जानो, शरीर को रथ, बुद्धि सारथि है और मन तो लगाम मात्र है ।

वास्तविक जीवन को वही समझता है जो जनसाधारण से प्रेम करता है –

(१) प्रेम से बढ़कर संसार मे कोई वस्तु नहीं । (मार्टिन)

(२) प्रेम और नम्रता से मनुष्य तो क्या देवता भी तुम्हारे वश में हो सकते हैं । (तिलक)

'मैं' यह शरीर हूँ, इन्द्रियां हूं यह तो प्रत्यक्ष में सब कोई देखता ही है इस में किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं परन्तु यह भी निश्चय ही है कि जीवन का सारा कार्य मन तथा बुद्धि से ही संचालित हो रहा है । क्या मैं' इसके अतिरिक्त भी कुछ और हूं इसका भी मुझे निश्चय होना चाहिए । शरीर और इन्द्रियां निरन्तर शिथिल होती रहती हैं इनका अन्त मृत्यु को प्राप्त करना ही है । अनेक दुःख और कष्ट इनके साथ लगे रहते हैं। मन और बुद्धि भी दुख और शोक से मुक्त नहीं । अब देखना यह है कि यदि यथार्थ रूप से 'मैं' यही सब कुछ हूं तो मनुष्य जीवन में स्थाई शान्ति और आनन्द की सम्भावना हो ही नहीं सकती जब कि मनुष्य सदैव सुख शान्ति की खोज में पागल बना फिरता है । शास्त्रों ने आत्मा तथा 'मैं' की सत्ता का वास्तविक रूप जानने के लिए जीवन की तीन अवस्थाओं पर बल दिया है :-

जागृत अवस्था

इस अवस्था में मन और शरीर काम करते हैं आत्म चेतना भी रहती है परन्तु मन से भिन्न नहीं । इसी अवस्था में सुख और दुःख दोनों का अनुभव होता रहता है ।

स्वप्न अवस्था

इस दशा में शरीर काम नहीं करता परन्तु मन सूक्ष्म रूप से जागृत जैसी सारी सृष्टि रच लेता है यद्यपि शरीर चारपाई पर पड़ा रहता है । यहां भी सुखदाई एवं दुखदाई सब प्रकार के स्वप्न दिखाई देते हैं ।

सुषुप्ति अवस्था

इस अवस्था में शरीर और मन दोनों प्रसुप्त होते हैं । परन्तु मैं जीवित अनुभव करता हूं । मेरे शरीर और मन के सब विकार दब जाते हैं । मैं पूर्ण शान्ति को प्राप्त हो जाता हूं ।

यही तीसरी अवस्था शरीर और मन के पृथक हो जाने पर भी जीवित सत्ता में रहना 'आत्मा' के होने का सब से बड़ा निश्चित प्रमाण है । यदि मुझे शरीर और मन के साथ साथ काम करते हुए आत्मा का पूरा बोध हो जाय और यह भी पता लग जावे कि आत्मा दुख और क्लेशों से पृथक है, वही 'मेरा' असली रूप है :– उपनिषद् का कथन है —

'येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शां‍श्च मैथुनान् ।
एते नैवं विजानाति किमत्र परिशिष्यते एतद्वै तत् ॥"
(कठ०उप० बल्ली च० मं० ३)

अर्थ —जिस इस ही आत्मा की सत्ता से मनुष्य रूप, रस, गंध शब्द स्पर्श और विषय भोगों को भी जानता है फिर यहां क्या बाकी रह जाता है । यही वह 'आत्मा' है । अर्थात् जिससे संसार में मनुष्य' इन्द्रियों के विषय शब्दादि का ज्ञान प्राप्त किया करता है वही 'आत्मा' है ।

दूसरे स्थान पर उपठिषद् कहता है —

"आत्मानं चेद्विजानीयादयमऽस्मीति पुरुषः ।
किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥"

अर्थ — जिसने अपने आपको जान लिया कि मैं पुरुष अथवा 'जीवात्मा' हूं, प्रकृति नहीं, वह इस शरीर के लिए कभी दुखी नहीं होगा । केवल यहीं नहीं कि वह दुःख और चिन्ताओं से मुक्त हो जाएगा । प्रत्युत वह एक नए जीवन का निर्माण करने वाला बन जायेगा ।

अपने आत्म स्वरूप को जानकर केवल यही ध्येय नहीं होना चाहिए कि वह स्वयं शान्त जीवन व्यतीत करे परन्तु

इससे बढ़कर अपेक्षित है कि उस के अन्दर की शान्ति, स्थिरता, प्रेम और आनन्द चारों ओर विस्तारित हो। वह केवल एक कोठरी का (चिराग) दीपक न बनकर रास्ते का दीपक बने जिससे सहस्रों का मार्ग प्रदर्शन कर सके। यह शक्ति 'आत्मज्ञान' से ही प्राप्त हो सकती है।

सारे संसार का मित्र, सहायक, सेवा करने वाला केवल 'आत्मज्ञानी' ही हो सकता है क्योंकि वह समस्त आत्माओं में अपनी ही आत्मा का दर्शन करता है।

आत्मज्ञान की जिज्ञासा पैदा होते ही प्रश्न उठता है "मेरा असली स्वरूप क्या है?" उसके समाधान की अनेक विधियां हैं। उन में से एक यह भी है कि "व्यक्तित्व के उन सब लक्षणों को, उपाधियों को एक एक करके अस्वीकार करते जाना जिनका आत्मा से कोई संबन्ध नहीं" (जैसे व्यक्ति का नाम, शरीर, मन आदि) जब तक जिज्ञासा से शुद्ध आत्म स्वरूप तक न पहुंचे। "यही शुद्ध-बुद्ध पूर्ण विश्व चेतना असली 'मैं' है।"

जीवात्मा क्या है इस विषय पर योगीराज कृष्ण ने गीता में कहा है—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥"

(अ० २, श्लोक २३)

अर्थ—इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, जल नहीं गला सकता, और वायु सुखा नहीं सकती यही वह "आत्मा तथा मैं" हूं।

यह सदैव रहने वाली है शरीर के भाग हो जाने पर भी इसके भाग नहीं होते।

हर आत्मज्ञानी को आवश्यक है कि वह अपने आपको सर्वशः विस्मृत करदे। वह सदैव यही जाने कि वह केवल एक कण बेमात्रा है जो कुछ नहीं कर सकता। जो कुछ करता है ईश्वर करता है। मैंने अपने को उसके प्रति समर्पित कर दिया है। अपना कर्तव्य पालन करते हुए पुरुषार्थ के साथ वह जो आज्ञा देगा उसका पालन करूंगा। मुझे उसकी इच्छानुसार चलना है। एक फारसी के कवि ने लिखा है—

नमी गोयम कि अज़ दुनियां जुदा बाश।
बहर कारे कुनद बाशी खुदा बाश॥

अर्थ—मैं यह नहीं कहता कि तू दुनियां तथा संसार को छोड़ दे, किन्तु जो कुछ कार्य तू करता है उसके फल को खुदा पर सौंप दे। यह वही कर सकता है जिस को 'आत्मा' का ज्ञान हो चुका है।

यह एक सत्य सिद्धान्त है कि अपनी ठीक पहिचान स्वतः अर्थात् अपने को सबसे पृथक करके नहीं होती, वह तो संसार के संघर्ष में आकर ही होती है कि मैं कितने पानी में हूँ। अतः उसकी जानकारी के लिए चेतना की दृष्टि से समान श्रेणी के उस से भिन्न परमात्मतत्त्व का वर्णन किया जाये जिससे महान् कर्तव्य की दृष्टि से "आदर्श आत्मा" को पहिचाना जा सके। योगीराज कृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक ३ में यह कह कर—

"क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परं तप॥"

अर्जुन को युद्ध के लिए खड़ा कर दिया था।

इसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का अवलम्बन योग शास्त्रकार पातंजलि मुनि ने भी किया है। समाधिपाद में सूत्र लिखा है "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" अर्थात् अर्थ चिन्तन पूर्वक भगवान् के नाम 'प्रणव' का जाप करना चाहिए। इसका इसका आशय तो यह हुआ कि जिसका चिन्तन किया जाय साक्षात् भी उसी का हो परन्तु नहीं अगले ही सूत्र में लिखते हैं —

"ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमः" अर्थात् इस ईश्वर चिन्तन से व्यक्तिगत अविद्यावान आत्मा को भी अपनी पहिचान हो जाती है। अर्थात् 'मैं' का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार किसी के माध्यम से ही आत्मतत्त्व 'मैं' कहलाता है।

बस अब विस्तार भय से यहीं विराम लेना उपयुक्त प्रतीत होता है।

—०—

मनुर्भव (मनुष्यबन)

लेखिका — ब्रह्मचारिणी कमला आर्या, आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

संसार का सबसे पुरातन ग्रन्थ ऋग्वेद हमें जीवन निर्माण के लिए एक आदेश देता है। "मनुर्भव" तू विचारशील मनुष्य बन ? वेद मनुष्य को मनुष्य बना हुआ देखना चाहता है। वेद यह नहीं कहता कि बौद्ध, जैन, ईसाई, यहूदी इत्यादि किसी खास सम्प्रदाय व मजहब के अनुयायी बनो। वह तो वास्तविक मानव बनने पर बल देता है। अपने को फरिश्ता या पैगम्बर बना लेना उतना कठिन नहीं जितना इन्सान बनना। तभी तो शायर लिखता है—

ब्रह्मचारिणी कमला आर्या

फरिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज्यादा ॥

मनुष्य की निरुक्ति यास्क मुनि ने निरुक्त के अन्दर यह की है— "मत्वा कर्माणि सीव्यति" जो विचार पूर्वक कर्म पद्धति को बनाने वाला है।

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के स्वमन्तव्यामन्तव्य में मनुष्य की परिभाषा इस प्रकार से की है। मनुष्य को सबसे यथा योग्य स्वात्मवत् सुख-दुःख, हानि-लाभ में वर्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूं। आज सचमुच आपको इस दुनिया में अफसर, नौकर, व्यापारी, शिक्षक, राजा, मन्त्री, अमीर, निर्धन, किसान, जमींदार, डाक्टर, इंजीनियर इत्यादि तो बहुत मिल जावेंगे परन्तु मनुष्य नहीं।

यूनान देश की गाथा है कि एक दार्शनिक दोपहर के बारह बजे हाथ में लैम्प लेकर बाजार में घूम रहा था। लोग आश्चर्य में थे कि इसको क्या हो गया। उससे पूछा, कि इस दोपहरी में आप हाथ में लालटैन लिये क्यों घूम रहे हैं? तो उसने उत्तर दिया कि मैं मनुष्य ढूंढ़ रहा हूं। लोगों ने कहा, क्या ? हम मनुष्य नहीं हैं। यह दार्शनिक इसी तरह लैम्प लेकर जंगल में गया। वहां पर भी उसको औंधी खोपड़ी का आदमी समझा।

वास्तव में मनुष्य एक दर्जी के समान है। जो विचार पूर्वक अपने जीवन में कर्मों को सीए। निरुक्त का यह सीव्यति शब्द बड़ा गहन अर्थ का द्योतक है।

एक व्यक्ति दर्जी को बढ़िया कपड़ा दे आया तथा कहा कि सप्ताह तक सिल देना। जब लेने गया तो दर्जी ने कहा क्या आप नाप दे गये थे? कहता नहीं ? कपड़ा चाहे कितना भी महंगा हो जब तक नाप ठीक न हो, समझदार दर्जी बिना किसी संकोच के काटकर सीता नहीं। मनुष्य ने दर्जी के समान अपने जीवन का निर्माण करना है। यह जगत् कपड़े के थान के समान प्रभु ने मानव को दिया है। दर्जी के समान तर्क, विचार, चिन्तन इत्यादि से इस थान को सीना है। इसी आशय को एक कवि ने प्रकट किया है :—

मानुष ताको जानिये जाको विवेक विचार।
जाको विवेक विचार नहीं सो नर ठेठ गंवार ॥

जो व्यक्ति विचार पूर्वक कर्म नहीं करता और अपने भले बुरे की पहचान नहीं करता वह मनुष्य कहलाने का अधिकारी हो ही नहीं सकता। इस जन्म को लेकर मनुष्य इस बात की ओर विशेष ध्यान दें कि मेरा इस संसार में आने का क्या प्रयोजन है। मैं यहां क्या करने आया था
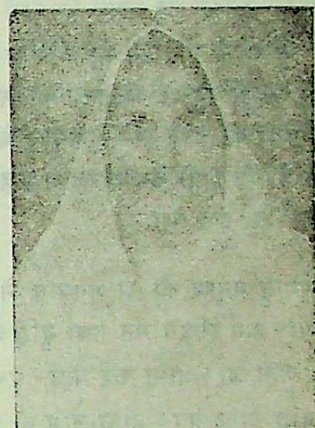
और क्या कर रहा हूं। इस जीवन का क्या उद्देश्य है? संस्कृत के कवि ने लिखा है :—

प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरित्रमात्मनः
किन्नु में पशुभिस्तुल्यं किन्नु सत्पुरुषैरिव।

मनुष्य को प्रतिदिन अपने जीवन का निरीक्षण करना चाहिए कि मैं पशुओं की तरह जीवन व्यतीत कर रहा हूं या मनुष्यों की तरह क्यों ? मनुष्य में और पशु में बहुत अन्तर है। पशु तो केवल उसको कहते हैं जो केवल देखता है। पश्यति इति पशुः।

परन्तु मनुष्य को तो भगवान ने पांच ज्ञान इन्द्रिय और पांच कर्म इन्द्रिय मन तथा बुद्धि दी है। इसलिए कि, वह इन से जहां ज्ञान प्राप्त करें वहां अच्छे कर्म भी करें। और बुद्धि द्वारा अपनी हानि-लाभ का ध्यान रखे। इसीलिए तो मनुष्य की योनि को कर्म योनि कहा है। पशु तो केवल भोग योनि है। मनुष्य भोग योनि तथा कर्म नहीं योनि दोनों ही हैं। अगर ऐसे जीवन को लेकर अच्छे कर्म करता तो फिर इसका परिणाम अत्यन्त दुखदायी होगा। शास्त्र ने कहा :—

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं,
पुनरपि जननी जठरे शयनम्।

बार-बार जन्म लेना पड़ेगा, बार-बार मातृ गर्भ की यातनाएं सहन करनी पड़ेगी। जन्म लिया मर गया फिर पैदा हुआ? इससे क्या लाभ ? कभी बैल बना तो कभी हाथी और घोड़े की योनि को प्राप्त हुआ ? क्या इसीलिए मानव तन पाया था ? नहीं, इस जन्म में तो इन कष्टों को निवारण करना था तुझे शास्त्र ने मार्ग दिखाया, ऋषियों ने चेतावनी दी, लेकिन तूने ध्यान ही नहीं दिया। कपिल देव ने सांख्यदर्शन में कितना सरल और साधारण तरीका बताया था।

अथ त्रिविध दुःखात्यन्त
निवृत्ति रत्यन्त पुरुषार्थः।

इन तीन तरह के दुःखों से छूटने का यही मुख्य साधन है कि तू पुरुषार्थ करके शुभ कर्म कर ले, धन है तो दान, शारीरिक शक्ति है तो सेवा, पर उपकार तथा सत्संग, स्वाध्याय, चिन्तन, धारणा, ध्यान, समाधि आदि साधन अपना लें। बस हो जावेगा बेड़ा पार परन्तु तू अगर, मगर, ऐसा, वैसा, अगरचे मगरचे की मुहारनी रटता रहता है। क्यों नहीं सावधान होकर अपनी मंजिले मकसूद तक पहुंच जाता।

यह मार्ग कथनी का नहीं है यह तो करनी करने का है, करले पुरुषार्थ फिर देख सफलता तेरे कदम चूमेगी। जो पुरुषार्थी होते हैं वही अपनी मंजिल को पार करते है। आलसी और निकम्मे व्यक्ति तो व्यर्थ में अपना समय खो देता है। इसलिए गफलत की नींद से जाग और समय होते हुए कुछ करले। अब नहीं करेगा तो कब करेगा। जब सुनैहरी अवसर हाथ से निकल गया तो कुछ न हो सकेगा। संस्कृत के एक कवि ने कितना सुन्दर लिखा था—

यावत्स्वस्थमिदं शरीरं यावच्च मुरयं जरा दूरता।
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता, यावक्षयो न आयुषाः।
धर्मोपजात एव तावन्नैराः कार्याः प्रयत्नो महान।
सद्दीप्ते भवने तू कूप खननं प्रत्युद्यमः की दृशाः॥

अर्थात् जब तक शरीर स्वस्थ है और जब तक बुढ़ापा नहीं आया, जब तक इन्द्रियों में शक्ति है, जब तक आयु क्षीण नहीं हुई तब तक आत्मा का कल्याण करने वाले कामों को करने के लिए प्रयत्नशील रहे। आग लगने पर कुंआ खोदने से कुछ लाभ नहीं होता। तात्पर्य यह है कि जब शरीर में शक्ति होगी तभी कुछ कर सकेगा। जब वृद्धावस्था आ जायेगी और शरीर में बल नहीं रहेगा तब कुछ नहीं बन सकता। इसलिए अभी से सावधान होकर मनुष्य जीवन के उद्देश्य को प्राप्त कर ले। मुझे उस कवि की पंक्ति अत्यन्त प्रिय लगती हैं—

अब तो चेत मुसाफिर भाई, बार-बार पाहरू जगावत, छोड़त नहीं अलसाई।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी को देख लो, वे किस प्रकार से प्रातः काल से लेकर रात्रि शयन पर्यन्त कर्मशील रहे हैं। कभी वेद भाष्य हो रहा है कभी शास्त्रार्थ तो कभी व्याख्यान देने जा रहे हैं। वे कभी भी एक

आजकल देश का आचार गिर गया। चोर बाजारी, सिनेमा इत्यादि अनेक प्रकार के कृत्य जिनसे देश का चरित्र नष्ट हो रहा है बन्द होने चाहिए।

यहां पर मुस्लमान आए तो उन्होंने अपनी भाषा उर्दू शुरू की। अंग्रेज आए तो उन्होंने अंग्रेजी शुरू की। किसी भी देश को जब गुलाम बनाना होता है तो सबसे पहले उस देश की भाषा एवं संस्कृति को नष्ट करते हैं। मुस्लमानों और अंग्रेजों ने हमारी संस्कृति पर सब से पहले हमला किया। जिससे देश की संस्कृति नष्ट हो जाये। संस्कृति नष्ट हो जाती है तो सभ्यता और सदाचार नष्ट होता है। सदाचार के नष्ट होने से मनुष्य अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाता। भटकता रहता है आज यही कारण है कि हमारी भाषा और संस्कृति पनप नहीं पा रही है।

गुलामी हमारे पीछे अभी भी लगी हुई है हमें सम्भलना होगा और अपने देश में फिरसे अपनी मातृभाषा देवनागरी को लाना होगा। वेदों की विद्या को लाकर अपनी संस्कृति की रक्षा करनी है। यदि हम वेदों की विद्या को नहीं अपनायेंगे तो कौन अपनायेगा। हमें देशको समृद्धिशाली बनाना है। इसलिए भारत सरकार को शिक्षा प्रणाली बदलने के लिए विवश करना है। गुरुकुल प्रणाली फिर से देश में लानी है।

---o---
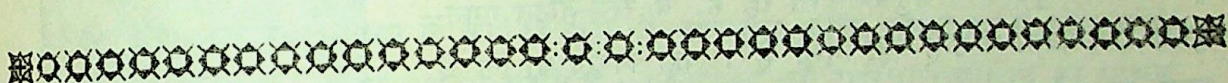
दयानन्द वचनामृत

सँन्यासी जगत् के सम्मान से विष के तुल्य डरता रहे और अमृत के समान अपमान की चाहना करता रहे, क्योंकि जो अपमान से डरता और मान की इच्छा करता है वह प्रशंसक होकर मिथ्यावादी और पतित हो जाता है। इसलिये चाहे निंदा हो चाहे प्रशंसा, मान हो चाहे अपमान, चाहे जीना हो चाहे मृत्यु, चाहे हानि हो चाहे लाभ, चाहे कोई प्रीति करे चाहे वैर बांधे, चाहे अन्न, पान, वस्त्र, उत्तम स्थान न मिले या मिले, चाहे शीत, उष्ण कितना ही क्यों न हो इत्यादि सबका सहन करे और अधर्म का खण्डन तथा धर्म का मण्डन सदा करता रहे, इससे परे उत्तम धर्म दूसरे किसी को न माने।"

—संन्यास प्रकरण

आश्रमों का महत्व

लेखिका — श्री सत्यवती प्रभाकर

'आश्रम' शब्द के साथ सरलता, पवित्रता, महत्ता तथा सौहार्द्रता का सीधा सम्बन्ध जुड़ा है। आश्रम पावनता ऋजुता के वे स्थल हैं जहां मलिनता और कलुषता के लिये तनिक भी स्थान नहीं है। सौभाग्य से भारत प्राचीनकाल से ही आश्रम-प्रधान देश रहा है। हमारे सब ऋषि, मुनि, त्यागी, तपस्वी, सिद्ध, योगी इन आश्रमों की ही दिव्य देन हैं। आश्रमों की धूलि शिर पर चढ़ाने के लिए भारत के सम्राट् महाराजाधिराज सदा लालायित रहे हैं। उन्होंने समय-समय पर, सारे राज्य-सुखों की उपेक्षा करके आश्रमों की यात्रा करने में अपना अहोभाग्य समझा है। जो सुख और शान्ति वे इन तृणाच्छादित कुटीरों में अनुभव करते रहे हैं, वे रत्न-जटित गगन-चुम्बी राज-भवनों में उन्हें नहीं मिली है। यही कारण था कि वे अपनी सन्तानों को, सांसारिक उतार-चढ़ाव से अलग-थलग, भोग-लिप्सा के वातावरण से दूर, इन महात्माओं के चरणों में चरित्र-निर्माण के लिए भेजते रहे हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगिराज श्रीकृष्ण, भीष्म-पितामह, धर्मराज युधिष्ठिर, ये सभी आश्रमों की कसौटी पर कसे गये जाज्वल्य-मान रत्न हैं, जो आज भी भारत के इतिहास को अपनी कान्ति से आलोकित और प्रकाशित कर रहे हैं।
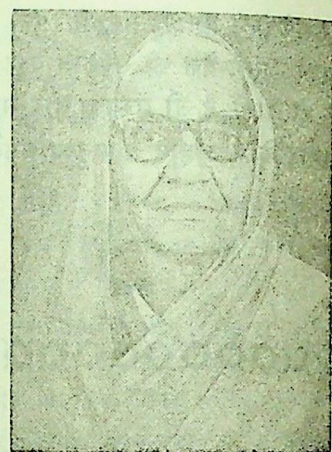
श्री सत्यवती प्रभाकर

आश्रमों की महत्ता और उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये हमारे मनीषियों ने वेद आज्ञानुसार मानव-जीवन को चार भागों में विभक्त किया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। इन चारों विभागों के साथ 'आश्रम' शब्द, इनके कर्तव्यों की ओर निर्देश करता हुआ, इनकी शोभा को बढ़ा रहा है। अब हम संक्षेप से इन चारों आश्रमों के स्वरूप पर दृष्टिपात करते हैं।

ब्रह्मचर्याश्रम

ब्रह्मचर्याश्रम का जीवन कठोर तपस्या का जीवन है। इसमें विद्यार्थी को अपने उत्थान के लिए तपश्चर्या में जुट जाना होता है। कहा भी है—

सुखार्थिनाम् कुतो विद्या, विद्यार्थिनाम् कुतो सुखम्।
सुखार्थी वात्यजेद् विद्यां, विद्यार्थी वा त्यजेद् सुखम्॥

यह जीवन का वह सुनहरा भाग है, जिसमें सारी जीवन-यात्रा को सही दिशा में ले जाने की योग्यता प्राप्त की जाती है। जीवन की दुरूहताओं और गहनताओं में से हंसते-हंसते पार हो जाने की शक्ति का संचय किया जाता है। इस आश्रम का जीवन, समूचे जीवनरूपी भवन की नींव के समान है। जिस प्रकार एक सुदृढ़ नींव पर खड़ा भवन सभी आपदाओं विघ्न-विपत्तियों को दूर धकेलता हुआ बड़ी शान के साथ शिर ऊंचा किये खड़ा रहता है, उसी प्रकार आश्रमों, गुरुकुलों के नियमों से परिष्कृत परिमार्जित व्यक्ति, जीवन की किसी भी परिस्थिति से पराजित नहीं होता। ब्रह्मचर्याश्रम का जीवन स्वावलम्बन, जितेन्द्रियता, आत्म-विश्वास, विश्व-बन्धुत्व तथा परोपकार की भावना को व्यक्ति के हृदय में बद्धमूल करने का अद्वितीय साधन है। इस आश्रम में राजा-रंक सब एक रूप होकर समानभाव से जीवनोपयोगी शिक्षायें प्राप्त करते हैं। आचार्य के पक्षपात-रहित, प्रेमपूर्ण व्यवहार में वे सब एक सूत्र में पिरोई हुई मणियों के समान दीखते हैं। संक्षेप से यह आश्रम चरित्र-निर्माण का आश्रम है।

गृहस्थाश्रम

पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम में तप की भट्टी में तपा हुआ व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी माना जाता है। यह न्यूनतम अवधि है। गृहस्थाश्रम बड़े उत्तर उत्तरदायित्व का आश्रम है। मनु महाराज कहते हैं ––

यथा नदी नदाः सर्वे, सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैव आश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥ मनु० (६–६०)

अर्थात् जिस प्रकार सब नदी नद समुद्र में आश्रय लाभ करते है, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थ के आश्रित हैं। गृहस्थाश्रम अन्य तीन आश्रमों को वहन करता है। यहां पर व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बल की परीक्षा पदे पदे होती है। ब्रह्मचर्याश्रम में व्यक्ति को स्वयं बनना होता है परन्तु इस आश्रम में स्वयं बने रहने के साथ-साथ अन्यों को बनाना है। यहाँ पर व्यक्ति सौ हाथों से कमाता और सहस्र हाथों से दान करता है। तन, मन, धन ये तीनों ही उसके अपने लिये न होकर परिवार, समाज और राष्ट्र के लिये होते हैं। सन्तान के चरित्र निर्माण के लिये उसे अपने हृदय की कोमल-भावनाओं को दबा कर कर्तव्य की चट्टान बन जाना होता है। वृद्धों, गुरुजनों का आश्रय-स्तंभ बनना होता है। समाज हित के लिये गृहस्थ, मानापमान से ऊपर उठ कर सर्वहितकारी कार्यों में शक्ति भर परिश्रम करता है। राष्ट्र के लिये हंसते-हंसते बलिदान हो जाता है। गृहस्थ समूचे राष्ट्र की इकाई है। गृहस्थ के बल पर ही सारी समाजें संस्थायें जीवित हैं। गृहस्थाश्रम ही इनके लिये धन, जन और शक्ति जुटाता है। किसी भी राष्ट्र का उन्नत और अवनत होना उसके गृहस्थों के उन्नत और अवनत होने पर निर्भर है। संक्षेप में यह आश्रम व्यक्तित्व के निखार और राष्ट्र के प्राण का काम करता है।

वानप्रस्थाश्रम

पचास वर्ष की आयु तक गृहस्थाश्रम में निवास करने के पश्चात् व्यक्ति के लिये वानप्रस्थाश्रम में जाने का विधान है । "ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनीभवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्" शत० का० (तु० जाबालोपनिषत् खण्ड ४) ।

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होकर संन्यासी होवें, यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है । यहां पर मनुष्य को सारे लगाव बन्धनों से उपराम होकर आत्म-चिन्तन करना होता है । जो सूक्ष्म विवेचन उसने प्रथम आश्रम में आचार्य के श्रीमुख से सुने हैं, जो बीज रूप में उसके हृदय में विद्यमान हैं, जिनके बल पर ही वह गृहस्थाश्रम की भूमिका निभाने में सफल हुआ है, उन सब के ऊपर विचार करने और उनके तथ्य को यथार्थरूप से जानने और परखने का यह स्थान है । यहां पर उसे आत्म-साक्षात्कार करना है । उसे क्या करना चाहिये ? अब तक उसने क्या किया है ? इस संसार-यात्रा में वह कहां तक पहुँच पाया है ? इन प्रश्नों को सही अर्थों में आंकना और जानना है । दूसरे शब्दों में उसे अपने आपको परिपक्वता की ओर लाने का यत्न करना है । वानप्रस्थाश्रम में इसीलिये स्वाध्याय पर बल दिया जाता है, क्योंकि संसार के सभी प्रलोभन तथ्य को मनुष्य की दृष्टि से ओझल किये रहते हैं, केवल मात्र शास्त्राध्ययन ही उसे सही दिशा प्रदान करता है । संक्षेप में यह आश्रम आत्मा की शक्तियों को जानने और समझने का पुण्य स्थान है ।

संन्यासाश्रम

पच्चीस वर्ष वानप्रस्थाश्रम में आत्म-चिन्तन करते रहने के पश्चात् जीवन के शेष पच्चीस वर्ष विश्व-कल्याण के लिये हैं । यहां पर व्यक्ति न किसी परिवार का न जाति विशेष का और न ही किसी राष्ट्र विशेष का है । यहां पर वह समूचे विश्व का अंग है । प्राणीमात्र के साथ उसका तादात्म्य है । वह वसुधा भर का है, सारी वसुधा उसकी अपनी है । वह "वसुधैव कुटुम्बकम्" के महामन्त्र को जपते २ अपने आपको विश्व के प्रति अर्पण कर देता है । उसके सारे कार्य-कलाप सर्वभूतहित के लिये हो जाते हैं । संक्षेप में यह आश्रम आत्म-समर्पण का आश्रम है ।

इस प्रकार हमने देखा कि आश्रम-व्यवस्था मानव-जीवन में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । आश्रमों का महत्त्व मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने में कितना स्पष्ट है । आश्रमों का वातावरण बाह्याडम्बरों से सर्वथा अछूता है । ज्ञान नैसर्गिकता में ही पलता है । ज्ञान को वन-उपवन, कुन्ज-निकुन्ज ही संजोते हैं । रत्न-जटित भवनों में 'श्री' निवास कर सकती है । ज्ञान की गुरुता को घास-फूंस की झोपड़ियें ही सम्भालने में समर्थ हैं, क्योंकि उन्हें लोकोत्तर निर्माण करना है । इसीलिये भारत में आश्रमों की प्रमुखता और आश्रमों का प्राधान्य है, आश्रम ही भारत को विश्वगुरु बनाये हुए है ।

—०—

देश में बढ़ती अनैतिकता को रोकने का उपाय

लेखक — श्री कल्याणस्वरूप बी.ए., वानप्रस्थ मन्त्री

श्री कल्याणस्वरूप जी

आज संसार में, विशेषकर भारतवर्ष में पाप निरन्तर बढ़ता जा रहा है। हिंसा, चोरी, व्यभिचार दिन प्रतिदिन वृद्धि पर है। समाचार पत्रों में नित्य इस प्रकार की घटनायें पढ़ने को मिलती हैं। देश का शासनतन्त्र इनकी रोक-थाम करने में अपने आपको असमर्थ सा अनुभव करता है इसी प्रकार की अवस्था कलियुग के आरम्भ में थी जब महाराजा युधिष्ठिर ने सत्तर वर्ष की आयु में राज्य का कार्य-भार सम्भाला था। अतिशय विध्वंसकारी महाभारत के युद्ध के कारण देश की नैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सब व्यवस्थायें अस्तव्यस्त हो गई थी सब मर्यादायें छिन्न-भिन्न हो गई थी।
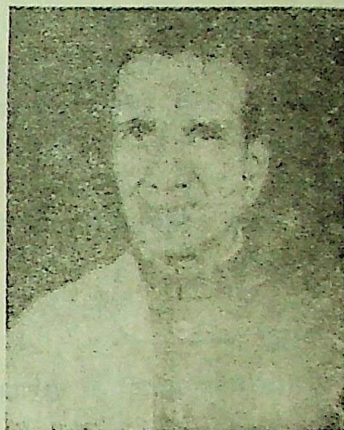
एक दिन महाराज युधिष्ठिर जिनको धर्मराज कहा जाता था, इसी चिन्ता में निमग्न बैठे थे कि देश में अधर्म को हटा कर, धर्म का साम्राज्य कैसे स्थापित किया जाये अकस्मात् योगेश्वर कृष्ण उनसे मिलने हस्तिनापुर आगये - कुशल क्षेम पूछने के बाद महाराज युधिष्ठिर ने योगेश्वर कृष्ण से प्रश्न किया कि राज्य में अधर्म व पाप बढ़ रहा है इसको रोकने का क्या उपाय है। योगीराज ने उत्तर दिया कि हे राजन् अभक्ष्य-भक्षण को बन्द कर दीजिए—पापा स्वय कम होता चला जायेगा।

आज कल भारत में इस प्रकार के अनेक योगीराज जो अपने आपको भगवान् कहने में भी नहीं हिचकते, पैदा हो गये हैं जिनका कथन है कि खाने-पीने का कोई सम्बन्ध योग से नहीं है। हम जो चाहें खाये और जो चाहें पीऐ, हमारी योग साधना में कोई अन्तर नहीं आता। परन्तु भगवान् कृष्ण के उत्तर से स्पष्ट है कि कि योग साधना तो दूर की बात है अभक्ष्य भक्षण करने से सांसारिक कार्य-कलाप भी भली भांति नहीं चल सकता।

भारत में चार्वाक मत के प्रवर्त्तक आचार्य बृहस्पति ने तो यहां तक कह दिया था कि—

मद्यं मांसं च मीनं च, मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्चमकारा, स्युः प्राणिनां मोक्ष दायकाः॥

अर्थात् मद्य, मांस, मछली, धन एवं मैथुन का खुलकर प्रयोग करना ही मनुष्यों को मोक्ष दिलाने का साधन है।

भारत में आज कल इसी प्रकार की या इससे मिलती जुलती विचार-धारा जोर पकड़ रही है। इसलिए इन पांचों मकारों का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ रहा है। अतः इन पांचों पर संक्षेप से बिचार करना आवश्यक है।

(१) मद्य :--

शास्त्रों में लिखा है कि "बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते" अर्थात् मद्य का सेवन बुद्धि का नाश करता है और आगे लिखा है कि 'बुद्धिर्यस्य बलंतस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्' अर्थ :- जिस मनुष्य में बुद्धि है वह बलवान् है निर्बुद्धि मूर्ख में बल नहीं होता।

मद्य को सेवन करने वाला व्यक्ति सदसद् विवेक को खो बैठता है भक्ष्य अभक्ष्य, कर्तव्य अकर्तव्य तथा उचित अनुचित का भेद वह नहीं जान सकता। सदसद् विवेक न रहने से कर्म भी उलटा ही होता है।

(२) मांस व मीन--

मांस चाहे बकरे का हो, सूअर का हो, और चाहे मछली का हो, मन में हिंसा के भाव उत्पन्न करता है।

कहावत है कि "जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन" मनु जी ने कहा है कि—

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्
न प्राणिवधः स्वर्ग्यः तस्मान्मासं विवर्जयेत् ॥

अर्थ—प्राणियों की हिंसा किये बिना मांस की उत्पत्ति सम्भव नहीं, प्राणियों की हिंसा करने वाला व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त नहीं कर सकता, इसलिए मांस भक्षण वर्जित है।

मांस भक्षण से हिंसा क्रूरता एवं क्रोध के भाव मन में उदित होते हैं।

(३) मुद्रा :—

चारवाक मतानुयायियों की धारणा है कि --
यावज्जीवेत् सुखंजीवेत् ऋणंकृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

अर्थ :- जब तक जीओ सुख से जीओ-ऋण लेकर भी घृतादि पुष्टि कारक पदार्थों का सेवन करो। इस शरीर के भस्म हो जाने के बाद पुनः इस संसार में किसने आना है।

धन संग्रह के लिये मनुस्य तरह-तरह के पाप करता है। चोरी, डकैती, जूआ इत्यादि। ज्यों-ज्यों कुछ सफलता मिलती जाती है तृष्णा बढ़ती जाती है पाप भी निरन्तर बढ़ता जाता है इसीलिये कहा है कि लोभ लालच सब पापों का मूल है। संसार में देखा जाता है कि धन ही सब कुछ नहीं है! धन साधन अवश्य है परन्तु साध्य नहीं। अमेरिका जैसे धनी देश में लाखों रुपये की औषधियों का प्रयोग केवल इसलिए किया जाता है कि लोग रात को आराम की नींद सो सकें। उन्हें न दिन में चैन है और न रात को।

(४) मैथुन :—

प्रजापति परमेश्वर ने प्राणियों को एक अमूल्य निधि वीर्य के रूप में प्रदान की है जिससे वे भी प्रजनन कर सकें और प्रजापति कहला सकें। इसी लिए कहा है कि— "मरणं विन्दुपातेन" वीर्य के एक कतरे का व्यर्थ जाना भी मनुष्य के लिए मरण के समान है कामवासना उपभोग से शाम होने वाली वस्तु नहीं। मनुजी कहते हैं कि—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्ण वर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

अर्थ :— काम वासना उपभोग से शान्त नहीं होती। जिस प्रकार घी की आहूति से अग्नि की ज्वाला बढ़ती है इसी प्रकार यह कामाग्नि भी उपभोग से निरन्तर बढ़ती है। इस प्रकार बढ़ी हुई कामवासना परस्त्रीगमन के लिये वाधित करती है और समाज में व्यभिचार दुराचार तथा अनाचार को उत्पन्न करती है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि अभक्ष्य भक्षण से हिंसा (क्रोध) लोभ एवं काम की वृत्तियां मनुष्य समाज में बलवती हो जाती है मानव मानवता को खो बैठता है पशुत्व की ओर अग्रसर हो जाता है इसीलिए भगवान् कृष्ण ने कहा है कि—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥
गीता १६।२१

अर्थ :—काम क्रोध एवं लोभ ये तीनों नरक के द्वार है क्यों कि इनसे आत्मा का नाश अर्थात् अधः पतन-मनुष्य योनि से गिरकर पशु-पक्षी कीट पतंग की योनियों में प्रवेश होता है इसलिए इनसे वचे। इनसे बचने के लिए अभक्ष्य भक्षण को छोड़ना आवश्यक है। भारत की वर्तमान सरकार नशाबन्दी के लिए कुछ प्रयत्न कर रही है परन्तु अन्य बातों की ओर उनका ध्यान अभी तक नहीं गया। जब तक भारत सरकार अभक्ष्य भक्षण को बन्द करने लिए आवश्यक कदम नहीं उठाती तब तक देश में व्याप्त हिंसा चोरी व्यभिचार आदि दुष्कृत्य कम नहीं किये जा सकते।

—o—

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम

ज्वालापुर (हरिद्वार)

*

स्वर्ण-जयन्ती स्मारिका : १९७८ ई०

*

आश्रम-खण्ड

दयानन्द वचनामृत

"आर्य धर्म की उन्नति हो इसलिये मेरे सदृश बहुत से धर्मोपदेशक अपने इस देश में उत्पन्न होने चाहियें। एक व्यक्ति द्वारा यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। फिर भी अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल जो दीक्षा मैंने ली है, उसे चलाऊंगा ऐसा संकल्प किया हुआ है। आर्य-समाज की स्थापना सर्वत्र हो कर मूर्तिपूजा आदि दुष्ट आचार कहीं न हों, वेद शास्त्र का सत्यार्थ प्रकाशित हो और उसी के अनुकूल आचरण होकर देश की उन्नति हो, ऐसी ही ईश्वर से प्रार्थना है। तुम्हारी सबकी सहायता से अन्तःकरण पूर्वक मेरी वह प्रार्थना सिद्ध होगी, ऐसी पूर्ण आशा है और मैंने जो उपकार करना निश्चित किया है, जहां तक बन सकेगा, आमरण तक करूंगा पुनर्जन्मान्तर में भी।" (आत्मकथा–थियासोफिस्ट पत्रिका)

महात्मा आर्यभिक्षु जी

धर्म प्रचारे महतीह निष्ठा, यस्यास्ति तस्मिन् खलुदत्तचित्तः।
देवेशभक्तो विषयेष्वसक्तः, स आर्यभिक्षुः सकलाभिनन्द्यः॥
य आश्रमस्यास्य वरः प्रधानः, इदं समुद्रर्तुं महर्निशं रतः।
ओजस्विवक्ता कुशलः प्रबन्धकः, स आर्यभिक्षुः सकलाभिनन्द्यः॥
ददातुदेवः! सुमतिं सदास्मै, ददातु चारोग्यमतीव चारू।
भक्तिं सुशक्तिं निगमानुरक्तिं, जीव्याच्छतं सन्मतिरार्यभिक्षुः॥

—धर्मानन्द सरस्वती विद्यामार्तण्ड

इस खण्ड में आश्रम का संक्षिप्त-परिचय, आश्रम का विगत ५० वर्षों का इतिहास
तथा
आश्रम के विशिष्ट निवासियों का परिचय दिया गया है।

आर्य जगत् के सर्वाधिक लोक-प्रिय वक्ता
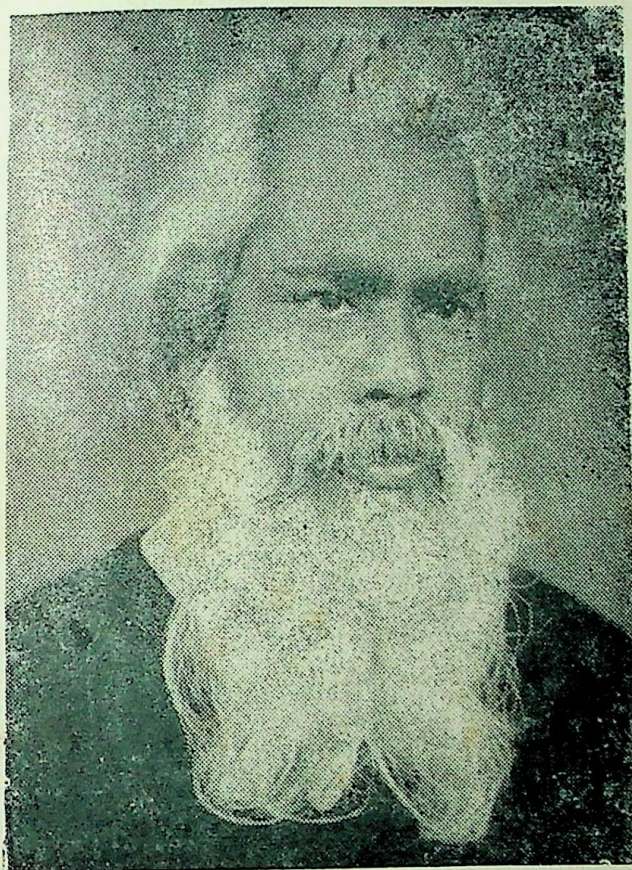
महात्मा आर्यभिक्षु जी व्याख्यानवाचस्पति

वैदिक सिद्धान्तों के बड़े सुन्दर व्याख्याकार एवं

प्रभावशाली गम्भीर वक्ता

तथा

प्रधान आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम, ज्वालापुर

आश्रम का संक्षिप्त परिचय

इस आश्रम की स्थापना रामनवमी के शुभ दिन ३० मार्च सन् १६२८ को महात्मा नारायण स्वामी जी के कर-कमलों द्वारा हुई थी। उस समय वे सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रधान थे। यह आश्रम ज्वालापुर रेलवे स्टेशन तथा गंगा नदी की बड़ी नहर के मध्य में स्थित है। इस समय आश्रम में निम्न प्रकार ३८४ कुटियें साधकों के लिये हैं :—

मुख्य आश्रम	२५८
शाखा नं० १	२८
शाखा नं० २	६८
कुल योग	३८४

२—उद्देश्य एवं प्रबन्ध

इस आश्रम का मुख्य उद्देश्य वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रमों की वैदिक मर्यादाओं को क्रियात्मक रूप देना तथा वानप्रस्थ एवं संन्यासी नर-नारियों के एकान्त वास एवं चिन्तन का उचित प्रबन्ध करना है।

यह आश्रम एक पंजीकृत स्वयं सत्ता सम्पन्न संस्था हैं। इसका प्रबन्ध तथा सञ्चालन आश्रम वासियों द्वारा निर्वाचित इक्कीस सदस्यों की एक अन्तरंग सभा द्वारा होता है इनमें दस अधिकारी तथा ११ अन्य व्यक्ति होते हैं। इनका संन्यासी या वानप्रस्थ होना आवश्यक है।

सुचारु व्यवस्था के लिए आश्रम वासियों द्वारा स्वीकृत विधान एवं नियम हैं।

और अन्तरंग सभा द्वारा स्वीकृत उपनियम तथा दिनचर्या है जिसके अनुसार सब व्यवस्था चलाई जाती है।

आश्रम की कुटियें तीन कक्षों में विभक्त हैं:—

१— केवल पुरुषों के लिए

२— केवल महिलाओं के लिए

३— पति पत्नी के लिए

प्रत्येक कुटि में बिजली पानी की सुविधा हैं। प्रत्येक कुटि में एक तख्त एवं चारपाई की व्यवस्था है। प्रथम तथा द्वितीय कक्ष की कुटियों में अलग से शौचालय, स्नानगृह तथा रसोई की व्यवस्था नहीं है सब के लिए एक जगह पर प्रबन्ध है किन्तु तृतीय कक्ष की कुटियों में अलग से सारी व्यवस्थायें हैं। सब कुटियों में बिजली के छत के पंखे नहीं है किन्तु कुछ कुटियों में कुटि निर्मातात्रों ने पंखे लगवा दिये हैं केवल उन्हीं में यह सुविधा प्राप्त हो सकती है।

इन कुटियों के अतिरिक्त आश्रम की निम्न सम्पत्ति है :—

१— यज्ञशाला

२— सत्संग भवन

३— स्नानगृह मूत्रालय आदि (७)

४– भोजन भंडार गोदाम आदि सहित

५– नलकूप टंकी समेत

६– शौचालय (फ्लश) (१४)

७– फव्वारे ६

८– दुकानात मुख्य आश्रम १४ (शाखा नं० २ = २१)

९– गंगा नहर पर स्नानार्थ दो घाट

१०– एक प्लाट ३४३२ वर्गगज दानदाता श्री सन्तराम अरोड़ा

११– महात्मा हरप्रकाश संस्कृत विद्यालय

१२– दो स्तूप

३–उपासना तथा सत्सङ्ग

आश्रम में प्रतिदिन तीन बार सत्संग लगते हैं :—

प्रातः—दो घन्टे सन्ध्या, यज्ञ, भजन तथा प्रवचन

सायम्—एक घन्टा भजन, प्रवचन तथा यज्ञ

रात्रि—एक घन्टा केवल भजन

प्रातःकालीन सत्संग एक सुन्दर विशाल यज्ञशाला में लगते हैं और सायं तथा रात्रि के सत्संग एक बृहत् सत्संगभवन में होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रातः-सायं मौन रहकर पृथक् पृथक् सन्ध्योपासन, प्राणायाम, साधनादि का भी समय नियत है। समय समय पर साधना शिविर भी लगाये जाते हैं जिनमें योगाभ्यास की शिक्षा क्रियात्मक रूप से दी जाती है।

४–पुस्तकालय तथा वाचनालय

एक बड़ा पुस्तकालय है जिसमें ६००० के लगभग वेद शास्त्र, उपनिषद् आदि आध्यात्मिक ग्रन्थ तथा महापुरुषों की जीवनी आदि हैं। एक वाचनालय भी है जिसमें दो दैनिक तथा १२ साप्ताहिक एवं मासिक पत्र आते हैं। इनके अतिरिक्त पुस्तक विक्री विभाग है जिसके द्वारा स्वाध्यायशील व्यक्तियों को वैदिक साहित्य सुगमता से उपलब्ध हो सकता है।

५–वेद प्रचार

आश्रमवासी हरिद्वार से बाहिर भी आर्यसमाजों तथा आर्य संस्थाओं में वैदिक-धर्म का प्रचार करने और ब्रह्म-पारायण तथा अन्य यज्ञ कराने जाते हैं।

६–संस्कृत विद्यालय एवं उपदेशक विद्यालय

जो आश्रमवासी हिन्दी या संस्कृत नहीं जानते उनको पढ़ाने तथा वेदमन्त्रों का शुद्ध उच्चारण सिखाने के लिये संस्कृत विद्यालय सत्रह साल से चल रहा है। प्रौढ़ व्यक्तियों को वैदिक संस्कार कराने तथा आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर प्रवचन करने का प्रशिक्षण देने के लिए उपदेशक विद्यालय भी दो वर्ष से चल रहा है। इन विद्यालयों के अध्यापक तथा छात्रों की सुविधा के लिए इस वर्ष एक अलग स्थान 'महात्मा हरप्रकाश संस्कृत विद्यालय' के नाम से लगभग ३० हजार रुपये की लागत से निर्मित किया गया है।

७–आश्रम निवास

आश्रम मे स्थाई रूप से निवास करने वाले साधक साधिकाओं की संख्या लगमग २५० है। इनके अतिरिक्त अनेक संन्यासी वानप्रस्थ तथा गृहस्थ समय समय पर आकर वैदिक सत्संग का लाभ उठाते हैं आश्रम में कुटि बनाने वाले को जीवन पर्यन्त नियमानुकूल उसमें रहने का अधिकार होता है। अन्य व्यक्तियों को स्थायी या अस्थायी रूप से निवास की सुविधा प्रदान की जाती है। स्थायी निवास के लिये महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट आर्यसमाज के सिद्धान्तों को मानना, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा की सादगी तथा आश्रम के सब नियमों का पालन आवश्यक है।

आश्रम मे कुटिया का कोई किराया नहीं लिया जाता। केवल विजली, पानी, यज्ञ, मेहतर आदि का भुगतान करने के लिये नाम मात्र का चन्दा लिया जाता है। प्रत्येक नव आगतुक को केवल एक मास तक रहने की अनुमति दी जाती है। तदनन्तर अन्तरंग सभा की स्वीकृति से निवास की अवधि बढ़ाई जा सकती है।

८=भोजनालय

आश्रमवासी अपनी २ कुटियों में भोजन बनाने में स्वतन्त्र हैं। जो नहीं बनाना चाहते या नहीं बना सकते उनके लिये दो समय भोजन की व्यवस्था आश्रम के भोजनालय में है। भोजन करने वाले व्यक्ति ही भोजनालय का समस्त चालू व्यय वहन करते हैं। आश्रम उसमें से न कोई पैसा लेता है और न कोई पैसा देता है। आजकल २० पैसे प्रति चपाती व्यय निकलता है और यही भोजन करने वालों से लिया जाता है।

९–चिकित्सा

आश्रम मे होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक तथा एलोपैथिक तीनों प्रकार की चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध है इन चिकित्सालयों से केवल आश्रम वासी ही नहीं परन्तु आस-पास की ग्राम जनता भी लाभ उठाती है। इतमें मुफ्त चिकित्सा की जाती है।

१०–बागवानी

आश्रम में फलों के छायादार वृक्षों के अतिरिक्त स्थान-स्थान पर सुन्दर वाटिकायें बनाई गई हैं। उन्हें सदा हराभरा रखने के लिए विद्युत नलकूप (*Tube Well*) तथा ६ फव्वारों की व्यवस्था है।

११–डाकखाना तथा बैंक

हरिद्वार रोड़ पर आश्रमवासियों की सुविधा के लिये महात्मा नारायण स्वामी द्वार के साथ डाकखाना है तथा निकट भविष्य में बैंक खुल जाने की भी संभावना है। इसी रोड़ पर लगभग ३० दुकानें हैं जिनमें आटा चक्की, राशन की दुकान, नाई, धोबी तथा जलपान-गृह आदि हैं जिनसे आश्रमवासियों की प्रायः सभी आवश्यकतायें सरलता से पूरी हो जाती हैं।

मंत्री

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ संन्यास आश्रम)

ज्वालापुर

आश्रम का इतिहास

सन् १९२९ ई० से सन् १९७८ ई० तक

लेखक—श्री जगदीश मुनि जी वरिष्ठ उप प्रधान आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर

प्रारम्भ

आर्यावर्त में उत्तराखण्ड नाम का एक ऐसा पवित्र स्थान है जो प्राचीन काल से ही ऋषि मुनियों की साधना स्थली रहा है तथा वर्तमान समय में भी साधक स्त्री-पुरुष इसी पवित्र भूमि में अपने जीवन का अन्तिम भाग व्यतीत करना चाहते हैं।
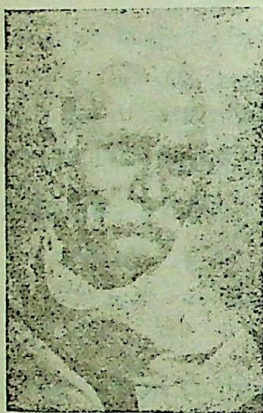
श्री जगदीश मुनि जी

वस्तुतः कनखल अथवा हरिद्वार से ऋषिकेश एवं उत्तर काशी तक जान्हवी (गंगा) का तट इतना सुन्दर और रमणीय है कि स्वभावतः ही भक्त को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसके प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण हमारे वैदिक धर्मानुयायी विरक्त (वानप्रस्थ सन्यासी) आर्य नर-नारी भी इस ओर आकर्षित हुए बिना न रह सके तथा इसी पवित्र भूमि में रहकर जीवन की सार्थकता समझते थे परन्तु यहां उनके निवास के लिए ऐसा कोई उपयुक्त स्थान नहीं था जहां वह अपने जीवन को सुरक्षित रूप से व्यतीत कर सकें तथा स्वतन्त्र रूप से अपने धार्मिक कृत्त सन्ध्या यज्ञ, स्वाध्याय आदि कर सकें।

अतः मथुरा जन्म शताब्दि के पश्चात पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी, म० सुन्दर लाल जी म० वेदमित्र जिज्ञासु, महाशय मुकन्द लाल जी हर ध्यान सिंह जी व अन्य वानप्रस्थियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इन महानुभावों ने विचार किया कि इस अभाव की पूर्ति करना अत्यन्त आवश्यक है। बस, इसी विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए यह सभी सज्जन प्रयत्नशील हो गए।

मार्च १९२९ में गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव के पश्चात एक मकान प्रयोगशाला नाम का हरिद्वार ज्वालापुर की सड़क पर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मिडिल स्कूल ज्वालापुर के सामने क्रय करने का निश्चय किया गया, उसमें २० दिन निवास भी किया परन्तु स्थान कम होने के कारण महात्मा नारायण स्वामी जी ने इसे अनुपयुक्त समझ कर छोड़ दिया।

इस कार्य को अत्यावश्यक समझ कर श्री महात्मा नारायण स्वामी जी की अध्यक्षता में २२ मई १९२९ ई० को स्थान कनखल में पंडित चन्द्रदत्त जी की चौपाल पर एक सभा हुई जिसके मंत्री महाशय सुन्दर लाल जी सेवा निवृत जिलेदार तीतरों जनपद सहारनपुर निवासी व कोषाध्यक्ष महाशय मुकन्दलाल जी वानप्रस्थ मुजफ्फरनगर निवासी और सभासद महाशय जुगल किशोर जी वानप्रस्थ बरेली निवासी महाशय वेदमित्र जी जिज्ञासु तीतरों निवासी, पं० विद्याधर जी कनखल निवासी नियत हुए। उपर्युक्त कष्ट दूर करने के लिए निश्चय हुआ कि हरिद्वार, कनखल, ज्वालापुर के आस पास एक वानप्रस्थ आश्रम खोला जाय और उसके लिए भूमि प्राप्त करने का यत्न किया जावे, भूमि यथा सम्भव २० बीघे से कम न हो।

भूमि का चुनाव :—

दिनांक २२ मई सन् १९२६ ई० को स्थान कनखल की प्रथम बैठक में ही उपरोक्त निश्चय के अनुसार
महाशय वेदमित्र जिज्ञासु नें एक हजार रुपया भूमि के वास्ते देने का वचन दिया। तत्पश्चात भूमि के मूल्य के वास्ते
सामाजिक पत्रों में लेख निकाला गया कि जो सज्जन अपनी कुटि वानप्रस्थ आश्रम में बनवाना चाहें वह एक एक सौ
रुपया भूमि खरीदने के वास्ते भेज दें। अत, ६ मार्च १९२८ ई० तक एक हजार रुपये की राशि के अतिरिक्त महात्मा
नारायण स्वामी जी के दो सौ रुपये और महाशय दीवान सिंह जी सेवा निवृत तहसीलदार प्यावली जनपद बुलन्दशहर
निवासी, श्री स्वामी व्रतानन्द जी अधिष्ठाता गुरुकुल चित्तोड़गढ़, मु० रघुवीर सरन जी रस्तोगी हसनपुर जनपद मुरादा
बाद मु० विशन नारायण जी (स्वामी आत्मा नन्द जी) बरेली निवासी इनके भाई म० कृष्णा नारायण जी सेवा निवृत
इन्सपेक्टर पुलिस बरेली निवासी और श्री मती गोमती देवी जी शाहजहांपुर निवासी तथा डाक्टर लालचन्द जी शाहपुर
(पंजाब) निवासी इन सभी के एक एक सौ रुपये और कार्यालय सार्वदेशिक सभा देहली के द्वारा गुप्तदान के रूप में
आए हुए पचास रुपये प्राप्त हुए। इन प्रकार कुल एक हजार नौ सौ पचास रुपये जमा हो गये।

२२ मई सन १९२६ ई० से महाशय सुन्दर लाल जी म० जुगल किशोर जी, म० मुकन्दलाल जी आदि
निरन्तर उपयुक्त भूमि के लिए प्रयास करते रहे। दो बार ऋषिकेश भी जाना पड़ा। हरिद्वार में भीमगोडे से उत्तर
की ओर मैदान में एकान्त में भूमि पर्याप्त थी परन्तु उधर वर्षा ऋतु में मलेरिया का प्रकोप अधिक होने के कारण अनु-
पयुक्त रही। अन्त में परमात्मा की अपार कृपा से वर्तमान भूमि (मुख्य आश्रम के रूड़की हरिद्वार पक्की सड़क के पूर्वी
किनारे) साढ़े बाइस बीघे कच्ची अरबिन्द योग मन्दिर और सैनी आश्रम के बीच, रेलवे स्टेशन ज्वालापुर के सामने
दो फर्लांग की दूरी पर प्राप्त हो गई। यहां का जलवायु प्रशंसनीय है। यहां मलेरिया का भी प्रकोप नहीं है। इसके
दक्षिण की ओर ज्वालापुर से कनखल की पक्की सड़क है। यदि इस सड़क को पार करके सीधा दक्षिण को गम्भीर मार्ग
से जाया जावे तो गंगा की नहर जो मायापुर (हरिद्वार) से निकल कर रूड़की की ओर जाती है केवल एक फर्लांग
पर बहती है उस स्थान पर आश्रम के दो पक्के घाट स्त्री पुरुषों के लिए अलग अलग बने हुए हैं। सड़क के जरिये नहर
का पुल जहां चार पुख्ता बड़े बड़े घाट बने हैं। तीन फर्लांग की दूरी पर है। जहां पर ग्रीष्म ऋतु में स्नान का बड़ा
आनन्द है। यहां से ज्वालापुर कस्बा केवल एक मील है, कनखल डेढ़ मील हरिद्वार रेलवे स्टेशन सवा दो मील और
गुरुकुल कांगड़ी तथा ज्वालापुर महाविद्यालय एक एक मील दूर हैं।

भूमि के क्रय आदि की कार्यवाही

जिस समय इस भूमि को श्री स्वामी जी महाराज ने व अन्य सज्जनों ने सब तरह से पसन्द कर लिया तब
६ मार्च १९२८ ई० को महाविद्यालय ज्वालापुर के वार्षिकोत्सव के अवसर पर श्री स्वामी जी की उपस्थिति में इक्कीस
सौ रुपया स्टाम्प रजिस्ट्री आदि के खर्च सहित तय होकर भूमि का बयाना दे दिया गया और उसी दिन सभा की दूसरी
बैठक ने जो महाविद्यालय ज्वालापुर में हुई म० सुन्दर लाल जी व महाशय जुगल किशोर जी को नियुक्त किया कि
मार्च मास में ही भूमि की रजिस्ट्री बहक श्री मती आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश श्री महात्मा नारायण स्वामी जी
महाराज प्रधान आर्य सार्वदेशिक सभा देहली के नेतृत्व में वानप्रस्थ के वास्ते करा लेवें और एक सौ पचास रुपये जो
कम हैं इस समय महाशय वेदमित्र जिज्ञासु जी से उधार लेकर कार्य किया जावे। अतः २६ मार्च १९२८ ई० को सब
रजिस्ट्रार रूड़की के कार्यालय में दो हजार एक सौ रुपया देकर लाला कालूराम जी वैश्य अग्रवाल दुकानदार ऋषिकेश
से सात बीघे दस बिसवे क्षेत्रफल अथवा साढ़े इक्कीस बीघे कच्ची की रजिस्ट्री करा ली गई। दाखिल खारिज का

प्रार्थना पत्र भी प्रमाणित करा दिया गया। इसी प्रसन्नता के कारण राम नवमी सम्वत १९८५ बि० के शुभ दिन अर्थात् ३० मार्च १९२८ ई० को महाशय जुगलकिशोर जी व महाशय मुकन्दलाल जी ने इस भूमि में प्रथम यज्ञ करके भूमि को पवित्र किया और कुटियों के निर्माण के लिए ईंटे जमा कराने का कार्य आरम्भ कर दिया। महाशय जुगलकिशोर जी ने पूज्य नारायण स्वामी जी के आदेशानुसार एक योग्य ओवरसियर श्री सुखस्वरूप जी से नियमानुसार भूमि की पैमाइश करा कर उसका मानचित्र तैयार कराया जिसको सभा की तीसरी बैठक में दिनांक १८ अप्रैल सन् १९२८ ई० को हरिद्वार में रेलवे स्टेशन के समीप गरीबदासियों के ऊपर के भवन में जहां पूज्य नारायण स्वामी जी ठहरे हुए थे प्रस्तुत किया जिसमें विचार के पश्चात् सभा ने भूमि को दो भागों में विभक्त करते हुए दोनों में कुटियों यज्ञशाला, पुस्तकालय, कुंआ और वाटिका आदि के स्थान और माप नियत करके नक्शे बनाने वाले से एक मान-चित्र सभा के आदेशानुसार बनवाने और नगरपालिका समिति से स्वीकृति प्राप्त करने का आदेश दिया और महाशय सुन्दरलाल जी के स्थान पर महाशय जुगलकिशोर जी को मंत्री नियुक्त किया। मान-चित्र तैयार होकर नगरपालिका यूनियन हरिद्वार में २१ जून को दाखिल होकर २४ जुलाई १९२८ ई० को बोर्ड से स्वीकृत हुआ तथा वर्षा समाप्त होने पर १५ नवम्बर १९२८ ई० को पूज्य नारायण स्वामी जी महाराज के कर-कमलों द्वारा यज्ञ आदि के पश्चात् आश्रम की आधारशिला रक्खी गई। इसी दिन सभा की चौथी बैठक ने जो महाविद्यालय ज्वालापुर के स्थान शान्ति निकेतन में हुई, आश्रम के निर्माण का कार्य महाशय जुगलकिशोर जी को सौंपा गया और ३० नवम्बर सन् १९२८ ई० से निर्माण कार्य आरम्भ हो गया।

इसके पश्चात् निर्माण कार्य सुचारु रूप से चलता रहा और बारह महानुभावों ने वानप्रस्थ आश्रम में तथा आठ सज्जनों ने सन्यास आश्रम में प्रवेश करने की विधिवत दीक्षा ली। इस प्रकार पहिले पांच वर्षों में ही इस आश्रम रूपी पौधे की डालियां चारों ओर फैली हुई पल्लवित और पुष्पित होती हुई दिखाई पड़ने लगीं।

इस उन्नति को देख कर पूज्य अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी जी महाराज के हृदय में डेढ़ दो वर्ष से यह विचार उत्पन्न हो रहा था कि आश्रम के आस-पास की कोई और भूमि खरीद कर इसमें मिलाई जावे, तब से निरन्तर तलाश थी। परमात्मा बड़े दयालु हैं और शुभ संकल्प को शीघ्र ही पूरा करते हैं। अतः प्रभु की कृपा से आश्रम के दक्षिणी सिरे से मिला हुआ सड़क तक का बाग ५ बीघे ८ बिस्वे पक्के अथवा १५ बीघे १२ बिस्वे कच्चा क्षेत्रफल भूमि का, जिसमें १९ वृक्ष आम आदि के थे १८००) रु० में स्टाम्प रजिस्ट्री आदि के व्यय सहित श्री पंडा शिवचरण जी आदि ज्वालापुर निवासियों से मिल गया और उसकी रजिस्ट्री १२ मई १९३३ ई० को बहक श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा को पहिली भूमि की भाँति हो गई। इस प्रकार आश्रम की भूमि के एक भाग की दक्षिणी सीमा सड़क ज्वालापुर कनखल हो गई जो अब मुख्य आमश्र के नाम से जाना जाता है।

(क) इस स्थान पर दो संकेत देना भी आवश्यक है। एक महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज की आत्मकथा प्रकाशित आर्य-साहित्य-सदन देहली शहादरा प्रथम संस्करण के पृष्ठ १८७ से उद्धृत "सार्वदेशिक सभा की दशा उस समय डाँवाडोल थी। यद्यपि उसके सुधार का प्रयत्न किया जा रहा था इसलिए साथियों की इच्छा से भूमि का बैनामा, आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त के नाम कराया गया। भूमि मिल जाने पर आश्रम खोल दिया गया।"

यह लेख "वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के वृतान्त सम्बन्धी तैंतीसवे अध्याय में अंकित है।

(ख) दूसरा सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मंडल (जो वर्ष १९४५-४६ की इस आश्रम के भिक्षु मण्डल के साथ मिलकर पञ्चीकरण होने के बाद से इस आश्रम का भी नाम रहा है) की आवश्यक विज्ञप्ति जो अप्रैल १९४४ ई० की बैठक में स्वीकार होकर प्रकाशित हुई थी के पृष्ठ २-(१) प्रारम्भ निम्न प्रकार है:--

इस आश्रम के बनने का निश्चय १५ मई सन् १९[illegible]६ ई० को हुआ था। उस समय इस आश्रम के बनाने के कर्णधार श्री महात्मा नारायण स्वामी जी थे। प्रारम्भ ही से इस कार्य की पूर्ति में (१) सुन्दर लाल जी (स्वामी सदानन्द) (२) महाशय जुगल किशोर (स्वामी शुक्लानन्द) (३) श्री मुकन्दलाल और श्री वेद मित्र जिज्ञासु. प्रत्येक प्रकार से सहायक रहे। आश्रम के लिए २१ बीघा १ बिस्वे भूमि २१००) में ला० कालूराम से २६ मार्च १९२८ ई० को खरीदी गई। प्रबन्धकारिणी सभा के निश्चय सं० १ ता० ६ मार्च १९२८ में अंकित है कि "भूमि की रजिस्ट्री बहक श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश व अहतमाम श्री पूज्य महात्मा नाराण स्वामी जी प्रधान सार्वदेशिक सभा देहली, वास्ते वानप्रस्थाश्रम करा लेवें।

३- महात्मा नारायण स्वामी जी की दो योजनाएं :—

उपरोक्त भूमि में मुख्य आश्रम स्थापित हो जाने के पश्चात् पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी 'अध्यक्ष' ने दो योजनाएं और बनाई (१) आश्रम के विस्तार के लिए एक नई शाखा को स्थापित करना (२) आर्य समाजियों के लिए आश्रम के निकट आर्य नगर नाम से एक कालोनी की स्थापना करना।

(१) इस काय के लिए पूज्य नारायण स्वामी जी ने कार्यकारिणी सभा आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर के नाम से निम्न प्रकार ११ बीघे १० बिस्वे १० बिस्वांसी भूमि क्रय की और कार्यालय जोइन्ट सब रजिस्ट्रार हरिद्वार में अपने अहतमाम में रजिस्ट्री कराई इस ११-१०-१० पक्की भूमि में से ५ बीघे ११ बिस्वे भूमि में आश्रम की शाखा नं० १ स्थित है--

क्रम संख्या	नाम व्यक्ति जिससे रजिस्ट्री कराई	किसके नाम	क्षेत्रफल बी०वि०वि०	राशि	रजिस्ट्री की तिथि
१-	मु० संजा आदि	कार्य कर्त्री सभा आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर	१.१४.१०	३००)	५-५-१९३८
२-	,, ,,	,, ,,	०-७	६३)	६-५-१९३८
३-	जगदीश प्रसाद आदि	,, ,,	१-४	६००)	१३-१०-१९३९
४-	चौ० रामजीलाल	,, ,,	०-१७	५४८।)	१४-१२-१९३९
५-	चौ० रघुवीरसिंह	,, ,,	२-१६	१८५०)	१४-१२-१९३९
६-	चौ० कुन्दनसिंह	,, ,,	०-३	९६।।।)	१४-१२-१९३९
७-	ला० देवी सहाय	,, ,,	२-९	१५००)	१२-२-१९४०
८-	ला० मुरारीलाल	,, ,,	१-१८	२०००)	७-५-१९४०
९-	स्वामी सत्यदेव	,, ,,	०-२	५०)	२३-५-१९४०

नोट:—अन्तिम क्रम संख्या ९ बैनामा रजिस्ट्री वही हुआ योग— ११-१०-१० ७००८)

(२) के बारे में आगे वर्णन किया जावेगा।

उपरोक्त वृतान्त से भली भांति प्रकट है कि यह आश्रम महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा स्थापित किया हुआ दिनो दिन उन्नति करता गया और समस्त आर्य-वर्त में अपने प्रकार का एक ही आश्रम सिद्ध हुआ। वर्ष १९४७ में पूज्य नारायण स्वामी जी का शरीरान्त हो गया। उसके पश्चात् इस आश्रम के निर्माण का कार्य महात्मा हरप्रकाश जी ने सभाला और शाखा नं० १ का निर्माण कार्य पूरा हो जाने के पश्चात् कुटियों के निर्माण की मांग इतनी बढ़ गई कि महात्मा हरप्रकाश जी को विस्तार के लिए और भूमि की तलाश अनुभव होने लगी। निरन्तर प्रयास के पश्चात् १३ बीघे ९ बिस्वे १७ बिस्वांसी भूमि निम्न ब्यौरे की मुख्य आश्रम के रुड़की हरिद्वार पक्की सड़क पर स्थित मुख्य द्वार के ठीक सामने उपरोक्त पक्की सड़क और रेलवे स्टेशन ज्वालापुर के बीच में वह भूमि प्राप्त करने में सफल हो गये और दिनांक १९-६-६८ को भूमि क्रय करके कार्यालय हरिद्वार में रजिस्ट्री करा ली गई।

ब्यौरा भूमि शाखा नं० २

क्रम सं०	नाम व्यक्ति जिसने रजिस्ट्री कराई	किसके नाम रजिस्ट्री हुई	क्षेत्रफल बी०वि०वि	राशि	रजिस्ट्री का दि०
१-	रामस्वरूप कपूर आदि दिल्ली	आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र.	४-९-१९	१७,६२५-५०	१९-६-६८
२-	अमर कुमार कपूर	,, ,,	४-९-१९	१७,६२५-५०	१९-६-६८
३-	रामप्रकाश आदि	,, ,,	४-९-१९	१७,६२५-५०	१९-६-६८
		योग	—१३-९-१७	५२,८७६-५०	

इस स्थान पर पुनः यह निवेदन करना उचित होगा कि पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा आश्रम को वर्ष १९४५-४६ में भिक्षु मण्डल के साथ मिलाकर सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल के नाम से पञ्जीकृत हो जाने के उपरान्त भी महात्मा हरप्रकाश जी ने अपने सौहार्द्र और सरल स्वभाव से उपरोक्त तीनों रजिस्ट्री पुनः आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के नाम से कराई इस काम के लिए उस समय आश्रम को धन की भी आवश्यकता थी और इसलिए पंजाब नेशनल बेंक ज्वालापुर से निम्न प्रकार ऋण लिया इस ऋण को स्वयं आश्रम ने ही लौटाया। रजिस्ट्री बैनामो पर खरीदार में महात्मा हरप्रकाश जी का नाम है और आश्रम के श्री बृजबिहारीलाल और लच्छमनदास ही साक्षी रहे। प्रतिनिधि सभा का कोई व्यक्ति उपस्थित भी नहीं था।

ब्यौरा ऋण

पंजाब नेशनल बेंक से १५-६-१९६८ ई० ४२, ५००-०० ऋण लिया और निम्न प्रकार लौटाया :—

दिनांक :—	१५-७-६८	८-८-६८	२-९-६८	१९-२-६९	१२-६-६९
राशि :—	५०००)	५०००)	५०००)	१५०००)	१२९७०-६८

आर्य नगर आर्य नगर की आवश्यकता

विरक्त आर्य आश्रम (वानप्रस्थाश्रम) ज्वालापुर की प्रबन्ध कारिणी सभा ने उन आर्य नर-नारियों की इच्छा को पूर्ण करने का विचार किया था जो शहरी वायु मण्डल में परिवार सहित रहकर अपना अधिकांश समय ईश्वर भजन सत्संग आत्मचिन्तन में व्यतीत करना चाहते थे किन्तु जिनको वानप्रस्थ के नियम कुछ दिन से अधिक परिवार सहित आश्रम में रहने की आज्ञा नहीं देते थे।

(१) वानप्रस्थ आश्रम में जो कुटियां बनाई जाती हैं उन पर बनाने वालों का अधिकार केवल जीवन पर्यन्त रहता है और फिर वह आश्रम की सम्पत्ति बन जाती है। (केवल उस अवस्था में जब के मृत व्यक्ति के पुत्र भी वानप्रस्थी बनकर वहां रहना चाहें किन्तु आर्य नगर में इस प्रकार प्रतिबन्ध न रहेगा। बनाने वालों तथा उनके उत्तराधिकारियों को कुटियों व मकानों पर पूर्ण अधिकार रहेगा।

(२) वानप्रस्थाश्रम में आश्रम वासियों के अतिथि भी केवल सात दिन तक ठहर सकते हैं किन्तु आर्य नगर में इस प्रकार का बन्धन न होगा।

(३) वानप्रस्थ आश्रम में आश्रम की भेंट १००) करने पर सपत्नीक सज्जनों को २५ गुणा ५० फीट भूमि पर कुटिया बनाने की आज्ञा स्वीकृत नक्शे के अनुसार मिलती थी और चौबारे व दुमंजिले मकान बनाने की आज्ञा नहीं दी जाती किन्तु आर्य नगर में लगभग डयोढ़ी ५० गुणा ३६ फीट भूमि मिलने के अतिरिक्त अपनी इच्छानुसार मकान बनाने की स्वतन्त्रता होगी। आर्य नगर निवासी वानप्रस्थ आश्रम के निकट होने के कारण वहां के दैनिक सत्संग, वेदकथा, पुस्तकालय, वाचनालय आदि से भी पूर्ण लाभ उठा सकेंगे। आर्य नगर निवासियों के बच्चों के लाभार्थ पाठशालादि का भी प्रबन्ध करने का उनके सहयोग से यथा सम्भव प्रयत्न किया जायगा। आर्य नगर निवासियों में पूर्ण भ्रातृभाव का आदर्श रक्खा जायगा। ऐसे आर्यनगर की आवश्यकता अनेक आर्य चिरकाल से अनुभव कर रहे थे इसलिए वानप्रस्थ आश्रम की प्रबन्ध कारिणी सभा ने उसकी पूर्ति का निश्चय किया है जिसकी नियमावली साथ दी जाती है। आशा है धर्म-प्रेमी आर्य इस योजना का स्वागत करेंगे और उससे पूर्ण लाभ उठायेंगे।

नारायण स्वामी प्रधान
विरक्त आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

इस योजना की पूर्ति के लिए पूज्य महात्मा नारायण स्वामी महाराज जी ने ग्राम जगजीतपुर ज्वालापुर आदि की भूमि लगभग ५० बैनामे आर्य विरक्त वानप्रस्थ संन्यास आश्रम के नाम वर्ष १६३८ से ४६ तक में कराकर उसमें ५०" × ३६" क्षेत्रफल के प्लोट बनवाये। कई हितैषी आर्य सज्जनों के प्रस्ताव पर आर्य नगर भूमि में तीन मेन (बड़ी) सड़कें जहां गेट बनाने की योजना थी बीस फीट और दो प्लाटों के मध्य में दस फीट की गली और फिर दो प्लाटों के पश्चात् पन्द्रह फीट की सड़कें बनाई हैं। इससे नगर की सुन्दरता बढ़ गई है।

आर्य नगर की योजना में एक विशाल स्नान घाट की आवश्यकता अनुभव की गई थी और घाट के पास ही नहर की पटरी पर संध्या, स्वाध्याय आदि के लिए नहर विभाग की आज्ञा से एक पार्क भी बनाने की योजना थी। इसके अतिरिक्त आर्यनगर में एक महिला आश्रम भी निर्माण करने का संकल्प था जहाँ अधिकारिणी देवियां जो अपनी कुटिया बनाने में असमर्थ हों ईश्वर भजन, स्वाध्याय एकान्त सेवनार्थ निवास कर सकें। २५०) रु० प्रति कुटी की लागत से बनाने की योजना थी।

परन्तु कुछ कारणों से उपरोक्त योजना सफल न हो सकी आर्यनगर के निर्माण के प्रारम्भ में मकान बनाने के इच्छुक व्यक्तियों को कुएँ के बिना मकान निर्माण करने में बड़ी कठिनाई हुई। आर्य धर्म-प्रेमियों को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि इस कमी को पूरा करने का सौभाग्य श्रीमती शिवदेवी जी, धर्म पत्नी स्व० श्रीमान गुरुदास राम जी बैरिस्टर भेरा निवासी तथा माता श्रीमती डा० शकुन्तला देवी जी एम.बी.बी.एस असिस्टेन्ट सर्जन रावलपिण्डी को प्राप्त हुआ।

माता शिवदेवी जी बड़ी ईश्वर परायणा और दानशीला थीं। आपने वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में ६ वर्ष से एकान्त सेवन के लिए कुटिया बनवाई थी और एक कुटिया धर्मार्थ भी बनवाई थी। आपको यज्ञ में बड़ी श्रद्धा थी आपने वैदिक आश्रम ऋषिकेश में भी एक सुन्दर यज्ञशाला निर्माण कराई थी। आपने यज्ञमयी श्रद्धा से प्रेरित होकर आर्यनगर में उपरोक्त कुआं बनवा दिया था। जिसका प्रारम्भिक संस्कार पूज्यपाद श्री नारायण स्वामी जी महाराज ने (प्रधान आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर) अपने कर-कमलों द्वारा २७ चैत्र १९९५ तदनुसार ९ अप्रैल सन् १९३८ शनिवार रामनवमी के पवित्र अवसर पर उस समय जबकि वानप्रस्थाश्रम में सम्पूर्ण चारों वेदों द्वारा किए गए यज्ञ की पूर्ण आहुति दी गई बड़े समारोह के साथ कराया गया था। साथ ही 'ओ३म्' की पताका भी लहराई गई थी।

४—निर्माण कार्य

उपरोक्त पैरा ३ (१) में निर्माण के लिये मानचित्र की तैयारी कुटियों का निर्माण कार्य आरम्भ होने का उल्लेख किया जा चुका है। जिनमें ७ मार्च १९२९ को निम्नांकित व्यौरे की सात कुटियों का निर्माण हो चुकने पर वेदोक्त आश्रम का उद्घाटन बड़े समारोह से हुआ। तब से अनेक वानप्रस्थ व सन्यासी आदि निवास करने लगे।

कुटियों के निर्माण का व्यौरा

(१)	महाशय दीवानसिंह जी की लागत		४२५)
(२)	महाशय वेदमित्र जिज्ञासु जी की पूज्या माता श्रीमती सूरजमुखी जी के नाम पर	लागत	४२५)
(३)	मु० हरध्यानसिंह जी रदोर	,,	४००)
(४)	मु० सुन्दरलाल जी तीतरो	,,	४२५)
(५)	मु० बद्रीप्रसाद जी जानसठ	,,	४२५)
(६)	मु० जमुनादास जी जसपुर	,,	४२५)
(७)	मु० जुगलकिशोर जी की काष्ठ की एक कुटी	,,	७५)

७ मार्च १९२९ के पश्चात् निम्नलिखित कुटियां आदि स्थान बन जाने के बाद (८-९) राधा कुटी दो कोठरियां का निर्माण बाबू रामकिशोर, धर्मकिशोर जी पुत्र म० जुगलकिशोर जी ने अपनी पूज्य माता श्रीमती राधादेवी जी की स्मृति में ५९५) की लागत से बनवाया (स्टोर भण्डार)।

(१०-११) टिन शेड की दो कोठरियां एक महाशय सुन्दरलाल जी ने लागत ११०) दूसरी वेदमित्र जिज्ञासु जी, म० दीवानसिंह जी व महाशय बद्रीप्रसाद जी ने मिलकर लागत ११०) से परमार्थ बनवाई (इस समय लकड़ी तथा चूने के स्टोर हैं) टिन के स्थान पर लिन्टर की छत आश्रम ने बनवा दी है।

(१२)	कुटी मु० दुर्गाप्रसाद जी मुख्तार रुड़की	लागत	४००)
(१३)	,, मु० सुन्दरलाल जी परमार्थ	,,	३५०)
(१४)	,, मु० किशोरीलाल जी कैराना	,,	४००)
(१५)	,, मु० प्यारेलाल जी ,,	,,	४००)
(१६)	,, चौ० दाताराम शामली दुमंजिली	,,	१२००)
(१७)	,, मु० भगीरथलाल शामली	,,	४००)
(१८)	,, मु० विशम्भरदास देहली	,,	४९५)

(१) मुख्य आश्रम के इसी भाग में एक बड़ी सुन्दर कृष्णा कुमारी यज्ञशाला सात पहलू १०००) की लागत से तयार हुई जिसका विस्तार वर्ष १९७० में लगभग ७१०८) की लागत से श्री आनन्द मुनि जी (निर्माता कुटी नं० ९४ मुख्य आश्रम) ने कराया।

(२) एक बहुत सुन्दर कृष्णा कुमारी वैदिक पुस्तकालय दो कोठरियों नं० १९-२० मय चौरुखा बरामदा व एक बड़े चबूतरे का ३९३०) की लागत से और पुस्तकालय के सामने सड़क पर एक सुन्दर छोटा सा दरवाजा मय दो कोठरियों नं० २१-२२, २३०) की लागत से श्रीमती सुमित्रादेवी व उनके पति महाशय वेदमित्र जिज्ञासु जी ने अपनी स्व० पुत्री कृष्णाकुमारी की स्मृति में बनवाये। इस प्रकार सितम्बर १९३३ ई० के अन्त तक प्रथम पांच वर्षों में ९ कुटिया तो पुरुषों ने अपने अपने निवासार्थ और शेष १३ कुटिया ऐसे वानप्रस्थ और संन्यासियों के निवासार्थ बनवाई जो स्वय नहीं बनवा सकते थे या अतिथि रूप में आते-जाते रहते थे।

सपत्नीक वार्ड में इन्हीं पांच वर्षों में निम्नांकित कुटियों का निर्माण हुआ :—

१.	श्रीमती गोमती देवी शहाजहांपुर निवासी	लागत	४२०)
२.	भक्त सुन्दर दास जी डेरागाजी खां निवासी का एक मकान दो कोठरियों का	,,	१०५०)
३.	श्रीमती कस्तूरी देवी सढौरा जनपद अम्बाला निवासी	,,	३५०)
४.	मु० मिट्ठनलाल ठेकेदार देहली निवासी	,,	११५०)
५.	श्रीमती शिवदेवी जी माता डा० शकुन्तला देवी रावलपिन्डी निवासी (एक मकान)	,,	१२००)

नोट--उपरोक्त कुटियों की लागत में आश्रम भेंट कै १००) जो प्रत्येक निर्माता को अपने निवासार्थ बनवाने के समय देने होते थे, सम्मिलित नहीं हैं।

१. सपत्नीक भाग के उत्तर की ओर एक बड़ा मकान अहातेदार पांच छः कुटियों का महाशय वेदमित्र जिज्ञासु तीतरो निवासी ने २२३६) की लागत से, २. तथा एक छोटा मकान बाबू चन्डीप्रसाद जी शहाजहांपुर निवासी ने ६५०) की लागत से बनवाये।

(३) इन्हीं दो मकानों के साथ पूर्वी कोने पर एक मकान दो कोठरियों का मय एक कोठरी ऊपर की मंजिल पर महाशय वेदमित्र जिज्ञासु जी ने महाशय काशीनाथ जी फिदा जफरपुर जनपद मुजफ्फरनगर निवासी व महाशय धर्मवीर जी कैराना जनपद मुजफ़्फ़रनगर निवासी के वास्ते ९९०) की लागत से परमार्थ बनवाई थीं।

उपरोक्त तीनो मकान आश्रम के कुछ नियमों की पाबन्दी से बरी हैं।

(४) उपरोक्त दोनों भागों के बीच की त्रिकोण भूमि में दक्षिणी सिरे पर पुरुष भाग की पूर्वी लाइन के समीप एक कुटिया दो मंजिली इस आश्रम के संस्थापक पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज की १०००) की लागत से बनी जिसका ऊपरी भाग ३१५) की लागत से महाशय वेदमित्र जी ने बनवाया था। इस कुटी में स्वामी जी महाराज कभी कभी सार्वदेशिक सभा के कार्य से अवकाश पाने पर निवास करते थे और यही उनकी साधना स्थली भी थी। उनके यहां विराजमान होने के समय उनके उपदेश व सत्संग से जो लाभ आश्रमवासियों को होता था वह अकथनीय है और आश्रम की शोभा भी अद्भुत दिखाई पड़ती थी।

(५) इसी बीच की भूमि में एक पक्का कुंआ महाशय मूलराज जी सेवा निवृत्त पेशकार नजीबाबाद निवासी ने १३००) की लागत से सन् १९३१ ई० में बनवाया जिस पर वर्ष १९३२ ई० में आश्रम वासियों ने २२२) की लागत से रहट लगवा लिया था। जिससे उस समय जबकि नगर पालिका यूनियन के टंकी के नल नहीं लगे थे इससे पानी की बड़ी सुविधा हो गई थी। इसी कूप के ऊपर टकी बनाकर बिजली का नल कूप लगा दिया गया है। इस नलकूप की मशीन आदि का पूरा व्यय बालमुकन्द धर्मार्थं ट्रस्ट पंजाबी बाग नई दिल्ली ने वहन किया, यही नहीं उसी समय से आज तक इस नलकूप की मरम्मत, मोटर आदि की बदली यही उपरोक्त ट्रस्ट अपने व्यय पर करता है। उनके अभियन्ता मिस्त्री आदि आश्रम की सूचना पर तुरन्त अपने व्यय पर आकर आश्रम की कठिनाई दूर करते हैं जिसके लिये आश्रम उनका अत्यधिक आभारी है। नलकूप के नल और टंकी के निर्माण का व्यय आश्रम ने स्वयं वहन किया है।

(६) कुएं के समीप एक राधा पाकशाला तथा भण्डार बना हैं जिसकी भीतरी तीनों कोठरियां पाचक व कहार के निवास और गोदाम जिन्स के वास्ते महाशय धर्म किशोर जी बुक सेलर पुत्र स्वामी शुक्लानन्द जी ने २८) की लागत से और बाहर का भाग टिनशेड और अहाता आदि महाशय सुन्दर लाल जो ने २२५) की लागत से सम्वत् १९८८ वि० में वनबाये थे। शेष परिवर्तन लकड़ी और चूने के गोदाम का निर्माण आश्रम ने कराया।

उपरोक्त पैरा ५ मैं वर्णित टंकी के पास पाकशाला के समीप ६ कोठरियों का निर्माण आश्रम ने कराया जिन में दो में मूत्रालए, दो में स्नानागार और दो में पावर की मशीन मोटर आदि के प्रयोग में आते हैं।

कुटी संख्या ५० मुख्य आश्रम श्री अम्बा प्रसाद वर्मा व्यापारी विलायती फूल आदि बरेली निवासी ने ४८०) की लागत से एवं कुटी सं० ५१ व ५१।१ श्री गौरी शंकर सेवा निवृत्त रेलवे गुडस कलर्क मुरादाबाद निवासी ने ११५०) की लागत से धर्मशाला के प्रयोग के लिए बनवाई थी वाद में इन्हें कुटियों में परिवर्तित कर दिया गया था।

इन सब के अतिरिक्त आश्रम का मुख्य द्वार बहुत ऊंचा सुन्दर डाटदार हरिद्वार ज्वालापुर की सड़क पर श्री दीवान सिंह जी (स्वामी उमानन्द) ने अप्रैल सन १९३२ ई० में १६०) की लागत से बनवाया था जिसके बनने से आश्रम का नाम भली प्रकार प्रख्यात हो गया। इस दरवाजे के सामने आश्रम की कुटियों की पश्चिम लाइन ५७ से ७६ के बीच जो मुख्य मार्ग आश्रम में हरिद्वार सड़क से कनखल तक के पक्के मार्गो के बीच है उस पर भी एक अन्य डाटदार द्वार श्री नारायण द्वार के नाम से महाशय सुन्दर लाल जी (स्वामी सदानन्द जी) ने अपने मासिक दान से बनवाया था।

इसी मुख्य पक्के मार्ग पर तीसरा एक द्वार और उसके ऊपर एक कमरा वाचनालय के लिए कनखल ज्वालापुर पक्की सड़क पर सम्वत् २००१ में सेठ माधव जी (दारा स्लाम अफ्रीका) निवासी ने अपनी पूज्या माता गंगा स्वरूप यमुना बाई की पुण्यस्मृति में बनवाया। इन्हीं सेठ माधव जी ने एक मकान लाडली बाई की स्मृति में ज्वालापुर चौराहे के पास कच्चे मार्ग पर बनवाया था। जो इस समय सार्वदेशिक दयानन्द वानप्रस्थ मण्डल के अधिकार में है।

उपरोक्त निर्माण कार्य आश्रम की स्थापना के प्रथम पांच वर्षो में पूरा हुआ उसके पश्चात यह कार्य निरन्तर प्रगति पर रहा। सम्पूर्ण निर्माण का ब्यौरा अलग अलग न देकर परिशिष्ट (१) (कुटियों के विवरण में दिया गया है।

कुटियों के निर्माण सम्बन्धी सिद्धान्त

(क) आश्रम तीन भागों में विभक्त है :—

(१) सपत्नीक वानप्रस्थों के निवासार्थ।

(२) एकाकी पुरुषों के निवासार्थ।

(३) एकाकी स्त्रियों के निवासार्थ।

(ख) कुटियों का स्वत्वाधिकार :—

आश्रम के नियमों के अनुसार, आश्रम में किसी भी प्रकार से जो कुटिया बनेगी उन पर आश्रम का स्वामित्व होगा किसी व्यक्ति विशेष का कोई स्वत्व न होगा केवल कुटिया निर्माता उसमें आयु पर्यन्त निवास कर सकेंगे। उनकी मृत्यु के पश्चात यदि उनका पुत्र या उत्तराधिकारी वानप्रस्थी या सन्यासी बने तो वह भी उसमें निवास कर सकेगा।

(ग) आश्रम भेंट :—

प्रत्येक कुटी बनाने वालों को बनाने से पूर्व मुख्य आश्रम और शाखा १ में २००) तथा शाखा २ में ३००) आश्रम की भेंट अथवा Development Charges के रूप में दिये।

(घ) जो कुटी या धर्मशाला परोपकारार्थ बनाई गई उनमें आश्रम भेंट नहीं ली गई।

(च) कुटी के बनाने वाले मरम्मत लिपाई-पुताई आदि के स्वयं उत्तरदायी होते हैं। उनके न रहने पर यह समस्त कार्य आश्रम करता है।

(छ) अब तक जितनी कुटी या धर्मशाला बनी उनकी सूची परिशिष्ट (१) में दी गई है।

(ज) आश्रम के आवश्यक सिद्धान्तों तथा इसमें प्रवेश के नियम तथा दिनचर्या आदि के लिए देखो परिशिष्ट (२)।

६ पंजीकरण सम्बन्धी व्यौरा

आश्रम स्थापना के १५ वर्ष पश्चात् २९-१०-१९४२ की अन्तरंग सभा के निश्चय सं० १० के अनुसार आश्रम को रजिस्टर्ड कराने का निश्चय हुआ और सभा के नियमों में आवश्यक संशोधन करने हेतु उपसमिति बनाई गई। उनके भेजे संशोधनों का सारांश प्रस्तुत हुआ ही था और आश्रम के निम्न २१ सदस्यों के हस्ताक्षरों सहित महात्मा-नारायण स्वामी जी के पास इस आशय का प्रार्थना पत्र भेजा गया कि इस आश्रम को सार्वदेशिक दयानन्द भिक्षु मण्डल जो एक रजिस्टर्ड संस्था है में सम्मिलित करके तथा नियमों में आवश्यक संशोधन करके पंजीकृत कराया जाय। यह प्रार्थना पत्र १३ मार्च १९४३ की बैठक में प्रस्तुत हुआ। भक्त सुन्दर दास जी ने इस प्रार्थना पत्र की व्याख्या की। भली भांति विचार के उपरान्त सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि महात्मा नारायण स्वामी जी से जो आश्रम के अध्यक्ष तथा दयानन्द भिक्षु मण्डल के प्रधान थे निवेदन किया जावे कि संशोधित नियमों के अनुसार जिनको सभा ने स्वीकार किया था सार्वदेशिक दयानन्द भिक्षु मण्डल के साथ इस आश्रम को सम्मिलित करके कार्यवाही की जाए।

वान प्रस्थ आश्रम के हितचिन्तकों के हस्ताक्षर

(१) वत्सलानन्द सरस्वती, (२) सुन्दरदास आर्य, (३) जीवन मुनि मंत्री, (४) स्वामी देवानन्द (५) लालचन्द, (६) प्रेमानन्द वैद्य, (७) रणजीतसिंह, (८) सीताराम शर्मा, (९) विद्यानन्द (१०) काकाराम

(११) रामानन्द, (१२) ज्ञानेन्द्र (१३) प्रेमसुलभा यति, (१४) बद्रीप्रसाद (१५) नन्दलाल, (१६) गणपति वेदोपदेशक (१७) देवीबाई, (१८) लक्ष्मी, (१९) केसरादेवी, (२०) प्यारेलाल वैश्य (२१) भक्त सुन्दरदास जी।

उपर्युक्त प्रार्थना पत्र आश्रम की अन्तरंग सभा में प्रेषित किया गया और २४ मार्च १९४३ को निश्चय सं० २, रजिस्ट्री कराने सम्बन्धी स्वीकार हुआ था वह निश्चय सं० ३ द्वारा रद्द हो गया।

२०-१०-४३ के सभा के अधिवेशन में अपेक्षित परिवर्तन भी नियमों में करदिए और आगामी ३ तथा २९ जनवरी १९४४ के अधिवेशनों में पुष्टि के उपरान्त संशोधित नियम रजिस्ट्रार के कार्यालय को मण्डल के प्रचलित नियम समझे जाने के लिए भेज दिए गये। इस प्रकार यह आश्रम भिक्षु मण्डल के साथ सम्मिलित होकर नं० १६३ सन् १९४५-४६ में अधिनियम २१ सन् १८६० के अन्तर्गत पंजीकृत हो गया। इस स्थान पर यह उल्लेखनीय है कि पंजीकृत नियम २२ में उल्लेख हुआ था कि यदि किसी समय यह आश्रम न रहे तो इसकी कुल सम्पति सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली की होगी।

७ स्वामी वेदानन्द जी से विवाद

उपरोक्त पंजीकृत नियमों के अन्तर्गत यह उपरोक्त संस्थां महात्मा नारायण स्वामी जी के निधन के समय सन् १९४७ तक ठीक प्रकार चलती रही। पूज्य स्वामी जी की मृत्यु के उपरान्त स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ उनके स्थान पर अध्यक्ष नियुक्त हुए। अतः स्वामी वेदानन्द जी महाराज के मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि वह स्वयं ही जीवन पर्यन्त अध्यक्ष बने रहें और इसी कारण आश्रम की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर रेवेन्यु रिकार्ड में भी उन्होंने अपना नाम अंकित करा लिया। यह दोनों ही बातें आश्रम वासियों की इच्छा के विरुद्ध थीं और यही बातें विवाद का कारण बन गई।

आश्रम वासियों ने इस विवाद में आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की सहायता प्राप्त की। चूंकि मुख्य आश्रम के लिए भूमि महात्मा नारायण स्वामी जी ने अपने प्रबन्ध और अधिकार में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश के नाम क्रय की थी। अतः इस आश्रम ने आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से अपने व्यय पर रेवेन्यु रिकार्ड अर्थात् खेवट से स्वामी वेदानन्द जी का नाम रद्द कराने हेतु न्यायालय सबडिवीजनल मजिस्ट्रेट रुड़की में मुकद्दमा दायर किया जिसमें २८-८-५० को निर्णय हो गया कि स्वामी वेदानन्द जी का नाम खेवट से निकाल कर उनके स्थान पर श्री धीरेन्द्र शास्त्री प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा का नाम प्रबन्धक के रूप में अंकित कर दिया जाय। इसी निर्णयानुसार स्वामी वेदानन्द जी ने २९-८-५० को वानप्रस्थ आश्रम का चार्ज दे दिया।

इस प्रकार उपरोक्त कथित सम्मिलित संस्था भी विभाजित हो गई। स्वामी वेदानन्द जी पूर्ववत् भिक्षु मंडल के प्रधान बन गए और उसी समय से वह संस्था आज तक सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासी वानप्रस्थ मण्डल के नाम से उपरोक्त सन् १९४५-४६ के पंजीकरण के अन्तर्गत चल रही है और यह आश्रम निश्चय संख्या ४ दिनांक ३०-८-५० के अनुसार पृथक रूप से सर्व श्री बालमुकुन्द प्रधान और श्री हरप्रकाश मन्त्री के प्रबन्ध में आर्य विरक्त वानप्रस्थ संन्यास आश्रम के नाम से चलने लगा। इस स्थान पर यह उल्लेख करना भी अनुचित न होगा कि इस झगड़े के समय आश्रम का भण्डार भी बन्द हो गया था और दोनों पक्ष वाले अपने अपने अथितियों को अपने अपने साथ भोजन कराते थे। स्व० महात्मा हरप्रकाश जी के अनुसार भोजन के समय के पश्चात् अतिथियों का सत्कार रक्खी हुई भुनी बेलों से किया जाता था। यह कठिनाई भी निश्चय सं ४ दिनांक ३०-८-५० के अनुसार भोजन भण्डार पुनः चालू करने के निश्चय से दूर हो गई।

इस प्रकार ३०-८-५० के निश्चय के पश्चात् एक नए दौर का शुभारम्भ हुआ। आश्रम पुनः अ० पंजीकृत संस्था बन गया और उसने अपना सम्बन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा से स्थापित कर लिया। महात्मा हरप्रकाश जी के प्रस्ताव पर और श्री ज्योति प्रसाद जी के समर्थन से निश्चय सं २ दिनांक १-४-५१ द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा से एक अध्यक्ष नियुक्त करने की प्रार्थना की गई। इस प्रकार आश्रम की कार्यवाही पुनः सुचारु रूप से चलने लगी।

८ नियमावली सम्बन्धी ब्यौरा

इस आश्रम की स्थापना ३०-३-२८ को महात्मा नारायण स्वामी जी की अध्यक्षता में हुई थी। इस समय स्वामी जी महाराज सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रधान थे।

(१) ३जनवरी १९२९ को सभा की आठवीं बैठक जो आश्रम की भूमि में हुई इसमें आश्रम की नियमावली की आवश्यकता अनुभव करके एक उपसमिति (१) महाशय सुन्दर लाल जी (२) मु० जुगलकिशोर जी (३) महाशय बद्री प्रसाद जी (४) श्री बख्शी कृपाराम जी व (५) महाशय टेलूराम जी की नियुक्त की गई कि वह आश्रम की नियमावली तैयार करके उसकी एक प्रति महात्मा नारायण स्वामी जी के पास देहली भेज दें। अतः ऐसा होने के पश्चात् ९ फरवरी सन् १९२९ ई० को सभा की दसवीं बैठक आश्रम की भूमि में रक्खी गई और विचार व संशोधन के पश्चात् पास हुई तथा छपने के लिए देहली भेज दी गई।

नोटः - यह नियमावली काफी प्रयत्न करने पर भी उपलब्ध नहीं है।

(२) उपरोक्त प्रथम नियमावली आश्रम की प्रबन्ध कारिणी सभा ने २६-३-१९३७ को बैठक में संशोधित की तत्पश्चात् प्रकाशित हुई। यह नियमावली भी उपलब्ध नहीं है परन्तु आवश्यक विज्ञप्ति जो सर्वदेशिक दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल (सम्मिलित संस्था जिसका ऊपर पैरा २ (ख) में विस्तार से वर्णन किया जा चुका है) ने अप्रैल १९४४ की बैठक में स्वीकार करके प्रकाशित की थी, के परिशिष्ट (२) में उपलब्ध है।

(३) ऊपर पैरा ६ के अनुसार सार्वदेशिक दयानन्द भिक्षु मण्डल के साथ सम्मिलित होकर पंजीकृत नियमावली।

(४) जैसा कि ऊपर पैरा संख्या (९) में अंकित है कि ३०-८-५० के पश्चात् आश्रम ने अपना सम्बन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश से स्थापित कर लिया। अतः प्रबन्ध कारिणी सभा ने अपनी बैठक दिनांक २३-१०-५१ में निश्चय सं० २ में संशोधन करके प्रकाशित की। आमश्र की इस तीसरीं नियमावली में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का संकेत प्रथम बार (१) टाइटिल पृष्ट पर 'अधिकृत श्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश, अकित होना (२) नियम १६ में 'निर्वाचित प्रधान की स्वीकृति आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश से लेनी होगी जिसके अधिकृत यह आश्रम है।'

(५) आश्रम की चौथी नियमावली को पुनः २८-७-५७ के निश्चयानुसार संशोधित किया जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश को पुनः निम्नलिखित अधिकार दिए गए।

नियम एक में बढ़ाया गया कि 'यह आश्रम आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के आधीन रह कर संचालित होगा।

(६) वर्ष १९६५ में पुनः उपरोक्त १९५७ की नियमावली को संशोधित करके आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश को और अधिक अधिकर प्रदान किए गए। जो मुख्यतः निम्न प्रकार है:—

आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से अध्यक्ष की नियुक्ति और उसको आश्रम की सभाओं के सभी अधिवेशनों का सभापति होने तथा आश्रम के कार्यों को नियमानुसार संचालित करने का अधिकार दिया गया है ।

(७) १७-८-६८ की अन्तरंग सभा के निश्चय सं० ८ के अन्तर्गत वर्ष १९६५ की नियमावली में पुनः संशोधन करने के लिए एक उप-समिति (१) महात्मा हरप्रकाश (२) श्री कविराज हरनामदास (३) श्री पं० शिवदयालु जी (४) श्री तेजसिंह जी अध्यक्ष और (५) श्री बृजविहारीलाल जी पं० शिवदयालु जी इस उप-समिति के संयोजक बनाये गये ।

इस उप-समिति की रिपोर्ट साधारण सभा दिनांक १७-४-७१ के निश्चय सं० ७ द्वारा संशोधित नियमावली स्वीकृति के उपरान्त सम्पुष्टियार्थ आर्य प्रतिनिधि सभा को भेजने का निश्चय हुआ ।

उपरोक्त संशोधन का प्रस्ताव पुन: दिनांक २०-४-७२ की सभा में प्रस्तुत होकर सर्व सम्मति से पारित किया गया और आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० को सम्पुष्टि के लिए भेज दिया गया । परन्तु यह संशोधित नियमावली वहां से नहीं लौटी । अत: अप्रैल १९७३ में बिना सम्पुष्टि ही नियमावली प्रकाशित करा कर लागू कर दी गई ।

इस प्रकाशन के पश्चात आर्य प्रतिनिधि सभा का पत्र संख्या ६६०७ दिनांक १०-८-७३ प्राप्त हुआ जिसमें आपत्ति जनक विवरण के अतिरिक्त आश्रम के प्रशासन को भंग करके प्रशासक नियुक्त करने तक का उल्लेख था जिस पर आश्रम की अन्तरंग को अत्यधिक आश्चर्य और दुःख हुआ । प्रतिनिधि सभा के उक्त आपत्ति जनक पत्र का उत्तर अन्तरंग सभा दिनांक १५-११-७३ के निश्चय सं० ९ के अनुसार दिया गया और स्पष्ट रूप से दर्शाया गया कि यदि आश्रम को आर्य प्रतिनिधि सभा से अपेक्षित संरक्षण नहीं प्राप्त होता है या कार्य संचालन में वैधानिक कठिनाइयां होती है तो आश्रम को अपने संरक्षण के लिए कानूनी सलाह लेकर अपने को सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट के अन्तर्गत अपने पंजीकरण की व्यवस्था करनी चाहिए ।

आश्रम को अपने उपरोक्त प्रस्ताव दिनांक १५-११-७३ पर भी कोई समाधान आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० से प्राप्त न होने पर, आर्य प्रतिनिधि सभा से कोई सहायता प्राप्त न होने के कारण कार्य संचालन में भारी कठिनाई उपस्थित होने एवं उपरोक्त नियमावली सम्बन्धित ब्यौरे से सिद्ध है कि आर्य प्रतिनिधि सभा वर्ष १९५१,१९५७ और १९६५ की नियमावलियों में अपने अधिकार निरन्तर बढ़ाने की प्रवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए विचार उपरान्त आश्रम की अन्तरंग सभा दि० ३-२-१९७४ के निश्चय संख्या २ जो महात्मा हरप्रकाश जी द्वारा प्रस्तुत हुआ था, में सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि आश्रम के पंजीकरण की यथा सम्भव शीघ्र व्यवस्था की जाय ।

उपरोक्त निश्चय की पूर्ति, नियमों आदि में संशोधन करके कानूनी सलाह लेकर पंजीकरण की कार्यवाही की गई और दिनांक २४-१२-७४ को संख्या २१५६, १९७४ -७५ पर एक्ट संख्या २१,१८६० ई० के अन्तर्गत पंजीकरण सम्पन्न हो गया ।

आर्य प्रतिनिधि सभा से विवाद

पंजीकरण से आर्य प्रतिनिधि सभा बहुत विचलित हो गई और उस समय के प्रधान पं० प्रकाश वीर शास्त्री ने वर्ष १९७५ की आश्रम की साधारण सभा की बैठक को स्थगित कराने का सुझाव रखा जिस को आश्रम ने फेसला

कुल नीति की दृष्टि से स्वीकार कर लिया,हालाकि आश्रम के सदस्यों को भारी निराशा हुई। उसके पश्चात आश्रम की ओर से प्रतिनिधि सभा के अधिकारियों से निरन्तर समाधान का प्रयास किया गया परन्तु प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री धर्मेन्द्र आर्य और प्रधान पं० प्रकाशवीर शास्त्री किसी आश्वासन पर भी समाधान के लिए सहमत नहीं हुए। उनकी एक मात्र हठ रजिस्ट्री को रद्द कराने की थी जिसको आश्रम की अतंरग सभा ने मानने से इन्कार कर दिया। इस मामले में पं० सुखदेव जी ने दृढ़ता से आश्रम का पक्ष लिया और आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा नियुक्त उप-समिति में आश्रम के प्रवक्ता के रूप में उनका कार्य सराहनीय था। परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं निकला और अन्ततः आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० ने दिनांक २० ९-७५ को सिविल जज रुड़की स्थान सहारनपुर के न्यायालय में आश्रम के ऊपर दावा दायर कर दिया जिसका आश्रम ने उचित प्रतिकार किया, अन्ततः आश्रम की ओर से प्रार्थना करने पर न्यायाधीश सिविल जज रूडकी ने वर्ष १९७७, अप्रैल में साधारण सभा की बैठक करने और पंजीकरण की सम्पुष्टि के लिए सभा में विचार करने की आज्ञा प्रदान कर दी। इससे पूर्व आश्रम की नैमित्तिक साधारण सभा की बेंठक अक्टूबर १९७५ को न्यायालय के स्थगन आदेश द्वारा आर्य प्रतिनिधि सभा ने रूकवा दिया गया था। वर्ष १९७६ की साधारण सभा भी इसी कारण से स्थगित रही। न्यायालय की उपरोक्त आज्ञा के अन्तर्गत पंजीकरण पर १८-४-७७ की सभा में गम्भीरता से विचार हुआ और वर्तमान प्रधान महात्मा आर्य भिक्षु जी के विशेष प्रयास से सर्व सम्मति से विधान नियम आदि स्वीकृत होकर पंजीकरण को सम्पुष्ट कर दिया गया।

इसके पश्चात नव-निर्वाचित प्रधान रतनलाल आर्य भिक्षु जी के प्रयास से आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ साधारण सभा के निश्चय सं० ६ दिनांक १८-४-७७ में सामान्य संशोधन करके २८-९-७७ को आपसी फैसले के आधार पर मामला न्यायालय से उठा लिया गया। इस प्रकार बिवाद समाप्त हुआ और निश्चय सं १ २५-१०-७७ द्वारा पंजीकृत नियम लागू हो गये।

अब आश्रम पर छाये काले बादल श्री आर्य भिक्षु जी प्रधान के प्रयास से छट गये है और आश्रम शान्ति पूर्वक नियमों के अन्तर्गत चल रहा है।

इस के वाद में निम्न सदस्यों का विशेष योगदान रहा जिसके लिए आश्रम उनका आभारी है :—
(१) श्री जगदीश मुनि (२) श्री गणेश दास जी (३) पं० महेन्द्र देव शास्त्री (४) श्री कल्याण स्वरूप मंत्री (५) महाशय कृष्ण लाल एडवोकेट सहारनपुर तथा (६) श्री हरिपाल सिंह एडवोकेट रूड़की।

(१०) ब्रह्मचारी आवास

आर्य विरक्त वानप्रस्थ सन्यास आश्रम ज्वालापुर में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कि वेद प्रचार हेतु प्रचारक तैयार किए जांय, यह निश्चय हुआ कि गुरुकुल कांगड़ी के वेद विषय वाले कुछ निर्धन छात्रों को आश्रम में आवास की सुविधा दी जाय जहां वह शान्ति पूर्वक अध्ययन कर सकें और देश में प्रचार कार्य करें। इस निश्चय को वर्ष १९६२ से कार्य रूप दिया गया और सर्वप्रथम पं० रामप्रसाद तत्पश्चात पं० जय देव जी और ब्रह्मचारी केशव को अन्तरंग सभा की स्वीकृति से आश्रम में आवास की अनुमति दी गई। इसी भांति वर्ष १९६३ में तीन १९६४ में सात ब्रह्मचारियों को और वर्ष १९६५ में ९ ब्रह्मचारियों को आश्रम आवास की सुविधा प्रदान की गई। यह क्रम निरन्तर चला आ रहा है और अन्तरंग सभा की पूर्व अनुमति से बीस छात्र तक प्रतिवर्ष रक्खे गये है। इसके अतिरिक्त निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियां भी दी जाती रही हैं। इस समय छात्रवृत्ति के लिए रु० २२,४५० की स्थाई निधि खुली हुई है, जिसका ब्याज

तथा आश्रम का विद्यार्थी सहायता खाता भी छात्रवृत्ति के लिए खुला हुआ है जिसमें आश्रम वासी निरन्तर दान देते रहते हैं।

यहां उल्लेखनीय हैं कि जब गुरुकुल कांगड़ी में आचार्य प्रियव्रत जी के कार्यकाल में झगड़ों के कारण छात्रों की छात्रवृत्तियां बन्द हो जाने से ब्रह्मचारी बहुत संकट में थे। स्व० महात्मा हरप्रकाश जी ने उस समय संकट ग्रस्त छात्रों की सहायता के लिए यह क्रम आरम्भ किया। इस प्रकार इस योजना का सम्पूर्ण श्रेय महात्मा हरप्रकाश जी को जाता है जिनके सौहार्द से यह योजना और छात्रवृत्तियां इस आश्रम में चालू हुई।

(११) साधुनिधि—

इस आश्रम की स्थापना के समय से ही यह निधि योग्यसंन्यासियों के भोजन आदि के व्यय के लिए पूज्य महात्मा नारायण स्वामी महाराज द्वारा स्थापित की हुई चल रही है। सितवम्बर १९३३ तक के प्रथम पंचवर्षीय वृत्तान्त में साधु सेवा निधि को इतना बढ़ाने की आवश्यकता प्रकट की गई जिससे चार पांच सुपात्र साधु आश्रम में रह कर निर्वाह कर सकें। इस समय इस निधि में ६६००) रु० हैं जिससे स्थाई रूप से रहने वाले और आने जाने वाले संन्यासियों का आतिथ्य हो सके। इस निधि में निरन्तर दान आता रहता है।

दिनांक १६ दिसम्बर १९७७ को पूज्यपाद स्वामी ब्रह्ममुनि जी का देहावासन हो गया जो बड़े विद्वान् और तपस्वी थे तथा जिनकी क्षति पूर्ति होना कठिन प्रतीत होता है। स्वामी जी महाराज की इच्छानुसार उनके धन के ५०००) की राशि से एक नई निधि "अशक्त संन्यासी सेवानिधि" के नाम से खोली गई है। इस निधि से प्राप्त ब्याज तथा दिन प्रतिदिन के दान से प्राप्त धन से अशक्त साधुओं की सेवा की जावेगी।

(१२) चिकित्सा-विभाग

यह स्वाभाविक है कि मनुष्य को कभी न कभी चिकित्सा की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि आश्रम का जलवायु अच्छा होने के कारण प्रारम्भ में आश्रम वासियों को चिकित्सा की कम आवश्यकता पड़ती थी परन्तु आवश्यकता पड़ने पर प्रारम्भ में ज्वालापुर सरकारी डिस्पेन्सरी से सहायता मिल जाती थी जिसके डा० बाबू हरिशंकर भाटिया जी बड़े योग्य और अनुभवी चिकित्सक और सर्जन थे और बड़े सर्वप्रिय थे। आश्रम वासियों की सेवा के लिए हर समय तत्पर रहते थे। संन्यासियों और गरीब वानप्रस्थियों की चिकित्सा बिना फीस लिए ही आश्रम में आकर करते थे। उधर कनखल में श्री प० योगेश्वरदत्त वैद्यराज और श्री पं० रामचन्द्र वैद्यराज से आयुर्वेदीय चिकित्सा कराने में बड़ी सहायता मिलती थी। इसके अतिरिक्त जब कभी किसी रोगी साधु को श्री स्वामी रामकृष्ण सेवा मिशन कनखल के अस्पताल में भर्ती कराया तो ज्ञात हुआ कि वहां आम रोगियों को और विशेषकर साधुओं को बड़ा आराम मिलता था। वहां जो सेवा भाव था शायद ही अनन्तर मिलता हो। आश्रम के सन्यासी स्वामी ईश्वरानन्द जी अनुभवी यूनानी चिकित्सक थे जो रोगियों की बिना फीस के मुफ्त चिकित्सा करते थे। उनका यह उपकार सराहनीय था। परन्तु यह प्रबन्ध प्रारम्भ में तो ठीक था किन्तु जैसे-जैसे आश्रम बढ़ता गया वैसे वैसे आश्रम में अपनी चिकित्सा की आवश्यकता अनुभव होती गई।

(१) राधिकादेवी एलोपैथिक चिकित्सालय, वर्ष १९५३ में विधिवत् एलोपैथिक चिकित्सालय आश्रम में स्थापित हुआ और प्रथम बजट में १२-७-५३ को ३००) स्वीकार हुए। डा० जगन्नाथ जिन्होंने बाद में अपनी कुटी संख्या १३७ व १३७/१ निर्माण कराई वहीं इस चिकित्सालय के प्रथम चिकित्सक थे। वह वर्ष १९५३ से पूर्व ही

आश्रम की एक छोटी कुटिया में एलोपैथिक चिकित्सा से आश्रम वासियों की निःशुल्क सेवा कर रहे थे। वर्ष १९५२-५३ में विधिवत आश्रम की ओर से चिकित्सालय स्थापित हो जाने पर उसी छोटी कुटी में चिकित्सालय चलता रहा।

उनके पश्चात् डा० हरप्रसाद जी ने चिकित्सक का स्थान ग्रहण किया और वे बड़ी कुशलता से ४-५-६८ तक वेतनिक सेवा करते रहे। इस समय चिकित्सालय आश्रम के मुख्य द्वार के निकट कुटी सं० ४१ में पहुंच गया था जहां पर आश्रम से बाहर आस पास के ग्रामों के रोगी भी बड़ी संख्या में लाभान्वित होने लगे। वर्ष सम्वत् २०२५ में ५-११-६७ के निश्चय अनुसार श्री बृजविहारीलाल जी (निर्माता कुटी संख्या ६८ क) ने इस चिकित्सालय को १०००) दान दिया और भविष्य में भी निरन्तर एक हजार रुपये वार्षिक दान देते रहने का बचन दिया। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी यह एक हजार रुपये वार्षिक का दान उनकी सुपुत्री श्रीमती आशा तथा जामाता श्री अमर कुमार जी वर्तमान फैजाबाद निवासी से निरन्तर प्राप्त हो रहा है। इसी उपलक्ष में इस औषधालय का नाम स्व० श्री वृजविहारी जी की पत्नी के नाम पर राधिकादेवी एलोपैथिक चिकित्सालय नाम रक्खा गया।

इसके अतिरिक्त श्री गंगाविष्णु गुप्ता और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सावित्री देवी ने ३५००) इस चिकित्सालय के निमित दान दिया तथा श्रीमती कौशल्या देवी सूद ने भी १०००) का दान डिस्पेन्सरी के निमित्त दिया।

इस चिकित्सालय का वर्तमान नया भवन वर्ष १९७० में बन कर तैयार हो गया जिसके चार कमरे श्री धनीराम जी सूद ने निर्माण कराये थे। श्रीधनीराम जी सूद ने वर्तमान कुटी संख्या १३ शाखा नं० दो भी चिकित्सक के लिए निर्माण कराने को कहा था परन्तु बाद में किसी कारणवश निर्माण का पूरा व्यय प्राप्त न होने के कारण यह कुटी श्री किशनचन्द कालड़ा को दे दी गई थी।

इस प्रकार यह राधिका देवी औषधालय वर्ष १९७० से इस नव-निर्मित भवन में चल रहा है। इसकी प्रयोगशाला के लिए श्रीमती विद्यावती धर्मपत्नी कविराज हरनामदास बी०ए० ने भी २०००) का दान दिया।

उपरोक्त दानियों के अतिरिक्त भी अनेकानेक दानियों ने इस चिकित्सालय के लिए छोटे बड़े दान दिए हैं और निरन्तर देते रहते हैं जिनकी सूची प्रतिवर्ष आश्रम की वार्षिक रिपोर्ट में छापी जाती है। यही कारण है कि इस चिकित्सालय का वार्षिक बजट वर्ष १९५३ से १९५९ तक २००), २५०) और ३००) से बढ़कर १९६० से १९६३ तक १०००) और १२००) १९६४ में २०००) और १९६५ से १९७१ तक ३०००), ४०००) और ४५००) रुपये सन् १९७३ में ६०००) सन् १९७४ में १०,०००) और वर्ष १९७५ से अब तक १५,०००) तक वार्षिक बजट पहुंच गया है। किसी किसी वर्ष में तो वार्षिक वास्तविक व्यय बजट से बढ़ जाता है।

ऊपर वर्णित चिकित्सक के पश्चात् १-११-६८ से १७-२-७२ तक और ३१-३-७३ से १-१०-७३ तक डा० रामगोपाल जी ने जो एक योग्य और अनुभवी चिकित्सक थे, बड़ी कुशलता से कार्य किया और उनके कार्य काल में इस चिकित्सालय ने प्रत्येक दशा में विशेष उन्नति की है। इसी काल में वर्तमान चिकित्सक डा० कृष्ण स्वरूप शर्मा भी डा० रामगोपाल जी की सहायता करते रहे। १७-२-७२ से ३१-३-७३ तक डा० चेलासिंह ने कार्य किया। वह भी अनुभवी डाक्टर थे।

उपरोक्त सभी चिकित्सक अवैतनिक सेवा करते रहे और अब १-१०-७३ से डा० कृष्ण स्वरूप शर्मा (वैतनिक) कार्यरत हैं। ये भी बहुत योग्य चिकित्सक हैं। इनकी योग्यता के कारण वर्तमान में प्रतिदिन लगभग १५० रोगी निःशुल्क चिकित्सा से लाभान्वित हैं और ३५००) वार्षिक मात्र दवाओं पर व्यय होता है।

(२) सरस्वतीदेवी होम्योपैथिक चिकित्सालय-- दिनांक ३-८-६६ को आश्रम की अन्तरंग सभा ने निश्चय संख्या ८ द्वारा ६००) वार्षिक दान के आधार पर एक निःशुल्क होम्योपैथिक चिकित्सालय खोलने का निश्चय किया। उसी समय से यह औषधालय आश्रम के मुख्य द्वार के पास कुटी सं० ४२, मुख्य आश्रम में चल रहा है। इस के लिए श्रीमती सरस्वती देवी के सुपुत्र श्री प्रकाशनाथ व कैलाशनाथ जी द्वारा निरन्तर ६००) रुपये वार्षिक दान प्राप्त हो रहा है। इसका वार्षिक बजट भी वर्ष १९६६ से १९७२ तक ९००) वार्षिक और उसके पश्चात १९७६ तक १०००) वार्षिक बजट स्वीकार होता रहा है।

इस औषधालय का शुभारम्भ डा० हरदयाल जी ने किया। उनके पश्चात डा० विश्वेश्वरनाथ सेठ, डाक्टर जगतराम आर्य और सर्व दयाल कश्यप जी निरन्तर निःशुल्क सेवा करते रहेहैं 'और इनकी सहायता श्री किशनचन्द कालड़ा करते रहे हैं'। ये सभी अवैतनिक सेवा करते आ रहे हैं।

(३) महात्मा नारायण स्वामी आयुर्वैदिक चिकित्सालय- भारतीय चिकित्सा की पद्धति अपनाने का निश्चय सर्व प्रथम वर्ष १९७३ की अन्तरंग सभा दिनांक २२-७-७३ में लिया गया परन्तु कोई उपयुक्त चिकित्सक उपलब्ध न होने के कारण २५-११-७६ तक कार्य रूप नहीं दिया जा सका। यह सौभाग्य की बात है कि यह निश्चय श्री यदुवंश सहाय जी के प्रस्ताव पर लिया गया था और इसका उद्घाटन भी उन्हीं के प्रधान काल में ही दिनांक ६-२७७ को श्री कविराज योगेन्द्र पाल जी के करकमलों द्वारा हुआ। उसी समय से यह निःशुल्क चिकित्सालय भी सर्वश्री अमृतलाल जी तथा कृष्ण मुनि जी योग्य, कुशल एवं अनुभवी अवैतनिक वैद्यों द्वारा संचालित हो रहा है। इसका वार्षिक बजट भी वर्ष १९७७ में ५०००) रहा इस औषधालय से लगभग २५ रोगी प्रतिदिन लाभान्वित होते हैं। रोगियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है।

इस प्रकार इस आर्य विरक्त वानप्रस्थ सन्यास आश्रम ज्वालापुर में तीन चिकित्सालय निःशुल्क और बिना फीस लिए चल रहें हैं।

(१३) आश्रम के लिए शहीद होने वाले महानुभाव

हमें आश्रम के लिए शहीद होने वाले महानुभावों को भी नहीं भूलना चाहिए जो निम्नलिखित हैं —

(१) सर्व प्रथम श्री प्यारेलाल गर्ग निरीक्षक की नृशंस हत्या सन् १९५५ ई० में हुई।

(२) माता विष्णु प्यारी जी कोषाध्यक्ष का जन्म वैशाख कृष्णपक्ष एकादशी सम्वत १९५७ अर्थात् सन् १९०० ई० को कालपी जनपद जालौन उत्तर-प्रदेश में हुआ था। वह संस्कृत एवं वेदों की विद्वान् थी उन्होंने कई शिक्षा संस्थाओं में शिक्षण कार्य किया। कन्या गुरुकुल सासनी (हाथरस) और नार्मल ट्रेनिंग कालेज मेरठ में शिक्षण के अतिरिक्त होस्टिल इंचार्ज का कार्य भी बड़ी दक्षता से किया। अन्तिम समय राजकीय सेवा से अवकाश ग्रहण के पश्चात उन्होंने इस आश्रम में प्रवेश लिया और शेष जीवन यही व्यतीत करने का निश्चय किया। वानप्रस्थाश्रम की विधिवत दीक्षा ग्रहण की।

आश्रम के शिक्षा विभाग में कार्य किया, यज्ञ की ब्रह्मा और वेदपाठी का भी कार्य किया। उन्होंने सन् १९६६ से १९६७ तक और १९६९ से १९७१ तक आश्रम में कोषाध्यक्ष का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। शाखा नं० २ के निर्माण का सम्पूर्ण काम उनके ही कार्यकाल में हुआ। निर्माण, निर्माण सामग्री स्टौक, धन लेने देने कैश बुक, खाते और रसीद भुगतान पर्चियों की पूर्ति वह स्वयं अकेली करती थी और बहुधा रात्रि में १२ - १ बजे तक कार्य करती थी। क्योंकि उस समय न कोई लिपिक कोष विभागमें था और न कोई सहायक। और अन्त में कैश ही उनके बलिदान का कारण बना।

सन् १६७१ अगस्त ८-६ की रात्रि में आश्रम कोष में काफी नकद राशि और आभूषण आदि होने के कारण उस समय के आश्रम के लिपिक मनोजकुमार और उसके साथियों द्वारा हत्या कर दी गई, जिसका आश्रम को गहरा आघात पहुंचा।

(३) श्री बृजबिहारीलाल जी रूदौली जनपद बाराबंकी के निवासी थे और वहीं पर उनका कपड़े का व्यापार था। आपका जन्म सन् १६१ में हुआ। आपके पिता का नाम लाला रामचन्द्रदास था। लाखों रुपये की सम्पत्ति और व्यापार को त्याग कर सन् १६६४ ई. में इस आश्रम में आ गये थे। सन् १६६६ ई. में वानप्रस्थ की दीक्षा ग्रहण की और श्रावण सम्वत् २०२२ वि० अर्थात् सन् १६६६ ई० में अपने तथा अपनी पत्नी के नाम से कुटी सं० ६६क का निर्माण कराया। उन्होंने उपप्रधान और उपमन्त्री के पदों पर निरन्तर कई वर्षों तक कार्य किया।

स्व० श्री बृजबिहारीलाल जी

उन्होंने सब से महत्त्वपूर्ण कार्य जो बड़ी मेहनत और लगन से किया वह यह कि कार्यालय सम्बन्धी कोई रिकार्ड इस आश्रम में नहीं था वह उन्होंने किया। जो भी रिकार्ड आज हमें उपलब्ध है वह उन्हीं की देन है।

अन्त में आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश से नियमावली सम्बन्धी विवाद हो जाने से तथा सभा की ओर से आश्रम की उपेक्षा को ध्यान में रखते हुए महात्मा हरप्रकाश जी प्रधान की सलाह से उन्होंने ही आश्रम का पंजीकरण कराने की योजना बनाई तथा सभी नियम, उपनियम, विधान आदि बनायें। कविराज हरनामदास जी उस समय प्रधान थे और पं० शिवदयालु जी के परामर्श से इन्हें अन्तिम रूप दिया और आश्रम का स्वयं सत्ता संस्था के रूप में पंजीकरण कराया। ये भी आश्रम को उनकी ही देन है, जिससे आश्रम का गौरव बढ़ा और महात्मा नारायण स्वामी जी का अधूरा कार्य सम्पन्न हुआ।

कविराज हरनामदास जी का विचार पजीकरण के पश्चात् बदल जाने और उनके प्रतिनिधि सभा से मिल जाने के कारण अन्तरंग सभा दिनांक १६–३–७५ में एक वक्तव्य देते हुए आश्रम के सत्संग भवन में ही हृदय गति रुक जाने के कारण उनका देहावसान हो गया। आश्रम इस असहनीय आघात को कभी नहीं भूल सकेगा। श्री बृजबिहारी जी की सेवायें सराहनीय रही हैं, जो चिरस्मरणीय रहेंगी।

(१४) पुस्तकालय

श्री वेदमित्र जिज्ञासु जिनका आश्रम के निर्माण में विशेष योगदान रहा। उन्होंने कई कुटियें धर्मार्थ बनाईं। सन् १६३० में अपनी पुत्री कृष्णाकुमारी की स्मृति में उन्होंने वैदिक पुस्तकालय का भी निर्माण कराया जिसकी
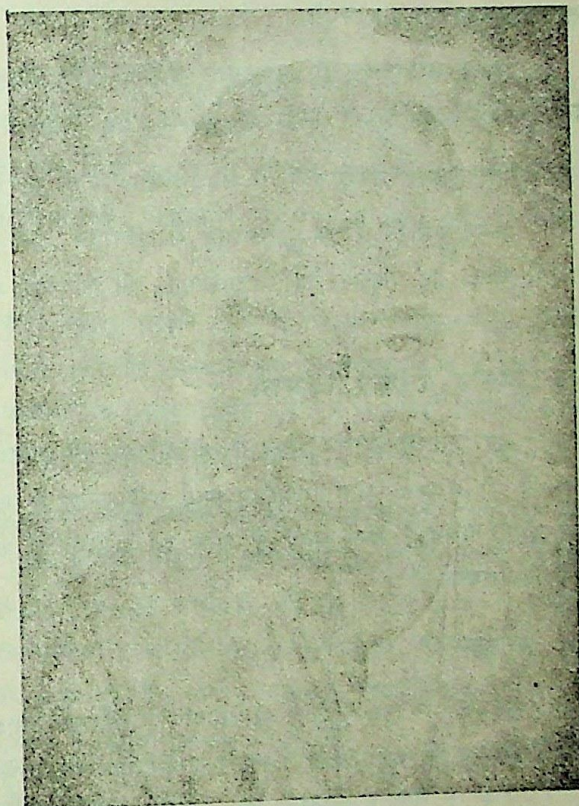
आधारशिला पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी ने दिनांक १३-३-३० को रखी थी । इस पुस्तकालय में इस समय संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी भाषाओं की लगभग ६१०० पुस्तकें हैं जिनमें वेद, उपनिषद्, दर्शन, मनोविज्ञान, गीता, रामायण महाभारत, महापुरुषों के जीवन-चरित्र आदि हैं । इन पुस्तकों से आश्रम वासियों के अतिरिक्त बाहर के विद्वान् और गुरुकुल के छात्र भी लाभान्वित होते हैं ।

श्रीमती रमादेवी धर्मपत्नि स्व० श्री लक्ष्मणदेव जी ने अपने पति की स्मृति में उनकी पुस्तकें आलमारी सहित पुस्तकालय को दान दे दीं ।

इसके अतिरिक्त श्री चाननलाल आहूजा और सर्वश्री सुधाकर चौधरी एवं दिवाकर जी सुपुत्र स्व० पंडित सुखदेव जी विद्यावाचस्पति ने क्रमशः १००० व ४०० पुस्तकें इस पुस्तकालय को भेंट की हैं ।

उत्तर प्रदेश सरकार से भी समय-समय पर पुस्तकें प्राप्त होती रही हैं ।

कृष्णाकुमारी वैदिक पुस्तकालय में प्रतिदिन तीन बजे से चार या साढ़े चार बजे तक सायंकाल के समय सत्संग भी होता है, जिसमें वेदों, उपनिषदों की कथाएं, भजन, कीर्तन और महात्माओं तथा विद्वानों के उपदेश होते हैं ।

(१५) पुस्तक विक्रय विभाग

उपरोक्त पुस्तकालय भवन में ही आश्रम की ओर से वैदिक साहित्य सर्वसाधारण को उपलब्ध कराने की व्यवस्था है । आश्रम स्वयं प्रकाशन कार्य नहीं करता है, प्रत्युत बाहर से पुस्तकें मंगाकर बिक्री करता है । यह व्यवस्था काफी समय से चली आती है और इस योजना से आस-पास के ग्रामवासियों को बड़ा लाभ पहुँचा है ग्रामों में काफी आर्यसमाजें हैं ।

(१६) वेद-प्रचार

इस क्षेत्र में छोटे-छोटे ट्रैक्ट छपवा कर निरन्तर निःशुल्क बांटे जाते है । आश्रम के जो उपदेशक प्रचारार्थ बाहर जाते हैं, वह भी अपने साथ ट्रैक्ट ले जाकर वितरण करते हैं ।

(१७) वाचनालय

आश्रम के वाचनालय में प्रतिदिन दो हिन्दी दैनिक पत्र 'हिन्दुस्तान' और 'वीर अर्जुन' और अंग्रेजी के 'इण्डियन एक्स प्रैस' के अतिरिक्त 'आर्यमित्र' 'सार्वदेशिक' 'हरिद्वार ऐक्स प्रैस' 'शक्ति-सन्देश' तीनों 'स्थानीय साप्ताहिक 'गायत्री-सन्देश' 'आर्य-जगत्' 'राजधर्म' साप्ताहिक पत्रिकायें और 'राम-सन्देश' 'यज्ञ योग ज्योति' वेदवाणी और यौगिक प्रवचन, मासिक पत्रिकायें आती हैं , यह वाचनालय भी सर्व साधारण के लिए सुलभ हैं ।

(१८) संस्कृत एवं धर्मशिक्षा सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण

आश्रमवासी बहुत समय से संस्कृत शिक्षा के अभाव को अनुभव कर रहे थे । इसी अभाव के कारण वे वेदों उपनिषदों तथा अन्य आर्षग्रन्थों के भलीभांति स्वाध्याय से वंचित रहते थे । इस अभाव की पूर्ति के लिये २७ मई १९६० ई० को श्री देवमुनि जी ने महात्मा हरप्रकाश जी के परामर्श से संस्कृत, हिन्दी एवं धर्मशिक्षा आश्रम में प्रारम्भ की । इस शिक्षणालय में आश्रमवासी निःशुल्क अध्ययन और अध्यापन कार्य करते हैं । सर्वप्रथम पं० रामप्रसाद जी अध्यापक नियुक्त हुये थे । तदुपरान्त पं० जयदेव जी, माता विष्णुप्यारी, माता सीतादेवी आनन्द बहुत समय तक

अध्यापन का कार्य करते रहे। प्रोफेसर सूर्यदेव जी ने भी इस योजना में सहयोग दिया। श्री देवमुनि जी ने स्वयं सञ्चालन के साथ साथ अध्यापन का कार्य भी किया। इस प्रकार संस्कृत एवं धर्मशिक्षा की तीन वर्ष की योजना सुचारु रूप से चलने लगी।

पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड तथा पं० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति अपने बहुमूल्य परामर्श द्वारा शिक्षा एवं वार्षिक परीक्षाओं में सहयोग प्रदान करते रहे।

परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाणपत्र एव पुरस्कार भी अक्टूबर १९६० से ही प्रदान किये जाते रहे जिसके लिये आश्रमवासी उदारता पूर्वक दान देते हैं। सर्वप्रथम सर्व श्री रामेश्वर प्रसाद, कालीचरण और दलपतसिंह (स्वामी चिदानन्द) तृतीय कक्षा में उत्तीर्ण हुये और इन्होंने आगे कक्षा चलाने की जोरदार मांग की अतः चतुर्थ और पंचम कक्षा भी खोल दी गई और पुस्तकें वही रक्खी गई जो राजकीय विद्यालयों में नवम व दशम कक्षाओं में विशेष विषयों के लिए निश्चित हैं।

धर्मशिक्षा में प्रथम से तृतीय कक्षा तक महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा रचित 'कर्तव्य दर्पण', सत्यार्थ-प्रकाश के तीन समुल्लास तथा चतुर्थ और पंचम कक्षा के लिये ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका व संस्कारविधि निश्चित किए गये। सत्यार्थप्रकाश परीक्षाओं की तैयारी करने में प्रो० चक्खनलाल (चैतन्य मुनि) ने १०, ११ वर्ष तक पूर्ण सहयोग प्रदान किया और वानप्रस्थ की दीक्षा ग्रहण करते समय वेदमन्दिर निधि में चार हजार रुपये का दान भी दिया।

आर्य युवक परिषद् दिल्ली द्वारा संचालित सत्यार्थप्रकाश की परीक्षाओं को लाभदायक एवं आवश्यक समझ कर आश्रम ने उनसे अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। इसमें आश्रमवासियों के अतिरिक्त निकटवर्ती स्थानों की शिक्षा संस्थाओं के विद्यार्थियों को भी सम्मिलित किया गया। संस्कृत शिक्षा एवं धर्मशिक्षा की इस योजना से ५०० से अधिक स्त्री-पुरुषों ने शिक्षा ग्रहण करके लाभ उठाया। आर्य युवक परिषद् द्वारा संचालित सत्यार्थप्रकाश परीक्षाओं में शिक्षा संस्थाओं द्वारा भेजे गये १२०० से अधिक विद्यार्थी लाभान्वित हो चुके हैं। वर्ष १९७२ में सत्यार्थप्रकाश परीक्षाओं में इस केन्द्र से अधिक विद्यार्थी सम्मिलित होने के कारण परिषद् से विशेष पुरस्कार प्राप्त हुआ।

इस विभाग ने वर्ष १९७५-७६ में विशेष प्रगति की। चैत्र प्रतिपदा और श्रावणी उपकर्म में आश्रमवासियों ने विशेष रुचि ली। सत्यार्थप्रकाश परीक्षा के भी इस आश्रम की ओर से ९ केन्द्र थे। वर्ष १९७७ में ग्यारह केन्द्र स्थापित हो गये जिनमें ८७१ विद्यार्थी इन परीक्षाओं में सम्मिलित हुये।

संस्कृत एवं धर्मशिक्षा की सर्वोच्च उपाधि सिद्धान्त शास्त्री है जिसमें सत्यार्थ शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही भाग लिया जा सकता है। पांच व्यक्तियों ने सिद्धान्त शास्त्री की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार आश्रम वासियों ने अपनी योग्यता बढ़ाई। इनमें से स्वामी चिदानन्द जी एवं माता गायत्रीदेवी यति ने संन्यास ग्रहण करके प्रचार कार्य आरम्भ किया।

गत अठारह वर्षों में इस कार्य के लिए २५ सहस्त्र रुपया दान रूप में प्राप्त हुआ। इस धन का ८० प्रतिशत संस्कृत एवं धर्मशिक्षा तथा सत्यार्थ प्रकाश परीक्षाओं में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को पुस्तक रूप में पुरस्कार प्रदान करने में व्यय हुआ, शेष जिन ब्रह्मचारियों ने अध्यापन कार्य किया उनको छात्रवृत्ति अथवा भेंट में दिया गया।

इस प्रकार आश्रम का यह विभाग भिन्न-भिन्न रीति से जैसे—कभी वेदमन्त्र पाठ प्रतियोगिता आदि संचालित करके आश्रमवासियों की योग्यता बढ़ाने के लिए कार्य-क्रम चलाता रहता है और पुरस्कार भी प्रदान करता है।

सत्यार्थप्रकाश शास्त्री परीक्षा में आश्रम के उपदेशक विद्यालय के तीन परीक्षार्थी स्वामी सत्यानन्द जी सर्व-प्रथम तथा स्वामी विजयानन्द जी व देवानन्द जी ने भारत में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इनको आर्य युवक परिषद् की ओर से ३०) और २०) के पुरस्कार प्राप्त हुये। इन परीक्षाओं में भारत भर में इस आश्रम ने सबसे अधिक परीक्षार्थी परीक्षा में सम्मिलित कराये। प्रथम स्थान प्राप्त करने पर ५०) का पारितोषिक प्राप्त हुआ है।

(१९) उपदेशक विद्यालय

आर्य समाज के क्षेत्र में पुरोहितों की कमी बहुत दिनों से अनुभव की जा रही है। गांव-गाँव में नगर २ में वैदिक रीति से संस्कार कराने वाले और साप्ताहिक सत्संगों में वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या करने वाले पुरोहितों के न मिलने से आर्यसमाज के प्रचार में वांछित प्रगति नहीं हो पाती हैं। विगत सौ बर्षों में आर्यसमाज ने कई उपदेशक विद्यालय खोले परन्तु विशेष सफलता नहीं मिली।

श्री श्रीदेवमुनि जी वानप्रस्थ, जो जीवनभर आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे हैं उन्होंने आश्रम में भी इस दिशा में कुछ कार्य करने की योजना बनाई। सन् १९७३ से सन् १९७५ तक तीन वर्ष यह योजना आश्रम की प्रबन्धकर्त्री सभा के विचाराधीन रही। मई १९७६ में ९ विद्यार्थियों से "उपदेशक विद्यालय" आरम्भ कर दिया गया। किन्तु वर्ष के अन्त में केवल चार विद्यार्थी ही "सिद्धान्त शास्त्री" की उपाधि प्राप्त कर सके।

पुनः जून १९७७ में ६ विद्यार्थियों से पठन पाठन आरम्भ कर दिया गया। वर्ष के अन्त तक सम्भव है एक या दो विद्यार्थी ही "शिक्षा शास्त्री" की उपाधि प्राप्त कर सके। सफलता की बहुत आशा न होते हुए भी आश्रम की ओर से पूर्ण प्रयास किया जा रहा है।

(२०) आश्रम का निर्माण विभाग

मुख्य आश्रम एवं शाखा नं० १ निर्माण का ब्योरा कि किस अभियन्ता द्वारा निर्माण हुआ रिकार्ड में उपलब्ध नहीं है। तत्पश्चात् सर्वश्री लक्ष्मणदेव, प्यारेलाल महेन्द्र, मुन्नीलाल बढेरा और रामचन्द्र अरोड़ा ने अभियन्ता का कार्य किया है। इनमें श्री रामचन्द्र अरोड़ा का कार्यकाल सबसे अधिक और महत्व पूर्ण है। शाखा नं० २ का सम्पूर्ण निर्माण श्री रामचन्द्र अरोड़ा ने कराया है। साथ ही साथ मरम्मत का कार्य भी कराते थे और निर्माण का सुन्दर कार्य और रिकार्ड भी तैयार किया। उनकी आयु लगभग ८४-८५ वर्ष की थी। इस आयु में इतना कार्य बहुत ही सराहनीय है। अरोड़ा साहब के बाद अब कोई भी अभियन्ता आश्रम में नहीं रहा, परन्तु आश्रम सदस्य लाला गणेशदास जी ने इस अभाव की पूर्ति कर दी है उन्होंने महात्मा हरप्रकाश संस्कृत विद्यालय के नव-निर्माण और महात्मा नारायण स्वामी साधना कुटीर के जीर्ण उद्धार का कार्य बहुत उत्तम और बड़ी कुशलता से कराया है। उनका कार्य बहुत सराहनीय है।

(२१) सार्वजनिक हित के निर्माण कार्य

घाट—गंगा नहर के दायें किनारे पर बहुत सुन्दर दो घाट बने हैं एक "राज कौशल्या महिला घाट" श्रीमती राज कौशल्या धर्म पत्नी ला० रोशन लाल जी ने ८०००) रु० की लागत से १ पौष सम्वत् २०२० तदनुसार १६ दिसम्बर १९६३ को बनवाया।

दूसरा 'पुरुष घाट' लाला मोती राम जी नई मण्डी मुजफ्फरनगर निवासी ने अपनी स्वर्गीय माता जोत्रीदेवी जी धर्म पत्नी ला० कश्मीरीलाल जी की पुण्यस्मृति में सम्वत् २०२५ में बनवाया।

(२) फव्वारे—आश्रम में निम्न ब्यौरे के नौ फव्वारे धर्मार्थ बने हैं जिनसे आश्रम की शोभा और सुन्दरता बढ़ी है।

(क) मुख्य आश्रम पुरुष वार्ड में यज्ञशाला के सामने पक्की सड़क की दूसरी ओर श्रीमती सुशीलावती पुत्रबधू महात्मा हरप्रकाश जी ने सम्वत् २०११ वि० में बनवाया।

(ख) दूसरा फव्वारा पुरुष वार्ड में कुटी सं० १०५ एवं १०६ के बीच महराबदार दरवाजे के सामने श्री माघोराम जी की मृत्यु के उपरान्त प्राप्त धन से बनवाया गया।

(ग) तीसरा सपत्नीक वार्ड में सड़क से दाई ओर पार्क में श्रीमती दुर्गादेवी मल्ला नकोदर निवासी तथा श्रीमती शुभकरी चोपड़ा ने सम्वत् २०१६ में बनवाया।

(ग) चौथा सपत्नीक वार्ड में ही सड़क की दूसरी ओर माता बलवन्तकौर माता धनदेवी साहनी तथा माता लाजवन्ती गुजराल ने बनवाया।

(ङ) शाखा न० १ में एक फव्वारा डा० राम प्यारी ने बनवाया।

(य) शाखा नं० २ में—एक फव्वारा सपत्नीक वार्ड में मुख्य द्वार से घुसते ही बाई ओर श्री बृजमोहन स्याल तथा ले० कर्नल नरेन्द्रनाथ ने अपनी माता पूर्णदेवी की पुण्यस्मृति में बनवाया।

(र) दूसरा फव्वारा इस सपत्नीक वार्ड में सड़क से दाई ओर फव्वारा (य) के सामने गुप्त दान से बना है।

(ल) तीसरा फव्वारा पुरुष वार्ड में बाई ओर श्री सुरेन्द्रनाथ सौन्धी जालन्धर निवासी ने अपने पिता और माता की पुण्य स्मृति में अप्रैल १९७२ में निर्माण कराया।

(व) चौथा महिला कक्ष में श्री चाननलाल आहूजा फाजिलका निवासी ने ११५०) रु० के दान से दिसम्बर १९७१ में निर्माण कराया।

(३) स्तूप—:आश्रम के मुख्य कक्ष में मुख्य द्वार से घुसते ही दो स्तूप दृष्टिगोचर होते हैं। एक दाईं ओर "दयानन्द स्तूप" आश्रम के १७५०) तथा माता गनेशीबाई के ५१४) प्रदत्त दान से सं० २०१० वि० में बना है।

दूसरा बाई ओर "महात्मा नारायण स्वामी हरप्रकाश स्तूप" ऋषि बोधोत्सव फाल्गुण १४ सं० २०१२ तदनुसार ता० २८ फरवरी १९७६ को श्री ज्ञानमित्र सुपुत्र महात्मा हरप्रकाश जी के ६०००) के दान से बना जिसकी आधारशिला महात्मा आनन्द स्वामी जी द्वारा रक्खी गई।

(२२) आश्रम के पदाधिकारी

विगत ५० वर्षों में जो महानुभाव -- प्रधान, उपप्रधान, मन्त्री, उपमन्त्री, कोषाध्यक्ष एवं पुस्तकाध्यक्ष रहे हैं उन का विवरण परिशिष्ट ३ में देखिये।

——०——

आश्रम के ५० वर्षीय इतिहास

के

व्यक्तित्व

(१) पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज—आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध संन्यासी, अनेक ग्रन्थों के प्रणेता, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के यशस्वी प्रधान, हैदराबाद सत्याग्रह के अंतिम डिक्टेटर, कुशल-प्रबन्धक तथा प्रशासक, विख्यात-वक्ता, महान् चिन्तक, जन्मजात नेता हमारे चरित्र नायक अर्थात् आश्रम के संस्थापक ने अपनी दूरदर्शिता से आर्य जगत् को एक चेतना दी।

(२) श्री वेदमित्र जिज्ञासु (तीतरों निवासी)—

आपने अपने आश्रम में सर्वाधिक निर्माण कार्य धर्मार्थ किया तथा अन्यों को प्रेरणा देकर कराया। आपने समय-समय पर धन से भी आश्रम की सहायता की। पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी के आप परम सहयोगी थे और उन्होंने जीवन पर्यन्त उनके साथ कन्धे से कन्धा लगा कर आश्रम के कार्य में सहयोग दिया।
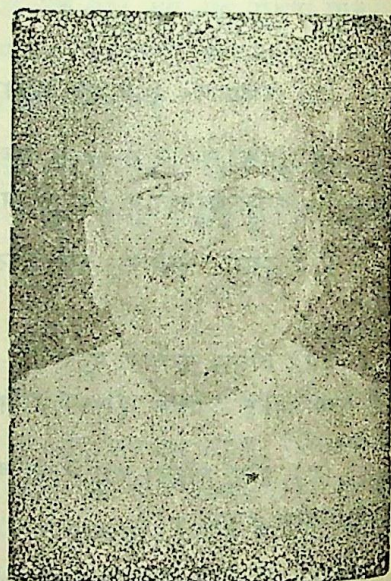
(३) श्री सुन्दरलाल जी (स्वामी शुक्लानन्द जी)—पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के अनन्य सहयोगी के रूप में आपका नाम सदा आज के इतिहास में अमर रहेगा। भोजन भण्डार का सुन्दर तथा स्वच्छ भवन आपकी ही कृति है जिससे आज भी आश्रम वासी भाई-बहिन सुख पूर्वक दोनों समय भोजन पाते हैं।

(४) स्वामी वेदानन्द जी महाराज—आर्य जगत् के महान् लेखक तथा व्याख्याता स्वामी जी महाराज भी हमारे आश्रम के लगभग ३ वर्षों तक प्रधान रहे। पूज्यपाद नारायण स्वामी जी महाराज के पश्चात् आपने ही आश्रम का प्रबन्ध अपने हाथों में लिया था।
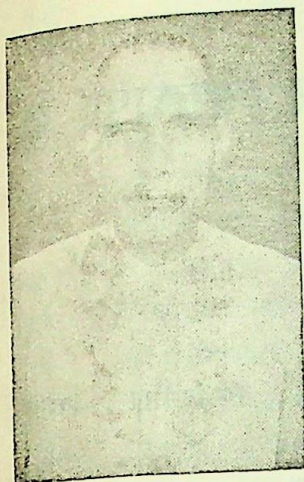
(५) स्वामी विवेकानन्द जी--

आप आश्रम के प्रथम साधक हैं सरलस्वभाव के भजन प्रेमी साधु हैं। आपने सत्संग सम्बन्धी ५ लघुपुस्तिकायें भी लिखी हैं। आपने अपने प्रभाव से श्रीमती राजकौशल्या द्वारा ३ कुटिया तथा श्रीमती अमृत बाई द्वारा २ कुटियों का निर्माण कराया। आपका जीवन अनुकरणीय है।

(६) श्री ज्योति प्रसाद जी--

आप स्वामी विवेकानन्द के पश्चात् सबसे पुराने साधक हैं। यह महात्मा नारायण स्वामी जी के सामने तथा महात्मा हरप्रकाश जी से पहले आश्रम में आये थे। बहुत समय तक आप मंत्री, उपमंत्री, तथा कोषाध्यक्ष पदों पर सेवा करते रहे। आपकी सेवायें कभी भी भुलाई नहीं जा सकती।
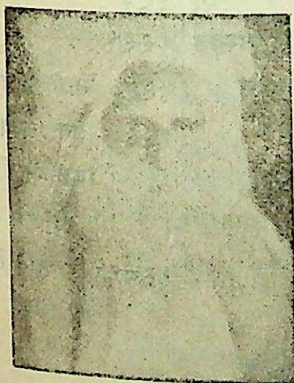
(७) महात्मा हरप्रकाश जी--

आश्रम के वर्तमान विस्तार का सम्पूर्ण श्रेय आपको ही है। आपने अपनी सूझबूझ से आश्रम को एक अभाव रहित संस्था के रूप में परिवर्तित कर दिया। वर्षों प्रधान रहे और जीवन पर्यन्त आश्रम के हित में अहर्निश कार्यरत थे। मितव्ययता, सादगी तथा सेवा आपके गुण हैं।

महात्मा आर्य, भिक्षु, प्रधान

परिशिष्ट (१)

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ-संन्यास) आश्रम ज्वालापुर के कुटियों का विवरण

मुख्य आश्रम (१ क)

क्रम संख्या	कुटी संख्या	नाम कुटी निर्माता	किस के अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
१	१	श्री वेदमित्र जिज्ञासु तीतरो	आश्रम के अधिकार में	१३-३-१९३०	
२	१ (क)	स्वामी सत्यानन्द जी, सुमित्रादेवी श्री यज्ञप्रिय आर्य बयाना निवासी	,,	सम्वत २०१५	
३	२	श्री आनन्द जी गर्ग दिल्ली	,,	सन् १९३०	
४	३/१	श्री प्यारेलाल महेन्द्र	,,	सम्वत २०१६	
५	४	श्री सरदारीलाल अग्रवाल सुखदासपुर पटियाला	,,	सम्वत २०२०	
६	४/१	श्रीमती सरस्वतीदेवी व श्री कैलाशनाथ जी	,,	,, २०२६	
७	४/२	श्रीमती भगवतीदेवी	,,	,, ,,	
८	५	श्री वेदमित्र जी तीतरो	,,	,, ,,	
९	५/१	श्रीमती सुशीलादेवी खोसला	,,		
१०	५/२	पुत्रवधु महात्मा हरप्रकाश	,,	,, २०२५	
११	५ क	श्रीमती राजदुलारी ढींगरा अमृतसर	,,	,, २०१३	
१२	६	श्री प्रकाशचन्द्र सुपुत्र उलफतराय	,,	सन् १९३४	
१३	७	श्री गंगासहाय जी वानप्रस्थ	,,	सम्वत १९९१	
१४	८	औषधालय	,,	,, १९९०	नाम अस्पष्ट है
१५	९	औषधालय	,,	,, १९९०	अतः आवश्यक
१६	१०	श्री नरेन्द्रजीत व वीरेन्द्रजीत मेरठ	,,	,, ,,	विज्ञप्ति की सूची
१७	११	श्रीमती सुमित्रादेवी धर्मपत्नी श्री वेदमित्र जिज्ञासु तीतरों	,,	,, १९८६	की क्रम संख्या ४७ देखिये
१८	१२	श्रीमती कौशल्यादेवी मुजफ्फरनगर	,,	,,	
१९	१३	श्री वेदमित्र जी जिज्ञासु तीतरो	,,	,,	
२०	१४	,, ,,	,,	,,	
२१	१५	,, ,,	,,	,,	
२२	१६	श्रीमती पदमा राजपाल दिल्ली	,,	,,	
२३	१७	श्रीमती तेजकौर देहरादून	,,	,,	

क्रम संख्या	कुटी संख्या	नाम कुटी निर्माता	किस के अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
२४	१८	श्री दीवान बिशनदास सोनी दिल्ली	आश्रम के अधिकार में	सन् १०-१०-६३	
२५	१९	श्रीमती मायादेवी	,,	सम्वत २०२१	
२६	२०	श्री जयकिशन तरेहन अमृतसर	,,	,, २०२०	
२७	२१	श्रीमती चुन्नी बाई डेरागाजीखाँ	,,	,,	
२८	२२	श्री इन्द्रमोहन, सचदेव शिवदयाल दिल्ली	,,	,,	
२९	२३	श्रीमती कलावती धर्मपत्नी श्री मीरीलाल गंगोह	,,	,, २०२२	
३०	२४	श्री कौशल्यादेवी मुजफ्फरनगर	,,	,,	
३१	२५	श्री केवलकृष्ण चौपड़ा	,,	,, २०२३	
३२	२६	श्री सत्यपाल वर्मा दिल्ली	,,	,,	
३३	२७	स्व० ला० हरभगवान रावलपिंडी	,,	,,	
३४	२८	श्री बसन्तकुमार दिल्ली	,,	,,	
३५	२९	,,	,,	,,	
३६	३०	श्री गणेशदत्त जिज्ञासु	,,	,,	
३७	३०/१	श्री विद्यासागर मदान दिल्ली	,,	,, २०२४	
३८	३०/२	महारानी खोसला पुत्र वधु श्री धनराज खोसला	,,	,,	
३९	३०/३	प्रेमप्रकाश कपूर व प्रकाशवती पेशावर	,,	,,	
४०	३०/४	सत्यवती देवी धर्मपत्नी श्री फकीरचन्द दिल्ली	,,	,,	
४१	३०/५	श्री नत्थूराम दिल्ली	,,	,,	
४२	३०/६	श्रीमती सत्यवती नारंग	,,	,, २०२५	
४३	३०/७	श्री हरिराम	,,	,,	
४४	३०/८	श्रीमती सोहनदेवी	,,	,, २०२६	
४५	३१	श्री कुलदीपचन्द्र धवन	,,	,,	
४६	३२	पुत्र रामशरण धवन धर्मपत्नी रामशरणी	,,	,,	
४७	३३	श्रीमती सिया प्यारी	,,	सन् १९७१	
४८	३४	,,	,,	,,	
४९	३५	बाबा भरतूनाथ	,,	सम्वत २०२५	
५०	३६	श्री कृष्णलाल वैद्य	,,	,,	
५१	३७	श्री देवदत्त मुनि	,,	,, २०२४	
५२	३८	,,	,,	,,	
५३	३९	श्री भगवानदास मखीजा दिल्ली	,,	,,	
५४	४०	श्री विश्वेश्वरनाथ सेठ दिल्ली	कुटी निर्माता स्वयं रहते हैं	सन् १९५८	
५५	४१	श्रीमती राज कौशल्या	आश्रम के अधिकार में	,, १९५४	आ.न. डाकघर
५६	४२	,,	,,	,,	सरस्वतीदेवी
५७	४२ क	श्री सीताराम व लीलावती रुड़की	कुटी नि० स्वयं रहती हैं	,, १९५५	हो. अस्पताल

क्रम संख्या	कुटी संख्या	नाम कुटी निर्माता	किस के अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
		सर्व श्री			
५८	४३	श्रीमती तारादेवी व हरिराम जबलपुर	आश्रम के अधिकार में	सन् १९५५	
५९	४४	गंगादेवी व नूतनदास गौरेजा डेरागाजीखाँ	,,	सम्वत २०१२	महात्मा नारायणस्वामी
६०	४५	सरस्वतीदेवी जिज्ञासु धर्मपत्नी राजपाल जिज्ञासु दिल्ली	कुटी नि. स्वयं रहती हैं	,,	आ. अस्पताल
६१	४६	मक्खनीदेवी पत्नी ईश्वरदास	आश्रम के अधिकार में	,,	
६२	४७	आवांवाली पत्नी विशनदास	कु. नि. स्वयं रहती हैं	,, २०१३	
६३	४८	ला० द्वारकादास पुत्र ला० मानकदास गंगोह	आश्रम के अधिकार में	,, १९९३	
६४	४९	,, ,,	,,	,,	
६५	५०	अम्बाप्रसाद वर्मा बरेली	,,	दयानन्दाब्द १०६	
६६	५१	गौरीशंकर प्रीतमदेवी बदायूं	,,	सन् १९३२	
६७	५१-क	,, ,,	,,	,,	
६८	५२	करोड़ीमल	,,	सम्वत २००८	गऊशाला
६९	५३	गंगाप्रसाद चीफजज	,,	सन् १९३३	
७०	५४	,, ,,	,,	,,	
७१	५५	,, ,,	,,	,,	
७२	५६	प्यारेलाल यशोदादेवी	,,	,,	
७३	५६-क	गंगाप्रसाद चीफजज	,,	,,	
७४	५६।१	,, ,,	,,	,,	
७५	५६।२	,, ,,	,,	,,	
७६	५७	नानकीदेवी शिवदयालु	,,	सम्वत २०१९	
७७	५८	लोकनाथ तनेजा व दीनानाथ	,,	,,	
७८	५९	पार्वतीदेवी रामरतनलाल एडवोकेट नजीबाबाद	,,	,,	
७९	६०	फकीरचन्द मरीन मियाचन्नू	,,	,,	
८०	६१	बद्रीप्रसाद जी कासगंज	,,	,,	
८१	६२	गुडामल जी लाहौर	,,	,,	
८२	६३	अभयानन्द जी सन्यासी बड़ौदा (गुजरात)	,,	,, २०२०	
८३	६४	भगीरथमल	,,	,,	
८४	६५	दाताराम जी व रायबहादुर चौ० मामराजसिंह शामली	,,	,, १९९०	
८५	६५-क	चौ० दाताराम व मामराजसिंह	,,	,,	
८६	६६	प्यारेलाल जी व नवलसिंह कैराना (मुजफ्फरनगर)	,,	,, १९९२	
८७	६७	बाबू शान्तिस्वरूप मित्तल ,, ,,	,,	,, १९९१	
८८	६८	किशोरीलाल	,,	,, २०२२	

क्रम संख्या	कुटी संख्या	नाम कुटी निर्माता	किसके अधिकार में	निर्माण वर्ष	विशेष
८९	६८-क	बृजविहारीलाल व राधिकादेवी रदौली	आश्रम के अधिकार में	सन् १९६६	
९०	६९	हरध्यानसिंह जी	,, ,,	सम्वत १९८५	
९१	७०	वेदमित्र जिज्ञासु तीतरो	,, ,,	,, १९८६	
९२	७१	श्री दीवानसिंह पिपावली, बुलन्दशहर	,, ,,	सम्वत् १९८५	
९३	७२	श्री सुन्दरलाल पेन्शनर, तीतरो	,, ,,	सन् १९२९	
९४	७३	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,	
९५	७४	श्री जमनादास	,, ,,	सम्वत् १९८५	
९६	७५	श्री विशम्बरदास पुत्र लाला नन्दकिशोर दिल्ली	,, ,,	सन् १९३३ ई०	
९७	७६	डा० लालचन्द शाहपुरा, (पंजाब)	,, ,,	,, ,,	
९८	७६/क	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,	
९९	७७	महात्मा हंसराज जी व बलराज जी मंसूरी	,, ,,	सम्वत् २०२२	
१००	७८	श्री रामसहाय, राधावल्लभ सर्राफ फिरोजाबाद	,, ,,	सम्वत् २००४	
१०१	७९	श्री दुर्गाप्रसाद जी मुख्तार, रुड़की	,, ,,	,, १९८८	
१०२	८०	ठाकुर प्रेमसिंह पुत्र पानसिंह, मुरादाबाद	,, ,,	,, २००३	
१०३	८१	श्रीमती राधा देवी बरेली	,, ,,	,, १९८६	
१०४	८१/१	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,	
१०५	८१/२	,, ,, ,,	,, ,,	,, ,,	
१०६	८२	श्री नत्थूराम पटियाला	,, ,,	सम्वत् २००५	
१०७	८२/१	,, ,,	,, ,,	,, ,,	
१०८	८३	श्रीमती जीवन देवी	,, ,,	,, २००७	अतिथिगृह
१०९	८४	श्री तीरथराम जी	,, ,,		
		,, नकुलदेव जी	,, ,,		
		,, ज्ञानमित्र जी 'राहू'	,, ,,	सम्वत् २००७	
११०	८५	,, गोविन्दराम जी			
		,, सुखदेव जी	,, ,,	,, २०१२	
१११	८६	ला० किशनचन्द गुरचरनदास जालन्धर	,, ,,	,, २०१२	
११२	८६/१	,, ,,	,, ,,	,, ,,	
११३	८७	ला० मोतीराम नई मंडी, मुजफ्फरनगर	कुटी निर्माता के अधिकार में	,, २०१४	
११४	८७/क	,, ,,			
११५	८८	सेठ मुन्नालाल जी, बड़ौदा निवासी	आश्रम के अधिकार में	,, २०१३	
११६	८९	श्री रलाराम भल्ला, अमृतसर	,, ,,	,, २०१३	
११७	९०	,, देवीदास चोपड़ा, अमृतसर	,, ,,	,, २०१८	
११८	९१	,, मूलचन्द नय्यर	कुटी निर्माता ,,	,, ,,	
११९	९२	,, शिवप्रसाद खरे (डाक्टर)	आश्रम के ,,	,, ,,	

क्र०सं०	कुटी सं०	नाम कुटी निर्माता सर्व श्री —	किसके अधिकार में	निर्माण का वर्ष	विशेष
१२०	९३	पुत्र गोविन्दराम बटाला	आश्रम के अधिकार में	सम्वत २०१८	
१२१	९४	आनन्दमुनि, अमृतसर	कुटी निर्माता के	,, ,,	
१२२	९५	ठा० रामस्वरूप सिंह, वद्य	आश्रम के ,,	,, २०१९	
१२३	९६	ओमप्रकाश व वेदप्रकाश, जगरावां	,, ,,	सन् १९६४	
१२४	९७	गुलराज गुप्त धर्मार्थ ट्रस्ट दिल्ली	,, ,,	सम्वत् २०२०	
१२५	९८	गणेशदास मरवाहा, शेखूपुरा	,, ,,	,, ,,	
१२६	९९	हजारीमल सोनी धर्मकोट	,, ,,	,, ,,	
१२७	१००	परशुराम परमात्मा प्रकाश जी कांधला	,, ,,	,, २०२१	
१२८	१०१	श्रीमती ज्ञानदेवी जी वर्मा मिन्टगमरी	,, ,,	सन् १९६३	
१२९	१०२	भिलावाराम, दिल्ली	,, ,,	,, ,,	
१३०	१०३	गयाप्रसाद सक्सेना, अध्यापक इलाहाबाद	कुटी निर्माता ,,	सन् १९६५	
१३१	१०४	राय साहब खुशीराम जी दिल्ली	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९६५	
१३२	१०५	देशराज जी जिन्दल जगराऊँ	,,	,, १९६५	
१३३	१०६	नानू राम जी बहावलपुरी	,,	,, १९६५	
१३४	१०७	महेन्द्रदेव शास्त्री दिल्ली	,,	,, १९६४	
१३५	१०८	शिव सरनदास सिंगल	,,	,, १९६४	
१३६	१०९	महेन्द्र सिंह	आश्रम के अधिकार में	सम्वत२०२०	
१३७	११०	जिज्ञासु जी (मुकन्दलाल वानप्रस्थ) शक्तिनगर, दिल्ली	,,	,, २०२०	
१३८	१११	रामदेव सूद लश्कर (मध्यप्रदेश)	कुटी निर्माता के अधिकार में	,, २०२०	
१३९	११२	नौतनदास युगौर मुजफ्फरनगर	,,	,, २०१८	
१४०	११३	भोलाराम मियांवाली	,,	सन् १९६१	
१४१	११४	दुर्गा प्रसाद जी	आश्रम के अधिकार में	सम्वत१९९२	
१४२	११५	ठाकुरदास जी हल्दौर	,,	,, १९९२	
१४३	११५-क	,, ,,	,,	सन् १९३५	
१४४	११६	रुकमणी देवी जी ने स्वामी	,,	सम्वत१९९२	
१४५	११७	(वत्सलानन्द जी के लिए बनवाई)	,,	,, ,,	
१४६	११८	गोपाल मुनि ने पिछला भाग बनवाया	,,	,, ,,	
१४७	११८-क	रुकमणीदेवी जी ने अगला भाग बनवाया	,,	,, १९९४	
१४८	११९	महात्मा नारायाण स्वामी जी संस्थापक	,,	सन् १९३३	
१४९	११९-क	वेद मित्र जी	,,	,, १९३३	
१५०	१२०	अमृतकान्ता व सुशीला देवी कानपुर	,,	सम्वत२०२२	महात्मा नारायणस्वामी जी के लिएबनवाई

क्र०सं०	कुटी सं०	नाम कुटी निर्माता सर्व श्री—	किसके अधिकार में	निर्माण का वर्ष	विशेष
१५१	१२१	धन किशोर जी बरेली	आश्रम के अधिकार में	सम्वत १९८८	भोजन भण्डार
१५२	१२२	सुन्दरलाल तीतरो निवासी	,,	,, १९८८	भोजन भण्डार
१५३	१२३	सुमित्रा देवी धर्मपत्नी वेदमित्र	,,	,, १९८६	
१५४	१२४	जिज्ञासु तीतरो ,, ,,	,,	,, ,,	
१५५	१२५	,, ,, ,,	,,	,, ,,	
१५६	१२६	,, ,, ,,	,,	,, ,,	
१५७	१२७	कौशल्या कश्यप	,,	,, ,,	
१५८	१२८	गोमती देवी धर्मपत्नी मु० शंकर सहाय बूढ़ बदरिया, एटा	,,	,, १९८५	
१५९	१२९	भक्त सुन्दरदास जी व श्रीमती देवी बाई	,,	,, १९८८	
१६०	१२९-१	,, ,,	,,	,, ,,	
१६१	१३०	शान्ति देवी, माता कौशल्या देवी	कुटी निर्माता के अधिकार में	,, ,,	
१६२	१३१	सेठ मिठनलाल जी पुण्डरी	आश्रम के अधिकार में	,, १९९०	
१६३	१३१-१	,, ,,	,,	,, ,,	
१६४	१३१-क	रामप्यारी देवी धर्मपत्नी भगवानदास जी	,,	सन् १९५५	
१६५	१३२	शिवदेवी जी धर्मपत्नी महाशय गुरुदास राम जी	,,	सम्वत १९९८	
१६६	१३२-१	,, ,, ,,	,,	,, ,,	
१६७	१३३	मूला देवी जी धर्मपत्नी राय साहेब कन्हैयालाल जी रुड़की	,,	सन् १९३५	
१६८	१३३-१	गोमती देवी धर्मपत्नी विशम्बरदास	,,	,, १९३५	
१६९	१३३-२	शिवदेवी जी धर्मपत्नी गुरुदासराम जी	,,	सम्वत १९९२	
१७०	१३४	प्रेमकली देवी (प्रेमसुलभायति) सुपुत्री श्री रामनारायण सिंह	,,	,, १९९१	
१७१	१३४-१	तुलसी देवी (चम्पादेवी धर्मपत्नी) मगनलाल	,,	,, ,,	
१७२	१३५	ला० श्यामलाल और रमतीदेवी दिल्ली	,,	,, ,,	वस्तु भण्डार
१७३	१३५-१	,, ,,	,,	,, ,,	
१७४	१३५-२	,, ,,	,,	,, ,,	वस्तु भण्डार के पीछे
१७५	१३६	काशीदेवी धर्मपत्नी श्री राधा मोहन लखनऊ	,,	,, २०१७	
१७६	१३७	डा. जगन्नाथप्रसाद, भगवतीदेवी अरोड़ा	,,	२०१५	अतिथि गृह
१७७	१३७-१	,, ,,	,,	,, ,,	,, ,,

क्र०सं०	कुटी सं०	नाम कुटी निर्माता सर्व श्री—	किसके अधिकार में है	निर्माण वर्ष	विशेष
१७८	१३८	नत्थूराम चावला गुजरांवला	आश्रम के अधिकार में	सम्वत २०१३	
१७९	१३९	परशोत्तमलाल बहल व मायादेवी बहल देहली	,,	,, ,,	
१८०	१४०	मनभरीदेवी धर्मपत्नी करोड़ीमल व चन्द्रवतीदेवी	,,	,, २०१४	
१८१	१४१	सेठ अमरनाथ मेहरा व मानवती देवी	,,	,, ,,	
१८२	१४१-१	बम्बई वाले			
१८३	१४२	कौशल्यादेवी सेठी धर्मपत्नी डा० मेजर श्रद्धाराम जी	,,	,, २०१३	
१८४	१४३	मूलादेवी धर्मपत्नी जयराम शाह जी	,,	,, २०१७	श्रीमती कृष्णा श्रोवराय नि-
१८५	१४४	तुलसीदास गार्ड व सावित्री देवी डेरा गाजीखाँ	,,	,, ,,	दचय सं० १३
१८६	१४५	विशम्वर सहाय व शान्तिदेवी मुजफ्फरनगर	,,	,, २०१६	दि. ३-४-७५
१८७	१४६	चरनजीत राय व वीरांवाई कैमलपुर (पंजाव)	कुटी निर्माता के अधिकार में	,, २०१८	उत्तराधिकारी
१८८	१४७	सावित्री देवी गुप्ता श्री गंगा विष्णु गुप्ता बम्बई	,,		श्रीमती द्रौपदी देवी जी के लिए
१८९	१४८	भगवतीदेवी व वीरेन्द्र गुप्ता सुपुत्र ला. निहालसिंह मुजफ्फरनगर	,,	सन् १९६२	बनवाई सम्वत २०२२
१९०	१४९	प्रीतमचन्द व गायत्री देवी	,,	सम्वत २०१९	
१९१	१५०	लक्ष्मणदेव एवं रामोदेवी	,,	,, ,,	
१९२	१५१	स्त्री आर्य समाज मुलतान	आश्रम के अधिकार में	,, २०१८	
१९३	१५१-१	यशोदादेवी व ईश्वरीदेवी मुलतान	,,	,, ,,	
१९४	१५२	गायत्रीदेवी यति लखनऊ	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९६१	
१९५	१५३	तुलसीदास आर्य व मूलादेवी रावलपिण्डी	,,	सम्वत २०१७	
१९६	१५४	गणेशदास जी व श्रीमती धनोदेवी जी	,,	,, ,,	
१९७	१५५	राजरानी तथा उनके भाई रामनाथ जी शहाजहांपुर	आश्रम के अधिकार में	,, ,,	
१९८	१५६	डा दीनानाथ व वेदवती कोहली लुध्याना	,,	,, २०१६	
१९९	१५७	चन्द्रपालसिंह पंवार व श्रीमती सरस्वती पंवार	कुटी निर्माता के अधिकार में	,, ..	
२००	१५८	आत्मप्रकाश भाटिया शान्तिदेवी जालन्धर	आश्रम के अधिकार में	सन् १९६०	
२०१	१५९	वीरवती व कौशल्यादेवी अध्यापिका आगरा	,,	,, ,,	
२०२	१६०	दुर्गादेवी आर्या धर्मपत्नी श्री बिहारीलाल जी भल्ला नकोदर	कुटी निर्माता के अधिकार में	सबम्त २०१६	

क्रम सं०		नाम कुटी निर्माता सर्व श्री	किसके अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
२०३	१६१	श्रीमती गौरादेवी व चौ० फूलूराम जालन्धर छावनी	कुटी निर्माता के	सम्वत २०१३	
२०४	१६२	माता शुभकरी जी धर्मपत्नी ला० मुकन्दलाल चौपड़ा	'	२०१२	
२०५	१६३	श्री विजय कुमार जी व श्रीमती विशेश्वरा देवी देहली	आश्रम के अधिकार	' २०१४	
२०६	१६४	श्री मती कौशल्या खजूरी वाली	'	' ' '	
२०७	१६५	' धनदेवी पत्नी रामरक्खा नयटर दिल्ली	'	' सन १९६२	
२०८	१६६	श्रीमती गणेशी देवी चावला	आश्रम के अधिकार	सन १९६२	
२०९	१६७	' भगवती देवी पत्नी ऋषि राम थानेश्वर	' '	सम्वत २०१०	
२१०	१६८	भागवन्ती देवी अध्यापिका ऐवटाबाद	' '	२०१०	
२११	१६९	राजकौशल्या चडडा भेरा निवासी	"	सन १९५२	
२१२	१७०	कविराज हरनाम दास व सत्यवती मेहता राहूं	कुटी निर्माता के अधिकार में	सम्वत २००८	
२१३	१७०-१	बलवन्त कौर व कविराज हरनाम दास दिल्ली	" "	" २००९	
२१४	१७१	शकुन्तला देवी गुजराल व लाजवन्ती गुजराल दिल्ली	आश्रम के अधिकार में	" "	
२१५	१७१-१	" "	" "	" "	
२१६	१७२	धन देवी साहनी पत्नी कृपाराम	" "		
२१७	१७२-१	" "	कुटि निर्माता के अधिकार में	" "	
२१८	१७३	गंगामाता अमृतसर निवासी	आश्रम के अधिकार में	सम्वत १९९०	
२१९	१७४	हुकम देवी जी पत्नी श्री ताराचन्द जी			
२२०	१७४-१	कैराना निवासी	" "	सन १९३६	
२२१	१७५	गुणवती देवी जी पुण्डरी	" "	सम्वत १९९३	
२२२	१७६	श्री काका राम जी मुलतान	" "	" १९९३	
२२३	१७७	" "	" "	" "	
२२४	१७८	" वेद मित्र जिज्ञासु तीतरों	कुटी निर्माता के अधिकार	सन १९३१	स्वामी विवेकानन्द जी तथा उलफत राय जी
२२५	१७९	" चण्डी प्रसाद जी शाहजहांपुर	आश्रम के अधिकार	सन १९३०	
२२६	१८०	" परमेश्वरी दास जी मुजफ्फरनगर	" "	सन १९६२	
२२७	१८१	श्री मति मनोरमा देवी जी पत्नी			

क्रम संख्या	कुटी संख्या	नाम कुटी निर्माता	किस के अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
		सर्व श्री			
		डाक्टर गिरधारी लाल जी	,, ,,	सम्वत २०२०	
२२८	१८२	श्री लक्ष्मी एवं श्यामकृष्ण लखनऊ	,, ,,	,, २०१३	महिला न० १
२२९	१८३	श्री मती माया देवी धर्मपत्नी अनन्तराम	,, ,, ,,	,,	,,
२३०	१८४	,, परमेश्वरी देवी	,, ,, ,,	,,	,,
२३१	१८५	,, कोशल्या चोपड़ा	,, ,, ,,	,,	,,
१३२	१८६	सावित्री देवी व ज्ञान देवी जी थाना भवन (गढ़ी)	,, ,, ,,	सम्वत २०१२	,,
२३३	१८७	,, सुखरानी देवी बरेली	,, ,, ,,	,,	,,
२३४	१८८	,, स्वर्ण देवी के भाइयों ने बनबाई सरगोधा	,, ,,	२०१३	,,
२३५	१८९	श्री शिवराम मालके साहीवाल	आश्रम के अधिकार में	सम्वत २०१५	महिला न० २
२३५	१९०	श्रीमती प्रकाशवती जी जोरासी निवासी	,,		
२३७	१९१	श्रीमती सुशीला देवी पुत्र वधू महात्मा हरप्रकाश जी	,, ,, ,,		,,
२३८	१९२	सुख देवी जी जोरासी निवासी	,, ,,	२०१२	,,
२३९	१९३	श्रीमती पार्वती देवी जी धर्म पत्नी जगदीश प्रसाद कैराना (मुज़फ़्फ़रनगर)	कुटी निर्माता	२०१५ / २०२०	,,
२४०	१९४	" ईश्वर देवी पुरी धर्मपत्नी ज्ञानचन्द पुरी			,,
२४१	१९५	श्री कुलभूषण परती	,, "	२०२७	,,
२४२	१९६	,, मती दुर्गा देवी जी अम्बाला	आश्रम के "	सन १९६१	,,
२४३	१९७	श्री लक्ष्मी शंकर सुपुत्र श्री मती ज्ञान देवी जी चांदपुर	,, "	सम्वत २०२७	,
२४४	१९८	श्री मती वास देवी चोपड़ा (नवाशहर)	, ,	२०१९ / २०२०	,,
२४५	१९९	, जैसी बाई दिल्ली	,		,
२४६	२००	, विद्या साहनी देववन्द	, ,	,	,
२४७	२०१	' बुधवन्ती देवी मिर्जापुर	, ,	सन १९६८	,
२४८	२०२	' बिद्या वती खुराना	, ,	सम्वत २०२२ ,	,

क्रम संख्या		किसके अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
		सर्व श्री		
२४९	२०३	सुकीरती देवी पटियाला		
२५०	२०४	प्रेम वती जी स्याना जि० बुलन्दशहर		
२५१	२०५			
२५२	२०६	सेठ माधव जी दारू सलाम अफ्रीका	सम्वत २००१	कनखल गेट के ऊपर २००० जमादार क्वाटर
२५३	२०७	आश्रम		
२५४	२०८	आश्रम	वर्ष १९७४	
२५५	२०९			
२५६	२१०			

शाखा नं०-१

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ संन्यास आश्रम) ज्वालापुर

परिशिष्ट (१ ख)

क्रम संख्या	कुटी संख्या	नाम कुटी निर्माता	किस के अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
		सर्व श्री			
१	१	विद्यावतीदत्त व नन्दगोपाल कलकत्ता	आश्रम के अधिकार में	सन् १९६३	
२	२	सौदागरमल व कौशल्यादेवी कलकत्ता	,,	,,	अतिथिगृह
३	३	मधुसूदनलाल मलहोत्रा व देवकीदेवी	,,	सम्वत २०२०	
४	४	मनोहरलाल मलहोत्रा	,,	,,	
५	५	दयावती वनाती	कुटी नि. के अधिकार में	सन् १९६३	
६	६	धर्मवती जी	,,	,,	
७	७	विद्यावती जी चोपड़ा	,,	,,	
८	८	ब्रह्मादेवी जी व ज्वालाप्रसाद प्रयाग निबासी	,,	,, १९६२	
९	९	डा० रामनारायण जी शाहजहांपुर निवासी	आश्रम के अधिकार में	सम्वत २०२०	
१०	१०	रामप्यारी जी व केदारनाथ दिल्ली निवासी	,,	,,	
११	११	नन्दलाल वख्शी व चन्द्रावती जी बम्बई	कुटी नि. के अधिकार में	सन् १९६४	
१२	१२	सेवतीदेवी व जयप्रकाश अग्रवाल गंगोह निवासी	आश्रम के अधिकार में	,,	
१३	१३	प्रीतमचन्द लुधियाना	,,	सम्वत२०२२	
१४	१४	सीतादेवी चण्डीगढ़	कुटी नि के अधिकार में	,, २०२१	
१५	१५	लक्ष्मीदेवी कानपुर	आश्रम के अधिकार में	सन् १९६५	
१६	१५-१	वानप्रस्थ आश्रम	,,	,, १९६४	जमादार क्वार्टर
१७	१६	शकुन्तला सूरी जालन्धर	कुटी नि. के अधिकार में	,,	
१८	१७	भगवतीदेवी ग्रोवर देहरादून	आश्रम के अधिकार में	,,	
१९	१८	लीलावती कपूर व विद्यावती चोपड़ा, दिल्ली	,,	,,	
२०	१९	कृष्णलाल व पत्नी गार्गीदेवी	,,	सम्वत २०२०	
२१	२०	रामेश्वरप्रसाद व सुशीलादेवी	कुटी नि. के अधिकार में	सन् १९६४	
२२	२१	कैप्टिन जगदीशचन्द्र मुनि व विद्यावती जौहरी	,,	,,	
२३	२२	पुष्पावती मागा	,,	,,	
२४	२३	यदुवंश सहाय जी फैजाबाद	,,	सम्वत २०२१	

क्रम संख्या	कुटी संख्या	नाम कुटी निर्माता	किस के अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
		सर्वश्री			
२५	२४	डा० रामप्यारी जी ऋषिकेश	आश्रम के अधिकार में	सन् १९६४	
२६	२५	,, ,,	,,	,,	
२७	२६	सत्यवती चतरथ देहरादून	,,	,,	
२८	२७	आश्रम	,,	,, १९६८	चौकीदार क्वार्टर

परिशिष्ट (१) ग

आर्य तिरक्त (वानप्रस्थ संन्यास) आश्रम ज्वालापुर

शाखा नं० २

क्रम सं०	कुटी सं०	नाम कुटी निर्माता	किसके अधिकार में	वर्ष निर्माण	विशेष
१	१	श्रीमती सुहागवन्ती खोसला पत्नी स्व० विलायतीराम खोसला	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७१	
२	२	श्रीमती प्रेमवती पुरी दिल्ली	,,	सम्वत् २०२६	
३	३	श्रीमती शान्तिदेवी व श्री धर्मवीर पुत्र ज्ञानचंद	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९७१	
४	४	स्व० श्री लालचंद जी आर्य व पत्नी श्रीमती हुकमदेवी नई दिल्ली	आश्रम के अधिकार में	सम्वत् २०२७	
५	५	श्री सत्यदेव नागिया, मद्रास	,,	सन् १९७१	
६	६	श्रीमती सन्तोषी देवी धर्मपत्नी श्री बृजलाल गुप्ता दुहाना (हिसार)	,,	सम्वत् २०२८	
७	७	श्रीमती दुर्गादेवी भल्ला नई दिल्ली	,,	सन् १९७०	
८	८	श्रीमती लीलावती नारंग पत्नी स्व० केसरराम नारंग	,,	सन् १९७०	
९	९	श्री ओम प्रकाश पति कृष्णादेवी नई मण्डी मुजफ्फरनगर	,,	सम्वत् २०२७	
१०	१०	श्रीमती सुविद्या डावर, शिमला	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९७०	
११	११	,, वेदकुमारी, नई दिल्ली पत्नी स्व० राजपाल	आश्रम के अधिकार में	सम्वत् २०२९	
१२	१२	श्री चुन्नीलाल भाटिया व इन्द्रावती, नई दिल्ली	,,	सन् १९७०	
१३	१३	,, धनीराम सूद ट्रस्ट व किशनचन्द कालड़ा व नारायण देवी	कुटी निर्माता के अधिकार में	सम्वत् २०२९	
१४	१४	,, धनीराम सूद ट्रस्ट	आश्रम के अधिकार में	,, ,,	राधिकादेवी एलोपैथिक चिकि०
१५	१५	डा० जगतराम आर्य व परमेश्वरी देवी आर्या नई दिल्ली	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९७०	
१६	१६	श्री रामकिशनदास व श्रीमती सरस्वती देवी दिल्ली	,,	सन् १९७०	
१७	१७	,, गंगाशरण मित्तल तथा पत्नी	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७१	
१८	१८	श्रीमती राजरानी जसूजा, नई दिल्ली	कुटी नि० के अधिकार में	सन् १९७१	
१९	१९	,, के० सी० दरगन	,,	सन् १९७१	
२०	२०	,, प्रेमवती दरगन	,,	सन् १९७१	

क्रम सं०	कुटी सं०	नाम कुटी निर्माता	किसके अधिकार में	वर्ष निर्माण	विशेष
२१	२१	श्रीमती इन्द्रावती कुमार व श्रीमती शकुन्तला बत्रा व विद्यावती खुराना, दिल्ली	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९७२	
२२	२२	श्री धर्मपाल व प्रेम कुमारी मेहरा, बम्बई	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७१	
२३	२३	श्रीमती सावित्रीदेवी वेरी व सुरेन्द्रकुमार दिल्ली	,,	सम्वत् २०२८	
२४	२४	श्री गोविन्दराम बत्रा तथा पत्नी, दिल्ली	,,	सम्वत् २०२८	
२५	२५	,, लक्ष्मीनारायण व पत्नी किरण देवी कैराना	कुटी निर्माता के अधिकार में	सम्वत् २०२७	
२६	२६	,, ,,	,,	सम्वत् २०२७	
२७	२७	श्रीमती मनोरमादेवी पत्नी श्री तुलाराम चांदपुर स्याऊ	,,	सम्वत् २०२७	
२८	२८	,, सावित्रीदेवी कौड़ा पत्नी स्व० टेकचन्द, कौड़ा	,,	सन् १९७१	
२९	२९	,, चन्द्रकान्ता सिंगल पत्नी स्व० श्री रामसरनदास, करनाल	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७०	
३०	३०	श्री बालमुकन्द कपूर व पत्नी श्रीमती रामप्यारी, लुध्याना	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९७०	
३१	३१	,, ,,	,,	सन् १९७०	
३२	३२	माता परमेश्वरीदेवी धर्मपत्नी श्री मनीराम बामा चण्डीगढ़	,,	सन् १९७०	
३३	३३	श्रीमती रानी कपूर पत्नी स्व० श्री लखपतराय चोपड़ा, दिल्ली	,,	सन् १९७१	सपत्नीक कक्ष
३४	३४	श्री सुदर्शनकुमार स्याल तथा सुधा स्याल चण्डीगढ़	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७०	,,
३५	३५	श्री लाजपतराय सग्गड़, पत्नी स्व० इन्द्रावती	,,	सन् १९७०	,,
३६	३६	,, स्व० बोधराज चोपड़ा व पत्नी इकबालदेवी चोपड़ा, मुजफ्फरनगर	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९७०	,,
३७	३७	श्री मुन्नीलाल गोरखनाथ व डेरा, चण्डीगढ़	,,	सम्वत् २०२६	,,
३८	३८	श्रीमती प्रकाशवती ओवराय पत्नी हरिकृष्ण ओवराय नई दिल्ली	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७१	,,
३९	३९	,, फूलवती पुरी व श्रीमती शकुन्तला रेखी	,,	सन् १९७१	,,
४०	४०	श्री नवनीतलाल एडवोकेट दिल्ली पत्नी स्व० सत्यप्रभा जी	,,	सन् १९७१	,,
४१	४१	,, ललताप्रसाद महेश्वरी पत्नी श्रीमती चन्द्रवती कांठ, मुरादाबाद	,,	सन् १९७१	,,

क्रम सं०	कुटी सं०	नाम कुटी निर्माता	किसके अधिकार में	वर्ष निर्माण	विशेष
४२	४२	श्रीमती प्रकाशवती रेलन पत्नी श्री हंसराज रेलन दिल्ली	,,	सन् १९७०	,,
४३	४३	,, लालदेवी पत्नी श्री बेलाराम होश्यारपुर	,,	सन् १९७१	,,
४४	४४	,, प्रकाश पासी पत्नी श्री सत्यपाल पासी	,,	सन् १९७१	,,
४५	४५	,, कुसुमलता पत्नी श्री सुन्दरलाल, देहली	,,	सन् १९७२	पुरुष वार्ड प्रारंभ
४६	४६	श्री इन्दुप्रकाश लाडवा वाले	,,	सन् १९७२	,,
४७	४७	,, काशीराम बगाई	,,	सन् १९७१	,,
४८	४८	,, रामचन्द्र निगम, लखवऊ	,,	सन् १९७१	,,
४९	४९	,, संगतराम जसूजा	,,	सन् १९७२	,,
५०	५०	श्रीमती मंशादेवी, जालन्धर	,,	सन् १९६९	,,
५१	५१	श्री नकुलसेन सौंधी, दिल्ली	,,	सन् १९७०	,,
५२	५२	,, धनराज सौंधी, दिल्ली	,,	सम्वत् २०२६	,,
५३	५३	,, सरदारीलाल सौप्ती	,,	सम्वत् २०२७	,,
५४	५४	,, हंसराज पासी, नई दिल्ली	,,	सन् १९७१	,,
५५	५५	,, विष्णुमित्र उपनाम बन्नाराम	,,	सन् १९७०	,,
५६	५६	,, सत्यदेव नागिया, बल्लभगढ	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९७०	,,
५७	५७	,, चाननलाल आहूजा, निवासी फाजिलका	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७०	,,
५८	५८	श्रीमती वृन्दादेवी चावला पत्नी स्व० हंसराज चावला	कुटी निर्माता के अधिकार में	सन् १९७१	महिलावार्ड बड़ी कुटिया
५९	५९	श्री कृष्णचन्द्र नागिया, पत्नी श्रीमती दुर्गादेवी	आश्रम के अधिकार में	,,	,,
६०	६०	कु० विमला कुमारी दिल्ली	कुटी निर्माता ,,	,,	,,
६१	६१	श्रीमती सुशीला देवी चोपड़ा दिल्ली	,, ,,	,,	,,
६२	६२	श्रीमती विद्यावती खन्ना निवासिनी	आश्रम के अधिकार में	,,	,,
६३	६३	श्रीमती प्रीतम प्यारी नय्यर	,,	,,	,,
६४	६४	श्री विद्यासागर मदान ,पत्नी सुशीला मदान	कुटी निर्माता के अधिकार में	,,	,,
६५	६५	रामरक्खी पुरी दिल्ली	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७२	महिला कक्ष बड़ी कुटिया
६६	६६	पद्मावती ललवाड	,,	१९७०	महिला कक्ष
६७	६७	स्व मालनदेवी	,,	१९७१	छोटी कुटिया

क्रम संख्या	कुटी संख्या	नाम कुटी निर्माता	किस के अधिकार में है	वर्ष निर्माण	विशेष
		सर्व श्री			
६८	६८	तारावती पत्नी कृष्णमुनि वैद्य	आश्रम के अधिकार में	सं० २०२७	छो० कु०
६९	६९	चन्द्रवतीदेवी पत्नी चेतन मुनि	,,	सन् १९७१	,,
७०	७०	कुन्तीदेवी पत्नी स्व० राजेन्द्र कुमार चांदपुर स्याऊ	,,	,,	,,
७१	७१	स्व० कलावतीदेवी	,,	सन् १९७०	,,
७२	७२	कृष्णादेवी धर्मपत्नी ओमप्रकाश नई मंडी मुजफ्फरनगर	,,	सं० २०२७	,,
७३	७३	ला० मोतीराम नई मंडी मुजफ्फर नगर	,,	सन् १९७०	,,
७४	७४	,,	,,	,,	,,
७५	७५	रामकली देवी पत्नी पं० शिवदयालु जी मेरठ	,,	सं० २०२७	,,
७६	७६	ज्ञानवतीदेवी पत्नी रामेश्वरदयाल अग्रवाल दिल्ली	,,	सन् १९७०	,,
७७	७७	कौशल्यादेवी पत्नी विद्यारत्न वैद्य	,,	,,	,,
७८	७८	स्व० शान्तिदेवी पानीपत वाली	,,	सन् १९७२	,,
७९	७९	विद्यावती आनन्द लुधियाना	,,	सन् १९७१	,,
८०	८०	देवकी नय्यर नई दिल्ली	,,	,,	सपत्नीक कु० महिला ,,
८१	८१	भगवती साहनी व विद्यावती खन्ना	,,	,,	,,
८२	८२	सावित्रीदेवी शर्मा बालावाली	कुटी निर्माता के अधिकार में	,,	
८३	८२-१	सावित्रीदेवी अरोड़ा इटावा निवासी	,,	सन् १९७२	सपत्नीक
८४	८३	राजदुलारी पत्नी ताराचन्द लुधियाना	,,	सन् १९७१	केवल ,,
८५	८४	शकुन्तला चांद पत्नी स्व० दीवानचन्द चांद, जमशेदपुर	कुटी निर्माता के अधिकार में	,,	,, ,,
८६	८५	धर्मपाल विद्यार्थी आगरा	आश्रम के अधिकार में	,,	,,
८७	८६	कमलादेवी गुप्ता पत्नी स्व० राधाकृष्ण पानीपत	कुटी निर्माता के अधिकार में	,, ,,	,, ,,
८८	८७	धर्मपाल नय्यर तथा पत्नी स्व० स्वर्णलता	,,	,,	,,
८९	८८	लालचन्द बहल व पत्नी सवितादेवी	आश्रम के अधिकार में	,,	,,
९०	८९	कपूर चन्द संगरूर	,,	सन् १९७२	,,
९१	९०	हंसराज सोनी व पत्नी सावित्रीदेवी	कुटी नि० के अधिकार में	,,	

क्र०सं०	कुटी सं०	नाम कुटी निर्माता सर्व श्री —	किसके अधिकार में	निर्माण का वर्ष	विशेष
९२	९१	प्यारेलाल चन्दवानी फगवाड़ा	आश्रम के अधिकार में	,,	सपत्नीक केवल
९३	९२	लाजवती खुराना पत्नी ध्यानचन्द दिल्ली	,,	सन् १९७१	,,
९४	९३	बुधवन्ती पत्नी चुन्नीलाल सेठी नई दिल्ली	,,	सं० २०२८	पुरुष कक्ष
९५	९४	सीतादेवी भाटिया पत्नी स्व० गणपतराय भाटिया नई दिल्ली	,,	,,	छोटी कुटी
९६	९५	लाजवन्ती व कृष्णा सोनी	,,	सन् १९७२	,,
९७	९६	लब्भूराम धाई राहूं निवासी	,,	सन् १९७१	,,
९८	९७	आश्रम	,,	,,	जमादार क्वाटर

परिशिष्ट (१) घ

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ-संन्यास) आश्रम ज्वालापुर

दुकानें शाखा (नं० २)

क्र. सं.	दुकान सं०	नाम दुकान निर्माता सर्व श्री	किसके अधिकार में	वर्ष निर्माण	विशेष
१	१	इन्द्रावती ऊधमपुर जम्मू	आश्रम के अधिकार में	सन् १९७२	ब्याज निम्न निधि में
२	२	प्रेमवती तलवार द्वारा धर्मवीर तलवार बी० एच० ई० एल० हरिद्वार	,,	,,	राधिका देवी एलोपैथिक
३	३	जयन्ती प्रसाद व श्रीमती सोनादेवी मनोहर बाजार मेरठ	,,	स०२०२९	औषधालय
४	४	माधो प्रसाद व विद्यावती मेरठ	,,	,,	,,
५	५	बाबू राम महाजन दिल्ली	,,	सन १९७२	,,
६	६	ईश्वर देवी भाटिया ४० सन्त नगर नई दिल्ली ।	,,	,,	,,
७	७	राधाबाई भाटिया ४० सन्तनगर नई दिल्ली	,,	,,	,,
८	८	मुसद्दी लाल व सत्यवती लखनऊ	,,	स०२०२९	,,
९	९	रुक्मणीदेवी अम्बाला छावनी	,,	सन१९७२	,,
१०	१०	कुमारी सुदर्शन भूटानी २४० थापर नगर मेरठ	,,	सन १९७३	,,
११	११	शकुन्तला देवी सागर राज प्रिंटिंग वर्क्स नई दिल्ली	,,	,,	,,
१२	१२	सावित्री देवी गुलाटी कलकत्ता	,,	सन १९७४	,,
१३	१३	रामदास व ज्ञान देवी ३/१७ पंजाबी बाग दिल्ली ।	,,	,,	विद्यार्थी सहायता
१४	१४	,, ,,	,,	,,	रा. दे. चि.
१५	१५	कृपादेवी व सोहन लाल, सुन्दरलाल कुन्दनलाल पुत्र श्री सन्तराम मलहोत्रा	,,	,,	दीन दुःखी सहायता
१६	१६	हरिचन्द राम नाथ पात्रा देहली	,,	स० २०३१	रा. दे. चिकित्सा.
१७	१७	कर्मवीर बन्सल मॉरिशस	,,	सन १९७४	ऋषि रा.से. निधि
१८	१८	फूलवती बडेरा महिला आश्रम न्यू राजेन्द्र नगर दिल्ली ।	,,	,,	,,
१९	१९	विद्यारानी व शान्ति देवी	,,	,,	वेद प्रचार
२०	२०	हरिराम मालिक फर्म ला० जगन्नाथ हरिराम दिल्ली ।	,,	,,	रा. दे. चि.
२१	२१	चानन लाल सलूजा पत्नी शान्ति	,,	,,	

मुख्य आश्रम की दुकाने

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ संन्यास) आश्रम् ज्वालापुर

परिशिष्ट १ (ङ)

क्र.सं.	दुकान स.	नाम दुकान निर्माता	किसके अधिकार में	वर्ष निर्माण	विशेष
		सर्व श्री —			
१	१	राज कौशल्या	आश्रम के अधिकार में	सन् १९५४	हरिद्वार
२	२	भगवान दास मखीजा	किराये पर है	स० २०२[illegible]	रोड
३	३	देव दत्त शर्मा	,,	,, २०२५	,,
४	४	डा० पातञ्जली शर्मा बदायुं	,,	,, ,,	,,
५	५	रामप्रताप भगवत किशोर होशयारपुर	,,	सन् १९७०	,,
६	६	मेहर चन्द	,,	,, ,,	,,
७	७	केशव देव आगरा	,,	स० २०२६	,,
८	८	,,	‘,	स० २०२६	,,
९	९	राम सरण धवन व राम सरणी	,,	स० २०२४	,,
१०	१०	हरिराम व सोहनदेवी	,,	स० २०२५	,,
११	११	,,	,,	स० २०२५	,,
१२	१२	सत्यवती नारंग	,,	स० २०२५	,,
१३	१३	नत्थू राम	,,	स० २०२४	,,
१४	१४	राम लुभाई	,,	स० २०२१	कन.रोड
१५	१४/१	रामप्यारी देहरादून	,,	स० २०२१	,,

आश्रम के मकानात का ब्यौरा

म.सं.	नाम मकान	नाम निर्माता सर्व श्री	स्थान	टिप्पणी
१	रोशन कुटी	राज कौशल्या पत्नी रोशन लाल	दयानन्द नगर	यह तीनों मकानात श्रीमती राज कौशल्या जी ने स्वयं अपने निजी प्लोट में निर्मित कराये थे।
२	,,	,,	,,	
३	,,	,,	,,	
४/१	अमृत बाई	श्रीमती अमृत बाई पत्नी श्याम लाल चावला	,,	यह दोनों मकानात श्रीमती अमृत बाई जी ने श्री काशी नाथ फिदा के प्लोट में निर्माण कराये थे।
५/२	,,		,,	

नोट:—उपरोक्त पांचों मकानात निर्माताओं ने स्वामी विवेकानन्द जी महाराज (पूर्व श्री धर्मवीर) जी को उनके जीवन काल के लिए पूर्णतयः दिये गये हैं। स्वामी जी महाराज ने इन सभी मकानात को सदुपयोग के लिये आर्य विरक्त (वानप्रस्थ संन्यास आश्रम को इस शर्त पर दिये है। "यदि किसी समय श्री स्वामी जी महाराज को अपने लिये या अन्य व्यक्ति के लिए आवश्यकता हो तो इन मकानों को आश्रम को उन्हे लौटाना होगा और यदि यह मकान खाली न हो तो उनके स्थान पर आश्रम में दूसरे मकान उनको दिये जायेगें। यह आश्रम की अन्तरङ्ग सभा के निश्चय संख्या ५ दिनांक ४-१०-७२ द्वारा स्वीकार हुआ।

स्वामी जी महाराज इन मकानों के किराये से भी कोई वास्ता नहीं रखते है। आश्रम स्वामी जी महाराज का सदैव आभारी रहेगा।

परिशिष्ट २

१ उद्देश्य–

१. आर्य विरक्त वानप्रस्थ सन्यासी नर-नारियों के एकान्त वास एवं चिन्तन वेदादि शास्त्रों के पढ़ने पढ़ाने, मन और इन्द्रियों को जीत कर योगाभ्यास करना, आत्मा परमात्मा के ज्ञान के लिये नाना प्रकार उपनिषद् अर्थात् ज्ञान और उपासना विधायक श्रुतियों के अर्थों के विचार की व्यवस्था करना ।

२ (क) आश्रम वासियों को वैदिक धर्म एवं संस्कृति का सैद्धान्तिक एवं वैदिक कर्म-काण्ड का क्रियात्मक बोध करना और उनका साधारण जनता में प्रचार करना ।

(ख) आश्रम वासियों की रहन-सहन, खान-पान एवं वेश-भूषा में सादगी मितव्ययता अपनाने के लिये प्रेरित करना और साधारण जनता के नैतिक उत्थान के लिये प्रचार करना ।

(ग) छून-छात का निवारण करने एवं जाति भेदों को दूर करने की दृष्टि से अन्दर तथा बाहर ग्रामादि में प्रचार करना ।

३. आश्रम वासियों तथा आगत महानुभावों को संस्कृत तथा हिन्दी का बोध कराने के तथा साधारण ज्ञान-वर्धन की दृष्टि से ज्ञान गोष्ठियों, पुस्तकालय तथा वाचनालय की व्यवस्था करना ।

४. आश्रम वासियों एवं साधारण जनता के हितार्थ वर्तमान औषधालयों के संचालन एवं उन्नति और विस्तार के लिए प्रयत्न करना ।

५. निर्धन छात्रों को शिक्षा दिलाने में सहायता करना तथा छात्रों में अनुशासन, राष्ट्रीयता, नैतिकता एव वैदिक सस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न के लिए प्रेरित करना ।

६. वैदिक धर्म प्रचार और प्रसार के लिये नैतिक तथा आध्यात्मिक साहित्य का सृजन एवं प्रकाशन कराना और उसे जनता में पहुंचाना ।

७. उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त बिभिन्न स्रोतों से दान प्राप्त करना और उसके उचित उपयोग की व्यवस्था करना ।

२ आश्रम में प्रवेश के नियम–

१. इस आश्रम में चालीस वर्ष की आयु से अधिक आयु वाले केवल वह नर नारी ही प्रवेश पा सकते है जो किसी आर्य 'समाज के सदस्य रहे हों वैदिक कर्म-काण्ड, सन्ध्या, हवन आदि नित्य करते हो ।

२. आश्रम वासियों के अतिरिक्त कोई व्यक्ति प्रधान या उनके द्वारा नियुक्त व्यक्ति की आज्ञा के बिना नहीं ठहर सकता है ।

३. आश्रम में कोई व्यक्ति प्रधान की आज्ञा से केवल एक मास तक निवास कर सकता है, उससे अधिक अवधि के लिये आश्रम की अन्तरंग सभा की स्वीकृति से आज्ञा दी जा सकती है।

४. आश्रम में मद्य पान आदि अभक्ष्य पदार्थ लाना और सेवन करना किसी प्रकार का जुआ ताश चौपड़ आदि खेलना सर्वदा वर्जित है। मद्य के अन्तर्गत समस्त प्रकार के नशे सम्मिलित हैं। तम्बाकू खाना पीना, सूंघना भी निषिद्ध है।

५. आश्रम वास के इच्छुक नर-नारियों का स्वस्थ होना अनिवार्य है। क्योंकि यथा सम्भव अपना कार्य स्वयं करना होता है। आश्रम का सेवक किसी विशेष अवस्था में ही उनकी सहायता कर सकता हैं।

६. आश्रम वासियों की अपनी रूचि सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार आश्रम प्रधान के अनुरोध पर आश्रम में सेवा कार्य करना एवं अपनी कुटिया के बाहर सफाई आदि रखना आवश्यक है।

७. आश्रमवास के इच्छुक नर-नारियों में मधुर एवं सत्य-भाषण आदि आर्योचित गुण अधिक से अधिक मात्रा में होना अनिवार्य है।

३ दिनचर्या–

१. प्रत्येक आश्रमवासी को उषा काल से पूर्व ३॥ बजे घण्टी बजने पर उठकर ५॥ बजे तक तथा सायं ऋतु के अनुसार निर्धारित एक घण्टा मौन रखना होता है। और मौन वेला में ईश्वर चिन्तन अभ्यास ,संध्या, स्वाध्याय, नित्य कर्म करने होते हैं।

२. प्रत्येक आश्रम वासी को आश्रम में होने वाले प्रातः दो घण्टे और सायं एक घण्टा यज्ञ और सत्संग में सम्मिलित होना अनिवार्य है। विशेष रुग्णावस्था में तथा प्रधान की अनुमति से कार्यरत रहने की अवस्था में नियम का विकल्प माना जायगा।

३. अपनी रूचि अनुसार आश्रम वासियों को संस्कृत और हिन्दी की कक्षाओं में सम्मिलित होकर ज्ञान वर्धन करना चाहिए।

——o——

परिशिष्ट ३

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ संन्यास आश्रम)

के पदाधिकारियों

वर्ष तथा निर्वाचन तिथि	प्रधान सर्व श्री –	उपप्रधान सर्व श्री –	मन्त्री सर्व श्री –
१९२६ से १९३२	महात्मा नारायण स्वामी जी	–	भगत सुन्दरदास जी
२२-५-२६, १९३३	,,	—	सुन्दरलाल जी
१९३४	,,	—	प्यारेलाल वैश्य
१९३७	,,	—	स्व० ब्रह्मानन्द जी
१९४१	,,	—	स्व० विज्ञानानन्द जी
१९४२	,,	—	स्व० जीवन मुनि जी
१९४४	,,	—	भगत सुन्दरदास जी
१९४७	महात्मा नारायण स्वामी जी	—	ज्योति प्रसाद
	स्व० वेदानन्द सरस्वती		
१९४८	स्वामी	मोहनलाल	म० हरप्रकाश
१९४९	वेदानन्द	राम सहाय	
२१-१२-४९	तीर्थ		
२९-८-५० तक	बालमुकन्द		
१७-८-५२	राम सहाय	बूटाराम	बालमुकन्द
१७-४-५३	बूटाराम	राम सहाय	हरप्रकाश
१८-४-५४	बूटाराम	राम सहाय	हरप्रकाश
११-४-५५	बूटाराम	राम सहय	हरप्रकाश
१४-४-५६	हरप्रकाश	स्वा० अथर्वानन्द	राम सहाय
१८-४-५७	हरीराम	स्वा० अथर्वानन्द कौशल्या सेठी	राम सहाय
२५-७-५७ से	स्व० अथर्वानन्द	पं० बूटाराम २५-७-५७ से	
१६-४-५८	गोपाल कृष्ण पिपलानी	स्व० अथर्वानन्द हरीराम	श्री देव मुनि
३-५-५९	महात्मा हरप्रकाश	स्वा० अथर्वानन्द देव मुनि	ज्योति प्रसाद
१७-४-६०	महात्मा हरप्रकाश	देव मुनि हरी नाम कौशल्या सेठी	ज्योति प्रसाद

ज्वालापुर (सहारनपुर)

की सूची

सहायक एवं उपमन्त्री	कोषाध्यक्ष	पुस्तकाध्यक्ष	टिप्पणी
सर्व श्री —	सर्व श्री—	सर्व श्री—	
	महाशय मुकन्दलाल		
			नारायण स्वामी जी का देहावसान १५-१०-४७
ज्योति प्रसाद	बद्रीप्रसाद	रामगोपाल	
रामगोपाल	ज्योति प्रसाद	किरोडीमल	
ज्योति प्रसाद	देवदत्त शर्मा	किरोडीमल	
—	—	—	
ज्योति प्रसाद स० रेवती प्रसाद	देवदत्त शर्मा	किरोडीमल	
स० ज्योति प्रसाद उप रेवती प्रसाद	देवदत्त शर्मा	किरोडीमल	
ज्योति प्रसाद डा० हरदयाल	देवदत्त शर्मा	किरोडीमल	
स० ज्योति प्रसाद उप० डा० हरदयाल	देवदत्त शर्मा	किरोडीमल	
स० डा० हरदयाल उप० रेवती प्रसाद	देवदत्त शर्मा	किरोडीमल	
स० कृपाराम उप रेवती प्रसाद	देवदत्त शर्मा	प्यारेलाल महेन्द्र	

वर्ष तथा निर्वाचन तिथि	प्रधान सर्व श्री--	उपप्रधान सर्व श्री--	मन्त्री सर्व श्री--
१७-४-६१	गोपाल कृष्ण पिपलानी	देव मुनि कौशल्या सेठी	ज्योति प्रसाद
१८-४-६२	गोपाल कृष्ण पिपलानी	देव मुनि कौशल्या सेठी	ज्योति प्रसाद
१८-४-६३	महात्मा हरप्रकाश	गोपाल कृष्ण मुनि देव मुनि कौशल्या सेठी	ज्योति प्रसाद
१७-४-६४	महात्मा हरप्रकाश	गोपाल कृष्ण मुनि कौशल्या सेठी स्वा० अथर्वानन्द	ज्योति प्रसाद
१८-४-६५	गोपाल मुनि	देव मुनि जी नन्दलाल बख्शी कौशल्या सेठी	ज्योति प्रसाद
१७-४-६६	महात्मा हरप्रकाश	रामेश्वर प्रसाद लक्ष्मण देव कौशल्या सेठी विद्योत्मा यति	ज्योति प्रसाद
१९-४-६७	महात्मा हरप्रकाश	गोपाल मुनि लक्ष्मण देव कौशल्या सेठी	ज्योति प्रसाद
१७-४-६८	महात्मा हरप्रकाश	बृज बिहारी गोपाल मुनि लक्ष्मण देव कौशल्या सेठी	ज्योति प्रसाद
१७-४-६९	महात्मा हरप्रकाश	बृज बिहारी ज्योति प्रसाद रामेश्वर प्रसाद कौशल्या सेठी	बृज मोहन
१६-४-७०	महात्मा हरप्रकाश	रामेश्वर प्रसाद बृज बिहारी कौशल्या सेठी शिवदयालू	ज्योति प्रसाद

सहायक एवं उपमन्त्री	कोषाध्यक्ष	पुस्तकाध्यक्ष	टिप्पणी
सर्व श्री-- स॰ कृपाराम उप॰ रेवती प्रसाद	सर्व श्री— देवदत्त शर्मा	सर्व श्री-- नारायण दास गर्ग	
स॰ कृपाराम उप॰ रेवती प्रसाद	देवदत्त शर्मा	आनन्द गर्ग	
कृपाराम रेवती प्रसाद प्यारेलाल महेन्द्र	देवदत्त शर्मा	आनन्द गर्ग	
कृपाराम रेवती प्रसाद प्यारेलाल महेन्द्र	देवदत्त मुनि	किरोडीमल	
सीताराम रेवती प्रसाद कृपाराम प्यारेलाल महेन्द्र	देवदत्त मुनि	महात्मा लक्ष्मण दास	
रेवती प्रसाद कृपाराम यदुवंश सहाय	विष्णु प्यारी	आनन्द गर्ग	
वृज बिहारी कृपाराम रेवती प्रसाद	विष्णु प्यारी	आनन्द गर्ग	
कृपाराम रेवती प्रसाद आनन्द मुनि	अमरनाथ नईयर	प्यारेलाल महेन्द्र	
आनन्द मुनि रेवती प्रसाद यदुवंश सहाय	विष्णु प्यारी	लक्ष्मी नारायण	
वृज मोहन आनन्द मुनि रेवती प्रसाद	विष्णु प्यारी	लक्ष्मी नारायण	

वर्ष तथा निर्वाच तिथि	प्रधान सर्व श्री —	उपप्रधान सर्व श्री —	मन्त्री सर्व श्री —
१६-४-७१	रामेश्वर प्रसाद	बृज बिहारी शिवदयालू कौशल्या सेठी	बृजमोहन
२०-४-७२	महात्मा हरप्रकाश	बृज बिहारी रामेश्वर प्रसाद कौशल्या सेठी	बृज मोहन
२०-४-७३	महात्मा हरप्रकाश	बृज बिहारी रामेश्वर प्रसाद कौशल्या सेठी	जगदीश मुनि
२०-४-७४	कवि० हरनामदास	बृज बिहारी कौशल्या सेठी पं० शिवदयालू पुष्पावती मोंगा	जगदीश मुनि
१९७५ २१-५-७५	कवि० हरनामदास कौशल्या सेठी	शिवदयालू यदुवंश सहाय पुष्पावती मोंगा	जगदीश मुनि कल्याण स्वरूप २१-५-७५ से
१९७६ ११-९-७६ से	कौशल्या सेठी यदुवंश सहाय	शिवदयालू यदुवंश सहाय पुष्पावती मोंगा बृज मोहन ११-९-६७ से	कल्याण स्वरूप १०-९-७६ तक जगदीशचन्द्र मुनि ११-९-७६ से
१८-४-७७	आर्य भिक्षु जी	जगदीश मुनि शिवदयालू पुष्पावती मोंगा	कल्याण स्वरूप

—o—

उप-मन्त्री	कोषाध्यक्ष	पुस्तकाध्यक्ष	टिप्पणी
सर्वं श्री—	सर्व श्री—	सर्व श्री—	
कल्याण स्वरूप	विष्णु प्यारी	लक्ष्मी नारायण	
लक्ष्मी नारायण	जगदीश मुनि	उपमन्त्री	
चेतन मुनि	९-८-७१ से		
आनन्द मुनि			
ज्योति प्रसाद	जगदीश मुनि	सोहनलाल	
कल्याण स्वरूप			
रेवती प्रसाद			
आनन्द मुनि			
ज्योति प्रसाद	वृज मोहन	गया प्रसाद	
आनन्द मुनि			
कल्याण स्वरूप			
रेवती प्रमाद			
ज्योति प्रसाद	प्रतापचन्द्र महता	माधो प्रसाद	
आनन्द मुनि			
रेवती प्रसाद			
सुबीरादेवी			
ज्योति प्रसाद	प्रतापचन्द्र महता	माधो प्रसाद	
रेवती प्रसाद			
सुबीरा देवी			
ज्योति प्रसाद	प्रतापचन्द्र महता	माधो प्रसाद	
रेवती प्रसाद			
सुबीरा देवी			
जगदीशचन्द्र मुनि			
१-१-७६ से १०-९-७६ तक			
केशव मुनि			
११-९-७६ से			
केशव मुनि	प्रतापचन्द्र महता	माधो प्रसाद	
रेवती प्रसाद			
सत्यवता			

—o—

आश्रमवासियों की सूची

(पुरुष – जिनका परिचय स्मारिका में दिया गया है)

क्रम संख्या	नाम	जन्म वर्ष – सन्	विवरण
	सर्वश्री —		
१	महात्मा आनन्द स्वामी जी	१८८२	दिवंगत
२	महात्मा प्रभु आश्रित जी	१८८३	"
३	देवदत्त जी	१८८४	"
४	रामरतनलाल जी	१८८७	"
५	श्रीदेवमुनि जी	१८८८	
६	विष्णुमित्र जी	१८९०	दिवंगत
७	स्वामी सत्यानन्द जी मथुरा वाले	१८९२	"
८	महता प्रतापचन्द्र जी श्रीमती परमेश्वरीदेवी	१८९०	
९	डा० हरदयाल वर्मा	१८९३	दिवंगत
१०	चाननलाल जी आहूजा	१८९३	
११	स्वामी ब्रह्ममुनि जी	१८९४	दिवंगत
१२	स्वामी चिदानन्द जी	१८९४	
१३	कविराज हरनामदास जी	१८९५	दिवंगत
१४	कृष्णमुनि वैद्य	१८९५	
१५	करोड़ीमल जी	१८९५	दिवंगत
	श्रीमती मनभरीदेवी	१९०१	"
१६	चैतन्य मुनि	१८९६	"
	श्रीमती बसन्तीदेवी		"
१७	बाबूराम महाजन	१८९६	
१८	हंसराज जी सोनी	१८९६	
१९	स्वामी विशुद्धानन्द जी	१८९७	
२०	पं० महेन्द्रदेव शास्त्री	१८९८	
२१	रघुनाथ प्रसाद जी	१८९९	
२२	सोहनलाल जी	१८९९	दिवंगत
२३	पं० शिवदयालु जी	१९००	
२४	पं० नन्दलाल वैदिक मिशनरी	१९००	
२५	महाशय रामदास जी रंगवाले	१९००	दिवंगत
२६	विद्यानिधि जी सिद्धान्तालंकार	१९००	
२७	वगेशरनाथ जी सेठ	१९००	दिवंगत
२८	स्वामी धर्मानन्द सरस्वती	१९०१	
२९	यज्ञेश्वर जी वानप्रस्थ	१९०१	

क्रम संख्या	नाम	जन्म वर्ष – सन्	विवरण
	सर्वश्री—		
३०	आचार्य सुखदेव जी विद्यावाचस्पति	१९०२	दिवंगत
	श्रीमती प्रभावती जी		"
३१	जनार्दनदेव जी विद्यालंकार	१९०२	
	श्रीमती सत्यवती पुरी		
३२	माधवप्रसाद जी	१९०२	
	श्रीमती विद्यावती		
३३	गयाप्रसाद जी सक्सेना	१९०२	
३४	रामेश्वर प्रसाद जी	१९०२	दिवंगत
३५	डा० जगतराम जी आर्य	१९०३	
३६	स्वामी विवेकानन्द जी	१९०३	
	श्रीमती परमेश्वरी आर्या		
३७	पं० ऋषिराम जी	१९०३	
३८	आनन्द मुनि जी	१९०३	
३९	गुरुचरणलाल जी आनन्द	१९०३	दिवंगत
४०	कल्याणस्वरूप जी	१९०५	
	श्रीमती शान्तिदेवी		
४१	केशव मुनि जी	१९०५	
	श्रीमती सुहागवन्ती जी		
४२	पञ्च मुनि जी	१९०५	
४३	यदुवंश सहाय जी	१९०५	
४४	आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति	१९०६	
४५	डा० हरदेवप्रसाद जी मेहता	१९०६	
	श्रीमती सत्यवती		
४६	जगदीशचन्द्र जी जौहरी	१९०७	
	श्रीमती विद्यावती जी जौहरी		
४७	वृजमोहनलाल जी	१९११	
४८	इन्द्रदेव जी खोसला	१९११	
४९	चाननलाल जी सलूजा	१९११	
	श्रीमती शान्तिदेवी जी		

क्रम संख्या	नाम	जन्म वर्ष – सन्	विवरण
	सर्वश्री—		
५०	नवनीतलाल जी	१९११	
५१	ज्ञानमित्र जी खोसला	१९१२	
	श्रीमती सुशीला देवी		
५२	रामकिशनदास जी	१९१४	
५३	ओम्प्रकाश जी मुजफ़्फर नगर	१९२०	
५४	गुरुचरणदास जी जिज्ञासु	१९२०	दिवंगत
५५	जयन्तीप्रसाद जी मेरठ	१९२१	
५६	पं० जियालाल शर्मा	१९२२	
	श्रीमती लीलावती जी		
५७	महात्मा आर्यभिक्षु जी	१९२३	
	श्रीमती लीलावती जी		
५८	गंगाशरण जी मित्तल	१९२८	
	श्रीमती कुसुमलता जी		
५९	कर्मवीर बंसल जी	१९३२	
६०	स्वामी सत्यानन्द अवधूत	—	
६१	हरिश्चन्द्र मुनि जी	—	
	श्रीमती सत्यवती जी सूद		
६२	प्यारेलाल जी जज		दिवंगत
	श्रीमती यशोदा देवी जी		

(देवियां – जिनका परिचय स्मारिका में दिया गया है)

६३	सुखदेवी जी	१८६६	
६४	वासन्तीदेवी जी	१८७६	
६५	आवां बाली जी	१८९५	

क्रम संख्या	नाम	जन्म वर्ष – सन्	विवरण
	सर्वश्रीमती —		
६६	सरस्वती जी जिज्ञासु	१८९७	
६७	दुर्गादेवी जी	१८९९	
६८	लाजवन्तीदेवी जी गुजराल	१८९९	
६९	सीतादेवी जी आनन्द	१९००	
७०	सरस्वतीदेवी जी	१९०२	
७१	सुवीरादेवी जी	१९०२	
७२	यशोवती जी	१९०५	
७३	विद्यावती जी पाठक	१९०५	
७४	गायत्रीदेवी जी (श्री भूदेव जी)	१९०५	
७५	कमला जी गुप्ता	१९०६	
७६	डा० रामप्यारी जी	१९०६	
७७	तेजकौर जी	१९०७	
७८	रानी जी कपूर	१९०७	
७९	नारायणी देवी जी	१९०८	
८	सुमतीदेवी जी मेरठ	१९१०	
८१	आनन्दा यति जी	१९१०	
८२	राजरानी जी विशारद	१९१०	
८३	सत्यप्रिया जी	१९११	
८४	राजरानी जसूजा	१९११	
८५	सुनीतिदेवी जी	१९१२	
८६	चन्द्रवती जी	१९१४	
८७	पुष्पावती जी	१९१४	
८८	सीता आर्या जी चण्डीगढ़	१९१४	
८९	चन्द्रवती जी पानीपत	१९१४	

क्रम संख्या	नाम	जन्म वर्ष – सन्	विवरण
	सर्वश्रीमती—		
६०	भगवतीदेवी जी एम. ए., एल. टी.	१६१५	
६१	भगवानदेवी जी	१६१७	
६२	वीरा बाई जी (श्री चिरंजीलाल जी)	१६१८	
६३	विद्यावती जी खुराना	—	
६४	कुन्ती मुनि जी	—	
६५	सुश्री कमला आर्या	१६२६	

---०---

पंजाबी आर्यों के प्राण; प्रभावशाली एवं भक्ति सम्पूर्ण व्याख्याता; योग में कृत-परिश्रम;
देश-विदेशों में वेद-प्रचारक; हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम के तृतीय सर्वाधिकारी

महात्मा आनन्द स्वामी

जन्म : संवत् १९४० निधन : संवत् २०३४

श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी

अप्राप्त

श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी

१ नाम : आनन्द स्वामी

२ पूर्व नाम : खुशहालचन्द खुरसन्द

३ जन्म तिथि : १८८२ ई०

४ जन्म स्थान : जलालपुर जट्टां (गुजरात)

५ पिता का नाम : श्री गणेशदास सूरी

६ शिक्षा : साधारण

७ विवाह : सन् १९०७

८ व्यवसाय : 'आर्य गजट' कार्यालय में अकाउन्टेंट (१९०७)। बाद में नौकरी छोड़ कर 'मिलाप पत्र' की स्थापना (१९२३)। पाकिस्तान बनने के उपरान्त लाहौर से दिल्ली में स्थानान्तरण और हिन्दी एवं उर्दू 'मिलाप' का यहीं से प्रकाशन (१९४७)।

९ सेवा कार्य : प्रारम्भ में आर्थिक स्थिति साधारण। गायत्री मंत्र पर बाल्यावस्था से ही आस्था। महात्मा हंसराज के सेवा कार्यों में पूर्णरूप से हाथ बटाते हुए आर्यसमाज के संगठन तथा वैदिक धर्म प्रचार में विशिष्ट प्रयत्न। महात्मा हंसराज के निधन के उपरान्त उनके क्षेत्र से सम्बन्धित आर्यसमाजों, शिक्षण संस्थाओं का संचालन-सूत्र ग्रहण। प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान। हैदराबाद सत्याग्रह के तृतीय सर्वाधिकारी बनकर एक विशाल जत्थे सहित हैदराबाद पहुचना (१९३९)। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के अवसर पर स्वागताध्यक्ष (१९६१)। हैदराबाद में सम्पन्न दशम आर्य सम्मेलन के अध्यक्ष (१९६८)। मारीशस में सम्पन्न द्वादश सार्वदेशिक आर्य सम्मेलन में नेतृत्व। अन्तर्राष्ट्रीय आर्य समाज स्थापना शताब्दी समारोह के अध्यक्ष (१९७५)। वैदिक धर्म के प्रचार के लिए अफीका, ब्रह्मा, जापान तथा इंगलैण्ड की धर्म-यात्रायें।

१० संन्यास दीक्षा : जमुनानगर में स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा सन्यास दीक्षा तथा आनन्द स्वामी नामकरण (१९४९)।

११ विशेष : योग की तरफ विशेष अभिरुचि। आर्यवानप्रस्थाश्रम को योगाश्रम खोलने के लिए ८०० वर्गगज भूमि का दान।

—o—

महात्मा प्रभु आश्रित जी

अप्राप्त

महात्मा प्रभु आश्रित जी

१ नाम : श्री प्रभुआश्रित ।

२ बाल्यनाम : टेका ।

३ जन्म स्थान : जतोई ।

४ जन्म तिथि : सन् १८८३ ई०

५ पिता का नाम : श्री दौलतराम जी ।

६ माता का नाम : माता समाई बाई ।

७ शिक्षा : बाल्यकाल में संस्कृत तथा फारसी का स्कूल में अध्ययन । कुशाग्र बुद्धि । किन्तु धनाभाव के कारण शिक्षा प्राप्ति की सुविधा अप्राप्त ।

८ व्यवसाय : यज्ञ पर अगाध श्रद्धा । हजारों यज्ञ स्वयं किये । और हजारों ही कराये निष्ठावान याज्ञिक होने के कारण गांव गांव में पूजे जाते । यज्ञ को स्वर्ग के द्वार तक पहुंचने का हेतु मानते थे । सुधारक भी थे। अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से दैनिक यज्ञ करने की प्रतिज्ञा करवाते । तामसिक आहारी के लिये यज्ञ का अधिकार नहीं मानते थे । यज्ञ करने वाले को पीत वस्त्र धारण करने के लिये प्रेरित करते। गायत्री को यज्ञ का प्राण मानते । किसी को सवा लाख एवं किसी को एक एक करोड़ गायत्री जाप की दीक्षा देते । यही उनका व्यवसाय था ।

९ विशेष : अल्पायु में पिता की मृत्यु के कारण अर्थाभाव का सामना करना पड़ा । छात्र जीवन अत्यन्त कष्ट में बीता । छात्र जीवन की सामान्य सुविधा तो दूर रही कई कई दिन निराहार बीत जाते । मीलों नंगे पांव पैदल जाकर जलती तपती रेत और कड़ाके की सर्दी सहन करते हुए स्कूल पहुंचते । इनकी निर्धनता का उपहास भी कई बार किया गया । तमाशा बनाने के लिए स्कूल के कुछ अध्यापक उन्हे कचहरी के सामने खड़ा कर देते और प्रत्येक अभियुक्त से एक एक पैसा मंगवाते तथा चौसठ पैसे एकत्रित हो जाने पर इनकी पीठ पर उपहास पूर्वक थपकी देते हुए काफी देर तक हंसते रहते । अपमान के इस विष को ये चुपचाप पीजाते। विवाहित थे सन्तान के नाम पर एक पुत्र ही था । उसकी अकाल मृत्यु हो जाने पर इन्होने इस आघात को शान्ति पूर्वक सहन किया । यज्ञानुष्ठान से ही इस वेदना पर विजय पाई ।

— —

श्री पं० देवदत्त जी

श्री पं० देवदत्त जी

१ नाम : देवदत्त

२ जन्मतिथि : सन् १८८४ ई०

३ जन्म स्थान : मालपुर

४ शिक्षा : मैट्रिक । १९०५ में रुड़की में ओवरसीयर की शिक्षा ।

५ व्यवसाय : बर्मा गये सर्विस के लिए । वहां चालीस वर्ष तक निरन्तर सेवा नियुक्त रह कर एवं एस० डी० ओ० होकर सन् १९४८ में भारत वापस । वहां बर्मा की आर्य समाज में मन्त्री तथा प्रधान पदों पर कार्य किया ।

६ दीक्षा : आर्य वानप्रस्थाश्रम में १९५१ में प्रविष्ट हुए और लगन के साथ कोषाध्यक्ष का काम करते रहे । अस्वस्थ हो जाने पर कोषाध्यक्ष के काम से निवृत्त होकर १९७६ में अजमेर अपने कनिष्ठ पुत्र प्रियव्रत गौतम के पास चले गये । इस समय आयु ९४ वर्ष ।

७ विशेष : सम्पूर्ण परिवार आर्यसमाजी । जब बड़ी पुत्री सावित्री का विवाह १९२४ में हुआ तो वधू का खुले मुंह बेदी पर बैठना एक नई ही बात समझी गई ।

८ सन्तान : पं० देवदत्त जी की सभी सन्तानें आर्य समाज की सेवा करती हैं । वाराणसी में शताब्दी समारोह के प्रधान सूत्रधार उनके द्वितीय पुत्र पं० यज्ञदत्त जी ही थे ।

—०—

श्री रामरतनलाल जी

श्री राम मुनि जी

१ नाम— राम रतनलाल (मजिस्ट्रेट फर्स्टक्लास ।)

२ वर्तमान नाम : राम मुनि ।

३ जन्म स्थान : नजीबाबाद जिला बिजनौर ।

४ जन्म तिथि : श्रावण कृष्णा, ६ संवत १९८८ ई० सन् १८८७ ।

५ शिक्षा : बी० ए० एल० एल०बी० वकील ।
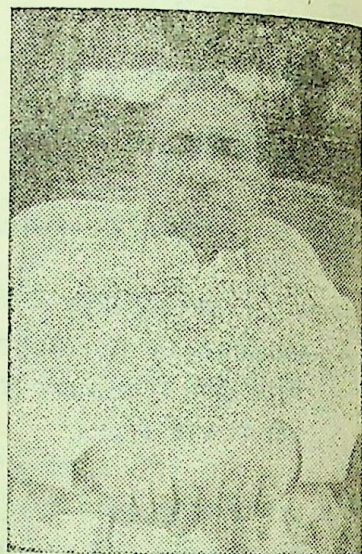
६ व्यवसाय : प्रारम्भ में वकालत की प्रेक्टिस । १९२४ में मैहर रियासत (बघेल खण्ड) में मजिस्ट्रेट फर्स्ट क्लास । १९३३ में त्याग पत्र । बांदा उत्तर प्रदेश में स्पेशल मजिस्ट्रेट । इस पद पर रहते हुए १९४८ में सेवा से अवकाश ।

७ विशेष : ११ वर्ष की आयु में ही आर्यसमाज के प्रति अभिरुचि । आर्य समाज ललितपुर (उत्तर प्रदेश) के प्रधान (१९२०) । दयानन्द निर्वाण आर्य अर्द्ध शताब्दी उत्सव में सक्रिय भाग (१९३३)आर्य । प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अन्तरंग सभा के बुन्देल खण्ड की ओर से सदस्य (१९३७) । हिन्दी, संस्कृत, उर्दू एवं अंग्रेजी का उत्कृष्ट ज्ञान ।

८ दीक्षा : आर्य वानप्रस्थाश्रम में वानप्रस्थ दीक्षा (४ मार्च१९५८) । स्वर्गीया माता पार्वतीदेवी जी की स्मृति में आश्रम में एक कुटिया का निर्माण (१९६२) । आश्रम में रहते हुए उपनिषद, योगदर्शन, न्याय दर्शन, सांख्यदर्शन, गीता आदि के अध्ययन के उपरान्त चारों वेदों का चार बार अध्ययन (७ अप्रैल १९६३ तक) ।

९ रचना : 'गायत्री महामन्त्र की व्याख्या और गरिमा' नामक पुस्तक लिखी, जिसका द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हुआ ।

१० दान : अपनी धर्म पत्नी शीलवती रामरतन की स्मृति में एक ट्रस्ट की स्थापना (१५ जनवरी १९६०) । महर्षि दयानन्द ट्रस्ट की स्थापना (३० मई १९६८) । दोनों ट्रस्टों के द्वारा अनेक छात्रवृत्तियाँ तथा अनुदान के रूप में दान दिया जाता है ।

११ निधन : १९७२ से अपने पुत्र डा० ब्रजमोहन के साथ बम्बई में रहने लगे । वहाँ ७ अगस्त १९७५ को देहावसान । धर्मपत्नी का देहान्त २७ जन० १९४९ में ।

श्री श्रीदेव मुनि

श्री देवमुनि जी

१ जन्म नाम : श्री देवी प्रसाद ।

२ वर्तमान नाम : श्री देव मुनि ।

३ जन्म स्थान : महेबागढ़ी जिला लखीमपुर उत्तर प्रदेश ।

४ जन्म तिथि : सन् १८८८ ।

५ शिक्षा : मैट्रिक (१९०८) । जुबिली कालिज लखनऊ में प्रवेश । लगभग बी०ए० तक शिक्षा ।

६ व्यवसाय : हाईकोर्ट लखनऊ में नौकरी (सन् १९११) ।

७ विशेष परिचय : नगर आर्यसमाज का मन्त्रि पद । स्कूल खोलने, दलितोद्धार, शुद्धि कार्य तथा शास्त्रार्थ करने में विशेष रुचि । दहेज प्रथा, वेश्या नृत्य,मदिरा पान तथा अश्लील भजनों का विरोध तो ११ वर्ष की आयु में ही प्रारम्भ कर दिया था । प्रसिद्ध क्रान्तिकारी खुदी राम बोस की फांसी के समाचार से क्रान्ति तथा देश-भक्ति की भावना का उदय । अछूतों से बनबाकर सह भोज तथा हरिजन पाठशालाओं का संचालन (१९१२) । सड़कों के चोराहों पर खड़े होकर ईसाई तथा इस्लाम मतों का खण्डन (१९१३) । नवीन आर्य समाज सिविल लाइन्स की स्थापना (१९१८) । हिन्दू विधवाश्रम की स्थापना (१९१९) उत्तर प्रदेश आर्य कोआपरटिव वैंक की स्थापना (१९२०) । बच्चों के स्कूल की स्थापना (१९३६) । मन्त्री आर्य समाज सिविल लाइन्स एवं प्रधान (१९३५ से १९३७ तक) । धर्मपत्नी का देहान्त (१९३७) । सहायक मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश (१९४७ से १९५५ तक ।)

८ दीक्षा : वानप्रस्थाश्रम में आगमन (१९५६) । वानप्रस्थ दीक्षा (१९५८) श्री स्वा० धर्मानन्द जी द्वारा । इसी वर्ष आश्रम के मन्त्री तथा आश्रम का रजतजयन्ती समारोह मनाया । बाद में कई वर्षों तक उपप्रधान भी । संप्रति आयु ९० वर्ष है । किंचित अस्वस्थ रहते हैं ।

०—०

श्री विष्णुमित्र जी

श्री विष्णुमित्र जी

१ नाम : विष्णु मित्र (पूर्व नाम बन्नाराम)

२ जन्म स्थान : मुलतान (अब पाकिस्तान में)

३ जन्म तिथि : १७ जुलाई १८९० ई०

४ शिक्षा : मैट्रिक तक

५ नौकरी : सन् १९१४ ई० में *Military Accounts Department* में भरती हुए

सन् १९३० ई० में सुपरिन्टेन्डेन्ट और सन् १९४५ ई० में एकाउन्ट्स आफिसर के पद से सेवा निवृत्त हुए ।
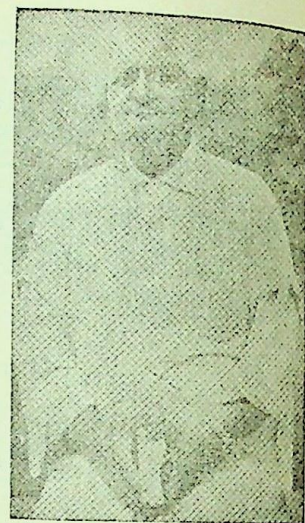
६ गुण : (क) श्रम में विश्वास "चरैवेति चरैवेति" इस वेद के आदेश का पालन सदा किया ।

(ख) आर्य समाज से प्रेम—प्रारम्भ से ही आर्यसमाज से सम्बन्ध रहा । गुरुकुल के उत्सवों तथा आर्य समाज के उत्सवों पर पहुंचकर दान देते रहे । अपने पुत्र धर्मवीर को गुरुकुल कांगड़ी का स्नातक बनाया ।

(ग) देशभक्ति—सन् १९३० में सरकारी कार्यालय में सुपरिन्टेन्डेन्ट होते हुये भी साबरमती आश्रम में महात्मा गांधी के पास ६ मास रहे और बुनाई, कताई का कार्य सीख कर लाहौर में सामूहिक प्रशिक्षण देते रहे ।

(घ) ज्ञान की प्यास—सन् १९६४ ई० में आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में आकर ७५ वर्ष की आयु से संस्कृत पढ़ी तथा सत्यार्थप्रकाश की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं । ज्योतिष में भी उनकी अच्छी गति थी ।

(ङ) दानशीलता—आश्रम में कुटिया बनवाई तथा कई अन्य दान दिये—वेदप्रचार के लिए १०००) रु० की स्थिर निधि कायम की । अपनी आमदनी का तीन चौथाई भाग धार्मिक कार्यों में व्यय करते थे । रहन-सहन को बिल्कुल सादा रखते थे ।

श्री स्वामी सत्यानन्द जी

श्री स्वामी सत्यानन्द जी

१ नाम : सत्यानन्द स्वामी

२ जन्म नाम : हरिहेतलाल

३ जन्मतिथि : सन् १८६१

४ जन्म स्थान : बल्लभगढ़ भरतपुर राज्य

५ शिक्षा : साधारण । प्राइमरी तक

६ व्यवसाय : सोलह वर्ष की अवस्था में व्यापार की लाइन अपनाई और ईमानदारी से धनोपार्जन कर ३२ वर्ष की आयु में व्यापार समाप्ति । इस अन्तराल में दो विवाह किये । प्रथम से दो, द्वितीय से तीन सन्तानें ।

७ सेवा कार्य : पांच सहस्र रुपये की लागत से आर्य समाज भवन का निर्माण (१९१९) । आर्य विद्यालय एवं एक रात्रि पाठशाला की स्थापना (१९२३) । एक औषधालय (सन् १९२८) । एक पुत्री पाठशाला (१९३५) हैदराबाद सत्याग्रह में सक्रिय भाग (१९३९) । प्रजा परिषद के आन्दोलन में जेल यात्रा (१९४२) । महिला विद्यापीठ भुसावर की स्थापना (१९४५) । सन्यास दीक्षा तथा सत्यानन्द नाम ग्रहण (१९५०) । आर्य-वानप्रस्थाश्रम में साधना (१९५०-५१) । इसी समय में आश्रम में एक कुटिया बनवाई । पैदल यात्रा मथुरा से अयोध्या (१९५२) । पंजाब के हिन्दी सत्याग्रह में सक्रिय भाग (१९५७) । श्री विरजानन्द वैदिक साधनाश्रम मथुरा की स्थापना तथा 'सत्यप्रकाशक ग्रन्थ माला' का प्रारम्भ (१९६०) ।

८ देहावसान : सन् १९६३ । समय ब्रह्म मुहूर्त ।

श्री महता प्रतापचन्द जी

१ नाम : श्री प्रतापचन्द
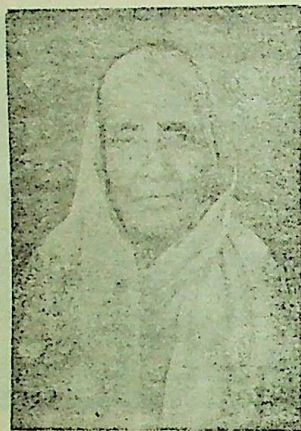
२ जन्म स्थान : नूरपुर, जिला कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)

३ जन्म तिथि : २१ ज्येष्ठ सं० १९४९ तदनुसार ३ जून १८९२।

४ शिक्षा : बी० ए० (१९१८)। प्रारंभिक शिक्षा रियासत जम्मू, माध्यमिक शिक्षा स्टेट हाईस्कूल श्रीनगर, उच्च शिक्षा श्री प्रताप कालिज।

श्रीमती परमेश्वरीदेवी
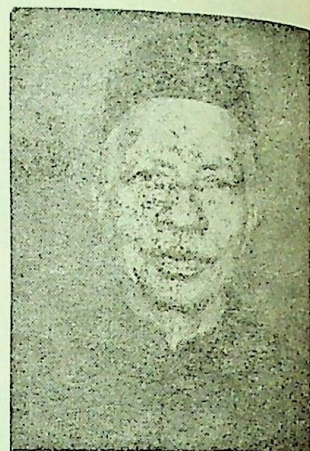
श्री महता प्रतापचन्द जी

५ व्यवसाय : मिलिटरी अकाउन्ट्स आफिस लाहौर में क्लेरिकल ग्रेड में राजकीय सर्विस। पिता श्री मोहनलाल जी वकील बनाना चाहते थे। किन्तु वकालत में असत्य व्यवहार करना पड़ता है इसलिए यह लाइन अस्वीकृत कर दी। माता सीतादेवी अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। ३६ वर्ष राजकीय सर्विस की जिसके कारण लाहौर, फिरोजपुर, करांची, पूना, बंगलौर, मथुरा, पालमपुर आदि स्थानों पर काम किया। जहां भी गए आर्य समाज में सक्रिय भाग लिया। मथुरा छावनी में नई समाज की स्थापना। पालमपुर आर्य समाज में सक्रिय भाग तथा अनेक वेदपारायण यज्ञ। फिरोजपुर में 'माता भगवन्ती हाल' स्त्री समाज के लिए बनाया तथा धन एकत्र किया। १९४७ में पाकिस्तान बन जाने से लाखों शरणार्थी फिरोजपुर आये उनकी दिन रात सेवा। ३० नवम्बर १९५४ में सेवा निवृत्त होकर फिरोजपुर अनाथालय की सेवा। १९५७ में हिन्दी आन्दोलन में भाग लेकर सत्याग्रहियों की सेवा।

६ वानप्रस्थाश्रम में : १९७२ में।

७ दीक्षा : ८ जून १९७३, स्वामी सर्वानन्द जी द्वारा। दयानन्द मठ दीनानगर में। अगस्त १९७३ से कोषाध्यक्ष का कार्य आश्रम में।
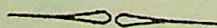
श्री डा० हरदयाल वर्मा

श्री डा० हरदयाल वर्मा

१ जन्मस्थान : कमालिया जि० लायलपुर

२ जन्म तिथि : ३ जनवरी सन् १८९३ ई०

३ पिता का नाम : ला० मत्तूराम, सन्यास के बाद स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ।

४ शिक्षा : मैट्रिक, पञ्जाब विश्वविद्यालय सन् १९१० ई०

५ नौकरी : सैनिटरी इन्सपेक्टर कमालिया सन् १९११-२१ ई०

६ विवाह : सन् १९१२ ई० धर्मपत्नी अभी जीवित है
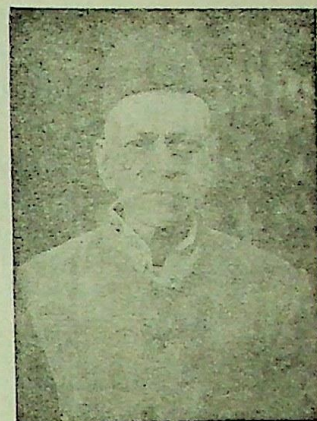
७ निजी प्रैक्टिस : सन् १९२१ – १९४७ कमालिया व अमृतसर

८ होम्योपैथिक डिग्री : सन् १९२८ ई०

९ नौकरी : सैनिटरी इन्सपेक्टर कैम्पों में अम्बाला १९४७ – १९५०

१० निजी प्रैक्टिस : जालन्धर में १९५१ – १९५३

११ आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वाला पुर : १९५४ – १९७८

१२ वानप्रस्थ दीक्षा : सन् १९६१ ई०

१३ सन्तान : ३ पुत्र एवं ५ पुत्रियां

१४ आर्य समाज में रुचि :

सन् १९२१ में जब अमृतसर में निजी प्रैक्टिस आरम्भ की तब से आर्यसमाज के नियमपूर्वक सदस्य बन गये थे । सन् १९३१ से सन् १९४७ तक आर्यसमाज के सक्रिय सदस्य रहे । अन्तरंग के सदस्य या उपमन्त्री पद पर भी कार्य करते रहे ।

सन् १९५४ ई० से आश्रम में आना जाना आरम्भ कर दिया था सन् १९६१ में नियमपूर्वक दीक्षा लेकर 'सरस्वती देवी होम्योपैथिक धर्मार्थ चिकित्सालय' का कार्यभार सम्भाल लिया। आपको होम्योपैथिक धर्मार्थ चिकित्सा प्रणाली का अच्छा ज्ञान है । रोगियों से शान्ति एवं नम्रता पूर्वक व्यवहार से रोगी सन्तुष्ट हो जाते थे । सन् १९६९ में पक्षाधात के हमले के कारण सेवा करने में कुछ कष्ट अवश्य हुआ परन्तु सेवा कार्य नहीं छोड़ा । सन् १९७३ में दूसरा हमला हुआ जिसने सेवा करने में असमर्थ कर दिया । तब से अगस्त सन् १९७७ ई० तक अपने बड़े लड़के के पास रहे और सितम्बर सन् १९७७ से आश्रम में ही निवास करते थे एक पुत्र उनकी सेवा में रहता था । उनका देहावसान १४ जनवरी १९७८ को हुआ ।

———

श्री चानन लाल जी अहूजा

श्री चानन लाल जी अहूजा

१ नाम : चानन लाल

२ जन्म स्थान : फाजिलका

३ जन्म वर्ष : १८९३
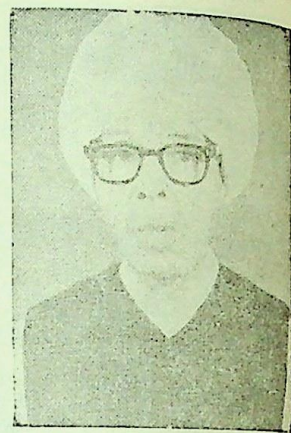
४ शिक्षा व्यवसाय तथा लोक सेवा : (१) प्रमुख व्यवसाय रूई का कारखाना जिसे सर्व प्रथम १९३४ में प्रारम्भ किया। (२) धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय (१९४२) (३) चानन लाल अहूजा म्युनिसिपल कमेटी लायब्रेरी की स्थापना। (४) निजू कोठी तथा चालीस कनाल निजू जमीन बाग सहित डी ए. वी. कालिज मैनेजिंग कमेटी दिल्ली को दान (५) अनेक वर्ष आर्य समाज के प्रधान रहने के उपरान्त कुछ सज्जनों के सहयोग से डी. ए. वी. हाई स्कूल की स्थापना तथा उसके मैनेजर पद पर प्रतिष्ठित रह कर शिक्षा प्रचार में सेवा कार्य (६) फाजिलका व्यापार मण्डल, काटन मर्चैण्टस् एसोसियेशन, साधु आश्रम पुस्तकालय कमेटी अरोड़ वंश सभा आदि कई संस्थाओं के प्रधान कई वर्ष तक (७) पचास सहस्र रुपयों के अनुदान से एक ट्रस्ट की स्थापना जिस की आय से अधिकारी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति। (८) कन्या मिडिल पाठशाला की स्थापना (९) अपने पिता श्री दौलतराम जी अहूजा की स्मृति में एक एन्टी टी बी क्लिनिक की स्थापना। (१०) एक लाख रु० के अनुदान से चानन लाल अरोड़ वंश धर्मशाला का निर्माण (११) कतिपय सज्जनों के सहयोग से मण्डी की स्थापना।

५ वानप्रस्थाश्रम की सेवा : १९६८ में आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर के दर्शनार्थ आगमन। महात्माहरप्रकाश जी के व्यवहार से प्रसन्न होकर आश्रम में एक कुटिया का निर्माण लगभग पौने सातवर्ष आश्रम में निवास आश्रम की शाखा सं० २ में एक फव्वारा तथा पक्की सड़क का निर्माण। आश्रम से विदा होते हुए अपने सहस्रों रु० का पुस्तकालय के दान के साथ ग्यारहसौ रु० का अतिरिक्त दान।

स्वर्गीय श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी

स्व० श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी

१ नाम : ब्रह्ममुनि (आजन्म ब्रह्मचारी)

२ पूर्वनाम : प्यारे लाल ।

३ जन्मतिथि : फरवरी १८९४ ई० फाल्गुन वदी त्रयोदशी ,

४ जन्मस्थान : लखनौती

५ शिक्षा : बाल्यकाल में केवल उर्दू का अध्ययन । बाद में सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ने की तीव्र अभिलाषा ने हिन्दी अध्ययन की तरफ प्रेरणा तथा सात आठ बार सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश पढ़ने पर उत्तम हिन्दी ज्ञान । संस्कृत की तरफ प्रवृति जागृत हुई । ऋषि दयानन्द कथित आर्ष प्रणाली से अष्टाध्यायी एवं महा भाष्य पढ़ने के लिये अनेक स्थानों पर गुरु की खोज में भटकना । अन्त में सफलता तथा संस्कृत एवं व्याकरण का अच्छा ज्ञान और अधिक ज्ञान प्राप्त करने बनारस की यात्रा । वहां पं० देवनारायण तिवाडी से महाभाष्य, पं०ढुण्टिराज शास्त्री से न्याय दर्शन वात्स्यायन भाष्य एवं पिङ्गलाछन्द तथा वैशेषिक दर्शन प्रशस्त पाद भाष्य । पं० प्रभुदत्त शास्त्री से ऐतरेय ब्राह्मण का अध्ययन अन्य विद्वानों से वेदान्त दर्शन एवं सूर्य सिद्धान्त आदि ग्रन्थो का अध्ययन ।

६ शिक्षादान तथा सेवा कार्य : काशी विद्यापीठ में अध्यापन जहां लालबहादुर शास्त्री भी शिष्य रहे । लखनौती में आर्यसमाज स्थापना । ब्र. व्यास देव (वर्तमान स्वामी योगेश्वरानन्द) को त्राटक शिक्षा । हैदराबाद सत्याग्रह में १९३८ में भाग । प्रचार एवं अध्यापन ।

७ संन्यास दीक्षा : १९५५ में स्वामी वेदानन्द तीर्थ से आर्य वानप्रस्थाश्रम में सन्यास दीक्षा ।

८ विशेष : तीतरों जि० सहारनपुर में प्यारेलाल नाम छोडकर प्रियरत्न नामग्रहण । सन्यासी बनकर ब्रह्ममुनि नाम गुरु ने दिया । १९५८ में गुरुकुल विश्वविद्यालय कागड़ी से विद्यामार्तण्ड उपाधि ।

९ रचनाये : लगभग ७५ पुस्तक पुस्तिकाये लिखी । इनमें से १० उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत ।

१० निवास ; आर्यवानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

११ निधन : १६ दिसं,१९७७ ।

—:०:—

श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

श्री स्वामी चिदानन्द सरस्वती

१ नाम : चिदानन्द सरस्वती (पौड़ी, गढ़वाल)

२ पूर्वनाम : दलपतसिंह नेगी

३ पिता का नाम : ठा० जगतसिंह नेगी

४ जन्म स्थान : ग्राम डाकघर, सूला, पौड़ी, गढ़वाल

५ जन्म तिथि : १ अप्रैल १८९४ ई०

६ शिक्षा : मैट्रिक (१९१९) बलवन्त राजपूत स्कूल। वहां फुटबाल, हाकी, बैडमिन्टन तथा विविध शारीरिक व्यायाम शिक्षा भी प्राप्त की और इन्हीं के नेतृत्व में भारत भर में घूमकर चांदी के कप तथा शील्डें जीतीं।
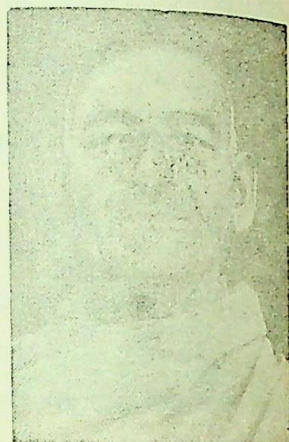
७ व्यवसाय : सरकारी सेवा कार्य ३८ वर्ष तक। सेवा कार्य से प्रसन्न होकर सरकार की तरफ से सेवाकाल की पाँचसाल अतिरिक्त वृद्धि के आदेश, मगर उन्हें अस्वीकार कर किसी धार्मिक संस्था की अवैतनिक सेवा की इच्छा हृदय में जागृत हुई।

८ वानप्रस्थाश्रम : आर्यवानप्रस्थ में आगमन (१९५८)। यहां महात्मा हरप्रकाश जी तथा महात्मा नारायणस्वामी के सत्सग से जीवन की दिशा में अद्भुत परिवर्तन। यहां रहते हुए १९५९ में श्री वेदमुनि परिव्राजक से वानप्रस्थ दीक्षा ली। माता विष्णु प्यारी, माता सीता, स्वा० ब्रह्ममुनि जी, स्वा० धर्मानन्द जी विद्यामार्तण्ड, पं० सुखदेव जी इत्यादि से धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने के अनन्तर १९६२ में 'सत्यार्थ प्रकाश शास्त्री" परीक्षा उत्तीर्ण की और पुरस्कार प्राप्त किया। अथर्ववेद भाष्य के लिए १००० रुपये का अनुदान। अपनी स्वर्गीया पत्नी तथा मातृभूमि की रक्षा में पाकिस्तान युद्ध में वीरगति प्राप्त अपने ज्येष्ठ पुत्र की स्मृति में मवाधार ग्राम के प्राइमरी स्कूल निर्माण में ५ १ रु० दान।

९ संन्यास दीक्षा : महात्मा आनन्द स्वामी द्वारा सन्यास दीक्षा (१९७२)।

१० अन्य सेवा कार्य : पर्वतीय क्षेत्रों में वेदप्रचार। सत्यार्थ प्रकाश वितरण। पौड़ी गढ़वाल में स्वामी श्रद्धानन्द आर्य पुस्तकालय तथा वाचनालय के लिए तन, मन धन से योग दान।
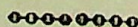
श्री कविराज हरनाम दास बी० ए०

कविराज हरनाम दास

१ नाम : हरनाम दास ।

२ जन्म स्थान : कस्बा कमर मुशानी, तहसील ईसाखेल, जिला मियांवाली

३ जन्म तिथि : सन् १८९५

४ शिक्षा : डी० ए० वी० कालिज लाहौर से बी० ए० उपाधि । तथा आयुर्वैदिक चिकित्सा की पाठविधि द्वारा कविराज की उपाधि ।

५ व्यवसाय : लुहारी दरवाजा लाहौर में चिकित्सा कार्य का प्रारम्भ (१९२०) । अपने व्यवसाय की क्रमशः वृद्धि करते हुए चिकित्सा के क्षेत्र में अच्छी ख्याति अर्जित की ।

६ विशेष परिचय : दृढ़ आर्यसमाजी । सार्वदेशिक सभा (कालिज विभाग) के सक्रिय कार्यकर्त्ता । देश में आई हुई अनेक दैवीय आपत्तियों में सेवा कार्य । आर्यसमाज अनारकली लाहौर में साप्ताहिक सत्संगों में निरन्तर भाग लेते रहे । विभाजन के पश्चात दिल्ली आये तथा गौरी शंकर मन्दिर के नीचे नये सिरे से दुकान की स्थापना की पुष्कल धनोपार्जन करते हुए उदारता पूर्वक दान दिया ।

७ रचनायें : हिदायत नामा गिजा । हिदायत नामा खाबिन्द । हिदायत नामा बीबी । हिदायत नामा सेहत । परवरिश ए बाचगान पुस्तके इतनी प्रसिद्ध हुईं कि उर्दू, पंजाबी, तिलगू, गुजराती तथा मराठी भाषाओं में भी इनके अनुवाद हुए ।

८ आश्रम वास : अपने कार्य का भार अपने योग्य पुत्र कविराज महाराज कृष्ण के सबल कन्धों पर डाल वानप्रस्थाश्रम ग्रहण किया : आश्रम के प्रधान रहे (१९७४;७५) ।

९ निधन : तीरथ राम अस्पताल दिल्ली (१८ जून १९७७) ।

०—०

श्री कृष्ण मुनि वैद्य

श्री कृष्णमुनि वैद्य

१ नाम : कृष्णमुनि वैद्य कुटी १६६ आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

२ पूर्व नाम : किशोरीलाल गोयल वैद्य, हितकारी वस्तुभंडार, देहरादून

३ जन्म स्थान : कालसी, देहरादून

४ जन्म तिथि : सन् १८९५

५ विवाह : सन् १९२१

६ सन्तान : तीन पुत्र, दो, पुत्रियां

७ शिक्षा : आयुर्वेद का उच्च ज्ञान

८ व्यवसाय : पिता जी कालसी में दुकानदारी तथा लेन-देन का कार्य करते थे जिनका स्वर्गवास सन् १९३७ में ७० वर्ष की आयु में हो गया। सन् १९१२ में अपनी दुकान कर ली। पिता जी अधिक सन्तुष्ट होने के कारण उनकी इच्छा सबकुछ इन्हें ही देने की थी परन्तु अपनी दुकान की कमाई पर संतोष करते हुए कुछ नहीं लिया - बीच में कष्ट के दिन भी आये किन्तु पुरुषार्थ पर भरोसा रखते हुए कष्टों का सामना किया और सफलता प्राप्त की। कालसी में आर्यसमाज की स्थापना सन् १९१६ से लेकर अन्त तक वहां रहते हुए आर्यसमाज के कोषाध्यक्ष रहे तथा शुद्धि अछूतोद्धार विवाह आदि में तत्काल वेश्या नृत्यादि कराना बन्द कराकर उसके स्थान में भजनमंडली बुलाने की प्रथा अपनी तथा अपने बड़े भाई की शादी में ही प्रारम्भ की। बस्ती में प्रतिवर्ष काली देवी पर आठ पशुओं की बलि चढ़ाने की कुप्रथा बन्द कराई। सन् १९२० में कांग्रेस आंदोलन में चकरौता छावनी जाकर धारा १४४ अंग्रेजी सेना में सगीनों के बीच जाकर तोड़ी। कितने ही माता-पिताओं के पुत्र-पुत्रियों को कन्या गुरुकुल, गुरुकुल कांगड़ी, महाविद्यालय ज्वालापुर में अपने पास से शुल्कादि देकर प्रविष्ट कराया जो स्नातक स्नातिका बनकर प्रचार तथा अपना गृहस्थ जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर रहे हैं। कतिपय व्यक्तियों की धन से सहायता कर दुकानें खुलवाईं जिसमें उन्नति करके अब सम्पन्न स्थिति में हैं जिनको देख कर प्रसन्नता होती है। सन् १९३० में देहरादून में आगमन। यहां भी आर्यसमाज का सर्वसम्मति से कोषाध्यक्ष रहे तथा कांग्रेस-हिन्दी साहित्य सम्मति व वैद्यसभा का कोषाध्यक्ष व लेखा निरीक्षक रहे। सन् ५० के लगभग आर्य समाज के अधिकारियों के साथ एक अनमेल विवाह के विरोध में गिरफ्तारी दी। सन् १९५९ में देहरादून से ऋषिकेश जाकर दुकान के साथ ही आर्यसमाज का संगठन करके सत्संग तथा घरों में वदिक संस्कार कराने प्रारम्भ किये। सन् १९४२-४३ में कांग्रेस आंदोलन, सन् ६६-६७ में गोरक्षा आंदोलन में जेल यात्रा की। जेल में भी सन्ध्या, हवन सत्संगादि प्रचार तथा कतिपय कैदियों से सिगरैट-बीड़ी, मद्य-मांसादि दुर्गुण व्यसन छुड़ाये।

९ वानप्रस्थ : सन् १९६६ से धर्मपत्नी सहित आते रहे। अपनी कुटिया निर्माण १९७० में। पत्नी का स्वर्गवास २८ मई सन् ७२। आश्रम में भी अपनी कुटिया पर ही औषधियों द्वारा रोगियों की निःशुल्क सेवा करते रहे। सन् १९७५ में जिला बुलन्दशहर तथा १९७७ में हरियाणा प्रान्त में ग्राम-ग्राम में जाकर बाढ़ पीड़ितों की अपने पास से औषधियां देकर सहायता की। अब आश्रम में आयुर्वेदिक औषधालय में निःशुल्क चिकित्सक तथा औषधि निर्माण कार्य कर रहे हैं। आश्रम में एक रोगी उपचार गृह की स्थापना की और इच्छा है।

श्री करोड़ीमल जी

मनभरी देवी
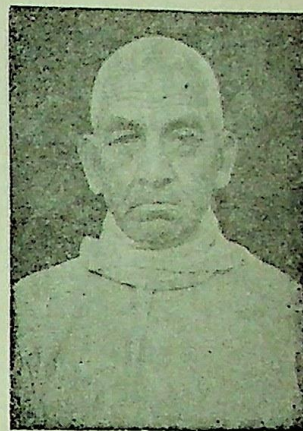
१ नाम : श्री करोड़ीमल जी

२ जन्म तिथि : सन् १८६५ ई०

३ आश्रम में निवास : सन् १९४८ में तथा पुस्तकालयाध्यक्ष का कार्य, सन् १९५२ से सन् ५९ तक करते रहे।

४ कुटी निर्माण : सन् १९५८, कुटी सं० १४०।

श्री करोड़ीमल जी

५ गोशाला निर्माण : संवत् २००८ में कराया।

६ स्वर्गवास : सन् १९६९ ई०

स्व० माता मनभरी देवी धर्मपत्नी स्व० करोड़ीमल जी

जन्म तिथि : सन् १९०१ ई०

आर्यसमाज सेवा : आर्य समाज हरिद्वार में अपने पति की स्मृति में ७०००) रु० की लागत से यज्ञशाला का निर्माण कराया।

स्वर्गवास : २-९-१९७६ ई०,

श्री चैतन्य मुनि जी

श्रीमती वसन्तीदेवी जी

१ नाम : छक्कनलाल

२ वर्तमान नाम : चैतन्य मुनि

३ जन्म तिथि : १ नवम्बर १८९६

४ जन्म स्थान : हसपुरा जिला आगरा

५ शिक्षा : तीन वर्ष की आयु में पितृ वियोग तथा तेरह वर्ष की आयु में मातृवियोग के कारण यद्यपि अनेक कठिनाइयां पैदा हो गईं मगर धैर्य तथा साहस के बल पर आगरा यूनिवर्सिटी से एम०ए० उपाधि ।
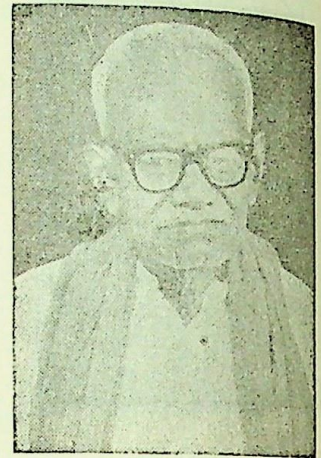
श्री चैतन्य मुनि जी

६ व्यवसाय : शिक्षक। कार्यक्षेत्र में १९२२ में उतरे तथा अनेक बार सम्पन्न होते हुए तबादलों के कारण बस्ती, गोरखपुर, झांसी, मथुरा, इटावा, मैनपुरी, फतेहगढ़ तथा आगरा इत्यादि स्थानों में सरकारी सेवा की। साथ ही साथ आर्य समाज के कार्यों में सक्रिय सहयोग। प्रथम नवम्बर १९५१ में पचपन वर्ष की अवस्था में सेवा निवृत्त। तदनन्तर 'महिला टीचर्स ट्रेनिंग कालिज दयालबाग' में पांच वर्ष तक अध्यापन कार्य।

७ धर्मपत्नी : श्रीमती वसन्तीदेवी।

८ शिक्षा : विद्याविनोदिनी। शिक्षा प्रचार से अनन्य प्रेम।

९ विशेष : दोनों पति-पत्नी आश्रम से स्नेह करने के कारण १९७० से आश्रम में आने लगे। आश्रम में संस्कृत विद्यालय के निर्माण के लिए चार हजार रुपये का दान। आश्रम में निवास करते हुए संस्कृत तथा सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन।

१० दीक्षा : सन् १९७४।

११ देहावसान : ९ अगस्त सन् १९७७।

१२ सन्तानें : चार। सत्यप्रकाश गर्ग, ओमप्रकाश गर्ग, आनन्दप्रकाश गर्ग, शान्तिप्रकाश गर्ग।
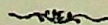
श्री बाबूराम जी महाजन

१ नाम : श्री बाबूराम जी

२ पितृनाम : श्री दुनीचन्द जी महाजन

३ जन्म स्थान : चुहड़ मुण्डा । तहसील पसरूर । जिला, स्यालकोट (वर्तमान पाकिस्तान)

४ वर्तमान निवास स्थान : जनकपुरी, दिल्ली

५ पता : B. B. 52/C, नई दिल्ली

६ जन्म तिथि : १३ सितम्बर १८९६

७ शिक्षा : मैट्रिक । साथ ही संस्कृत तथा उर्दू का भी ज्ञान। विवाह १९१६ में।

श्री बाबूराम जी महाजन

७ वानप्रस्थाश्रम में : २३ नवम्बर १९७० में वानप्रस्थागमन।

८ धर्मपत्नी की मृत्यु : सन् १९६८ में।

९ विशेष : धर्मपत्नी के निधन से अत्यन्त दुःख तथा वैराग्य भावना। उनकी स्मृति में २५०० रुपये में आश्रम में दुकान निर्माण। सन्तानें चार। तीन कन्याएं एवं एक पुत्र।

—०—

श्री हंसराज जी सोनी

श्री हंसराज जी सोनी

१ नाम : श्री हंसराज जी

२ जन्मस्थान : ग्राम खुशाब, जि० सरगोधा, पंजाब (वर्तमान पाकिस्तान)

३ जन्म तिथि : कृष्णा तृतीया, विक्रमी १९५३, सन् १८९६

४ पितृदेव : श्री लाला विशनदास जी

५ शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम में। जम्मू में मैट्रिक।

६ व्यवसाय : सन् १९२२ में श्रीनगर में काश्मीरी सामान की दुकान। बाद में 'कश्मीर सिल्क क्लाथ' नामक फैक्टरी की स्थापना। वहां रहते हुए आर्य समाज हजूरी बाग में सक्रिय भाग एवं कोषाध्यक्ष। साथ ही आर्य समाज भवन तथा पुत्री पाठशाला निर्माण के लिए धन संग्रह। विभाजन के बाद देहली आगमन तथा सेन्ट्रल रिलीफ कमेटी (कांग्रेस की शाखा) के 'किंग्सवे कैम्प एरिया' के सुपरिन्टेंडैन्ट। दिल्ली में छह विभिन्न स्थानों पर शरणार्थी बस्तियां बसाई। १९५४ में खादी ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी के इन्चार्ज। १९५९ में अपने एक मित्र की देहरादून-स्थित 'कश्मीर सिल्क क्लाथ फैक्टरी' के इन्चार्ज।

७ वानप्रस्थाश्रम में : अप्रैल १९७७ में वानप्रस्थाश्रम में अपनी पूर्व निर्मित कुटी २/९० में आकर स्थिर निवास। साधना, प्रभुचिन्तन आदि धार्मिक कार्यों में संलग्न।

———०———
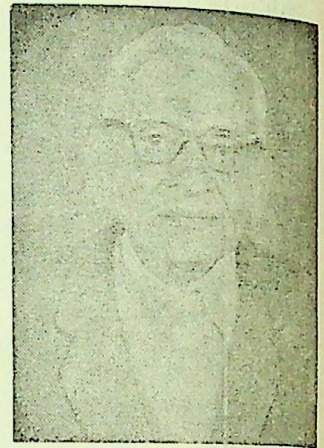
श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी

१ जन्म तिथि : मार्च सन् १८९७ ई०

२ जन्म स्थान : जयपुर

३ शिक्षा : दसवीं कक्षा हाईस्कूल तक पढ़ाई की, परीक्षा नहीं दी

बनारस में जाकर आर्षपद्धति से व्याकरण पढ़ा तथा अन्य संस्कृत-साहित्य भी

४ गृहस्थ जीवन : सन् १९१९–१९३५ तक

५ व्यवसाय : अध्यापन तथा प्रचार

६ वानप्रस्थ : १९३८ से १९४१ ई० तक

श्री स्वामी विशुद्धानन्द जी

७ संन्यास : स्वामी शंकरानन्द जी गुजरात वालों से सन् १९४१ ई० में सन्यास की दीक्षा।

८ विशेष : वानप्रस्थ एवं संन्यास के समय सारे देश में घूम कर वैदिकधर्म का प्रचार किया। अब लगभग ६ वर्ष से आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में निवास है। बाहिर प्रचारार्थ जाना कम कर दिया है। प्रभु भजन में अधिक समय लगाते हैं। आश्रम में सेवा के लिए सदा तैयार रहते हैं।

श्री महेन्द्र देव जी शास्त्री

श्री महेन्द्र देव जी शास्त्री

१ नाम : श्री महेन्द्रदेव शास्त्री

२ जन्मस्थान : सिकन्दराबाद, जि०बुलन्दशहर।

३ जन्मतिथि : १अक्टूबर सन १८९८ई.

४ शिक्षा : गुरुकुल सिकन्दराबाद के छात्र। १९१६ में पंजाब युनिवर्सिटी से शास्त्री परीक्षा। १९१७ तथा १९१८ म कलकत्ता एवं बनारस विश्वविद्यालयों से न्याय तथा वेदान्त की परीक्षायें उत्तीर्ण की सन् १९८१ में स्नातक तथा विद्याभूषण की उपाधि।
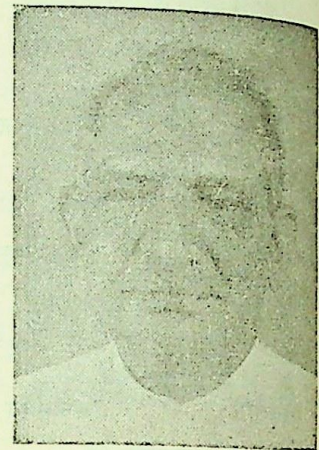
५ व्यवसाय : सर्व प्रथम गुरुकुल सिकन्दराबाद में अवैतनिक अध्यापन कार्य करते रहने के उपरान्त जि० मुजफ्फरनगर में अवैतनिक प्रचार कार्य पं० क्षेत्रपाल शर्मा मालिक सुख संचारक कम्पनी मथुरा वालों की द्वितीय कन्या के साथ विवाह होने के उपरान्त आर्ट की शिक्षा प्राप्त करने की लालसा से पूना तथा मुलटी (कलकत्ते से ४० मील ऊपर) नामक स्थानों में ब्लाक बनाने एवं उत्कृष्ट छपाई की शिक्षा प्राप्त कर देहली में 'मुरारी फाइन आर्ट वर्क्स' तथा 'मुरारी आर्ट प्रेस' की स्थापना की। साथ ही अपने घर में ही आर्य समाज स्थापित किया। बाद में आर्य समाज का विशाल भवन बनने के बाद लगभग १८ वर्ष तक प्रधान पद पर कार्य किया एवं २००००रु० का दान भी! बाद में 'देहली केमिकल एण्ड फार्मस्युटिकल वर्क्स' नामक संस्था की स्थापना, जिसकी 'नेनोज' तथा 'वेदनोल' आदि औषधियां काफी प्रसिद्ध हुई। इन फर्मो से निर्धन एवं मेधावी छात्रों को छात्रवृत्तियां भीं दी जाती रही। हिन्दी साहित्य सम्मेलन दरयागंज मंडल के प्रधान अनेक वर्षों तक।

६ वानप्रस्थाश्रम में : अधुना एकान्त वास तथा परमात्मचिंतन के उद्देश्य से वानप्रस्थाश्रम में निज कुटिया का निर्माण तथा प्रवचन कार्य।

७ रचनाये : दोषदर्शन, सूक्तिशतक, सूक्ति रत्नावली, कल्याण का मार्ग तथा आर्यसमाज का स्वरुप नामक पांच पुस्तकें प्रकाशित।

———o———

श्री रघुनाथ प्रसाद जी

श्री रघुनाथ प्रसाद जी

१ नाम : श्री रघुनाथ प्रसाद

२ जन्म स्थान : जि० मेरठ, उत्तर प्रदेश

३ जन्मतिथि : १९ जुलाई १८९९,

४ शिक्षा : अर्थाभाव के कारण उच्च शिक्षा न हो सकी तो भी अपनी कार्य कुशलता एवं प्रखर बुद्धि के बल पर हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी पर अच्छा अधिकार प्राप्त किया,

५ विवाह : सन् १९१३ में लाला गौरी सहाय की सुपुत्री श्रीमती गोविन्दी देवी के साथ सम्पन्न।

६ व्यवसाय : ४ दिसं० १९१८ में भारतीय सेवा में प्रवेश। प्रारंभ में सामान्य सैनिक। किन्तु बाद में सूबेदार मेजर के पद पर प्रतिष्ठित। अनेक सम्मान सूचक पदक प्राप्त किये। सन्तानें, तीन पुत्र, चार पुत्रियाँ। सभी उच्च शिक्षा प्राप्त। तीनों पुत्र श्री बृज मोहन बुलन्दशहर में आयकर सलाहकार तथा श्री सतीश मोहन एवं कृष्ण मोहन ख्याति प्राप्त वकील।

७ वानप्रस्थाश्रम : संप्रति वानप्रस्थाश्रम में निवास। आत्मिक शान्ति तथा योग मार्ग के अभिलाषी। स्वभाव से मृदुभाषी एवं विनम्र। वैदिक धर्म में पूर्ण आस्था परिपूर्ण आस्तिक।

८ धर्मपत्नी : श्रीमती गोविन्दी देवी आदर्श पत्नी। सुख दुःख की संगिनी तथा परम पतिव्रता। पचपन वर्ष के दीर्घ वैवाहिक जीवन का सुख प्राप्तकर सन् १९६६ में स्वर्गसिनी हुई।

o——o

श्री सोहन लाल जी

श्री सोहन लाल जी

१ नाम : सोहन लाल जी

२ जन्म स्थान : ग्राम भांगिया जि० शेखूपुरा

३ जन्म तिथि : २ दिसम्बर सन् १८६६

४ शिक्षा : चतुर्थ श्रेणी तक गांव में शिक्षा। पुनः मेरिट लिस्ट में आने के कारण सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्तकर पाँचवी से दसवीं तक शिक्षा। तदनन्तर लाहौर कालिज में प्रवेश तथा महात्मा गांधी के 'कालिज छोड़ो आन्दोलन में कालिज शिक्षा का त्याग (१६२१)।

५ व्यवसाय : लाहौर में रेलवे विभाग में स्थाई सर्विस तथा कस्बा बागबानपुरा में स्थिर रूप से सेवा कार्य। बाद में पाकिस्तान बनने के बाद जालन्धर आ गये।

६ विशेष : इनके पिता जी ने ऋषि दयानन्द के दर्शन किये थे और उन पर ऋषि का यत्परोनास्ति प्रभाव पड़ा था। परिणाम यह हुआ कि वे आर्य समाज के आन्दोलन में सम्मिलित हो गये और इसका स्वतः ही यह परिणाम हुआ कि सोहन लाल जी भी दृढ़ आर्यसमाजी बने। बागबानपुर में आर्यसमाज के संस्थापकों में रहते हुए वे उसके आजीवन सक्रिय सदस्य बने रहे। बाद में मन्त्री बने। उन्होंने जिस प्रकार ईमानदारी के साथ सरकारी कार्य को निभाया इसी तरह पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास के साथ आर्यसमाज की गतिविधियों में भी सक्रिय भाग लिया। उनका व्यक्तिगत जीवन सादा, विनम्र तथा सच्चाई से पूर्ण था।

७ वानप्रस्थाश्रम में : गृहस्थ जीवन के समस्त उत्तारदायित्वों को पूर्णकर १६६३ में आश्रम में पधारे और जीवन पर्यन्त यहीं रहते रहे। यहां रहते हुए वे कुछ काल तक अन्तरंग सभा के सदस्य एवं पुस्तकाध्यक्ष रहे। अत्यन्त लगन से आश्रम की सेवा में रत रहे।

८ निधन : अकस्मात पक्षाघात का दौरा पड़ने के कारण ३१ मई १६७६ की अर्धरात्रि को उनका देहावसान हो गया।

पं० शिवदयालु जी

पं० शिवदयालु

१ नाम : श्री शिवदयालु जी

२ जन्म तिथि : सन् १९००

३ जन्म स्थान : मेरठ

४ शिक्षा : मैट्रिक तक

५ व्यवसाय : पुस्तकों की दुकान ।
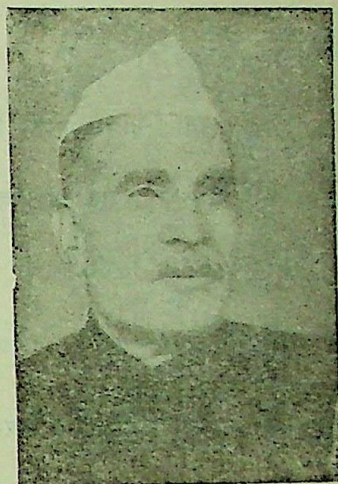
६ सेवाकार्य : सर्वप्रथम १९१९ में मेरठ में कांग्रेस कार्य प्रारम्भ । बाद में जिला कांग्रेस कमेटी के मंत्री तथा प्रधान । प्रान्तीय हिन्दुस्तानी सेवा दल के मन्त्री । १९३० में हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय भाग । १९४० में आचार्य अभयदेव जी के साथ मिल कर तत्कालीन वायसराय को सत्याग्रह का अल्टीमेटम तथा सफलता । १९४२ में 'करो या मरो' आन्दोलन में मेरठ जिला कांग्रेस कमेटी की तरफ से डिक्टेटर पद पर नियुक्ति । १९४७ में जेल यात्रा । तीन बार जेल यात्रा । तदनन्तर कांग्रेस त्याग तथा जनसंघ में सम्मिलित १९५० । 'आर्य मित्र' का सम्पादन दो वर्ष । आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के उपमत्री, मंत्री तथा उपप्रधान। आर्यवीर दल के संयोजक। खाकसार आन्दोलन का सामना करने के लिए पचास हजार आर्यवीर सैनिकों का संगठन । अन्य अनेक सेवा कार्य ।

७ वानप्रस्थ दीक्षा : वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में विधिपूर्वक दीक्षा ।

८ रचनायें : लगभग ६५ पुस्तिकाओं तथा कतिपय पुस्तकों का लेखन, जिन में ५० प्रकाशित । 'उपनिषद् त्रयी ।' 'शतकत्रयी ।' 'गायत्री शतक' तथा 'महान् दयानन्द बृहस्पति अर्थशास्त्र' विशेष रचनायें ।

पं० नन्दलाल वैदिक मिशनरी

पं० नंदलाल वैदिक मिशनरी

१ श्री नन्दलाल जी

२ जन्म स्थान : ग्राम बुग्गोकी, जिला स्यालकोट। सन् १९००

३ पिता का नाम : संतराम ग्रोवर

४ माता का नाम : जीवनबाई

५ शिक्षा : साधारण

६ वर्तमान निवास : स्वामी विरजानंद स्मारक विद्यालय, करतारपुर
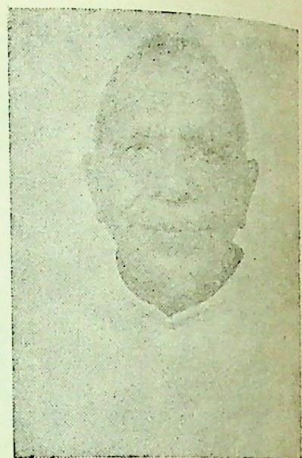
७ सेवा कार्य : सन् १९१९ में कांग्रेस आंदोलन में सक्रिय भाग तथा अनेक बार कारावास दण्ड। १९३० में लाहौर से लायलपुर जाते हुए पं० मदन मोहन मालवीय को रेल इन्जिन के सामने लेटकर व्याख्यान के लिए विवश किया। १९४७ में होशियारपुर आर्य समाज के उपदेश तथा शुद्धि आन्दोलन में सक्रिय भाग। हैदराबाद सत्याग्रह में सक्रिय भाग तथा उस्मानाबाद गुलबर्गा में कारावास जीवन। जम्मू-काश्मीर में 'न्याज अहमद' के प्रच्छन्ननाम से प्रचार कार्य। बंगाल दुर्भिक्ष में सक्रिय सेवा कार्य। १९५७ में हिन्दी रक्षा आंदोलन में कार्य। १९५८ में नेपाल में आर्य समाज का प्रचार। असम, नागालैंड, काश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा लद्दाख आदि प्रदेशों में वैदिक प्रचार। १९७० में दक्षिण पूर्व एशिया में मलेशिया, थाईलैंड सिंगापुर आदि स्थानों में वैदिक धर्म प्रचार। इन्हीं दिनों धर्मशाला में तिब्बत के दलाई लामा से भेंट तथा वैदिक धर्म का परिचय।

दीक्षा :

विशेष : गुणी व साहसी, अच्छे कवि तथा गायक।
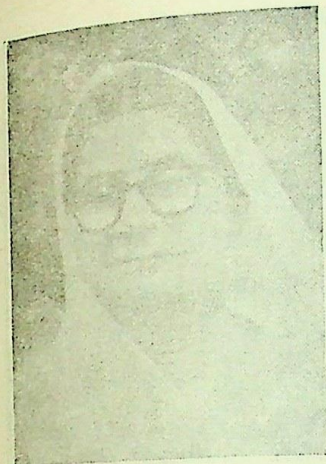
श्री महाशय रामदास जी

श्रीमती ज्ञानदेवी

श्री महाशय रामदास जी

१ नाम : श्री राम दास जी

२ जन्म स्थान : लाहौर

३ जन्म तिथि : दिसम्बर १९ ०

४ शिक्षा : किसी शिक्षाणालय में शिक्षा ग्रहण नहीं की ।

५ पितृनाम : लाला हरजीमल, कूचा जीवनदास

६ मातृनाम : मखनीदेवी

७ विशेष : विवाह सन् १९२१, पत्नी का नाम ज्ञानदेवी, रंग की दुकान । सत्य एवं मृदुभाषा के कारण दुकान खूब चली । (१९२२) । कांग्रेस तथा आर्य समाज दोनों संस्थाओं में सक्रिय भाग । पद की अभिलाषा नहीं रखी । आर्य समाज में पं० रामगोपाल शास्त्री, श्री मानकचन्द बजाज, म० कृष्ण आदि के साथ तथा कांग्रेस में डा० गोपीचन्द भार्गव तथा भीमसेन सच्चर आदि के साथ कार्य । इनकी पत्नी ज्ञानदेवी भी दोनों संस्थाओं की कार्यकर्तृ रहीं और १९३२ में जेल में छह मास रहीं । हिन्दी सत्याग्रह में दो मास जेल में ।

८ विभाजन के बाद : १९४७ में सब सम्बन्धी लाहोर छोड़ दिल्ली आ गये एवं खारी बावली में 'हरजीमल रामदास' नामक फर्म चालू की ।

९ वानप्रस्थाश्र में : १९६९ में माता लीलावती मोंगा से मिलने आश्रम में आये और उनकी तथा महात्मा हरप्रकाश जी की प्रेरणा से स्थिर आश्रमवास । पांच हजार रु० की लागत से आश्रम में दो दुकानें बनवाई ।

१० निधन : दिल्ली में ६ अप्रैल १९७६ को प्रातः देहात्याग । सन्तानें छह । चार पुत्र, दो पुत्रियां । सभी प्रसन्न एवं स्वस्थ । दो पुत्र कलकत्ते में और दो खारी बावली की दुकान पर बैठते हैं । माता ज्ञानदेवी जी आश्रम में निवास कर रही है ।

——०——

श्री निधि जी सिद्धान्तालंकार

श्री विद्यानिधि जी सिद्धांतालंकार

१ नाम : विद्यानिधि सिद्धान्तालंकार

२ लेखक नाम : श्रीनिधि सिद्धान्तालंकार

३ जन्म : ८ मार्च, १९०० ई०

४ जन्म स्थान : नरवरगढ़ (भूतपूर्व रियासत ग्वालियर) मध्य प्रदेश

५ शिक्षा : गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक

६ रचनायें : (१) शिवालक की घाटियों में (पुरस्कृत)

(२) मालिनी के वनों में (पुरस्कृत)

(३) मचान पर उनंचास दिन (पुरस्कृत)

(४) सूखे सुनसान नालों में

(५) जंगल की ओर (सुरेश वैद्य कृत *Ahea Lies the Jungle* का हिन्दी अनुवाद)

(६) " महावाराह पुराण " हिन्दी अनुवाद (अप्रकाशित)

(७) द्वापर की एक दोपहर (प्रेस में) उपन्यास

(८) पौलस्त्य (प्रेस में) उपन्यास

(९) वन्य कहानियां (७५) धर्मयुग, नवनीत तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान में समय समय पर प्रकाशित तथा आल इण्डिया रेडियो द्वारा प्रसारित ।

७ वानप्रस्थाश्रम में : मई १९७६ ।
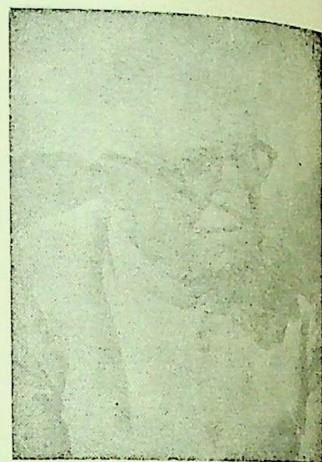
श्री वशेशरनाथ जी सेठ

श्री वशेशरनाथ जी सेठ

१ नाम : सेठ वशेशरनाथ जी

२ जन्म तिथि : ११-८-१९००

३ वानप्रस्थाश्रम : सेठ जी दिल्ली ट्रांसपोर्ट में सेक्शन आफिसर। पेंशन हो जाने के उपरान्त ३१ मार्च सन् १९५८ को आश्रम में आगये। सर्व प्रथम ६ वर्ष तक स्वामी वैराग्यानन्द जी के पास रह कर सेवा। इसी अवधि में होम्योपैथी की तीन परीक्षायें उत्तीर्ण की। कार्यक्षेत्र के इस परिवर्तन के बाद भी स्वामी जी की सेवा करते रहे। वानप्रस्थाश्रम में अनेक सेवा कार्य किये। चिकित्सालय में सेवा। वृद्धा माताओं के बाजार अथवा बैंक सम्बन्धी कार्य। एक मास तक राशनकार्ड बनाने का कार्य। आश्रम में मीटर देखने का कार्य। इत्यादि अनेक सेवा कार्य स्वेच्छा से ही करते रहे। सेवा कार्यों से उन्हें बहुत आत्मसन्तोष उपलब्ध होता था।

४ निधन : श्री वशेशरनाथ जी का देहान्त आर्मी अस्पताल दिल्ली में ६ अगस्त १९७४ को बच्चों के पास हुआ।

५ धर्मपत्नी : माता पुष्पावती सेठी

६ विशेष : पुष्पावती जी आश्रम में भी रहती हैं तथा देहली में अपने पुत्र के पास भी चली जाती हैं।

———०———

श्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

श्री स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

१ नाम : श्री धर्मानन्द जी

२ पूर्व नाम : धर्मदेव

३ जन्म तिथि : १२ फरवरी १९०१

४ जन्म स्थान : दुनियांपुर, जिला मुलतान (वर्तमान पाकिस्तान)

५ शिक्षा : गुरुकुल मुलतान (१९०९ से १९१६ तक)। बाद में गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी १९१७ से १९२१ तक

६ उपाधि : सिद्धान्तालंकार (१९२१) विद्यावाचस्पति (१९२३) विद्यामार्तण्ड

७ सन्यास दीक्षा : २८ फरवरी १९७६ (महात्मा आनन्दस्वामी द्वारा)

८ व्यवसाय : वैदिक धर्म प्रचार (१९२१ से १९४३ तक सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा दिल्ली के तत्वावधान में दक्षिण भारत में)। आचार्य गुरुकुल मुलतान (१९२६ में)। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में वैतनिक सेवा (१९५४ से १९६३ तक) 'अंग्रेजी संस्कृत हिन्दी कोष' का संकलन तथा 'गुरुकुल पत्रिका' का सम्पादन। सम्पादक 'सार्वदेशिक' (१९४२ से १९५३ तक)।

९ वर्तमान निवास स्थान : आनन्द कुटीर ज्वालापुर।

१० रचनायें : 'वदिक कर्तव्य शास्त्र' एवं 'भारतीय समाज शास्त्र' नामक दो निबन्धों के अतिरिक्त ४५ लघु पुस्तिकाय, जिन में ४० प्रकाशित ५ अप्रकाशित।

११ विशेष रचनायें : (१) वेदों का स्वरूप (पुरस्कृत) (२) महापुरुष कीर्तनम् (पुरस्कृत) (३) महिला मार्तण्ड कीर्तनम् (पुर०) (४) सामवेद (इंग्लिश भाष्य) (५) ऋग्वेद (इंग्लिश भाष्य)।

१२ सम्मानित : प्रधान सार्वदेशिक धर्मार्यसभा (१९६१)। आचार्य 'परिवार संघ' मथुरा (१९७३)। अध्यक्ष विश्ववेद परिषद् (१९७५)।

०———०

वैद्यराज श्री यज्ञेश्वर वानप्रस्थी

श्री यज्ञेश्वर वानप्रस्थी

१ नाम : श्री यज्ञेश्वर

२ जन्म स्थान : कोआथ, जिला शाहबाद, बिहार

३ जन्म तिथि : सन् १९०१ ई०

४ शिक्षा : आयुर्वेद के उत्कृष्ट विद्वान्

५ व्यवसाय : आयुर्वेद चिकित्सक

६ विशेष : डुमरांव वाल हिन्दी पुस्तकालय की स्थापना (१९१६)। महात्मा गांधी के आह्वान पर विश्वविद्यालय परीक्षा त्याग (१९२१) राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना और तीन वर्ष तक अध्यापन कार्य (१९२१-२३)। अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन गया नें स्वयं सेवक दल-नायक (१९२२)।

आर्य समाज की स्थापना और वैदिक धर्म-प्रचार (१९२६) हितैषी औषधालय का संचालन (१९२८)। स्वतन्त्रता के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बारह मास का कठिन कारावास (१९३०-३१) राजनैतिक वन्दी-गृह में आर्य समाज की स्थापना (१९३) भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में १८ मास का कठिन कारावास और जुर्माना (१९४२-४३) पति पुत्र के जेल गमन शोक में पत्नी की हृदयगतिरोध से मृत्यु (१९४३) प्रान्तीय वैद्यों की शोध प्रतियोगिता में सर्वोच्च 'वैद्यराज' की उपाधि एवं पदक इत्यादि अनेक सेवाकार्य तथा सम्मान

७ दीक्षा : महात्मा आनन्द स्वामी से वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा (१९७५)।

८ वानप्रस्थाश्रम में : (१९७६)।

—o—

आचार्य सुखदेव जी विद्यावाचस्पति

१ नाम : सुखदेव

२ जन्मतिथि : ९ फरवरी सन् १९०२

३ जन्मस्थान : जामपुर मुल्तान (वर्तमान पाकिस्तान)

४ शिक्षा : गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के स्नातक । व वाराणसी में भारतीय दर्शनों का विशेष अध्ययन ।
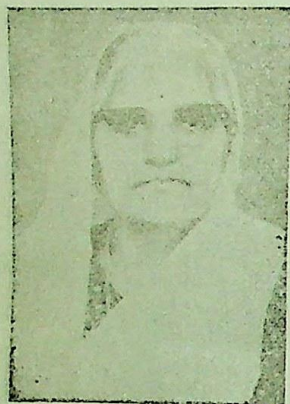
श्रीमती प्रभावती जी (पत्नी)
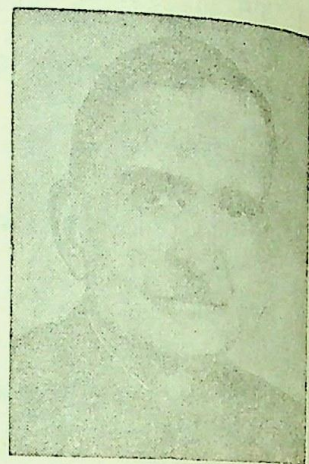
आचार्य सुखदेव जी

५ व्यवसाय : आचार्य रंगून आर्यसमाज (१९३०) । पुरोहित आर्य समाज कलकत्ता। आचार्य गुरुकुल वैद्यनाथधाम। उपाध्याय गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी (१९३३ से १९६९) तक ।

६ सेवा कार्य : आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर को केन्द्र बनाकर वेदों तथा दर्शनों का प्रचार व प्रसार । आर्यवानप्रस्थाश्रम के प्रतिष्ठित सदस्य तथा उसकी अन्तरंग सभा के सदस्य ।

७ निधन : २३ जनवरी सन् १९७७, सफदरजंग अस्पताल नई दिल्ली ।

८ विशेष : दर्शन शास्त्र के विशेष विद्वान् । अद्भुत तार्किक । उत्कृष्ट व्याख्याता । दार्शनिक समस्याओं के समाधान की अपूर्व क्षमता ।

——०——

श्री जनार्दनदेव जी विद्यालंकार

१ नाम : श्री जनार्दनदेव जी

२ जन्म स्थान : बटाला, जिला गुरुदासपुर

३ जन्म तिथि : सन् १९०२ ई०

४ शिक्षा : गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के स्नातक तथा विद्यालंकार की उपाधि

५ व्यवसाय : पिता श्री मेहरचन्द जी की इच्छानुसार १६ वर्ष तक व्यापार कार्य करने के उपरान्त-

श्रीमती सत्यवती जी

श्री जनार्दनदेव जी विद्यालंकार

१९४६ से १९५९ तक गुरुकुल कांगड़ी के विद्यालय विभाग में अध्यापन कार्य और वहां से स्थानान्तरित होकर १९६२ तक वहां के पुस्तकालय विभाग में कार्य।

६ विवाह : श्रीमती सत्यवती जी के साथ। इनका जन्म लुधियाना जिले में। प्रारम्भिक शिक्षा कन्या महाविद्यालय जालन्धर में। वहां दशवीं कक्षा तक अध्ययन कर चुकने के उपरान्त शेष उच्चशिक्षा घर पर रह कर प्राप्त की और पंजाब युनिवर्सिटी से इंगलिश तथा हिन्दी-साहित्य प्रभाकर परीक्षायें उत्तीर्ण की। विवाहोपरान्त अम्बाला छावनी में आर्य स्त्री-समाज कथाड़ी बाजार की उपमंत्री। अनेक वर्षों तक 'स्त्री-समाज गुरुकुल कांगड़ी की मंत्रिणी। इस अवधि में संस्कृत ज्ञान में विशेष उन्नति की।

७ सन्तान : एक मात्र पुत्र श्री नरेन्द्रदेव। प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल में। बी.ए. उपाधि एस०एम० डिग्री कालिज से। बाद में *Xavier Labour welfare Institute* से दो वर्ष का कोर्स उत्तीर्ण कर एच०एम०टी० फैक्टरी में पर्सनल आफिसर। निवास स्थान चण्डीगढ़।

८ वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९७२, इनकी पत्नी सत्यवती जी आश्रम में अध्यापन कार्य करते हुए शिक्षा अधिष्ठात्री।

——०——

श्री माधवप्रसाद जी

श्रीमती विद्यावती जी

१ नाम : श्री माधवप्रसाद जी

२ जन्म स्थान : मेरठ

३ जन्म तिथि : सन् १९०२

४ शिक्षा :

५ व्यवसाय : सन् १९२६ से १९५७ तक केन्द्रीय सचिवालय में राजकीय सेवा । सन् १९५७ में सेवानिवृत्त ।
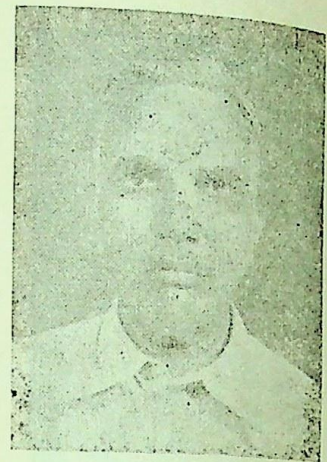
श्री माधवप्रासद जी

६ विशेष : इनकी धर्मपत्नी श्रीमती विद्यावती जी की आयु संप्रति ७५ वर्ष । वैदिक धर्म के प्रति आस्थावान । पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी परीक्षा उत्तीर्ण कर विशिष्ठ योग्यता का प्रमाण-पत्र उपलब्ध किया। दोनों ही पति-पत्नी उच्चकोटि के विद्वानों तथा संन्यासियों के उपदेश श्रवण के सदा अभिलाषी ।

७ वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९७१ में, आश्रम में एक दुकान का निर्माण ।

८ दीक्षा : सन् १९७२ ।

९ अन्य सेवा कार्य : वेद प्रचार में तीव्रगति लाने के हेतु निम्नलिखित स्थिर निधियां स्थापित की--

(१) आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के संरक्षण में 'वेद प्रचार संस्थान' मेरठ ।

(२) सार्वदेशिक सभा के अन्तर्गत 'संस्थान' ।

(३) आर्य वानप्रस्थाश्रम के अन्तर्गत एक स्थिर निधि। आश्रम में निवास करते हुए आश्रम के पुस्तकाध्यक्ष तथा पुस्तक विक्रय कार्य । साथ ही आश्रम द्वारा आयोजित 'कण्ठस्थ वेद मन्त्र पाठ प्रतियोगिता' सौ मंत्रों के पाठ में प्रथम स्थान प्राप्त किया ।

—o—

श्री गयाप्रसाद जी सक्सेना

१ नाम : श्री गयाप्रसाद जी (एम०ए०)

२ जन्म स्थान : महेवागंज जिला खीरी, लखीमपुर (उत्तर प्रदेश)

३ जन्म तिथि : २० जुलाई सन् १९०२

४ शिक्षा : लखीमपुर में हाई स्कूल से मैट्रिक । काशी विश्वविद्यालय से इन्टर तथा बी० ए० (सभी परीक्षाओं में द्वितीय डिविजन में) एवं आगरा विश्वविद्यालय से एम०ए० ।

५ व्यवसाय : १९३० से १९६८ तक प्राध्यापक ।

६ विशेष : सन् १९१४ में यज्ञोपवीत संस्कार एवं आर्य ग्रन्थों के अध्ययन का श्री गणेश । १९१४ से समाज को चन्दा । प्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती महादेवी वर्मा उनकी भाभी तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व चान्सलर डा० बाबू राम सक्सेना चचेरे भाई । आर्य ग्रंथों के अध्ययन में विशेष रुचि । साधना, प्राणायाम तथा व्यायाम दैनिक कर्तव्य । अविवाहित एवं बालब्रह्मचारी ।

श्री गयाप्रसाद जी सक्सेना

७ वानप्रस्थाश्रम में : १९७० से स्थिर निवास । निज कुटिया नं० १०३ में ।

८ दीक्षा : आर्य समाज कटरा प्रयाग स्वामी सत्यप्रकाश जी से वानप्रस्थ दीक्षा ।

श्री रामेश्वर प्रसाद जी

श्रीमती सुशीला देवी जी

१ नाम : रामेश्वर प्रसाद

२ जन्म तिथि : ६-१०-१६०२

३ जन्म स्थान : तिलहर जि० शाह-जहांपुर उत्तरप्रदेश

४ पिता का नाम : श्री कमलाप्रसाद जी पेशकार

५ शिक्षा : बी०ए० (इलाहाबाद युनिवर्सिटी)
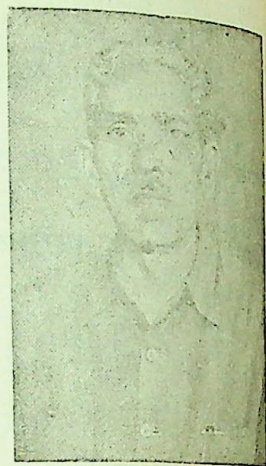
श्री रामेश्वर प्रसाद जी

६ व्यवसाय : प्रारम्भ में इलाहाबाद मिशन स्कूल में प्रधान अध्यापक बाद में, नायब तहसीलदारी की परीक्षा ऊंचे नम्बरों से उत्तीर्ण कर तहसील फूलपुर में नायब तहसीलदार के पद पर नियुक्त । अति कुशलता पूर्ण प्रबन्ध तथा ईमानदारी से काम करने के फलस्वरूप पदोन्नति करते हुए जिलाधीश के उच्च पद पर प्रतिष्ठित । अपनी दूरदर्शिता के कारण ऐसे अनेक क्षेत्रों से जहां माल गुजारी वसूल करना असंभव दिखाई पड़ता था, इन्होंने अपनी सहज बुद्धि से सफलता प्राप्त की । रिश्वत के घोर विरोधी । 'जो काम दूसरों से कराना चाहो पहले उसे स्वयं करो इस स्वर्ण उपदेश का जीवन भर कठोरता से पालन ।

७ धार्मिक प्रवृत्ति : सन् १९५६ में सरकारी सेवा निवृत होकर एवं अपने चारों पुत्र तथा तीनों पुत्रियों को उच्च शिक्षा द्वारा सुशिक्षित बनाकर और उन्हें सुख पूर्ण जीवन यात्रा तथा उत्कृष्ट विवाहित जीवन का यात्री बनाकर मनु के इस आदेशानुसार 'अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्य समाश्रयेत १९६३ में आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में प्रविष्ट हो गये । १९६४ में आश्रम में अपनी कुटिया बनवाई जहां वे अपनी धर्म परायण पत्नी श्रीमतीसुशीला देवी के साथ स्थिर रूप से रहने लगे । इस अवधि में आश्रमोन्नति के कार्यों में क्रियात्मक सहयोग तथा समयोपयोगी परामर्श देते रहे । संस्कृत अध्ययन की तरफ ध्यान देते हुए आश्रम की संस्कृत तथा सत्यार्थ प्रकाशाय परीक्षायें उतीर्ण की । बाद में आपने आश्रम के प्रधान पद पर भी योग्यता से काम किया ।

८ निधन : ७३ वर्ष की आयु में (१९७५) असामयिक मृत्यु ।

०—०

डा० जगतराम जी आर्य

१ नाम : श्री जगतराम

२ जन्म स्थान : जलालपुर कीकना, जि० जैहलम

३ जन्म तिथि : मार्च १९०३

४ शिक्षा : डी. ए. बी. हाईस्कूल रावलपिण्डी से मेट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर डी. ए. बी. कालिज लाहौर में प्रशिक्षण (१९१८)
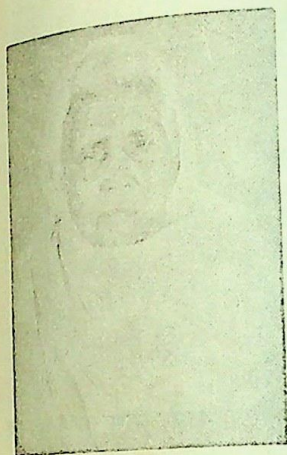
श्रीमती परमेश्वरी आर्या

डा० जगतराम जी

५ व्यवसाय : राजकीय सेवा। स्वाधीनता आन्दोलन में नौकरी परित्याग। बाद में पुनः राजकीय सेवा में प्रवेश। इस अवधि में लाहौर, दिल्ली, शिमला तथा सौराष्ट्र में तवादला। सन् १९६० में सेवा मुक्त।

६ विवाह : सन् १९२३।

७ विशेष : बाल्यकाल से ही आर्य समाज की तरफ दृढ़ आकर्षण। पांच वर्ष की आयु में मातृवियोग। यद्यपि पिता देवी भक्त थे, मांसाहारी भी थे, मगर ये उन सभी प्रभावों से मुक्त रहे। महर्षि जन्म शताब्दी महोत्सव मथुरा में उपस्थित हो कर वैदिकधर्म के प्रति अनुराग में और भी वृद्धि (१९२५) जहां भी रहे आर्यसमाज की गतिविधियों में सक्रिय भाग लेते रहे। बाद में आर्य वानप्रस्थाश्रम के प्रति आकर्षण तथा सन् १९६३ से प्रतिवर्ष सपत्नीक आते जाते रहे। अन्त में १९७० में स्थिर रूप से अपनी कुटी सख्या २/२५ बनवाकर सपत्नीक रहने लगे। राजकीय सेवाकाल में ही आजीवन सदस्य। भारतीय रेडक्रास सोसाइटी होम्योपेथी का अध्ययन करते रहे और बाद में राजकीय विधि-विधानानुसार परीक्षा देकर डी. एच. ब. की उपाधि प्राप्त की तथा रजिस्टर्ड मैडिकल प्रैक्टीशनर के रूप में आश्रम की होम्योपैथिक डिस्पैंसरी में सेवा कार्य करते रहे। आपके दोनों पुत्र श्री विद्याधर जी तथा श्री वलराम जी सुयोग्य सन्तानें हैं।

८ धर्मपत्नी : **श्रीमती परमेश्वरी आर्या**

वैदिकधर्म से असीम अनुराग। आश्रम में पधारने के उपरान्त आश्रम द्वारा संचालित समस्त परीक्षाओं में बैठकर अन्त में "सिद्धांतशास्त्री' की उपाधि प्राप्त की।

९ दीक्षा : दोनों पति-पत्नी ने १९७५ में वानप्रस्थ दीक्षा ली।

०———०

श्री स्वामी विवेकानन्द

१ नाम : विवेकानन्द

२ जन्म नाम , धर्मवीर

३ जन्म तिथि : सितम्बर, १९०३ ई०

४ जन्म स्थान : कैराना जिला मुजफ्फर नगर

५ शिक्षा : साधारण

६ व्यवसाय : पंसारी की दुकान । पैतृक व्यवसाय कृषि तथा लेन देन । दुकान पर 'एक दाम, तथा सत्य का व्य-
बहार । ईमानदारी के कारण बस्ती भर में श्रद्धा के पात्र ।

७ विशेष : सन् १९१९ में विवाह । दो सन्ताने । एक पुत्र, एक पुत्री बाल्यावस्था से ही 'ओ३म्, स्मरण में अभि-
रुचि । 'भक्ति दर्पण, में उल्लिखित केनोपनिषद् के निम्न वचन पर अटल विश्वास —'इह चेदवेदीद
सत्य मस्ति, न चे दिहा वेदीन्महती विनष्टि, —इस जगत में प्रभु को जान लिया तो ठीक । नहीं जाना तो
महान हानि । ऋषि दयानन्द शताब्दी (सन् १९२५) पर मथुरा यात्रा । श्रद्धानन्द बलिदान दिवस सन्
१९२६ में दिल्ली यात्रा । वहां आर्य वीर दल में प्रवेश । स्वामी सियाराम जी के दर्शनार्थ देहरादून यात्रा
(१९२७) गृह तथा व्यवसाय परित्याग (१९२९) गढ़ मुक्तेश्वर, ऋषिकेश, आदि स्थानों की तीर्थ यात्रा
के उपरान्त आर्य वाप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में स्थिर निवास (सन् १९३०) महात्मा नारायण स्वामी के
विशेष स्नेह पात्र । इनके सच्चें वैराग्य से प्रभावित होकर श्री वेद मित्र जी द्वारा इनके लिए आश्रम में एक
स्वतंत्र कुटी वितरण । स्वाध्याय तथा प्रभुभजन दैनिक कर्तव्य । आश्रम में समय समय पर घटने वाले वैमनस्य
मय विवादों से पृथक रहते हुए 'कमल पत्र मिवाम्भसा के आदर्श का कठोर पालन । राग द्वेष से मुक्त।
विशेष कर व्यवहार शुद्धि पर अत्यन्त निष्ठा । कुटीर पर डेढ़ से ढाई वजे तक दोपहर में दैनिक सत्संग
आश्रम में कुछ कुटिरों का भी निर्माण । राधिका देवी चिकित्सालय में दवाइयों इत्यादि के खर्च
१०,००० के लिये स्थिरनिधि स्थापित की ।

८ रचनायें : सन्त वचन संग्रह आदि ८ पुस्तकों के लेखक ।

००—००

आदर्श मुनि
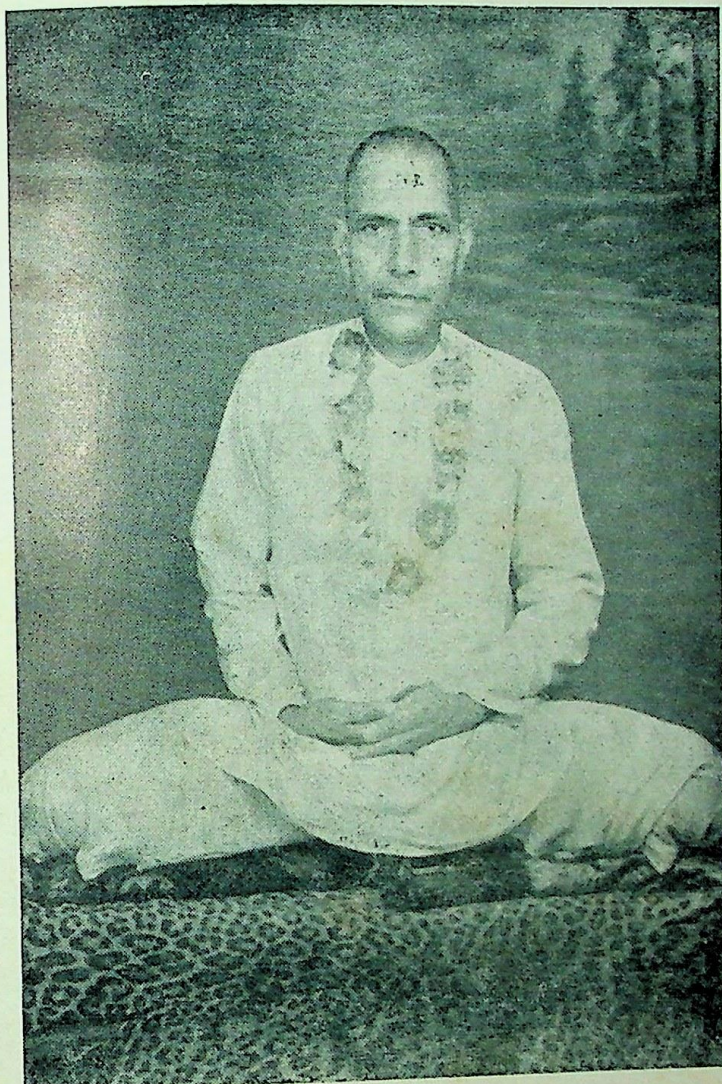
स्वामी विवेकानन्द

दु:खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थित धीर्मुनिरुच्यते ।।

गीता २-५६

स्वामी जी ने अपने ४८ वर्ष के आश्रम निवास में स्वयं को सब प्रकार के कलहों तथा राग-द्वेष से पृथक् रखा । पानी में कमल की तरह रहे ।

पं० ऋषिराम जी

पं० ऋषिराम जी

१ नाम : श्री ऋषिराम

२ जन्म स्थान : एटा जनपद उत्तरप्रदेश का रौली ग्राम

३ जन्म तिथि : २७-९-१९०३

४ शिक्षा : वकील (१९२७)

५ व्यवसाय : जिला न्यायालय एटा में वकालत की प्रैक्टिस। विलक्षण प्रतिभायुक्त वकील।

६ आश्रम में : मार्च सन् १९७६, शाखा नं० १ की कुटी नं० ५९ में संप्रति निवास। वकालत के जीवनकाल में एटा नगरपालिका के अध्यक्ष। अन्य अनेक शिक्षा संस्थाओं के सदस्य, मंत्री एवं प्रधान। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कर्मठ कार्यकर्त्ता एवं जिला जनसंघ की कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य। सरवेश्वर भारतीय विद्यालय मनूपुर के प्रधान तथा जनता इंटर कालिज पिलुआ जिला एटा के अध्यक्ष। संस्कृत महाविद्यालय एटा के अध्यक्ष एवं प्रबन्धक। अविनाशी सहाय आर्य विद्यालय की कार्यकारणी के सदस्य। ज्येष्ठपुत्र श्री रमेशचन्द्र मिश्र एम० ए० एल० एल० बी० जनपद के प्रतिभावान प्रमुख एडवोकेट। कनिष्ठ पुत्र श्री दिनेशचन्द्र मिश्र एम ए. डी. पी. ए. जिला सहकारी बैंक एटा के एक्जीक्यूटिव अधिकारी।

०———०

श्री आनन्द मुनि जी

श्री आनंदमुनि जी

१ नाम : श्री बाबूराम

२ जन्म स्थान : तहसील शकरगढ़, जिला गुरदासपुर (सम्प्रति पाकिस्तान में)।

३ जन्म तिथि : ५ फरवरी सन् १९०३८ ई०

४ व्यवसाय : आढ़त। साहूकारा। जमींदारी

५ विशेष : पिता श्री अच्छरमल जी दृढ़ आर्यसमाजी थे। स्वभावत: आर्यसमाजी संस्कार आये। अमृतसर में आकर आढ़त का काम करते रहे। वहां स्वामी श्रद्धानंद तथा लारेन्स रोड आर्य समाजों के सदस्य तथा कार्यकर्ता रहे। मगर स्वभाव से विरक्त थे।
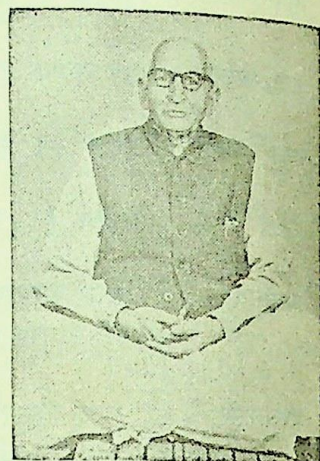
६ वानप्रस्थाश्रम में : अपना सम्पूर्ण कारोबार अपने तीनों पुत्रों, सर्वश्री राजेन्द्रकुमार, सुरेन्द्रकुमार तथा रवीन्द्रकुमार के सुपुर्द कर ५८ वर्ष की आयु में १९६१ में वानप्रस्थाश्रम में आकर रहने लगे।

७ विशेष : आश्रम में आकर अपनी स्वर्गीय धर्मपत्नी श्रीमती कौशल्यादेवी की स्मृति में अपनी कुटी बनाली और तब से यहीं रह रहे हैं।

८ दीक्षा : १९६८ में एटा निवासी स्वामी ब्रह्मानंद जी दण्डी द्वारा। दीक्षा से पूर्व चार साल तक सहायक सदस्य रहे।

९ अन्य सेवा कार्य : आश्रम के उपमंत्री सन् १९६८ से १९७४ तक। बाद में इस पद से त्यागपत्रदेकर अब परम सन्तोष सहित स्वाध्याय। दीक्षा के पश्चात्साधना तथा सत्संग में जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

—०—

श्री गुरुचरणलाल जी आनन्द

श्री गुरुचरच लाल जी

१ नाम : गुरुचरणलाल जी

२ जन्म स्थान : भेरा। शीशमहल जिला सरगोधा (पाकिस्तान)

३ जन्म तिथि : सन् १९०३ई०

४ व्यवसाय : लाहौर में जी०जी०ओ० में सर्विस

५ विशेष : स्वभाव में दूसरों की सहायता की प्रवृत्ति तथा हृदय के उदार। समय पालन में कठोर। राजेन्द्र नगर आर्य समाज दिल्ली के सभासद। वहां एक यज्ञशाला का निर्माण
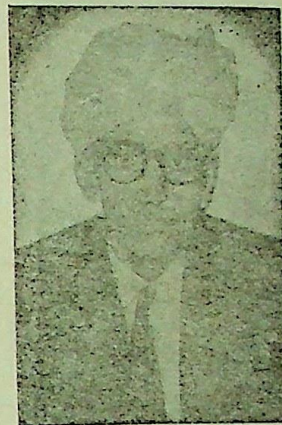
६ निधन : ४ जनवरी १९७७

७ सन्तानें : चार। ओमप्रकाश, रवींद्र कुमार, विनयकुमार तथा ललितारानी। बहिन धनदेई का विवाह आर्य-परिवार में सम्पन्न हुआ।

८ वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९६५ में वानप्रस्थाश्रम आगमन तथा सन् १९७५ में दीक्षा। आश्रम को २५००) का दान।

——०——
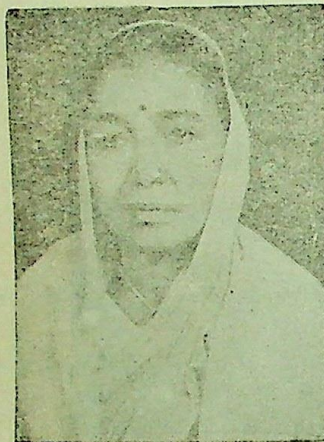
श्री कल्याण स्वरूप जी बी. ए.

श्रीमती शान्तिदेवी

१ नाम : श्री कल्याणस्वरूप जी

२ जन्म स्थान : एक ग्राम जि. करनाल (अब जिला कुरुक्षेत्र)

६ जन्म तिथि : जून १९०५ ई०

४ पिता का नाम : ला. केवलराम जी दृढ़ आर्य समाजी, गांव की आर्य समाज के आजीवन मन्त्री

५ शिक्षा : दशम श्रेणी तक गुरुकुल कांगड़ी में। बाद में १९२४ में डी. वी. ए. वी. कालिज लाहौर में प्रवेश तथा बी. ए. की उपाधि। श्रेणी में प्रायः प्रथम रहते थे।

श्री कल्याणस्वरूप जी बी. ए.

६ विवाह : दिसम्बर सन् १९२८। सहधर्मिणी का नाम श्रीमती शान्तिदेवी जिनकी आयु उस समय १४ वर्ष थी।

७ व्यवसाय : सर्वप्रथम अकाउंटेन्ट जनरल पंजाब लाहौर के कार्यालय में क्लर्क की पोस्ट पर नियुक्त (१९२९)। ३२ वर्ष की इस सर्विस में चापलूसी व खुशामद से सर्वथा पृथक रहते हुए पूर्ण ईमानदारी से कार्य। स्वाध्याय में विशेष रुचि।

८ विशेष : आचार्य प्रियव्रत जी उपकुलपति गुरुकुल विश्वविद्यालय के परामर्श से–जो गुरुकुलीय जीवन में सहपाठी थे वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में आगमन (सन् १९६८)। महात्मा हरप्रकाश जी ने निवास के लिए उस समय जो कुटिया दी आज भी उसी में रह रहे हैं। चार सन्तानें। एक पुत्र, तीन पुत्रियां। पुत्र आकाशवाणी में रेडियो इन्जीनियर प्रथम श्रेणी-आफिसर। तीनों पुत्रियां बी०ए० बी० टी० एवं युनिवर्सिटी के प्रोफेसरों के साथ विवाहित।

९ आश्रम की सेवा : (१) सहायक अधिष्ठाता संस्कृत शिक्षा विभाग — १९६९, १९७०
(२) उपमन्त्री — १९७१ से १९७३ तक
(३) मन्त्री — १९७५ एवं १९७७

१० धर्मपत्नी : श्रीमती शन्तिदेवी हिन्दीभूषण, सत्यार्थ भूषण एवं सिद्धान्तभूषण परीक्षाएं उत्तीर्ण, संगीत का शौक, गृहकार्य में अत्यन्तदक्ष।

—o—

श्री केशव मुनि जी

१ नाम : श्री केशव मुनि जी

२ पूर्वनाम : कंस लाल जी

३ जन्मस्थान : लाहौर (सम्प्रति, पाकिस्तान)

४ जन्म वर्ष : सन् १९०५ ई.

५ शिक्षा : डी. ए. वी. हाई स्कूल लाहौर मैट्रीक्युलेट।

श्रीमती सोहागवती

श्री केशमुनि जी

५ व्यवसाय : उत्तर रेलवे विभाग में एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, निरंतर चालीस वर्ष तीन मास। पाकिस्तान बन जाने पर लाहौर से फिरोजपुर स्थानान्तरण। इस अवधि में कतिपय रेलवे यात्रायें कीं। विशेषकर मुम्बई, बडौदा तथा सौराष्ट्र। महर्षि दयानन्द के जन्मस्थान टंकारा की विशेष यात्रा।

७ विशेष : "मेरे पिता स्व० श्री गणेशदास जी डुग्गल बच्छोवाली आर्य समाज लाहौर के सभासद थे। दृढ़ आर्य समाजी। स्वभावतः उनके पैतृक संस्कार मुझे भी जन्म से ही मिले और मैं आजन्म आर्यसमाज में दीक्षित रहा सन् १९३७ में मैंने आर्य समाज के सक्रिय प्रचार में विशेष रुचि प्रारंभ की। मैंने तथा मेरे कतिपय उत्साही साथियों ने लाहौर रेलवेस्टेशन के निकट 'भारतनगर' नामक एक नई वस्ती स्थापित करने का नेतृत्व किया तथा वहां एक विशाल आर्यसमाज का भवन निर्माण किया। भवनसे संलग्न एक कन्या पाठशाला भी स्थापित की जिसमें प्रातः स्मरणीय श्री स्वामी दर्शनानंद जी महाराज की दौहत्री प्राध्यापिका रही। इस पाठशाला के मन्त्रित्व का दायित्व मुझ पर पड़ा। पाकिस्तान बन जाने पर अन्य सभी साथियों की तरह मुझे भी स्वदेश भारत की शरण में आना पडा और यहां आकर मेरी रेलवे सर्विस फिरोज पुर में स्थानान्तरित कर दी गई। इस अवधि में मै बस्ती टंकावाली फिरोजपुर छावनी आर्य समाज का मंत्री रहा। यहां से फरवरी ६५ में मैं दिल्ली आ गया और आर्य समाज रामाकृष्णा पुरम की गति-विधियों में सक्रिय भाग लेता रहा। बाद में वैदिक आदेश के अनुसार उचित आयु में सन् १९७३ में आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में आ गया और ३०-३-७६ को विधिपूर्वक वानप्रस्थ की दीक्षा ले ली। तब से इसी आश्रम में निवास करता हुआ इस के प्रबन्ध बिभाग में यथा शक्ति सेवा कर रहा हूँ।"

o——o

श्री पञ्च मुनि जी

श्री पञ्च मुनि जी

१ नाम : श्री पंच मुनि जी

२ जन्म स्थान : कोटखालडीव, तहसील पौडी (गढवाल)

३ जन्मतिथि : ८ प्रविष्टा मार्गशीर्ष सं०१९६२ तदनुसार २४ नवम्बर १९०५ई.

४ शिक्षा : पर्वतीय क्षेत्रों में विद्यालय दूर दूर होने के कारण पंचम कक्षा तक विद्याध्ययन,

५ व्यवसाय : लाहौर, लायलपुर, कालाबाग आदि स्थानों में सेवावृत्ति। १८ वर्ष की अवस्था में कप्तान बहादुर सिंह के साहचर्य से आर्य समाज की तरफ रूचि बढ़ी। सेवाकाल में आर्य समाजों के सत्संगो में उपस्थित रहते। कालाबाग में आर्यसमाज के पुस्तकाध्यक्ष। चांदकोट गढवाल आर्यसमाज की विधि पूर्वक सदस्यता। बाद में इसी आर्य समाज के प्रधान(१९३७)। आर्य प्रतिनिधि सभा के आदेशानुसार हरिजनों को शुद्ध करके यज्ञोपवीत पहनाये तथा उन्है विवाह में डोला पालकी का अधिकार भी दिलाया। पं० रघुवर लाल जी उपदेशक के साथ ग्राम ग्राम में वैदिकधर्म का प्रचार। बाद में गोरक्षा आंदोलन में सक्रिय भाग तथा एक मास का कारावास सात दिन तिहाड जेल दिल्ली, फिर पटियाला जेल भेजे गये। वहां हवन यज्ञ का प्रचार।
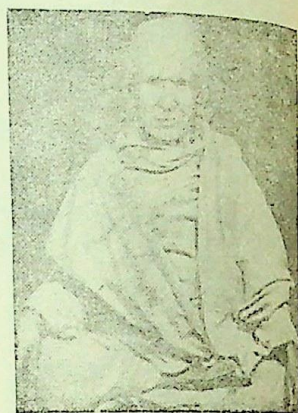
६ दीक्षा : १८ अप्रैल १९६९ को स्वामी श्री सच्चिदानन्द जी वेदतीर्थ से वानप्रस्थ की दीक्षा। फिर ऋषिकेश वैदिक सेवाश्रम के प्रबंधक। वहां भी वैदिक धर्म प्रचार। एक मुस्लिम युवती का एक आर. टी. ओ. युवक के साथ विवाह। साथ ही एक अमरीकन युवती का विवाह एक बंगाली सज्जन से सम्पन्न कराया बाद में वानप्रस्थाश्रम में लौट कर सेवा संस्कार सम्बंधी कार्य किया। दिनांक १-२-७७ को आर्यसमाज डाक पत्थर गये तथा वहां दोनों समय संध्या हवन का नियम चालू किया। स्वभाव में मधुरता तथा सेवाभाव के कारण जहां जहां भी गये वहां के लोगों का स्नेह प्राप्त होता रहा।

o———o

श्री यदुवंश सहाय जी

१ नाम श्री यदुवंश सहाय

२ जन्मस्थान : कस्बा गोपामऊ, जिला हरदोई उत्तर प्रदेश

३ जन्मतिथि : नवम्बर १९०५ ई०

४ शिक्षा : फ़ैजाबाद हाईस्कूल से मैट्रिक ।

५ व्यवसाय : सर्वप्रथम फैजाबाद कलक्टरी में सरकारी सेवा । बाराबंकी सुल्तानपुर प्रभृत्ति जिलों में ट्रैयजरी हैड क्लर्क आफिस सुपरिन्टेन्डेन्ट तथा ट्रैयजरी आफिसर आदि पदों पर सेव कार्य । तथा १९६१ में अवकाश ग्रहण ।

श्री यदुवंश सहाय जी

६ वानप्रस्थाश्रम : सन् १९६४ में निजू कुटी बनाकर स्थिर निवास ।

७ दीक्षा : सन् १९६८ में ।

८ विशेष : पत्नी श्रीमती श्यामा देवी को आश्रम की कुटी में ठहरा कर आर्य सार्वदेशिक सभा की ओर से पूर्वी पाकिस्तान के हिन्दू शरणार्थियों की सेवा के निमित्त भारतीय सीमा पर स्थित गेंदा रेलवे स्टेशन पर कतिपय अन्य वानप्रस्थियों के साथ सेवा कार्य । वहां से लौटकर आश्रम के विभिन्न सेवा कार्यो का अनुष्ठान । इसी बीच धर्म पत्नी का दुःखद निधन । तब भी आश्रम के उपमन्त्री लेखानिरीक्षक, उपप्रधान एवं प्रधान आदि पदों पर रहकर सेवा कार्य । अपने अग्रज श्री जगदम्बा सहाय जी द्वारा १९२३-२४ में आगरा किनारी बाजार समीपस्थ आर्य समाज के सदस्य बनने के पश्चात निरंतर आर्य समाज के सदस्य बने रहे । एवं फैजाबाद एवं बाराबंकी आर्य समाजों के सक्रिय सदस्य रहे । बाद में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश की अतंरंग सभा के भी अनेक वर्ष सदस्य रहे ।

९ लेखन कार्य : 'महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र' (लोक भारती द्वारा प्रकाशित) के लेखन के अतिरिक्त 'आर्य-सेवक' आदि पत्रों में भी अनेक लेखो का प्रकाशन 'आर्यसमाज तब अब और आगे' नामक कृति पुरस्कृत ।

o———o

आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति

आचार्य प्रियव्रत जी

१ नाम : श्री प्रियव्रत जी

२ जन्म तिथि : आश्विन १९६३ विक्रमी, सन् १९०६ई०

३ जन्मस्थान : ग्राम भाऊपुर (पानीपत)

४ शिक्षा : गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय १९७०से१९८४ विक्रमाब्द

५ उपाधि : विद्यालंकार, वेदवाचस्पति

६ वानप्रस्थदीक्षा १९७७

७ व्यवसाय : वैदिक प्रचारक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (सं० १९८४ विक्रमी से अनेक वर्ष तक)। प्रधानाचार्य दयानंद उपदेशक महाविद्यालय (ई० सन् १९३५ से १९४३ तक) प्रधानाचार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी (सन्१९४३)। कुलपति (सन् १९६८ से १९७२ तक) इसी अवधि में संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की सीनेट तथा वैदिक साहित्य के उपाध्यायों की नियुक्ति समिति के सदस्य। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संस्कृत भाषा की पुस्तकों पर पारितोषिक देने वाली समिति के सदस्य। सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा दिल्ली तथा उसकी धर्मार्य सभा के सदस्य। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की अंतरंग सभा तथा विद्यासभा के सदस्य। पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ तथा संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी की वेदाचार्य परीक्षा के परीक्षक।

८ रचानायें : १. वरुण की नौका

२. वेदोद्यान के चुने हुए फूल (पुरस्कृत)

३. वेद का राष्ट्रीय गीत (पुर०सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा)

४. मेरा धर्म

५. वेदों के राजनैतिक सिद्धांत (लिखी जा रही है (

९ विशेष : अच्छे व्याख्याता। योग्य विद्वान्। योग्य शिक्षक। व्याख्यानों द्वारा गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के लिये अनेक लक्ष रु० के संग्रहीत। आर्य वानप्रस्थाश्रम की अतंरंग सभा के सदस्य (अप्रैल ७७ से)
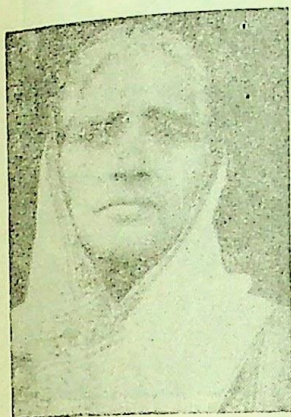
डा० (मेजर) हरदेवप्रसाद जी

१ नाम : श्री हरदेवप्रसाद जी

२ जन्म स्थान : राहों जि० जालन्धर (पंजाब)

३ जन्म तिथि : १३ जन० सन् १९०६ई. (लोहड़ी पर्व पर)

४ पितृदेव : ला. गणपतराम मेहता महात्मा हरप्रकाश जी के सहपाठी तथा आर्यसमाज के उत्साही कार्य कर्ता। मृत्यु १५ जुलाई १९२५

डा (मेजर) हरदेवप्रसाद जी

श्रीमती सत्यवती मेहता

जन्मस्थान : ग्राम चौरासी, जि. होशियारपुर (पंजाब)

जन्मतिथि : ६ दिसम्बर १९११

विवाह : ६ दिसम्बर १९३०

शिक्षा : पंचम श्रेणी

दीक्षा : १७ अप्रैल १९६९, महात्मा आनन्द स्वामी जी द्वारा

आश्रम निवास : १९६५ से

५ मातृदेवी : माता बलवन्त कौर वानप्रस्थ। स्वामी गंगागिरि आचार्य गुरुकुल रायकोट से दीक्षा ली। वानप्रस्थाश्रम में ८६ वर्ष की आयु तक निवास करती रहीं। मृत्यु ५ जनवरी १९७२।

६ शिक्षा : एम० बी० बी० एस० १९३१।

७ व्यवसाय : आठ वर्ष देहली में प्रैक्टिस करने के उपरान्त सेना विभाग में मेजर आई. एम. एस. (ई. सी) (१९४१-४६)। भारत सरकार सेवा (१९४६-५३)। सी. एम ओ. देहली क्लाथ मिल्स देहली (१९५३-५७)। ११ फरवरी १९४२ को वर्मा में हवाई बम से जख्मी होकर १९६४ में सेवा मुक्त। गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेदिक कालिज में अध्यापन कार्य (१९६५-६६)। बाद में परामर्शदाता के रूप में आश्रम में।

८ दीक्षा : तीन वेदों के पारायण यज्ञ एवं पूर्णाहुति के उपरान्त वानप्रस्थ दीक्षा महात्मा आनन्द स्वामी जी द्वारा। (१७-४-६९)।

९ विशेष : दो छोटे भाई। (१) व्यासदेव मेहता असि० विजिलैंस अधिकारी। संप्रति सेवामुक्त। आर्य समाज जनकपुरी नई दिल्ली के प्रधान (२) सुखदेव मेहता (मैनेजर पंजाब नेशनल बैंक। संप्रति सेवामुक्त। जालंधर में निवास। डा० हरदेवप्रसाद जी स्वय वर्तमान में वानप्रस्थाश्रम में रहते हैं। उन्होंने आर्यसमाज भवन हरिद्वार तथा आर्यसमाज बी०एच०ई०एल० के निर्माण के लिए धन संग्रह कर उनके निर्माण में प्रमुख सहयोग दिया। संप्रति आश्रम के स्वास्थ्याध्यक्ष तथा अन्तरंग सभा के सदस्य।

———०———

श्री जगदीशचन्द्र जी जौहरी

श्री जगदीशचन्द्र जी

१ नाम : श्री जगदीशचद्र जी

२ जन्मतिथि : १२ अक्टूबर सन् १६०७ ई०

३ जन्मस्थान : बदायूं, उत्तरप्रदेश

४ शिक्षा : आर्यपाठशाला शाहजहांपुर में शिक्षा प्राप्त की।

५ व्यवसाय : १६३१ से १६६२ तक भारतीय स्थल सेना में सर्विस। वहां लेंफ्टिनेंट, केप्टेन तथा मेजर के उच्च पदों पर नियुक्ति, बाद में सिविलियन अधिकारी बन कर सेवा-निवृत्ति।

६ विशेष : शैशव से ही आर्यसमाज की तरफ झुकाव। १६७० से १६७१ तक आर्यसमाज (कटरा) प्रयाग के प्रधान।

७ वानप्रस्थाश्रम : १६६२ में पेन्शन लेकर १६६४ में आर्यवानप्रस्थ में आगमन तथा कुटी निर्माण। बाद में पं० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति द्वारा वानप्रस्थ दीक्षा। आश्रम में रहते हुए अनेक प्रकार से आश्रम की सेवा में संलग्न रहे। सन् १६७६ तथा १६७७ में आश्रम का मंत्रीपद संभाला। इनके पुत्र श्री विनोदचंद्र जी जौहरी भी आश्रम के अनन्य भक्त। प्रतिवर्ष सपरिवार आश्रम में निवास करने पधारते हैं।
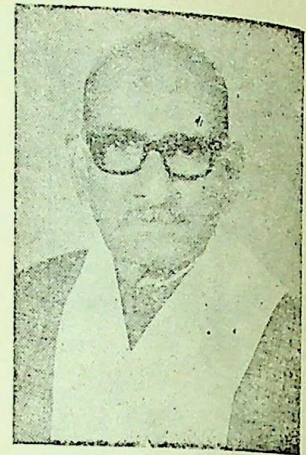
श्रीमती विद्यावती जौहरी

श्रीमती विद्यावती जौहरी

नाम : श्रीमती विद्यावती

जन्मतिथि : तिलहर, जिला शाहजहांपुर (उत्तर प्रदेश)

जन्मतिथि : सन् १६१२ ई०

पिता का नाम : श्री कमलाप्रसाद जी

शिक्षा : आर्य संस्कृत कन्या पाठशाला बदायूं की प्रतिभाशाली छात्रा रहते हुए प्रयाग समिति की विद्याविनोदनी परीक्षा उत्तीर्ण की।

विशेष : विवाह से पूर्व ही सन् १६२७ में आर्यसमाज कटरा प्रयाग में आर्य स्त्री-समाज की स्थापना की। विवाहोपरांत आर्य-स्त्री समाज शाहजहांपुर की मंत्राणी।

आर्यवानप्रस्थाश्रम में : सन् १६६४ में पति के साथ आश्रम में प्रवेश तथा अपनी कुटी बनवाकर उस में स्थिर निवास यहां रहते हुए आपने वेद मंत्र पाठ में विशिष्ट योग्यता प्रदर्शित की, जिससे प्रभावित होकर स्व० महात्मा हरप्रकाश जी के कर-कमलों द्वारा सामवेद का उपहार दिया गया।

—ⓐ—

श्री वृज मोहनलाल जी

श्री वृजमोहनलाल जी

१ नाम : वृजमोहनलाल

२ जन्मतिथि : १५ अक्टूबर १९११ ई०

३ जन्मस्थान : लाहौर

४ माता-पिता : पिता श्री नागेनामल स्याल
माता श्रीमती पूरणदेवी

५ शिक्षा : मैट्रिक पास किया डी. ए. बी. हाईस्कूल लाहौर से १९२८ में ।

६ नौकरी : १७-७-२८ में क्लर्क मिलिटरी अकाउन्ट्स

७ सेवानिवृत्त : १४ अक्टूबर १९६७ अकाउन्ट्स आफिसर पद से

८ विवाह : २ मई १९३१ को
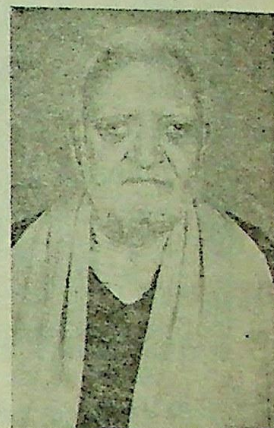
९ आर्यसमाज क्षेत्र : दिसम्बर १९२८ में आर्यसमाज लाहौर छावनी के सदस्य। अप्रैल १९३४ में आर्यसमाज वच्छोवाली के सदस्य, कार्यालय उपमंत्री अप्रैल १९३७ तक। तदनंतर अंतरंग सदस्य १९४० तक। पंजाब हैदराबाद सत्याग्रह समिति के सदस्य भी रहे। सन् १९४१ में आर्यसमाज लोरालाई बिलोचिस्तान के मंत्री। आर्य कन्या इन्टर कालेज एवं आर्यसमाज चौक इलाहाबाद के तीन साल तक आडीटर रहे १९६४ से १९६७ तक।

१० आश्रम में : ८ मई १९६८ को आश्रम आगए।

११ दीक्षा : ७ अप्रैल १९६९ को वानप्रस्थ दीक्षा।

१२ पदाधिकारी : अप्रैल १९६९ से अप्रैल १९७३ तक मंत्री रहे। अगस्त ७६ से अप्रैल १९७७ तक उपप्रधान रहे, तदनन्तर भी अंतरंग के सदस्य रहते रहे।

—०—

श्री इन्द्रदेव जी खोसला

१ नाम : श्री इन्द्रदेव जी

२ जन्म स्थान : हिसार (पंजाब)

३ जन्म तिथि : अप्रैल १९११ ई०

४ शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा डी. ए. वी. स्कूल लाहौर तथा उच्च शिक्षा डी. ए. वी. कालिज में बी. ए. तक। बाद में वकालत परीक्षा उत्तीर्ण कर एडवोकेट बने।

श्री इन्द्रदेव जी खोसला

५ व्यवसाय : चार साल तक वकालत की प्रेक्टिस करने के उपरान्त सरकारी सेवा। बाद में यथा नियम सरकारी सेवा से निवृत्त हो कर डी. ए. वी. कालिज कमेटी की पांच वर्ष तक अवैतनिक सेवा। सम्प्रति पुनः वकालत की प्रेक्टिस।

६ विशेष : पिता सुन्दरलाल जी रेलवे इन्जीनियर एवं स्वामी श्रद्धानन्द जी के जन्मस्थान तलवन जि० जलन्धर के निवासी। अपने बहनोई डा० चिरजीलाल भारद्वाज, जिन्होंने सर्वप्रथम सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद किया, के साथ मिलकर राजस्थान में कई समाजें खोलीं तथा उनके प्रधान भी रहते रहे। वाडमेर (राजस्थान) में महात्मा गांधी की सेवा का अवसर प्राप्त हुआ और उनके आदेश से सरकारी सेवा कार्य से त्याग पत्र देकर देश सेवा कार्य में लग गये। पिता जी के साथ ही श्री इन्द्रदेव जी का बाल्यकाल भी राजस्थान में ही बीता एवं उन के साथ पंजाब लौट आये। पंजाब में विद्यार्थी जीवन में स्वाधीनता आन्दोलनों में सक्रिय भाग। सांडरसन की हत्या के संबन्ध में कारावास दंड। सरकारी सेवाकाल में १९२२ से १९२६ तक सैक्टर २२ का निर्माण करते हुए वहां आर्य समाज मंदिर का भी निर्माण कराया। १९५६ से १९६० तक आर्य समाज पटियाला के मंत्री, स्कूल कमेटी के मंत्री तथा प्रबन्धकर्ता। वहाँ हिन्दी आन्दोलन में सक्रियभाग लेने के कारण सरदार प्रतापसिंह कैरों के क्रोध का पात्र बने तथा हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला स्थान पर, जो उस समय कालापानी माना जाता था, तबादला कर दिया गया। १९६१ से १९६८ तक पुनः पटियाला में तबादला और वहां फिर आर्य समाज के अनेक सेवा कार्य।

७ विशेष : धर्मपत्नी श्रीमती राज खोसला ने अपने पति के सेवा कार्यों में सदा साथ दिया। स्त्री समाज सैक्टर १८ में उपप्रधान रहीं।

८ रचना : अनेक पत्र-पत्रिकाओं में विद्वत्तापूर्ण लेख तथा संप्रति एक अन्य पुस्तिका के लेखन में व्यस्त।

——०——

श्री चाननलाल जी सलूजा

श्री चाननलाल जी सलूजा

१ नाम : श्री चाननलाल जी सलूजा

२ जन्म स्थान : ग्राम सघरपुर जि. जेहलम (वर्तमान पाकिस्तान)

३ जन्मतिथि : ४-८-१९११ ई०

४ पितृनाम : श्री लक्ष्मीदास जी सलूजा, साहूकार

५ मातृनाम : माता रूक्मिणी रानी

६ शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा सघरपुर । मिडिल तक की शिक्षा पिंडी सैदपुर के डी॰ ए. वी. मिडिल स्कूल में । मैट्रिक शिक्षा डी. ए. वी. कालिज रावलपिण्डी १९२८

७ व्यवसाय : लायड्ज बैंक रावलपिण्डी, बैंक आफिसर १९७१
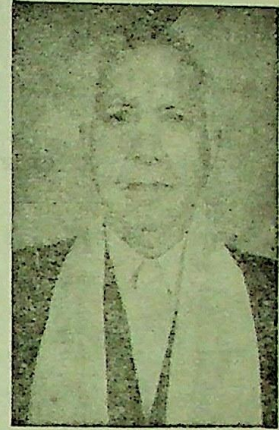
८ विवाह : फरवरी १९३० में श्रीमती शान्तिदेवी के साथ ।

९ विशेष : सामाजिक सेवा कार्य में रुचि । अनेक वर्षो तक आर्यसमाज कोहमरी (वर्तमान पाकिस्तान) द्वारा संचालित चिकित्सालय के निरीक्षक । डी. ए. वी. कालिज रावल पिण्डी के आडीटर। अरोड़ वंश सभा नई दिल्ली के दीर्घकाल तक प्रधान । देश विभाजन के उपरान्त लायड्ज बैंक नई दिल्ली में ही पुनः कार्य करने लगे । सेवा कार्य से अवकाश ग्रहण करने से पूर्व अनेकवर्षों तक 'नेशनल एंड ग्रिडले बैंक लिमिटेड, पालियामेंट स्ट्रीट नई दिल्ली शाखा में कार्य करते रहें ।

श्रीमती शान्ती देवी

श्रीमती शान्तिदेवी जी

१ नाम : शान्ति देवी

२ जन्म स्थान : जडांवाला जि. लायलपुर, (वर्तमान पाकिस्तान) ।

३ जन्मतिथि : सन् १९१५ई०

४ पितृनाम : श्री विश्वमित्र जी । जिला कचहरी में मिसलखान के पदपर ।

५ शिक्षा : प्राईमरी, स्वभाव से ही धर्म परायण तथा समाज सेविका ।

६ वानप्रस्थाश्रम में : दोनों पति-पत्नी ५-२-७६ में आश्रम में आये ।

७ दीक्षा : दोनों ने ही १९७६ में दीक्षा ली, श्री सलूजा अगस्त१९७६ से अप्रेल १९७६ तक अन्तरंग सदस्य रहे ।

८ घर का पता : ३ई/१५ झंडेवाला न्यूलिंक रोड, नई दिल्ली टेली. ५२५९३४

श्री नवनीतलाल जी

श्री नवनीत लाल जी

१ नाम : श्री नवनीत लाल जी

२ जन्मस्थान : ईसाखेल (सिंधु नदी के तट पर)

३ जन्मतिथि : १ सितम्बर १९११ ई०

४ शिक्षा : १९२८ में दशम कक्षा उत्तीर्ण कर १९३४ में वकालत पास की ।

५ विवाह : सन् १९३५ में सीमा प्रांत के शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारी श्री ला० आनन्दप्रकाश जी की सुपुत्री श्रीमती सत्यप्रिया देवी के साथ।
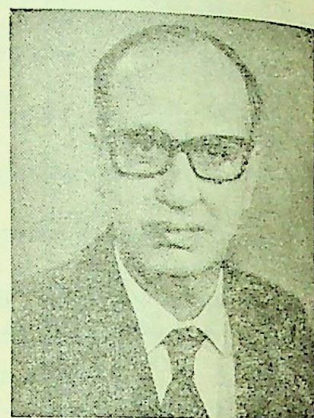
६ व्यवसाय : वकालत । सुप्रीम कोर्ट । ३८ वर्ष तक निरंतर प्रैक्टिस ।

७ विशेष : छह वर्ष की आयु से ही आर्यसमाज मन्दिर के साप्ताहिक अधिवेशनों तथा सत्संगों में जाना प्रारम्भ फूफा श्री जसाराम जी दृढ़ आर्यसमाजी थे । उन्हो की प्रेरणा से आर्य समाज के प्रति आकर्षण। अध्ययन में विशेष रुचि । अपनी श्रेणी में बहुधा ही प्रथम नम्बर में उत्तीर्ण होते रहे । खेलों से भी विशेष लगाव रहा । सन्१९३७ में अपना निवास स्थान बदल कर लाहौर में निवास । वहां दो वर्ष रहकर सन् १९३९ जनवरी से दिल्ली में आगमन और वहीं वकालत की प्रैक्टिस । आर्यसमाज दीवान हाल भवन के एक फ्लैट में किरायेदार के रुप में रहते हुए उक्त आर्यसमाज ही अनेक वर्ष तक समाज सेवा का कार्य क्षेत्र रहा ।

उपमंत्री तथा कोषाध्यक्ष के पदों पर रहे । विगत २५ वर्ष से घर पर प्रतिदिन यज्ञ-याग।

८ वान प्रस्थाश्रम में : सन् १९६८ में आश्रम में कुटी निर्माण । जहां समय समय पर निवासार्थ आते रहते हैं। एक बार चारों वेदों का अर्थ सहित पारायण यज्ञ । सन् १९४८ से पहले तक भारतीय राजनीति की तरफ भी रुचि रही । मगर महात्मा गांधी की हत्या के उपरांत राजनीति से घृणा।

श्रीमती सत्यप्रिया देवी

दृढ़ आर्य समाजी । धार्मिक विचारों में ओत प्रोत । आर्य महिला समाजों तथा संस्थाओं में मृत्युपर्यन्त सक्रिय भाग लेती रही ।

——०——

श्री ज्ञानमित्र जी खोसला

१ नाम : ज्ञानमित्र जी

२ जन्मस्थान : राहों

३ जन्मतिथि : १८-४-१९१२ ई०

४ पिता का नाम : महात्मा हरप्रकाश जी

५ शिक्षा : मैट्रिक, कालिज में प्रविष्ट नहीं कराया। क्योंकि इनके ज्येष्ठ भाई ब्रह्मचारी सर्वमित्र को गुरुकुल में प्रविष्ट करा दिया गया था। बाद में घर की खेतीवाड़ी की संभाल इन्हें ही करनी पड़ी।

श्री ज्ञानमित्र जी खोसला

६ व्यवसाय : कृषि तथा व्यवसाय

७ विशेष : आर्यसमाज राहों के प्रधान। आर्य प्रतिनिधि सभा लाहौर के अंतरंग सभा के सदस्य। आर्य पुत्री पाठशाला राहों (स्थापना १९४९) के प्रधान। आर्य कालिज नवांशहर, दयानन्द ट्रेनिंग कालिज तथा आर्य गर्ल्ज कालिज की प्रबन्ध समितियों के सदस्य। श्री आचार्य आत्माराम जैन फ्री डिस्पेंसरी राहों के प्रधान।

८ विवाह : २७-१-३२ गुजरांवाला ला० काशीराम जी तहसीलदार की सुपुत्री श्रीमती सुशीलावती के साथ सम्पन्न हुआ।
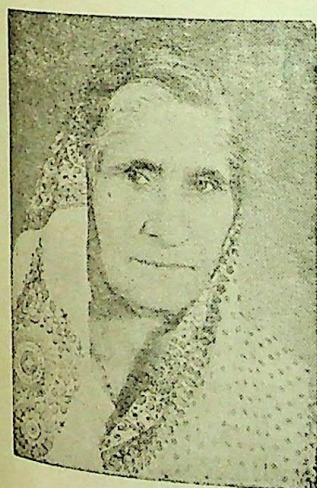
श्रीमती सुशीलावती

नाम : सुशीलावती

जन्म : १९१५ ई०

विवाह : २७-१-३२

जन्मस्थान : गुजरांवाला

सन्तानें : चार पुत्रियां। सब विवाहित। प्रथम कन्या का विवाह एक कर्नल के साथ। दूसरी का डी. आई. जी. पुलिस के साथ। तीसरी का एक कर्नल के साथ तथा चौथी का इंडियन नेवी के चीफ इंजीनियर के साथ।

श्री रामकिशन दास जी

श्री राम किशन दास जी

१ नाम : श्री राम किशन दास जी

२ जन्म तिथि : ११-१-१९१४ ई०

३ पिता का नाम : स्व० श्री बुद्धिप्रकाश जी

४ आर्य समाज में सेवा : सन् १९३१ से सन १९४९ तक आर्यसमाज नया बांस के प्रधान तथा उपप्रधान रहे तथा २०००) की लागत से आर्यसमाज मन्दिर में एक हाल कमरे का निर्माण कराया। अपनी जन्मभूमि बल्लभगढ़ में अपनी माता जानकीदेवी जी की स्मृति में लगभग ३००००) की लागत से एक धर्मशाला का निर्माण कराया। गुरुकुल तुगलकाबाद जो कि गुरुकुल काँगड़ी की शाखा थी, सन् १९४८ से १९५५ तक कार्य किया।

५ आर्य वानप्रस्थाश्रम में : इन्होंने अपने पिता जी की स्मृति में कुटी न० १६ शाखा न० २ में निर्माण कराई। इस समय आर्य समाज आर्यनगर में प्रधान का कार्य कर रहे हैं।

३ धर्मपत्नी : श्रीमती सरस्वती देवी

७ जन्म तिथि : २०-७-१९१६ ई०

८ आर्यसमाज में सेवा : आर्यसमाज आर्यनगर में कोषाध्यक्ष का कार्य कर रही हैं।

०—०

श्री ओमप्रकाश जी

श्री ओमप्रकाश जी

१ नाम : श्री ओमप्रकाश

२ जन्मस्थान : मुजफ्फरनगर

३ जन्मतिथि : सन् १९२० ई०

४ शिक्षा : सुशिक्षित

५ व्यवसाय : उत्कृष्ट व्यापार

६ विशेष : पांच वर्ष तक निरंतर आर्यसमाज नई मण्डी मुजफ्फरनगर के प्रधान। आर्य वैदिक पुत्री पाठशाला नई मण्डी मुजफ्फरनगर के दस वर्ष तक सदस्य। १९३२ में इन की माता जी स्वतंत्रता आंदोलन में कारावास में रहीं। मीरीमल धर्मार्थ औषधालय भी इन के ही धन से संचालित जहां एक डाक्टर एवं दो कम्पाउण्डर कार्यरत। आश्रम के समीप कनखल सड़क पर १९७१ में एक कोठी निर्माण की, जो १९७६ तक आश्रम के अधिकार में रही।

७ वानप्रस्थाश्रम : आश्रम में एक कुटिया बनवाई। आश्रम के स्थायी सदस्य हैं।
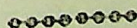
श्री गुरुचरण जी जिज्ञासु

श्री गुरुचरण जी जिज्ञासु

१ नाम : श्री गुरुचरणदास जी

२ जन्मस्थान : बस्ती दानशमंदां, जालंधर

३ जन्मतिथि : २४ अप्रैल १६२ ई०

४ पूर्वज : दादा श्री लाला शंकरदास के दो पुत्र थे, जिनमें छोटे पुत्र लाला किशनलाल जी की दस संतानें। सभी सुयोग्य। लोहे के कारखाने। प्रभूत सम्पत्ति। इनमें सबसे ज्येष्ठ गुरुचरण जी थे। छोटी आयु में ही वैरागी बन गये। वानप्रस्थाश्रम में आकर रहने लगे। माता जी की मृत्यु के बाद अपनी समस्त पैतृक सम्पत्ति तथा बस्ती दानशमन्दां का अपना विशाल भवन वहां की आर्यसमाज को मां की स्मृति में दान दे दिया। गुरु विरजानन्द स्मारक भवन का पुनरुद्धार किया तथा एक विशाल यज्ञशाला बनवाई। इन सब कामों में लगभग ३६०००) व्यय हुआ।

५ स्वर्गवास : पचास वर्ष की आयु में सन् १६७० में।

६ विशेष : इनके पिता श्री किशनचन्द जी ने इनकी स्मृति में चरंजीतपुरा जालंधर में इनकी स्मृति में 'गुरुचरण जिज्ञासु हास्पिटल' की स्थापना की।

७ वानप्रस्थाश्रम : आश्रम में एक कुटिया बनवाई।

---o---

श्री जयन्ती प्रसाद जी

श्री जयन्ती प्रसाद जी

१ नाम : श्री जयन्ती प्रसाद

२ जन्म स्थान : मेरठ

३ जन्म तिथि : अगस्त सन् १९२१ ई०

४ शिक्षा : शैशव में सामान्य किन्तु अब संस्कृत का अच्छा ज्ञान

५ पितृ नाम : श्री रघुवरदयाल जी

६ व्यवसाय : व्यवसाय तथा व्यापार, आर्थिक स्थिति अच्छी।
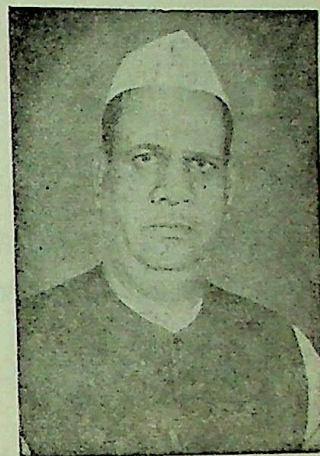
७ विशेष : मन में बार-बार यह प्रश्न उठता रहा कि क्या संसार में खाना-पीना तथा सन्तानोत्पत्ति ही मानव का कर्तव्य है या इसके अतिरिक्त और कुछ भी ? अपने मित्र भगवतदयाल से जब इस प्रश्न का उत्तर मांगा तो उन्होंने जगद्गुरु शंकराचार्य के, जो उन दिनों मेरठ में पधारे हुये थे, दर्शन करने का परामर्श दिया। शीघ्र ही उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। छूटते ही उन्होंने दो प्रश्न पूछे--तुम्हारी जाति क्या है और आर्थिक स्थिति क्या है ? उन्हें जब पता लगा मैं वैश्य हूं उन्होंने तुरन्त कहा 'वैश्य के लिए राम नाम का जाप ही पर्याप्त है। अधिक की आवश्यकता नहीं।' निराशा ही हाथ लगी। अब अपने एक आर्य-समाजी मित्र के परामर्श से एक दिन बुढ़ाना गेट आर्य समाज में गया। वहां समाज के प्रधान श्री मनोहर लाल जी सर्राफ एवं मन्त्री श्री इन्द्राज जी के मधुर व्यवहार तथा बाद में आर्यसमाज में होने वाले वैदिक भाषणों ने मेरा हृदय परिवर्तित कर दिया। संध्या-हवन के मंत्र याद किए। संस्कृत स्वयं शिक्षक के दो भाग पढ़े। इससे आर्य वानप्रस्थाश्रम में आने की इच्छा जागृत हुई और १९७४ में पूर्णरूपेण आश्रम का निवासी बन गया। अब भी संस्कृत पढ़ने की प्रबल इच्छा है।

—o—

श्री पंडित जियालाल जी शर्मा

१ नाम : श्री जियालाल जी

२ जन्म स्थान : अमृतसर

३ जन्म तिथि : सन् १९२२ ई०

४ धर्मपत्नी : श्रीमती लीलावती जी, जन्म १९२६ ।
बस्सी पठाना, पटियाला स्टेट ।

पं० जियालाल शर्मा श्रीमती लीलावती जी
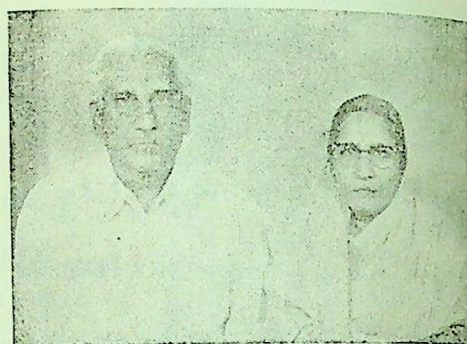
५ पितृदेव : पं० जगतराम जी

६ माता का नाम : श्रीमती वीरादेवी

७ व्यवसाय : प्रारम्भ में सर्विस । बाद में अमृतसर में कपड़े की दुकान । १९५६ से व्यापार केन्द्र कानपुर । वहां वर्तमान में जनरल गंज में 'जियालाल एंड कम्पनी' के नाम से कपड़े का थोक व्यापार चल रहा है जिसे इनके सुपुत्र संभाल रहे हैं । सन्तानें, तीन पुत्र एवं दो पुत्रियां । नाम क्रमशः श्यामसुन्दर (३२ वर्ष), देवेन्द्र कुमार (२८ वर्ष), रवीन्द्र कुमार (२६ वर्ष), सुलक्षणा (३४ वर्ष) और विजया (३० वर्ष), सभी विवाहित ।

८ विशेष : राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्बन्धित रहे (१९३८-३९) । संघ की विचारधारा से प्रभावित होकर आर्यसमाज से संबंधित साहित्य का अध्ययन । ऋषि दयानन्द के उदात्त विचारों से धार्मिक प्रेरणा । इतने प्रभावित हुये कि अपनी सुपुत्री विजया को कन्या गुरुकुल देहरादून में प्रविष्ट कराया (१९६० से १९६८ तक) मई १९६३ में मसूरी जाते समय हरिद्वार में ठहरे जहां महाशय चुन्नीलाल जी से भेंट होने पर वानप्रस्थाश्रम के दर्शन से प्रभावित ।

वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९७८ ।

दीक्षा : सन् १९७८ में ।

श्री महात्मा आर्यभिक्षु जी

१ नाम : श्री आर्यभिक्षु जी

२ जन्म स्थान : वाराणसी से ७ मील पूर्व में स्थित मुगलसराय

३ जन्म तिथि : ३१ जनवरी सन् १९२३

४ पितृदेव : श्रीयुत् प्रसाद जी बैंकर

५ मातृनाम : श्रीमती रामकुमारीदेवी

६ शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा के उपरान्त वाराणसी के 'हरिश्चन्द्र महाविद्यालय में उच्च शिक्षा के लिये प्रवेश। किन्तु स्नातक बनने से पूर्व ही सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए विद्यालय का परित्याग।
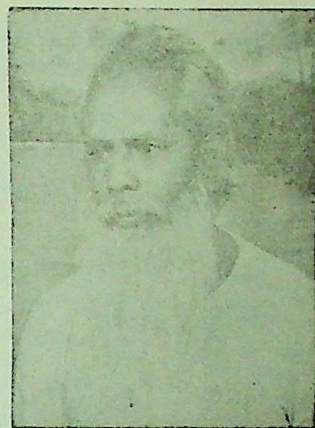
श्रीमती लीलादेवी जी

श्री आर्यभिक्षु जी

७ विशेष : स्थानीय नगरपालिका का अनेक वर्ष तक संचालन तथा 'सार्वजनिक पुस्तकालय' की स्थापना। साथ ही 'नगर पालिका उच्चतर विद्यालय' का भी उद्घाटन, जिसमें संप्रति दो हजार छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं। वैदिक संस्कृति की तरफ विशेष अभिरुचि। आर्यसमाज मुगलसराय की सदस्यता (१९४३)। उक्त समाज के प्रधान (१९४५)। आर्य उपप्रतिनिधि सभा वाराणसी की स्थापना (१९५०)। १९५४ में समाज के प्रतिनिधि बनकर आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के बांदा में सम्पन्न अधिवेशन में सम्मिलित तथा सभा कोषाध्यक्ष निर्वाचित। संप्रति सम्पादक 'आर्य गजट'

८ विवाह : लीलावती जी के साथ हुआ।

९ विरक्त जीवन दीक्षा : सन् १९६३ हस्ते ब्र० अखिलानन्द जी।

१० वानप्रस्थ दीक्षा : वानस्थाश्रम में स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती से सन् १९७३। आजकल आश्रम के प्रधान है।

११ "ब्र० अखिलानन्द-स्मारक आर्यभिक्षु-ट्रस्ट" : प्रचार कार्य करते हुए विगत पंद्रह वर्ष में जो दान प्राप्त हुआ (३० हजार रु०) उसे सन् १९३५ में सार्वदेशिक सभा के संरक्षण में स्टेट बैंक में जमा करते हुए ब्र० अखिलानन्द-स्मारक आर्यभिक्षु-ट्रस्ट स्थापित किया गया। इसकी व्याजरूप में प्राप्त होने वाली धनराशि से वैदिक प्रचार कार्य प्रोत्साहित किया जा रहा है।

———०———

श्री गंगा शरण जी मित्तल

श्री गंगाशरण जी   श्रीमती कुसुमलता जी

१ नाम : श्री गंगा शरण जी

२ जन्म स्थान : मेरठ

६ जन्म तिथि : २० सितम्बर १६२८

४ शिक्षा : बी० काम एल० एल० बी०, इन्कम टैक्स अधिकारी
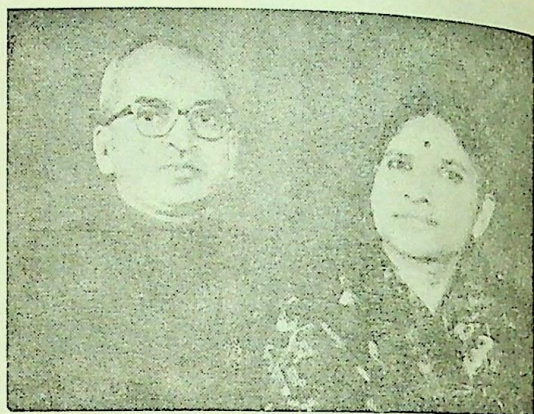
५ विशेष : माता पिता पूर्ण सनातनी । पत्नी कुसुमलता आर्यसमाजी । शुरू में तो यह अच्छा नहीं लगा मगर एक दिन मेरठ आर्यसमाज के उत्सव में सम्मिलित होने पर विद्वानों के भाषणों से हृदय में परिवर्तन । सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन । फिर तो आर्यसमाज के सत्संगों में नियमित उपस्थिति । इन्कम टैक्स अधिकारी होने पर भी रिश्वत इत्यादि दुर्व्यसनों से मुक्त । अधोलिखित आठ बातें सदा ध्यान में रहीं :—

१ : ईश्वर सब जगह है और हमारे हरेक कर्म को देख रहा है ।

२ : जीवन सदा स्थाई नहीं । मृत्यु का सदा ध्यान रखो ।

३ : जो व्यवहार तुम अपने लिये ठीक समझते हो वही दूसरों से करो । जो व्यवहार ठीक नहीं समझते वह औरों से भी मत करो ।

४ : किसी के साथ अनुचित व्यवहार करके तथा उसको कष्ट देकर हम भी शान्ति नहीं पा सकते ।

५ : काम क्रोध के वेग में अपने मन का संतुलन तथा विवेक मत खोओ ।

६ : प्रत्येक कर्म सोच विचार से करो । जल्दी में न करो । ताकि बाद में पछताना न पड़े ।

७ : सदा सत्संग तथा स्वाध्याय करते रहो । बुरी भावनाओं पर अकुंश लगाते रहो ।

८ : सादा जीवन, ऊंचे विचार तथा खान पान की शुद्धता पर ध्यान रखो ।

जैसा खाओ अन्न, वैसा बने मन ।
जैसा पियो पानी, वैसी बने वानी ।।

श्री कर्मवीर जी एम० ए०

१ नाम : कर्मवीर

२ जन्मतिथि : १९३२ ई०

३ जन्मस्थान : देहरादून

४ शिक्षा : डी. ए. वी. कालिज देहरादून से एम. ए.

५ व्यवसाय : मारीशस में भारतीय लघु उद्योग विशेषज्ञ के रूप में सेवा कार्य (१९७५) इससे पूर्व भारत सरकार की ओर से दक्षिणी अमरीका ट्रिनिडाड, सूर्यनाम तथा गियाना में भी कार्य किया।

श्री कर्मवीर जी एम. ए.
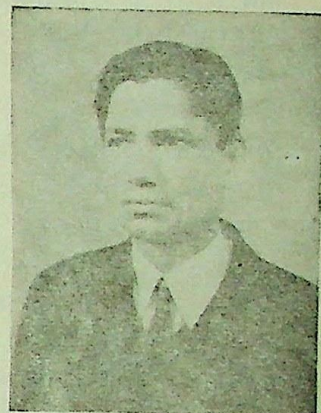
६ विशेष : प्रसिद्ध व्याख्याता पं० ऋषिराम जी के पुत्र होने के कारण आर्यसमाज की तरफ विशेष अभिरुचि। जहां भी गये आर्यसमाज के कार्य में संलग्न रहे तथा अब भी वैसे ही संलग्न हैं। अपनी योग्यता के कारण १९६२ में *Indian Economic Service* मे निर्वाचित। पत्नी श्रीमती लता बसल भी सुशिक्षिता एवं विदुषी, जिन्होंने 'विश्वज्योति' होशियारपुर तथा 'आर्योदय' मारीशस में गीता तथा अन्य विषयों पर विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित कराये।

७ वानप्रस्थाश्रम : आश्रम में इनकी ओर से इनके पिता जी के नाम से "ऋषिराम सेवानिधि" एवं "दयावती महिला सहायता निधि" तथा इनकी माता जी के नाम से शाखा नं० २ में इन्होंने २५००) की लागत से एक दुकान बनवाई।

०——————०

श्री स्वामी सत्यानन्द जी अवधूत

श्री स्वामी सत्यानन्द अवधूत

१ नाम : श्री स्वामी सत्यानन्द

२ जन्म तिथि :

३ जन्म स्थान : महुआ पाटन, देवरिया, उत्तर प्रदेश

४ पिता का नाम : रामचरित्र

५ शिक्षा : सत्यार्थप्रकाश शास्त्री । वेदविशारद

६ परिचय : सवा साल की आयु में, माता के देहान्त से खिन्न हुए पिता ने अपनी विवाहिता पुत्री (मेरी बहिन) के पास पालन-पोषण के लिए भेजा, जहां बहिन ने अपने पुत्र की तरह इनका पालग किया । नौ वर्ष की आयु में पुनः अपने ग्राम महुआ पाटन लौटे । वहां एक दिन कांग्रेस की एक सार्वजनिक सभा में व्याख्याता के मुख से श्रीराम, राजा हरिश्चन्द्र एवं राजा मोरध्वज के ऐतिहासिक प्रसंग सुन कर आत्मबलिदान की प्रेरणा जागृत हुई । बाद में परम आस्तिक पिता रामचरित्र जी के उपदेशों से वैराग्य की तरफ और भी प्रवृत्ति बढ़ी और अन्त में सन्त महात्माओं के दर्शनों ने तो वैराग्य- वह्नि में घृत कार्य कर डाला । अनाथालय हरियाणा के लिए साधु बनने की अभिलाषा लेकर प्रस्थान किया और वहां गोद लेने की इच्छा से आये हुए एक सेठ के अनुरोध को अस्वीकार कर साधु वेश धारण कर लिया ।

७ विशेष : कांग्रेस, शिवमंदिर दिल्ली, हैदराबाद, गौरक्षा तथा हिन्दी रक्षा सम्बन्धी सभी सत्याग्रहों में सक्रिय भाग लेते हुए अनेक बार लाठीप्रहार, कारावास, हथकड़ी तथा बेड़ियों के कठोर दण्ड स्वेच्छा से सहन किये। हैदराबाद जेल में गया जाने वाला अधोलिखित गीत आज भी उन दिनों का स्मरण कराता है -

"विजय करके हम अपने घर जा रहे हैं।
जो मांगा था मुख से, लिये जा रहे हैं।
ये लहराते झण्डे लिये जा रहे हैं।
विजय करके हम अपने घर जा रहे हैं।"

—o—

श्री हरिश्चन्द्र मुनि

श्रीमती सत्यवती सूद

१ नाम : श्री हरिश्चन्द्र मुनि

२ पूर्व नाम : हाकमराम

३ जन्म स्थान . प्रागपुर, जि० कांगडा

४ जन्म तिथि :

५ शिक्षा : दशम श्रेणी तक शिमला हाई स्कूल में।

६ व्यवसाय : सर्वप्रथम शिमला में सर्विस। बाद में देहली में स्टेट आफिस में सर्विस

श्री हरिश्चन्द्र मुनि

७ धर्मपत्नी : श्रीमती सत्यवती सूद।

८ शिक्षा : वानप्रस्थाश्रम में निवास करते हुए सर्वप्रथम संस्कृत सिद्धान्तशास्त्री की परीक्षा प्रथमश्रेणी में। तत्पश्चात् सत्यार्थ विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की। भाषण में निपुण तथा यदाकदा समाचार पत्रों में लेखों का प्रकाशन भी।

९ विशेष : हरिश्चन्द्र मुनि का सर्विस काल ईमानदारी, सात्विक कमाई तथा धार्मिक वृत्ति से ओतप्रोत रहा। उनके इस उच्चस्वभाव का प्रभाव उनकी संतान पर भी पड़ा। समस्त परिवार धार्मिक वृत्ति से सम्पन्न।

१० वानप्रस्थ : महात्मा हरप्रकाश जी के सौम्य स्वाभाव से प्रभावित होकर दोनों पति-पत्नी ने आश्रम में रहने का संकल्प किया। आश्रम जीवन में संयम, सदाचार आदि का कठोरता से पालन।

---o---
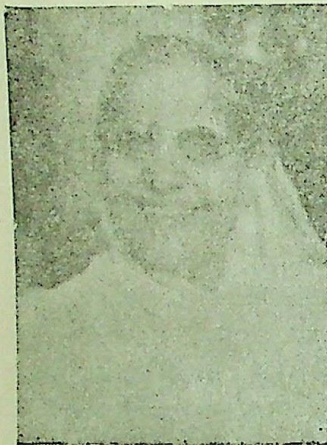
श्री प्यारेलाल जी

१ नाम : श्री प्यारेलाल जी

२ जन्म तिथि :

३ जन्म स्थान : मेरठ

४ पद मर्यादा : जज हाई कोर्ट

५ विशेष परिचय : सुशिक्षित, आर्य सिद्धान्तों का कठोरता से पालन करने वाले तथा अपनी धर्मपत्नी श्रीमती यशोदेवी के प्रति, जो सुशिक्षिता थी, पूर्ण पत्नीव्रत धर्म को निभाने वाले एवं सदा मा सरस्वती के आराधक । अति श्रद्धा से वानप्रस्थाश्रम में निवास करते हुए उन्होंने आश्रम में अपनी एक कुटिया भी बनवाई थी, जो अपने पुत्र श्री आनंद स्वरूप जी के निमित्त निर्मित की थी । सम्प्रति उनके यही सुशील पुत्र अपनी कुटिया में निवास कर रहे हैं ।
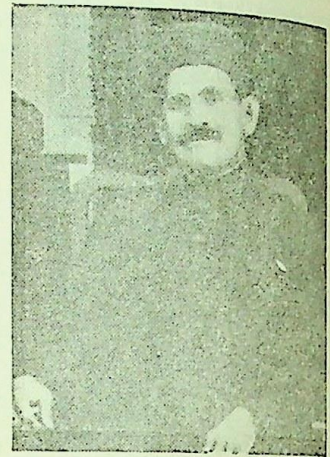
श्रीमती यशोदेवी जी

श्री प्यारेलाल जी

६ निधन : १० जुलाई १९४६ तथा श्रीमती यशोदेवी का निधन ८ जून १९७३ में हुआ ।

——०——

माता सुखदेवी

१ नाम : सुखदेवी

२ जन्मस्थान : ग्राम भोजपुर, जिला बिजनौर

३ जन्मतिथि : अप्रैल सन् १८६६ ई०

४ शिक्षा : साधारण हिंदी शिक्षा

५ विशेष : विवाह एक सम्पन्न जमींदार घराने में १८८८ ई० में। सुसराल में सदा ही तीन चार भैंसें, दस बारह गायें, छः सात नौकर बने रहते थे। पतिदेव कांग्रेस तथा आर्य-समाज के कार्यों में अधिक रुचि रखते थे। उन के अनुसार इन के मन में भी ऐसी ही रुचि जागृत हो गई। घराना बड़ा था अतएव कांग्रेस तथा आर्यसमाज के नेता इन्हीं के यहां ठहरते थे। दो सन्तानें थीं। एक पुत्र तथा एक पुत्री। छोटी आयु में ही दोनों का देहावसान हो गया। पति की मृत्यु भी १९१९ में हो गई। परन्तु इन्होंने कांग्रेस मे सक्रिय भाग लेना नहीं छोड़ा। १९३१-३२ में दो बार जेल जाना पड़ा।

माता सुखदेवी जी

७ वानप्रस्थाश्रम में : इसके पश्चात् घर गृहस्थी के बंधन से मुक्त होकर आश्रम में आ गईं। वहां निजू कुटिया बनवा दी और स्थिर रूप से आश्रम में ही रहने लगीं।

८ विशेष : स्वतन्त्रता सेनानी के नाते इन्हें २००) मासिक पेंशन मिलती है। आयु ११० वर्ष। तो भी अपना सब काम स्वयं कर लेती हैं। प्रवृत्ति अत्यन्त धार्मिक। सत्संगों में पूर्णरुचि।

—०—

माता बासन्तीदेवी

माता बासन्तीदेवी जी

१ नाम : बासन्ती जी

२ जन्मस्थान : एक ग्राम, जिला जालन्धर में

३ जन्मतिथि : सन् १८७६ ई०

४ शिक्षा : सामान्य

५ विशेष : बालविधवा। पुनर्विवाह नहीं किया। आश्रम की ओर से कुछ आर्थिक सहायता। आचार व्यवहार सदा ही अत्यन्त शुद्ध। छल-कपट से सर्वथा रहित। अल्पभाषी, प्रभुस्मरण में अधिकांश समय बीत रहा है।

६ वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९६३ में, आयु १०२ वर्ष।

——०——

माता आवां वाली

माता आवां वाली

१ नाम : आवां वाली
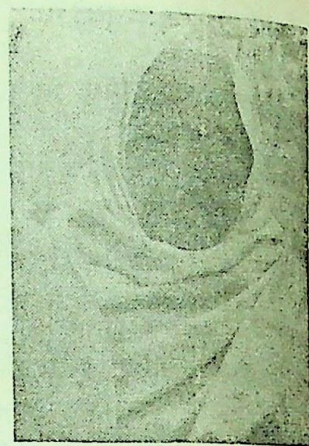
२ जन्म स्थान : शाहपुरा (पंजाब)

३ जन्म तिथि : सन् १८६५

४ पितृदेव : श्री शोभाराम जी साहूकार एवं रईस

५ शिक्षा : सामान्य

६ विशेष : कोहाट निवासी अठारह वर्षीय युवक श्री विशनदास जी के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। वे भारतीय सैनिक विभाग में सर्विस करते थे। सन् १९४६ में ३१ वर्ष सेवा करने के उपरान्त सेवा निवृत्त हुए। पांच सन्तानें। दो की मृत्यु। तीन जीवित। सर्विस काल में, गरमियों में डलहौजी तथा सरदियों में लाहौर में ही अधिकांश वर्ष व्यतीत होते रहे। डलहौजी आर्यसमाज में जाते आते रहने के कारण आर्य-सामाजिक विचार बने।

७ वानप्रस्थाश्रम में : १९४७ में पंजाब विभाजन के उपरान्त पहले सहारनपुर में तीन वर्ष, तदनन्तर दो वर्ष तपोबन देहरादून में और अन्त में दो वर्ष ओमाश्रम में निवास कर वानप्रस्थाश्रम के स्थिर निवासी बन गये। निजू कुटी भी बनवाई। १९६६ में पतिदेव का स्वर्गवास। हिन्दी आंदोलन में महात्मा हरप्रकाश जी के साथ कार्य किया तथा गोरक्षा आंदोलन में एक मास कारावास में रही।

८ दीक्षा : सात वर्ष आश्रम में रहने के उपरांत दीक्षा ग्रहण। पांच वर्ष तक अंतरंग सभा की सदस्या। अनेक शतक-चतुष्टय यज्ञ एवं गायत्री यज्ञ कराये। यथाशक्ति दान भी दिए।

माता सरस्वती जिज्ञासु

माता सरस्वती जिज्ञासु

१ नाम : श्रीमती सरस्वती देवी

२ जन्मस्थान : सतधरा, जिला मिन्टगुमरी (संप्रति पाकिस्तान)

३ जन्म तिथि : सन् १८९७ ई०

४ शिक्षा : महाविद्यालय जालन्धर में अनेक वर्ष तक अध्ययन।

५ विवाह : सन् १९११ में अमृतसर निवासी श्री राजपाल जी के साथ, जिनकी 'रंगीला रसूल' केस तथा तत्सम्बन्धी आंदोलन में सन् १९२९ में एक मदान्ध मुस्लिम युवक द्वारा हत्या कर दी गई। पांच सन्तानें। चार पुत्र एव तीन पुत्रियाँ। पुत्री प्रभावती का विवाह गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक पं० सत्यकाम विद्यालंकार – जो स्वामी श्रद्धानन्द जी के दौहित्र हैं - के साथ सम्पन्न हुआ।
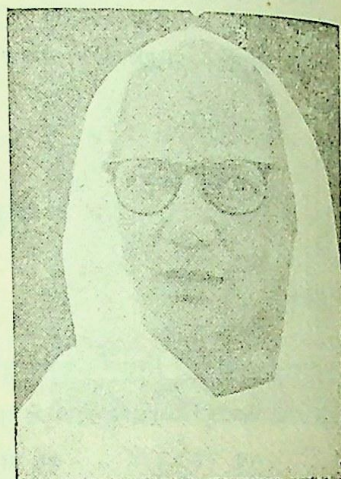
वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९५० में आश्रम प्रवेश। कुटी निर्माण। सं० ४५।

७ दीक्षा : आचार्य प्रियव्रत जी द्वारा।

८ विशेष : पुत्रों का पुस्तक प्रकाशन कार्य "राजपाल एण्ड संस" तथा "हिन्द पाकेट बुक्स" के नाम से उत्तर भारत में अत्यन्त प्रसिद्ध है। वे पूर्ण मातृभक्त हैं। शीत ऋतु में वे माता जी को दिल्ली लिवा ले जाते हैं तथा अत्यन्त सेवा करते हैं।

माता दुर्गादेवी जी

१ नाम : दुर्गा देवी जी

२ जन्मस्थान : लुधियाना

३ जन्म-तिथि : सन् १८९९

४ पितृनाम : श्री परशुराम जी

५ शिक्षा : सर गंगाराम हाई स्कूल लाहौर मे आठवीं कक्षा तक । बाद में हिन्दी-रत्न आदि परीक्षाय भी उत्तीर्ण कीं । ऊंचे नम्बरों में पास होने के कारण उक्त हाई स्कूल में ही अध्यापिका का कार्य मिला । १४ वर्ष तक सफलता तथा योग्यता-पूर्वक अध्यापन कार्य सम्पन्न करने के उपरान्त सन् १९५४ में सेवा निवृत्ति ।

श्रीमती दुर्गादेवी जी

६ विशेष : पिता धार्मिक रुचि के थे । अतएव उनका प्रभाव इन पर भी स्वभावतः पड़ा । १५ वर्ष की आयु में नकोदर निवासी श्री बिहारीलाल जी ओवर-सियर से विवाह । दो सन्ताने हुई परन्तु दोनों की अकाल मृत्यु हो गई । विवाह के चार ही वर्ष बाद सन् १९१८ में पतिदेव भी स्वर्गवासी हो गये ।

७ वानप्रस्थाश्रम में : गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री जनार्दनदेव जी विद्यालंकार तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सत्यवती जी (भतीजी) की प्रेरणा से आश्रम में आगमन । महात्मा हरप्रकाश जी के संरक्षण में निश्चिन्त जीवन ।

८ दीक्षा : आश्रम में वानप्रस्थ की दीक्षा ली तथा चतुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया । अनेक वर्षों से अन्तरंग सभा की सदस्य । उत्तरदायित्वों का सफलता-पूर्वक अनुष्ठान ।

माता लाजवन्ती जी गुजराल

श्रीमती लाजवन्ती गुजराल

१ नाम : लाजवन्ती

२ जन्मस्थान : जेहलम, पिण्डदादनखान

३ जन्म-तिथि : १ जनवरी १८९९ ई०

४ विवाह : सन् १९१३
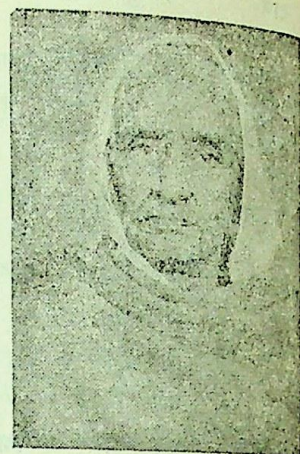
५ विशेष : पिता जी रियासत पुंछ में व्यवसायी। दृढ़ आर्य-समाजी। बड़ी कठिनाई से राजा सुखदेवसिंह जी की स्वीकृति लेने के पश्चात् वहां समाज की स्थापना एवं पंडित मुक्तिराम जी एवं खुशालचन्द जी द्वारा उद्घाटन करा सके। श्रीमती लाजवन्ती के पति लाहौर में वकालत का अध्ययन करने के उपरान्त बम्बई में बिजनेस करते रहे (१९१५ से १९३१ तक) बाद में रावलपिण्डी में आकर स्थिर रूप से रहने लगे। (१९३१ से १९४७ तक) यहां डी० ए० वी० कालेज के प्रधान भी रहे। स्थानीय अस्पताल के प्रबन्धक के रूप में समाज-सेवा भी करते रहे। पाकिस्तान बनने के उपरान्त दिल्ली में आकर प्रिंटिंग प्रेस खोला जो खूब उन्नत हुआ। अन्त में ७६ वर्ष की आयु में दिवंगत हो गये (सन् १९६४)। इस बीच वानप्रस्थाश्रम में निजू कुटी बनाने के उद्देश्य से सर्वप्रथम २०० रुपये में जगह खरीदी और १९४४ में १४०० रुपये तथा १९४७ में १४०० रुपये भेज कर कुटी बनवाने का सूत्रपात किया और १९५० में पुत्र मदनलाल ने ३००० रुपये भेज कर यह काम पूर्ण करा दिया।

६ आश्रम में : यतः इनके तीनों पुत्र देहली में ही रहते हैं समय-समय पर दिल्ली भी जाती रहती है। कभी आश्रम कभी दिल्ली।

माता सीतादेवी आनन्द

माता सीतादेवी आनन्द

१ नाम : श्रीमती सीतादेवी

२ जन्मस्थान : भेरा, जिला शाहपुर (पंजाब)

३ जन्मतिथि : ५ मई सन् १६०० ई०

४ पितृनाम : श्री रामलभाया सेठी

५ शिक्षा : हिन्दी प्रभाकर, संस्कृत विशारद तथा मैट्रिक

६ विवाह : सन् १६१२, पतिदेव हरकी पैड़ी हरिद्वार के निकटस्थ पीपल्स बैंक के मैनेजर, छह मास तक रुग्ण रह कर १६२५ में दिवंगत।

७ व्यवसाय : शिक्षण कार्य। १६२५ से १६२७ तक जेहलम में, तथा सन् १६२७ से १६६० तक वृंदावन तथा मथुरा में अध्यापन करने के उपरान्त स्वयं संचालित स्कूलों में शिक्षण कार्य।

८ विशेष : एक संतान। ४३ वर्ष की आयु तक जीवित। बाद में सन् १६५८ में आसाम में एक सात वर्ष के बालक को ब्रह्मपुत्र में डूबने से बचाते हुए स्वयं डूबने से मृत्यु। इस मृत्यु से माता सीतादेवी के मन में वैराग्य जागृत। संसार से विरक्ति।

९ आश्रम में : सन् १६६० में आश्रम में आकर स्थिर निवास। १६७३ तक आश्रम में संस्कृत शिक्षण का कार्य। अब भी आश्रम की सेवा में निरत।
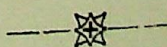
श्रीमती सरस्वती देवी जी

श्रीमती सरस्वती देवी

१ नाम : सरस्वती देवी जी

२ जन्मतिथि : सन् १९०२ ई०

३ स्वर्गवास : ५-१०-७० ई०

४ दानी महिला : ये आर्य परिवार की महिला थी और संध्या व अग्निहोत्र में विशेष रुचि रखती थीं व समय समय पर दान देती रहती थी।
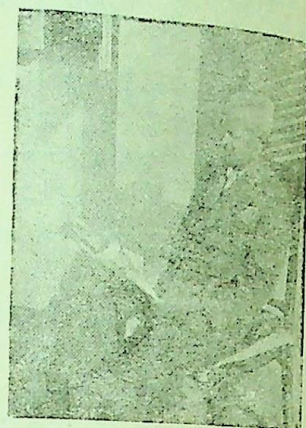
श्री अमरनाथ जी एडवोकेट

५ कुटी निर्माण : सत्संग भवन में ४/१ कुटी का निर्माण कराया। श्री वेदमित्र जी की कुटिया में जंगले न : होने से बड़ी कठनाई होती थी उन्होंने उसमें ५ जंगले लगवाये।

६ औषधालय : वानप्रस्थ में होम्योपैथिक औषधालय का प्रारम्भ करने की योजना बनाई। आश्रम की स्वीकृति पर प्रतिवर्ष ६००) देने का वचन दिया तथा यह धन राशि औषधालय को प्रतिवर्ष मिलती रहे इसके लिए एक ट्रस्ट बनाया जो कि उनकी मृत्यु के पश्चात् भी उनके पुत्र यह धन प्रतिवर्ष भेजते रहते है।

७ पति । श्री अरमनाथ जी एडवोकेट।

८ जन्मतिथि : सन् १८९९ई०

o———o

माता सुवीरा देवी

१ नाम : सुवीरा

२ जन्मस्थान : कमालिया, जिला लायलपुर

३ जन्मतिथि : सन् १६०२ ई०

४ शिक्षा : प्रभाकर, कन्या महाविद्यालय जालंधर

५ विशेष : शिक्षा के उपरांत महात्मा गांधी के आंदोलन में सक्रिय भाग। कांग्रेस प्रचार। व्याख्यान।

माता सुवीरा देवी

६ विवाह : मिन्टगुमरी (हडप्पा) में। वहां बस्ती में एक कन्या पाठशाला की स्थापना। १६२५ में पतिदेव की बदली जालंधर में। वहां फेंटनगंज कन्या पाठशाला की मुख्याध्यापिका। पुनः पतिदेव का तबादला अम्बाला में बैंक मैनेजर के पद पर। यहां भी घर-घर प्रचार कार्य। कबाड़ी बाजार में एक नई पाठशाला की स्थापना। वहां के संगीत सम्मेलनों तथा कवि सम्मेलनों में उत्साह पूर्वक भाग। भाई अर्जुनदेव जी की धर्मपत्नी श्रीमती उषादेवी जी के साथ कांग्रेस कार्य। देश के विभाजन के पश्चात् शरणार्थियों के लिये नई पाठशाला का उद्घापन। एक ही वर्ष में पाठशाला में लगभग ढाई सौ छात्रायें प्रविष्ट। हिन्दी आंदोलन में सक्रिय भाग। कारावास, गोरक्षा आंदोलन में भी सक्रिय भाग और परिणाम स्वरूप पुनः जेल यात्रा। आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यों में सहायिका बनकर अनेक प्रदेशों में धर्म प्रचार। पतिदेव का देहान्त (१६६४)। बाद में हंसराज महिला महाविद्यालय जालंधर में अध्यापन कार्य प्राध्यापिका रूप में।

७ वानप्रस्थाश्रम में : लगभग १६६८ में वानप्रस्थाश्रम में आगमन। यहां महात्मा हरप्रकाश जी के आदेश से उत्तर-प्रदेश में प्रचार कार्य।

——o——

माता यशोवती

१ नाम : यशोवती

२ जन्म स्थान : ग्राम बिस्वा, जि० सीतापुर उत्तर प्रदेश

३ जन्म तिथि : नवम्बर १९०५ ०ई

४ पिता : श्री कुंजबिहारी डिक्ट्रिक एण्ड सेशन्स जज । उच्चकोटि के विद्वान तथा दृढ़ आर्य

५ शिक्षा : हिन्दू गर्ल्स हाई स्कूल (बाद में 'महिला विद्यालय) मे दसवीं क्लास तक (१९२४)

माता यशोवती

६ विशेष : महात्मा हंसराज जी के सुपुत्र श्री बलराज जी के साथ विवाह (१९२५)। इस अवधि में अनेक वर्ष पतिदेव तथा महात्मा हंसराज जी के सान्निध्य में व्यतीत सन्तानें चार तीन पुत्र

तथा एक पुत्री । ज्येष्ठ पुत्र का देहान्त (नवम्बर १९६४ में) पतिदेव का देहान्त २५ दिसम्बर १९५६।

७ वानप्रस्थाश्रम में : अक्तूबर १९६० में पं० ऋषिराम जी की प्रेरणा से आश्रम में आगमन । पतिदेव की मृत्यु के कारण हुए अत्यधिक आघात से चित्त में जो दीर्घ अवसाद तथा मानसिक अशान्ति निरंतर २४ वर्ष तक व्यथित करती रही, इस आश्रम में आकर वास्तविक शांति की प्राप्ति । आश्रम भूमि को माता तथा महात्मा हरप्रकाश जी को पिता मानते हुए यथार्थ अध्यात्मिक संतोष की उपलब्धि ।

८ दीक्षा : ३ फरवरी सन् १९७५ ई० ।

—·—०——

माता विद्यावती पाठक

माता विद्यावती पाठक

१ नाम : विद्यावती

२ जन्म स्थान : लाहौर

३ जन्म तिथि : सन् १९०५ ई०

४ शिक्षा : पितृदेव पं० बालकृष्ण जी भारद्वाज ने घर पर आर्यसिद्धान्तों की शिक्षा

५ विशेष : विवाह सन् १९२१। इनके पतिदेव ने १० वर्ष गुरुकुल कांगड़ी में शिक्षाप्राप्त करने के उपरान्त डी.ए.वी कालिज लाहौर में शिक्षा प्राप्त की। सन् १९५७ में उनका स्वर्गवास हो गया। विद्यावती जी ने सन् १९२३ से सन् १९२५ तक कन्या गुरुकुल दिल्ली में कार्य किया। बाद में पति-पत्नी ने मिलकर दिल्ली में एक आर्य कन्या पाठशाला स्थापित की जिसमें ४०० बालिकायें अध्ययन करती थीं। आजकल यह पाठशाला 'सेठ रग्घूमल स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

६ वानप्रस्थाश्रम : आश्रम में आकर निवास करने की इनकी चिर अभिलाषा १९७० में पूर्ण हुई। महात्मा हरप्रकाश जी तथा अन्य आश्रम वासियों ने इन्हें बहुत उच्च तथा वात्सल्यमय व्यवहार मिला।

७ दीक्षा : सन् १९७२ ई० में पं० धर्मदेव जी द्वारा। १५०० रु० का दान दिया।

——०——

माता गायत्री देवी

माता गायत्री देवी

१ नाम : गायत्री देवी

२ जन्म स्थान : वल्लभगढ़, जि. गुड़गांव

३ जन्म तिथि : सन् १९०७ ई०

४ शिक्षा : पंचम कक्षा तक आर्य-स्कूल वल्लभगढ़। बाद में पिता जी की प्रेरणा से घर पर ही धार्मिक पुस्तकों का पठन तथा कन्या महाविद्यालय जालन्धर की पाठविधि का अनुगमन भी घर पर ही।

स्व० श्री भूदेव जी पति गायत्री देवी

५ विवाह : सन् १९२१, श्री भूदेव जी के साथ। चार सन्तानें। तीन पुत्र १ पुत्री। भूदेव जी की शिक्षा डी. ए वी. हाई स्कूल लाहौर में दशम कक्षा तक हुई।

६ वानप्रस्थाश्रम में : १९६० में। यहां आकर सर्वप्रथम अपनी कुटी का निर्माण। बाद में श्री भूदेव जी ने १९६८ तक आश्रम की सब परीक्षायें देने के उपरांत 'सत्यार्थ शास्त्री' की परीक्षा में प्रथम नम्बर प्राप्त किया। फिर १९७५ में मंत्र प्रतियोगिता और १९७६ में ऋग्वेदशतक की परीक्षा (अर्थ सहित) उत्तीर्ण की।

—o—
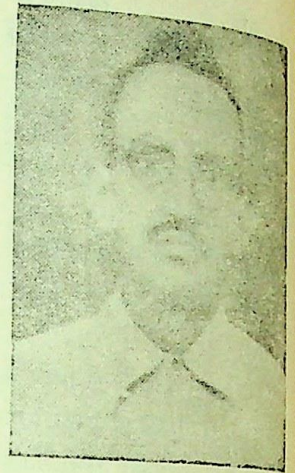
श्रीमती कमला गुप्ता

श्रीमती कमला गुप्ता

१ नाम : कमलादेवी जी

२ जन्म स्थान : फर्रुखाबाद के ख्याति प्राप्त नाना के गृह में।

३ जन्म तिथि : २२ जून १९०६ ई०

४ शिक्षा : मैट्रिक काशी विश्वविद्यालय में अध्ययन।

५ विशेष : नाना स्वामी दयानन्द के शिष्य। फर्रुखाबाद आने पर उन्हीं के गृह पर स्वामी जी का निवास। दादा जौहरी तथा मोतियों के व्यापारी। पिता श्री राधाचरण जिला मजिस्ट्रेट एवं पूर्ण आर्य-समाजी। १९२० में अनेक विधवा-विवाह सम्पन्न कराये। पतिदेव श्री राधाकृष्ण जी इन्जीनीयर। पंजाब से आकर पानीपत में स्थिर निवास। पानीपत आर्य-समाज तथा आर्य कालिज आदि अनेक सस्थाओं की स्थापना। लगभग २० वर्ष तक स्त्री-समाज पानीपत की प्रधाना। भाई श्री आत्मा-चरण आई० सी० एस० वरिष्ठ जज, जिन्होंने महात्मा गांधी के घातक गोडसे के केस का निर्णय दिया। सन्तानें, दो पुत्र एवं चार पुत्रियां। दोनों पुत्र क्रमशः जनरल मैनेजर एवं कर्नल।

६ वानप्रस्थ में : पतिदेव के निधन से संसार से विरक्त होकर आर्य वानप्रस्थाश्रम में निज कुटिया बनवा कर स्थिर निवास।

७ दीक्षा : १९७० में वानप्रस्थ दीक्षा। शान्ति-पूर्वक आश्रम में ही जीवन बिताने की कामना।

८ रचना : ज्ञानधारा तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेखों का प्रकाशन।

— —०— —

मातुश्री डा० रामप्यारी जी

१ नाम : श्रीमती रामप्यारी जी

२ जन्म स्थान : नाभा पंजाब

३ जन्म तिथि : सन् १९०६ ई०

४ शिक्षा : सर्व प्रथम कन्या महाविद्यालय जालंधर की स्नातिका परीक्षा उत्तीर्ण की। स्नातिका बनने के उपरात अनेक वर्षों तक उसी संस्था की निस्वार्थ सेवा। बाद में हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में प्रवेश जहां संस्कृत में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर इतिहास में एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की।

मातुश्री रामप्यारी जी

५ व्यवसाय : विशेष योग्य होने के कारण कोटा राजस्थान के निवासी डा० मथुरा लाल जी शर्मा के अत्यन्त अनुरोध से आप ने कोटा (राजस्थान) के महारानी गर्ल्स कालिज के प्रिंसिपल पद को स्वीकार कर अनेक वर्षों तक इसी पद पर कार्य किया। इसके उपरांत आपकी नियुक्ति 'इस्पेक्टर पद पर और बाद में डायरेक्टर बना दी गई।

६ विशेष : क्योंकि अत्यन्त शिशु अवस्था में माता परलोक गत हो गई इनका लालन-पालन अपनी ननिहाल में हुआ। नाना ख्याति प्राप्त व्यक्ति थे। नानी भी प्रभु भक्त थीं। उन्हीं से मानों विरासत मे धर्म के प्रति भावनायें उत्पन्न हुई। सेवा काल में राजस्थान के जयपुर, अजमेर तथा बीकानेर आदि स्थानों पर वहां कीं आर्य समाजों की सदस्या रही। तथा उनकी गति विधियों में सक्रिय भाग लिया। योग साधना की तरफ विशेष झुकाव रहा। अनेक स्थानों पर घूम कर योगियो की खोज करती रही और अंत में सेवा वृत्ति से पूर्ण विराम ले लिया।

७ वानप्रस्थाश्रममें : बहिन माता दुर्गा देवी जी का स्नेह इन्हे आश्रम में खींच लाया और सन् १९६३ में अपनी निजू कुटी बनवाई।

८ श्री योगेश्वरानन्दाश्रम ऋषिकेश में : स्वामी योगेश्वरानंद जी की शिष्या। गुरु इतने प्रसन्न कि उन्हें अपने 'योगनिकेतन' में योग की शिक्षिका नियुक्त कर लिया। सच्ची ब्रह्मनिष्ठ। तथा १३ अप्रेल १९७८ ई० केवैंसाखी के दिन माता जी संन्यास की दीक्षा ले रही हैं।

—:०:—

माता तेजकौर जी

१	नाम	: तेजकौर
२	जन्मस्थान	: ग्राम मग्गोवाल, जि. गुजरात
३	जन्मतिथि	: १९०७ ई०
४	पितृनाम	: ला० दीवानशाह
५	मातृनाम	: चाननकौर

माता तेजकौर जी

६ विशेष : विवाह सन् १९२७, नूरमहल जि. जालंधर के निवासी एक पुलिस अधिकारी के साथ। विवाह के डेढ वर्ष बाद पति का देहावसान। इसके उपरांत अपने पितृगृह में वापस। वैधव्य में होने वाले आर्थिक कष्ट से सुरक्षित रखने के लिए पिता ने अनेक आभूषण तथा पर्याप्त जमीन इनके नाम करदी। मन लगाने के लिये अपने गांव में एक आर्यसमाज भी स्थापित कर दी। आर्यसमाज के लिए कुछ भूमि पिताजी के एक मुस्लिम मित्र ने दी। दो भाई चार बहनें। जब दोनों भाई कालिज की पढ़ाई के लिये लाहौर गये तो ये भी इनके साथ वहीं चली गईं और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ में रूचि लेने लगीं। भाई परमानन्द जी से विशेष सम्बंध के कारण पाकिस्तान बनने पर लाहौर से देहरादून आगमन सन् (१९४७)। स्वामी सत्यानन्द जी के परामर्श से देहरादून से वानप्रस्थाश्रम में आगमन सन् १९४७-४८। भाई परमानन्द जी के सुपुत्र श्री धर्मवीर जी ने इनके कारण ही ज्वालापुर में अपनी कोठी बनवाई और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का कार्य करते रहे। आश्रम की अनथक सेवा में अब भी संलग्न।

०—०

माता रानी कपूर

श्रीमती रानी कपूर

१ नाम : श्रीमती रानी जी

२ जन्म स्थान : एवढाबाद, पंजाब

३ जन्म तिथि : १-४-१९०७ ई०

४ शिक्षा : लाहौर से इंटरमीडियेट

५ विशेष : विवाह डा० एन०सी० कपूर के साथ हुआ। प्रायः मरी पर्वत पर रहते थे वहीं प्रेक्टिस की। वहीं पर अपनी कोठी बनवाई। आर्यसमाज से रुचि। प्रतिदिन आर्य समाज की सेवा में कुछ समय देते थे। इस कारण रानी जी का मन भी वैदिक धर्म की तरफ झुक गया। सन् १९५७ में पांडिचरी अरविन्दाश्रम में गमन तथा ३।। वर्ष तक वहीं निवास। बाद में देहली में आकर वहां अपनी कोठी बनवाई और छह वर्ष तक वहीं निवास करती रहीं।

६ वानप्रस्थाश्रम में : तत्पश्चात् वानप्रस्थाश्रम में आकर यहां भी शाला नं० २ में अपनी कुटिया बनवा ली और गत दस वर्ष से यहीं रहती है। यथाशक्ति दान भी देती रहती है। साधनारत रहती है।

———

श्रीमती नारायणी देवी

श्रीमती नारायणी देवी

१ नाम : नारायणी

२ जन्म स्थान : ग्राम बावरी, जि० मुजफ्फरनगर

३ जन्मतिथि : अप्रैल सन् १९०८ ई०

४ पितृनाम : पं० मुंशीराम जी वैद्य

५ शिक्षा : स्कूल में तृतीय श्रेणी तक। बाद में पिता जी ने रामायण तथा गीता पढ़ाई।

६ विवाह : कैराना में एक गौड ब्राह्मण युवक के साथ (सन् १९३३)।

७ विशेष : कैराना आर्यसमाज के सत्संगों में जाते रहने से आर्य समाज की तरफ रुचि। संध्या की पुस्तक खरीद कर नित्य मंत्रपाठ विवाहित जीवन से वितृष्णा। प्रभु भजन की तीव्र अभिलाषा। तभी वानप्रस्थाश्रम के विषय में सुना मगर चार सन्तानों की व्यवस्था के उत्तरदायित्व के कारण आश्रम न जा सकी। अन्त में लड़कियों के विवाह सम्पन्न हो जाने के बाद आश्रम में चली आई यहां आने के उपरान्त एक दिन समाचार मिला कि इकलौते पुत्र की जिसकी २४ वर्ष की आयु थी किसी दुर्घटना में मृत्यु हो गई। वैराग्य इतना तीव्र कि इस समाचार को सुनकर भी घर नहीं गई। सोच लिया भगवान के आगे किसी की नहीं चलती।

८ आश्रम में : रहते हुए लगभग २३ साल हो गये। सत्यार्थप्रकाश, आर्याभिविनय, ऋग्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद लेकर उनके पारायण में दिन व्यतीत कर रही हूं।

———

माता सुमति देवी जी गोयल

माता सुमतिदेवी जी गोयल

१ जन्म नाम : सुमतिदेवी

२ जन्म स्थान : ग्राम मुंडालो जिला मेरठ ।

३ जन्म तिथि : सन् १९१० ई०

४ शिक्षा : पिता श्री ज्वालाप्रसाद जी विद्याप्रेमी व शिक्षित थे। अतएव उन्हीं से प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त कर ग्राम के स्कूल में पढ़ाया।

५ विवाह : कुछ दिन बाद मेरठ में बस गये और वहां के एक सुशिक्षित युवक विश्वम्भरनाथ जी से विवाह हुआ।
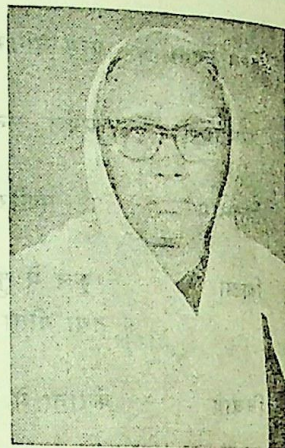
६ विशेष : अध्ययन का शौक विशेष रहने से घर पर भी उच्चतर शिक्षाग्रहण करती रही और सन् १९३० में 'रघुनाथ-गर्ल्स कालिज' में अध्यापिका नियुक्त हो गई। वहां निरन्तर चालीस वर्ष अध्यापन कार्य करते रहने के उपरांत सन् १९७० में अवकाश ग्रहण किया। बड़ी पुत्री संप्रति 'रघुनाथ गर्ल्स कालिज' में रीडर। छोटी पुत्री 'कन्होरलाल गर्ल्स डिग्री कालिज में प्रिंसिपल। बड़ा दौहित्र तीन वर्ष जर्मनी में शोध कार्य करने के उपरान्त सम्प्रति रुड़की यूनिवर्सिटी में रीडर।

७ वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९७४ में।

८ दीक्षा : पूज्य ब्रह्ममुनि जी द्वारा सन् १९७० में।

माता आनन्दा यति

१ नाम : आनन्दा यति

२ जन्म तिथि : सन् १९१० ई०

३ जन्म स्थान : पटियाला

४ पिता का नाम : काशी राम जी

५ माता का नाम : श्रीमती नाथ देवी

श्री माता आनन्दा यति

६ व्यवसाय : फलाकांक्षा रहित मानव सेवा ही एकमात्र व्यवसाय। कुछ पूर्व जन्मागत संस्कार, कुछ ज्येष्ठ भाई मुन्शी राम जी के वैराग्य जनक उपदेशों के कारण विरक्तिमय प्रवृत्ति। आजन्म अविवाहित रहने का कठोर व्रत। सांसारिक वातावरण से पृथक् रहने के उद्देश्य से तीन चार कन्या पाठशालाओं में अवैतनिक अध्यापन कार्य। अन्त में केश छेदन कर घोर तप का अनुष्ठान। महर्षि दयानन्द चरित्र के पारायण द्वारा मानसिक शुद्धि। १९५४ में गृह त्याग कर गुरु की खोज में यमुना नगर निवासी स्वामी आत्मा नन्द जी के आश्रम में पहुंचना और उनसे भेंट न हो सकने पर वहां के आर्यसमाज मन्दिर में रात्रि यापन। प्रभात होने पर समाज के मन्त्री महोदय से भेंट तथा उनके परामर्श से आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में आगमन। आश्रम के प्रधान महात्मा हरप्रकाश जी का उनके आगमन पर प्रसन्न होना तथा उन्हें आश्रम में निवास की स्वीकृति देना। तब से निरन्तर आश्रम में तपोमय जीवन व्यतीत करते हुए वैदिक धर्म के प्रचार तथा अन्य निरीह सेवा कार्यों में निरत रहना।

७ सन्यास दीक्षा : इसी बीच महात्मा प्रभु आश्रित जी से सन्यास की दीक्षा। स्वामी धर्मानन्द जी, पं० ऋषि राम जी तथा महात्मा आनन्द स्वामी से वेदों तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन। दिल्ली, शिमला, उत्तर प्रदेश, पंजाब, गुजरात मुंबई, कलकत्ता, कश्मीर आदि में प्रचारार्थ पर्यटन।

८ विशेष : हिन्दी आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर छः मास तक कारागार वास। गौरक्षा सत्याग्रह में आत्माहुति देते हुए एक वर्ष तीन मास तक कारागार वास। भूतपूर्व प्रधान मंत्री की कोठी पर गोवध-निषेध आन्दोलन करते हुए भूख हड़ताल।

माता राज रानी जी विशारद

माता राजरानी विशारद

१ नाम : राजरानी

२ जन्म स्थान : फैजाबाद, उत्तर प्रदेश

३ जन्म तिथि : सन् १९१० ई०

४ पिता का नाम : परम ईश्वर भक्त श्री रघुनन्दन प्रसाद जी

५ शिक्षा : संस्कृत विशारद

६ व्यवसाय : कन्या गुरुकुल देहरादून में निरन्तर ४१ वर्ष तक संस्कृत का अध्यापन।

७ वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९७२ में

८ विशेष : आश्रम में भी अध्यापन

—०—

माता सत्य प्रिया

श्रीमती सत्यप्रिया

१ नाम : सत्य प्रिया

२ जन्म स्थान : जिला लुधियाना, (पंजाब)

३ जन्म तिथि : सन् १९११ ई०

४ शिक्षा : आर्य पाठशाला में अध्ययन

५ विवाह : सन् १९२७ में श्रीयुत् विक्रमप्रकाश जी के साथ
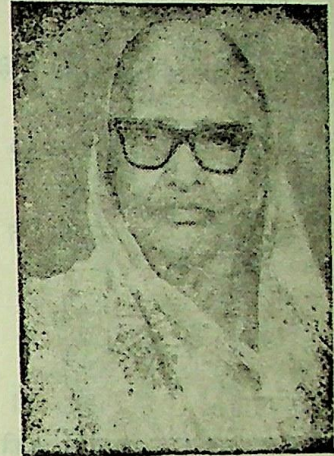
६ विशेष : पतिदेव दृढ़ आर्यसमाजी एवं देशभक्त। स्वदेशी वस्त्र-धारी। उनकी प्रेरणा से इनका भी खद्दर से प्रेम। किन्तु दुर्भाग्य कि १९६९ई० में वे हम सब को छोड़कर परलोक चले गये। इस असहय आघात का परिणाम तीव्र वैराग्य। वानप्रस्थाश्रम में रहने की तीव्र इच्छा। सौभाग्य से महात्मा हरप्रकाश जी की हस्तच्छाया प्राप्त हुई। लगा भटकती नांव को एक सुखद किनारा मिल गया। आश्रम में अनेक बहनें मिलीं। उनका आश्वासन मिला, स्नेह मिला हृदय शान्त हुआ।

७ वानप्रस्थदीक्षा : सन् १९७३ बच्चों को पता नहीं दिया उनके परोक्ष मे ही दीक्षा ले ली। सोचा, घर की अपेक्षा तो यहां अधिक शान्ति मिलती है। सत्संग मिलता है, परलोक सुधार ने का अवसर मिलता है।

——०——

माता राजरानी जसूजा

माता राजरानी जसूसा

१ नाम : श्रीमती राजरानी

२ जन्मस्थान : लाहौर जिले का एक अप्रसिद्ध ग्राम

३ जन्मतिथि : सन् १९११

४ शिक्षा : अम्बाला के एक आर्य मिडिल स्कूल में षष्ठ श्रेणी तक अध्ययन। बाद में मिडिल पास कर ट्रेनिंग की शिक्षा।

५ विवाह : १५ वर्ष की आयु में। पतिदेव का नाम श्री जगतराम जी, जिनकी अकाउंटेन्ट जनरल आफिस लाहौर में सर्विस। आठ वर्ष पश्चात् ही उनका दुःखद निधन। तदनन्तर अध्यापन कार्य।

६ विशेष : दो पुत्र, जिन्हें अध्यापन कार्य करते हुए योग्य एवं शिक्षित बनाया। प्रभु कृपा से दोनों सन्तानें अच्छी स्थिति में हैं।

७ वानप्रस्थाश्रम में : गुरु श्रीमती दुर्गामाता के परामर्श से वानप्रस्थाश्रम में १९७० में शाखा नं० २ में कुटी नम्बर १८ का निर्माण।

८ दीक्षा : सन् १९७५, यदा कदा पुत्र के पास चली जाती हैं मगर अधिक समय आश्रम में ही रहती हैं। भगवदाराधना में समय यापन।

०———०

माता सुनीतिदेवी

माता सुनीति देवी जी

१ नाम : सुनीति देवी

२ जन्म स्थान : मुलतान का एक प्रतिष्ठित परिवार

३ जन्म तिथि : सन् १९१२ ई०

४ विवाह : आर्यसमाज के प्रसिद्ध व्याख्याता, गुरुकुल काँगड़ी विश्व विद्यालय के सुयोग्य स्नातक, अनेक वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक विभाग के प्रचार अधिष्ठाता तथा कन्या गुरुकुल देहरादून के सुयोग्य सहायक मुख्याधिष्ठाता श्री पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालंकार के साथ। श्रीमती सुनीति देवी जी प्रसिद्ध विद्वान तथा आर्य समाज नेता आचार्य रामदेव जी की पुत्र वधू है।
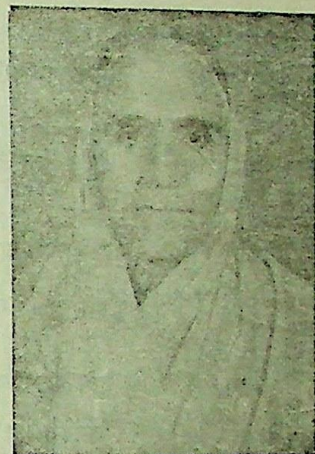
५ पितृदेव : मुलतान निवासी भक्त धन्नूराम जी, जिन्होंने निरंतर ४५ वर्ष तक आर्य समाज बोहड़ दरवाजा की तन, मन, धन से सेवा की, उन्होंने आपकी सन्तानों के हृदय में समाजिक तथा सेवाभाव उजागर किये।

माता चन्द्रवती जी

श्रीमती चन्द्रवती जी

१ नाम : चन्द्रवती

२ जन्म तिथि : सन् १९१४ ई०

३ आश्रम में सेवा कार्य : अपनी बहिन श्रीमती मनभरी जी की स्मृति मे २०००) की लागत से मनभरी पथ बनवाया।

माता पुष्पावती जी

माता पुष्पावती जी

१ नाम : पुष्पावती जी

२ जन्मस्थान : क्वेटा बिलोचिस्तान (वर्तमान पाकिस्तान)

३ जन्म तिथि : अप्रैल सन् १९१४ ई० ।

४ शिक्षा : हरिकृष्ण आर्यपुत्री पाठशाला की योग्य छात्रा । गुरुदेव श्री प० काशीराम जी । विशेष शिक्षा संस्कृत ।

५ विशेष : एक कट्टर पौराणिक परिवार में १९३२ ई० में विवाह । पतिदेव का नाम कैप्टन शिवचरणदास । अतिशय धार्मिक विचारों के होने के कारण सेवाकाल में ऐसे अवसर आने पर भी जब वे सहज में ही उत्कोच के रूप में लाखों रुपये बना सकते थे, उस अनुचित सम्पत्ति को उन्होंने लात मार दी और धर्म निष्ठा से ही सेवा कार्य सम्पन्न करते रहे । सेना के ऊंचे पद पर रहते हुए भी, न कभी अभिमान उन्हें हुआ न आधीनस्थ कर्मचारियों के साथ अनुचित व्यवहार करने की प्रवृत्ति । कतिपय वर्षों तक अपनी सैनिक सेवा में रहते हुए हृदय रोग का आक्रमण और ५२ वर्ष की आयु में ही सेवा निवृत्ति होना अनिवार्य हो गई । रोग क्रमशः उग्ररूप धारण कर गया और २४ नवम्बर १९६२ को वे दिवंगत हो गए । इसके अनन्तर सौभाग्य एवं अपने पतिदेव की प्रेरणा से पुष्पावती जी वानप्रस्थाश्रम में आईं तथा यहां के वातावरण से संतुष्ट होकर यहीं की स्थिर निवासिनी बन गईं। महात्मा हरप्रकाश जी की छत्रछाया में इन्होंने एक निजू कुटी भी बनवाई एव महात्मा जी की ही सत्प्रेरणा से १९६३ में वानप्रस्थाश्रम में विधि पूर्वक दीक्षित हुई । आश्रम कार्यों में विशेष रुचि लेने के कारण आश्रम के उपप्रधान पद पर नियुक्त । आज भी इसी पद पर नियुक्त रह कर सेवा कार्य में रत ।
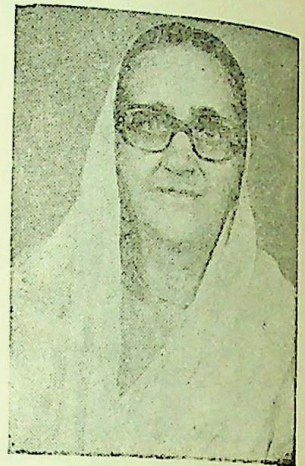
—·—

माता सीता आर्या

माता सीता आर्या

१ नाम : सीता आर्या

२ जन्मस्थान : चूहड़ मुण्डा, जिला स्यालकोट

३ जन्मतिथि : फरवरी १९१४ ई०

४ शिक्षा : ग्राम में ही पंचम कक्षा तक हिन्दी। बाद में अपने समाज सुधारक चाचा जी की प्रेरणा से हिन्दी संस्कृत की परीक्षाए पास की। विभाजन के बाद रामतनेजा कालिज में आयुर्वेद की शिक्षा।

५ व्यवसायादि : पतिदेव का नाम श्री वेदव्यास। उन की अकाल मृत्यु के बाद घर वालों के आग्रह पर भी दूसरा विवाह नहीं किया और अपने पितृ परिवार के साथ होशियारपुर पहुँचकर आर्यसमाज की तीन सेविकाओं के साथ सामाजिक कार्यों में संलग्न। होशियारपुर से लुधियाना में परिवार का स्थानान्तरण। वहां कस्तूरबा ग्राम सेविका विद्यालय में ग्राम सेविका का प्रशिक्षण प्राप्त कर सेवाग्राम वर्धा में नई तालीम का प्रशिक्षण प्राप्त किया। आचार्य विनोबाभावे के साथ बिहार में भूदान का कार्य करते हुऐ कुरीति निवारण का कार्य भी किया। वहां से लौट कर गांधीनिधि द्वारा चलाये जा रहे नई तालीम विद्यालय में अध्यापन कार्य। पिता जी के स्वर्गवास के बाद चाचा व भाइयों द्वारा चण्डीगढ़ में 'मोतीराम स्कूल' की स्थापना (१९५७)। बाद में इसी स्कूल में दशम कक्षा तक की छात्राओं को हिन्दी संस्कृत तथा धर्म शिक्षा का अध्यापन। बाद में स्कूल में यज्ञशाला की स्थापना एवं आर्यसमाज मन्दिर का निर्माण। सर्व सम्मति से समाज की प्रधाना भी नियुक्त। कुछ काल पश्चात् गुरुकुल काँगड़ी के वार्षिकोत्सव पर महात्मा हरप्रकाश जी के दर्शन। वानप्रस्थाश्रम में निवास की इच्छा जागृत हुई और ५८ वर्ष की अवस्था में आश्रम में आकर स्थिर निवास।

—:o:—

माता चन्द्रवती (पानीपत वाली)

१ नाम : चन्द्रवती

श्रीमती चन्द्रवती

२ जन्म स्थान : पानीपत

३ जन्म तिथि : सन् १९१४ ई०

४ शिक्षा : साधारण

५ विवाह : सन् १९३१ में श्री शुगनचन्द्र जी के साथ।

६ विशेष : स्वसुर दानी थे। स्थानीय आर्य पुत्री पाठशाला में समय समय पर दान देते रहते थे। हैदराबाद सत्याग्रह में आर्यसमाज की तन, मन, धन, से सहायता की। सन् १९४६ में नौकर द्वारा विश्वासघात। २०० तोला सोना, आठ सिल्ली चांदी तथा नकदी आदि सब लेकर फरार। आघात को सहन न कर सकने के कारण हृदयगति रुक जाने से मृत्यु। इधर चन्द्रवती जी निःसन्तान ही रहीं तब इनके पतिदेव ने छोटे भाई रोशन लाल को अपने पास रख कर उसे ही पुत्र की तरह पाला और योग्य होने पर विवाह भी कर दिया। पतिदेव की मृत्यु सन् १९५१। वैराग्य उदय हुआ और भगवान की भक्ति में ही समय यापन। उन्हीं दिनों महात्मा प्रभु आश्रित जी के प्रवचन, स्वामी आत्मानन्द के सत्संग तथा महात्मा आनन्द स्वामी की कथाओं से काया पलट। पानीपत से मोहन आश्रम में आगमन (१९५६)। बाद में भागवन्ती के व्यासाश्रम में निवास। हिन्दी सत्याग्रह के आन्दोल में सक्रिय भाग लेकर चण्डीगढ़ पहुंचना। वहां महात्मा हरप्रकाश जी के दर्शन। इस बीच हिन्दी सत्याग्रह में भाग लेते हुए एक मास का कारावास।

७ दीक्षा : वहां से लौट कर सन् १९५८ से १९६४ तक पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड के यहां निवास तथा उनकी पत्नी माता विद्यावती जी से संस्कृतअध्ययन और वहीं पर वानप्रस्थ दीक्षा।

८ वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९६४ में स्थिर निवास।

———०———

भगवती देवी 'वैखानसी'

श्रीमती भगवतीदेवी वैखानसी'

१ नाम : श्रीमती भगवतीदेवी "वैखानसी'

२ जन्म तिथि : १३ अक्तूबर सन् १९१५ ई०

३ निवास स्थान : मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश)

४ पिता का नाम : श्रीयुत निहालसिंह जी

५ भाई का नाम : श्री वीरेन्द्र गुप्ता

७ बहिन का नाम : श्रीमती कमला गुप्ता

८ जाति : वैश्य

९ शिक्षा : एम० ए० एल० टी०, साहित्य रत्न, वैदिक धर्म विशारद दिल्ली

१० व्यवसाय : अध्यापन सहायक अध्यापिका १७ वर्ष। प्रधानाचार्या इन्टर कालिज जानसठ जि. मुजफ्फरनगर २२ वर्ष।

११ अवकाश प्राप्त : ३० जून सन् १९७६ ई०

१२ कुटी निर्माण : सन् १९६२ ई०

१३ दीक्षा : वानप्रस्थाश्रम २० अक्तूबर सन् १९७७ ई०

१४ वर्तमान निवास स्थान : वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर कुटी संख्या १४८

१६ सामाजिक कार्य : (१) सन् १९५५ ई० में महिला आर्य समाज जानसठ की स्थापना कराई। इसी समाज के निजी भवन का निर्माण कराया तथा लगभग १० वर्ष तक प्रधाना रही।
(२) सन् १९६८ ई० में आर्य महासम्मेलन हैदाराबाद में सम्मिलित हुई।
(३) सन् १९७३ ई० में मौरिशस आर्य महासम्मेलन में सम्मिलित हुई।

———०———

श्रीमती भगवान देवी

१ नाम : भगवान देवी

२ जन्मस्थान : अहमदगढ़, जि० बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश,

३ जन्मतिथि : सन् १९१७

४ पितृनाम : सेठ कुन्दनलाल जमींदार

५ शिक्षा : साधारण

श्रीमती भगवान देवी

६ विशेष : पितृगृह सपन्न। बाल्यावस्था धन वैभव में बीती। विवाह १९३१ ई०। खुर्जा के धनाढ्य परिवार के युवक श्री गुलशन लाल के साथ। वे अत्यन्त उदार थे। टहलने जाते हुए यदि कोई सर्दी से ठिठुरता व्यक्ति मिल जाता उसे बदन का वस्त्र उतार कर दे देते। सन् १९४७ के हिन्दू-मुस्लिम-फिसाद में निधन (२१ मार्च शनिवार) इस आकस्मिक आपत्ति में देवी ने धैर्य से काम लिया और अपने बच्चों को सिन्धिया स्कूल ग्वालियर में शिक्षा दिलाई एवं कुछ जायदाद बेचकर झण्डे वालान् दिल्ली में बिल्डिंग का निर्माण किया जिसमें सांगी मोटर्स के मालिक अपना व्यवसाय करते हैं। चारों पुत्र अच्छी कमाई के धन्धों में लगे हुए हैं। १. प्रेमकुमार गोयल सी. सत्तर डिफैंस कालोनी में एयरकंडीशन फ्रिज का व्यवसाय। नई दिल्ली दूरभाष नं० ६२४७२९। २. अरविंद कुमार गोयल बैंगलोर यूनिटी बिल्डिंग में कपड़े का व्यवसाय। ३. विजय कुमार गोयल सोलीसीटर का व्यवसाय एवं पुत्री बीना मित्तल सी० २, ग्रेटर कैलाश रहती है, जिसके पति मैनेजर है।

७ वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९७५

८ दीक्षा : ५ सितम्बर १९७७, श्री पूज्यपाद ब्रह्ममुनि जी द्वारा।

माता वीरां बाई

माता वीराँ बाई

१ नाम : वीरांबाई

२ जन्म स्थान : पिण्डी घब, जिला कैमलपुर (अविभाजित-पंजाब)

३ जन्म तिथि : सन् १९१८ ई०

४ पति का नाम : स्वर्गीय श्री चरणजीलराय जी (सुपुत्र स्व० बूटामल जी तथा श्रीमती माया देवी)।

श्री चिरंजीवलाल जी

५ शिक्षा : साधारण विद्याध्ययन आर्य कन्या पाठशाला।

६ विशेष : जन्म एवं विवाह पौराणिक परिवार में। पतिदेव ने समस्त सेवाकाल जिलाधीशों के कार्यालयों में व्यतीत किया। मुख्य रूप से कार्यालय अधीक्षक। सुरिन्टेन्डेण्ट के पद पर लुधियाना, जालन्धर एवं अमृतसर में भी कार्य किया। अवकाश ग्रहण के समय कार्यालय के अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों की तरफ से भावभीनी विदाई दी गई। अवकाश प्राप्ति के उपरान्त वैदिक धर्म की ओर झुकाव। अनेक महत्त्वपूर्ण वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन।

७ वानप्रस्थाश्रम : इसी अवसर पर पतिदेव वानप्रस्थाश्रम में आये तथा महात्मा हरप्रकाश जी की प्रेरणा से २६ वैशाख सम्वत् २०१८ विक्रमी को आश्रम मे कुटी संख्या १४६ का निर्माण करा कर और अपनी माता मायादेवी जी तथा मेरे साथ यहीं निवास करते रहे।

८ पतिदेव का निधन : पतिदेव का देहान्त सन् १९६५ ई० में हो गया। बाद में सन् १९७४ मे माता जी का भी देहान्त हो गया। तब से आश्रम में एकाकिनी रह रही हैं।

—o—

माता विद्यावती खुराना

१ नाम : विद्यावती जी

२ जन्म स्थान : ग्राम गिरोट जि० शाहपुर पंजाब

३ जन्म तथि :

४ पितृ नाम : डा० जीवन मल जी । मिलिट्री में डाक्टर ।

५ विवाह : खुराना निवास लाला हरवंश लाल जी के साथ ।

६ विशेष : १९४५ में पति के स्वर्गवास से अत्यन्त खिन्न होकर अपने पुत्र के पास देहली में आ गई (१९४७) । नागरिक जीवन से विरक्ति तथा मोहनाश्रम हरिद्वार में निवास । तीन वर्षों के उपरान्त वानप्रस्थ-आश्रम में प्रथम वार आगमन ।

७ दीक्षा : महात्मा प्रभु आश्रित से रोहतक में वानप्रस्थ दीक्षा ।

८ वानप्रस्थाश्रम में : रोहतक से वानप्रस्थाश्रम में आकर स्थिर निवास । शाखा नं० २ में अपनी लड़की के नाम एक कुटिया बनवाकर इसी शाखा में अपने नाम पर भी कुटिया नं० २१ बनवा ली । इस में इनकी दोनों बहनें भी सम्मिलित है । यहां निवास करते हुए २३ वर्ष व्यतीत ।

———०———

माता कुन्ती मुनि जी

माता कुन्ती मुनि जी

१ नाम : माता कुन्ती मुनि

२ पति का नाम ; स्व० श्री रामचन्द्र जी अरोड़ा, किनारी बाजार दिल्ली

३ सेवा कार्य : विगत पचपन वर्ष से आर्यसमाज की सक्रिय कार्य कर्त्री रहीं। गो रक्षा आन्दोलन के अवसर पर श्री रामगोपाल जी शालवाले के नेतृत्व में जो जत्था निषेधाज्ञा का उल्लंघन करते हुए गिरफ्तार हुआ था, ये भी उस में सम्मिलित थीं। दो मास तक तिहाड़ जेल में रही।

वानप्रस्थाश्रम में : सन् १९६६ में।

५ दीक्षा : सन् १९६६ में।
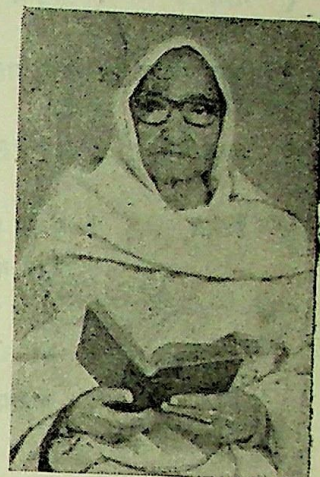
३ विशेष : महरौली, नई दिल्ली में आर्य समाज के सिद्धान्तों का चार वर्ष तक प्रचार। दीवान हाल दिल्ली की कर्मठ कार्यकर्त्री। कई बार आर्य साहित्य का प्रकाशन। भविष्य में भी ऐसे कार्य करते रहने की इच्छा है।

ब्रह्मचारिणी कमला आर्या

सुश्री कमला आर्या जी

१ नाम : कमला

२ जन्म स्थान : ग्राम महतपुर, जिला जालन्धर

३ जन्म तिथि : सन् १९२९ ई०

४ शिक्षा : पंचम श्रेणी तक अपने ही ग्राम की पाठशाला में। आर्य कन्या पाठशाला लुधियाना में हिन्दीरत्न । पुनः अपने ग्राम महतपुर लौटकर एक वृद्ध अध्यापक द्वारा पांचवीं कक्षा तक इंग्लिश, उर्दू तथा पजाबी का अध्ययन ।

५ विशेष बाल्यावस्था में प्रतिमा-पूजन पर श्रद्धा तथा भागवत पुराण, रामायण, योगवाशिष्ठ, जन्मसाखी, ग्रन्थ साहब, राधा स्वामी मत के सन्त वचन संग्रह इत्यादि के स्वाध्याय में रुचि । किन्तु बाद में इस निष्कर्ष पर पहुंचकर कि परमात्मा एक है प्रतिमा पूजन का त्याग एवं एक आर्य स्त्री समाज की स्थापना। माता पिता के आग्रह पर भी विवाह न करने का दृढ निश्चय । आयु १८ वर्ष । इस प्रकार आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर एवं विदेशी वस्त्रों के स्थान पर खद्दर धारण करने का निर्णय कर अपने ही घर पर दैनिक सत्संग का आयोजन । वैदिक धर्म का प्रचार, सन्ध्या, यज्ञ तथा सत्संग में ही जीवन उत्सर्ग (१९४७) । बाद में ग्राम से बाहर अपना कार्य क्षेत्र बढाते हुए लुधियाना, जालन्धर तथा मोगा आदि स्थानों पर भी वेदप्रचार ।

६ वानप्रस्थाश्रम में : अप्रैल १९६७ में आश्रम में स्थायी निवास । यहां विद्याध्ययन की रुचि बहुत बढ़ गई और स्वा० ब्रह्ममुनि जी से संस्कृत, माता कौशल्या से उपनिषद्, प्रो० सूर्यदेव तथा प्रो० सत्यव्रत से षड् दर्शन का अध्ययन । १९६९ से आर्य समाज ज्वालापुर को केन्द्र बनाकर पंजाब, हरयाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, जम्मू काश्मीर इत्यादि प्रान्तों में धर्म-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया जो अब भी इसी प्रकार चालू हैं ।

७ लेखन : उपदेश कथा मंजरी, वैदिक पंचामृत, मणिमाला आदि पुस्तकों का लेखन ।

o——o

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम

ज्वालापुर (हरिद्वार)

*

स्वर्ण-जयन्ती स्मारिका : १९७८ ई०

*

समापन-खण्ड

महर्षि वचनामृत

१ मनुष्य जन्म का हेतु सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य को ग्रहण करने के लिए है। व्यर्थ का वाद-विवाद और झगड़ा करने के लिए नहीं।

२ मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से संयुक्त होकर सत्य से असत्य की ओर झुक जाता है।

आश्रम की स्थापना अर्ध-शताब्दी के उपलक्ष में ३० मार्च से १८ अप्रैल १९७८ तक धूमधाम से एक महोत्सव होगा। महोत्सव सम्बन्धी कुछ विशेष बातें इस खण्ड में दी गई हैं।

इनके साथ ही जनता की बधाइयां, पुण्यस्मृतियां आर्य नेताओं के चित्र एवं विज्ञापन आदि सम्मिलित किये गये हैं।

आश्रम के प्रतिष्ठित सदस्य

जिन्हें नियम संख्या सं० १ (क) के अन्तर्गत आश्रम की साधारण सभा ने उनकी विद्या, योग्यता, त्याग, धार्मिकता और आश्रम का हितैषी होने के कारण चुना हैं
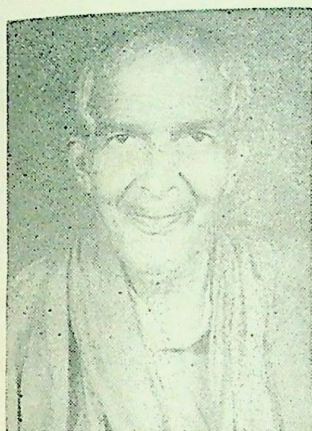
स्वामी धर्मानन्द जी सरस्वती विद्यामार्तन्ड
अध्यक्ष विश्ववेद परिषद्
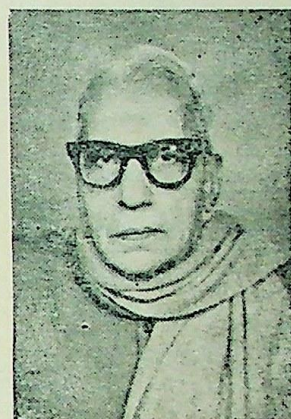
श्री आचार्य प्रियव्रत जी वेदमार्तण्ड
भूतपूर्व उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
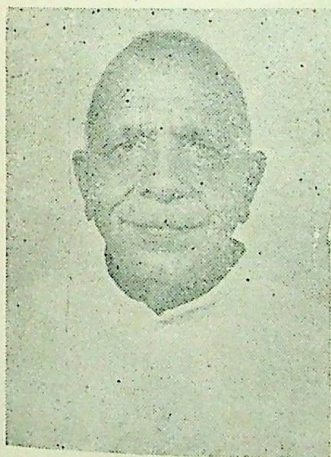
श्री पं० नन्दलाल जी वैदिक मिश्नरी
अधिष्ठाता विरजानन्द स्मारक विद्यालय करतारपुर
तथा प्रसिद्ध भजनोपदेशक

श्रीमती माता आनन्दा यति
बालब्रह्मचारिणी
सुयोग्य प्रचारिका

इनके अतिरिक्त निम्न महानुभाव भी आश्रम के प्रतिष्ठित सदस्य हैं :—

श्री अमर स्वामी जी महाराज सम्पादक आर्य जगत् दिल्ली एवं प्रधान सार्वदेशिक वानप्रस्थ एवं संन्यास मण्डल जिनका चित्र उपलब्ध नहीं हो सका ।

श्री पं०शिवदयालु जी भूतपूर्व सम्पादक "आर्यमित्र" तथा मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश जिनका चित्र पृ० ३५० पर उपलब्ध है ।

आश्रम के वर्तमान अधिकारी
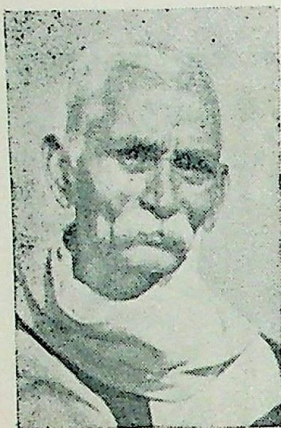
श्री जगदीश मुनि जी वरिष्ठ (उपप्रधान)
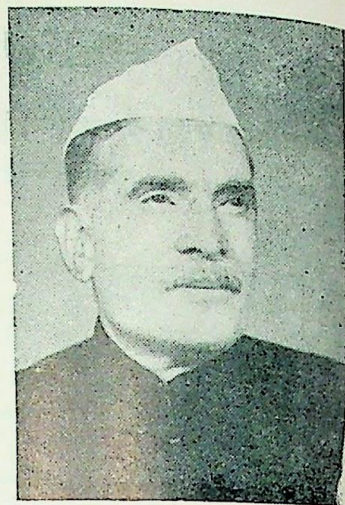
श्री पं० शिवदयालु जी (उपप्रधान)
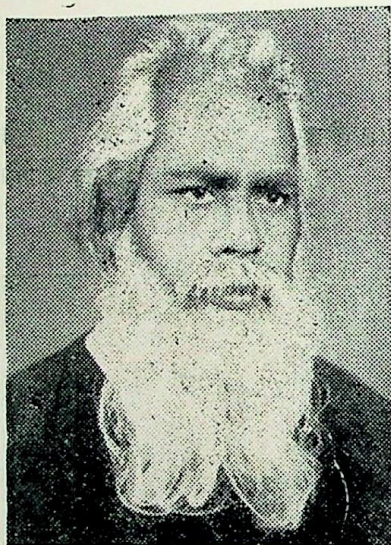
श्री महात्मा आर्यभिक्षु जी (प्रधान)
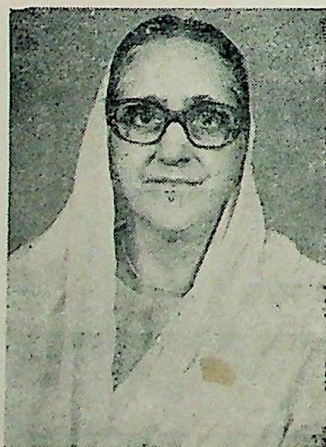
श्रीमती माता पुष्पावती (उपप्रधाना)
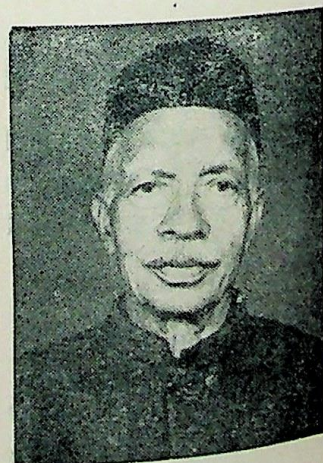
श्री प्रतापचन्द्र मेहता (कोषाध्यक्ष)

आश्रम के वर्तमान अधिकारी
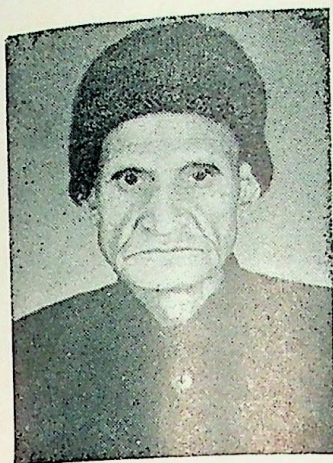
श्री केशव मुनि जी (उपमन्त्री)
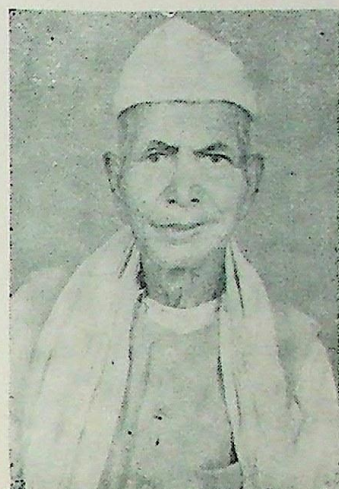
श्री रेवती प्रसाद जी (उपमन्त्री)
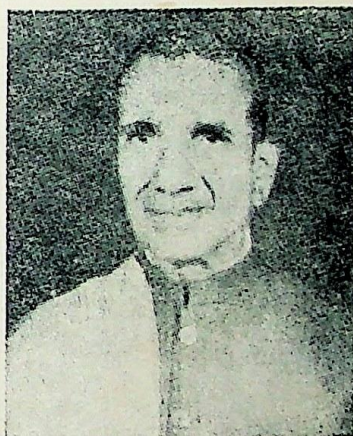
श्री कल्याणस्वरूप जी (मन्त्री)

श्रीमती माता सत्यवती पुरी (उपमन्त्री)
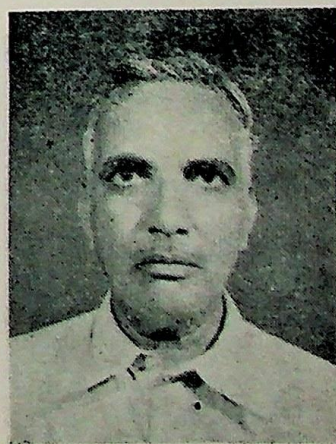
श्री माधव प्रसाद जी (पुस्तकाध्यक्ष)

आश्रम की अन्तरंग सभा के सदस्य
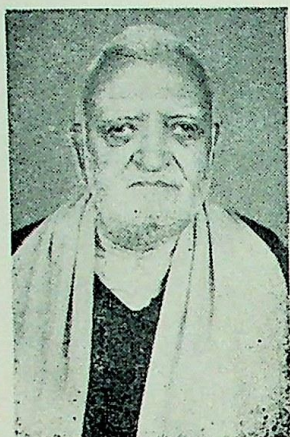
श्रीवृजमोहन जी स्याल
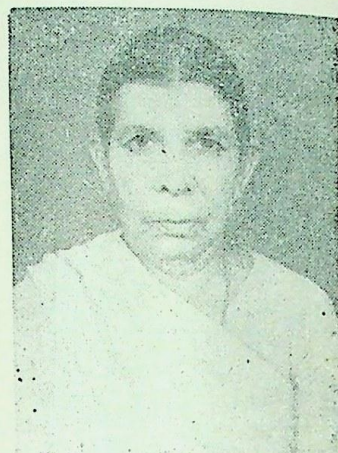
श्रीमती माता भगवती जी एम० ए०
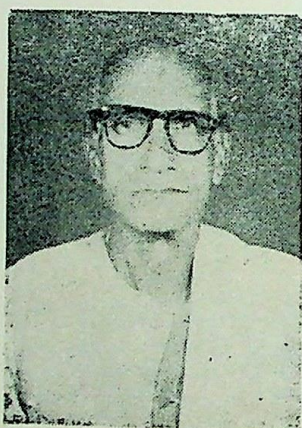
श्री यदुवंश जी सहाय
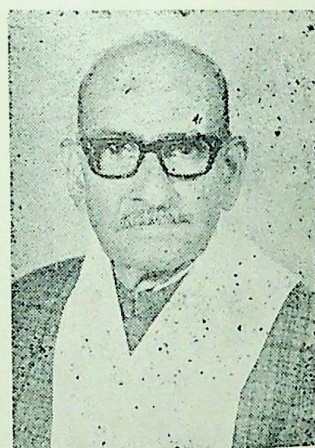
श्री जगदीशचन्द्र जी जौहरी
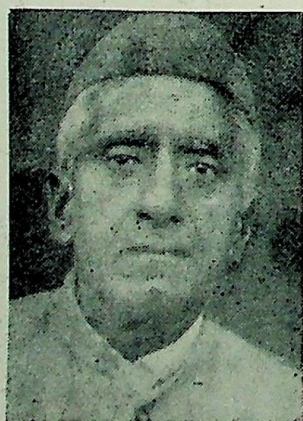
डा० हरदेवप्रसाद मेहता
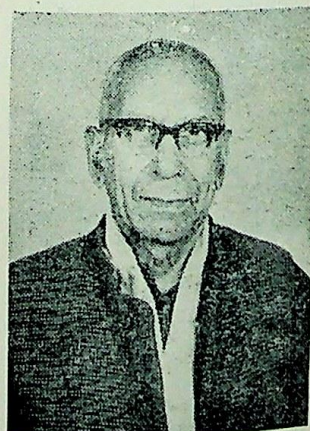
डा० जगतराम आर्य

आश्रम की अन्तरंग सभा के सदस्य
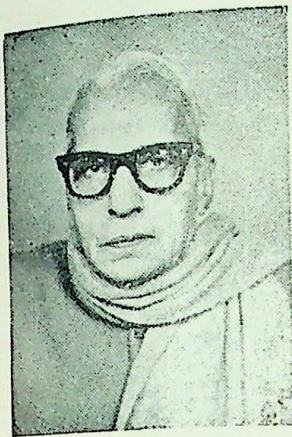
आचार्य प्रियव्रत जी वेदमार्तण्ड
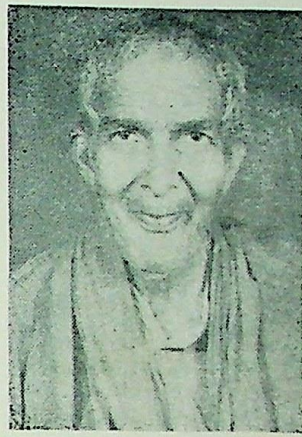
स्वामी धर्मानन्द जी विद्यामार्तण्ड
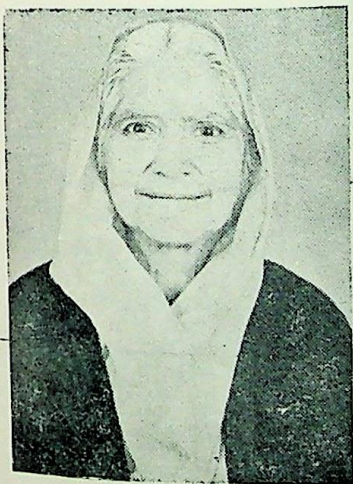
श्रीमती माता धर्मवती जी
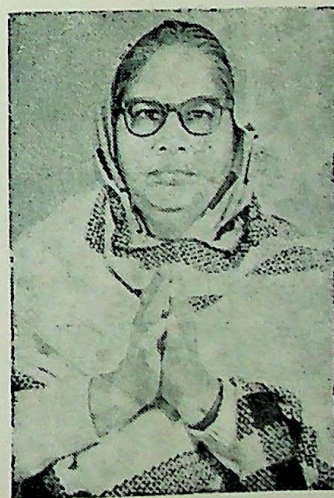
श्रीमती माता वेदवती जी

पं० विद्याधर जी भूतपूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधिसभा, उत्तर प्रदेश भी आश्रम की अन्तरंग सभा के सदस्य हैं।

स्वर्ण जयन्ती महोत्सव के समापन समारोह में सम्मानित किये जाने वाले विशिष्ट आश्रमवासी
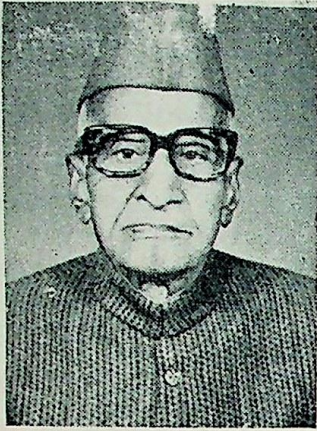
श्री ज्योतिप्रसाद जी
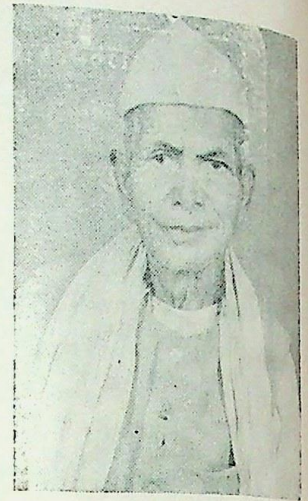
श्री रेवतीप्रसाद जी

श्री स्वामी विवेकानन्द जी
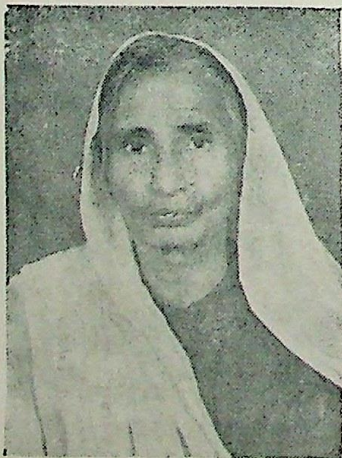
श्रीमती माता कौशल्या जी सेठी
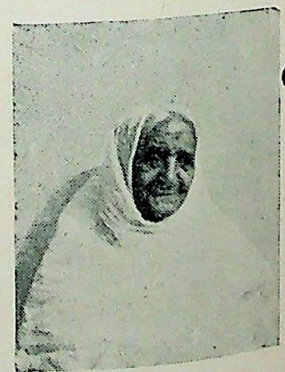
श्रीमती माता तेजकौर जी

आश्रम के सहायक

जिन्होंने २५०) या इससे अधिक धनराशि स्वर्णजयन्ती महोत्सव की फसलता के लिए दी।

श्री गण्डाराम जी मेहता बम्बई, मैनेजिंग ट्रस्टी,
महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, टंकारा
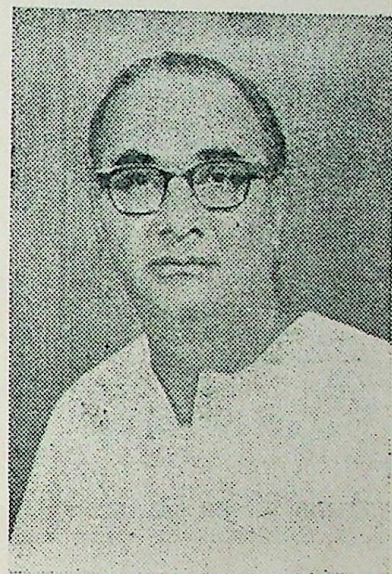
श्री गुलजारीलाल जी आर्य बम्बई, भूतपूर्व प्रधान
आर्यप्रतिनिधि सभा महाराष्ट्र व गुजरात एवं संचालक
आर्यवीर दल महाराष्ट्र
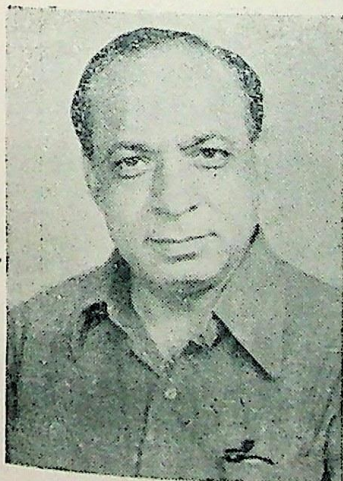
श्री ओंकारनाथ जी मानकताला बम्बई
मन्त्री, महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, टंकारा

श्रीमती शिवराजवती आर्या मानकताला बम्बई
समाज सेविका, धर्मपत्नी श्री ओंकारनाथ जी मानकताला
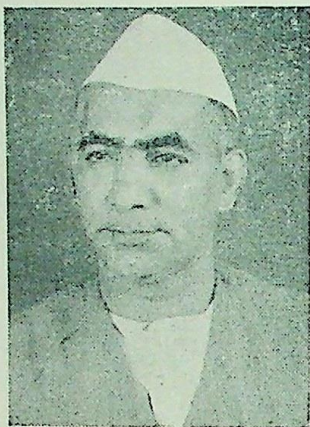
श्री जयदेव जी आर्य बम्बई
भूतपूर्व प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा, महाराष्ट्र एवं
गुजरात तथा प्रधान आर्यसमाज, चेम्बूर
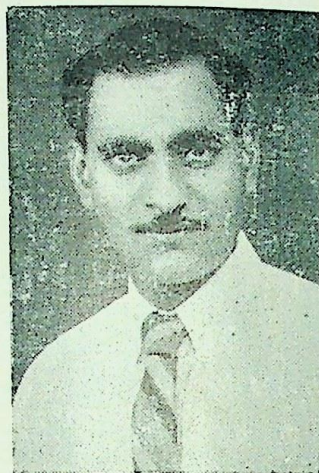
श्री नारायणदास एम० कटारिया,
आर्य-समाज, जैतपुर गुजरात
ट्रस्टी, महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, टंकारा
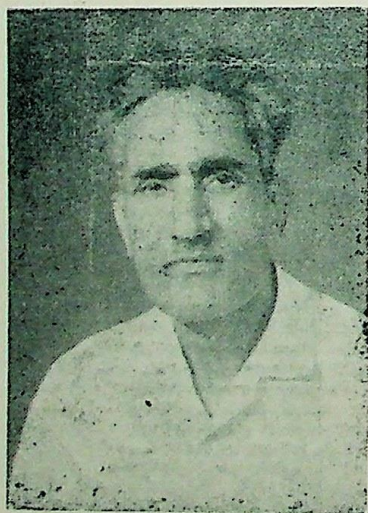
श्री योगेन्द्रपाल जी नागरथ बम्बई
ट्रस्टी, महर्षि दयानन्द स्मारक ट्रस्ट, टंकारा

श्री गुलाबचन्द जी बंसल
प्रधान आर्यसमाज भिलाई, मध्य-प्रदेश
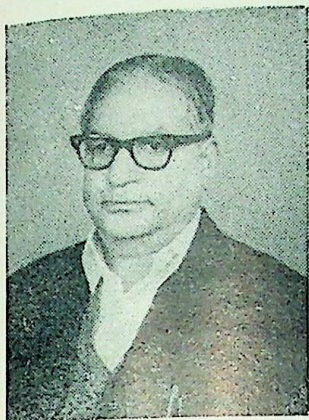
श्री श्यामलाल जी अग्रवाल, आज़मगढ़
सुप्रसिद्ध दानी

श्री गोबिन्दराम जी वानप्रस्थ,
सुप्रसिद्ध दानी, अशोकनगर, मध्यप्रदेश
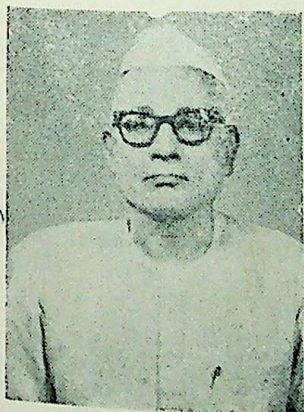
श्री लक्ष्मीप्रसाद जी गढवा, जिला पलामू
भूतपूर्व विधायक बिहार
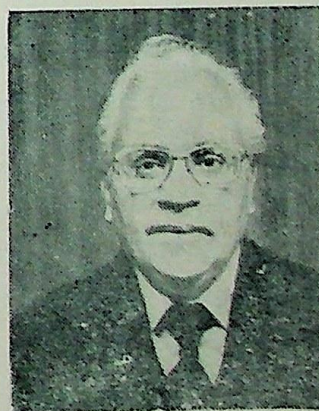
डा० के० त्रिवेदी, राजकोट गुजरात
सुप्रसिद्ध अन्तर्राष्ट्रीय आयुर्वेदिक चिकित्सक

महात्मा देवमुनि वानप्रस्थ
(पूर्वनाम श्री लालचन्द चोपड़ा)

आप अखिल भारतीय वानप्रस्थ सम्मेलन की अध्यक्षता करेंगे

निम्नलिखित दानी महानुभावों के चित्र प्राप्त नहीं हो सके ।

१ श्री मिठाईलाल जी, मन्त्री आर्यसमाज माटुंगा बम्बई
२ श्री जुनेजा जी उपप्रधान आर्यसमाज शान्ताक्रूज (पश्चिम) बम्बई
३ श्री छगनलाल जी बम्बई, सुप्रसिद्ध व्यापारी
४ श्री वी० के० कपूर बम्बई, कारखानेदार
५ श्री धर्मवीर जी गुलाटी, मन्त्री आर्यसमाज घाटकोपर (पश्चिम) बम्बई
६ श्री ओमप्रकाश मेहरा बम्बई, सुप्रसिद्ध व्यापारी
७ श्री सोमप्रकाश प्रमोदकुमार यमुनानगर, टिम्बर मर्चेन्ट
८ श्री प्रो० दिवाकर जी विद्यालंकार सुपुत्र प्रो० सुखदेव जी विद्यावाचस्पति, दिल्ली
९ श्री ओमप्रकाश जी अरोड़ा ज्वालापुर, भूतपूर्व अध्यक्ष नगरपालिका हरिद्वार
१० श्री भगवती प्रसाद गुप्त अध्यक्ष केन्द्रीय परिषद् बम्बई
११ श्री अर्जुनदेव जी प्रिन्सिपल ज्वालापुर इंटर कालेज ज्वालापुर

——०——

आर्य समाज

के

तपस्वी संन्यासी, विशिष्ट विद्वान्

तथा

कर्मठ कार्यकर्ता

विशिष्ट विद्वान्

आश्रम में प्रतिदिन दो बार सत्संग होता है । निम्नलिखित संन्यासी एवं विद्वान् समय-समय पर अपने प्रवचनों द्वारा आश्रमवासियों को लाभान्वित करते रहे । इनके हार्दिक सहयोग से ही निरन्तर प्रवचन-श्रृङ्खला चलती रहती है । आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम की ओर से इनके लिये बहुत-बहुत धन्यवाद ।

१ स्वामी विशुद्धानन्द जी सरस्वती
२ ,, धर्मानन्द जी सरस्वती विद्यामार्तण्ड
३ ,, सच्चिदानन्द जी योगी
४ ,, ब्रह्ममुनि जी
५ ,, विश्वमित्रानन्द जी
६ पंडित विद्यानिधि जी सिद्धातालंकार
७ ,, प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति
८ ,, शिवदयालु जी
९ महात्मा आर्य भिक्षु जी
१० आचार्य विश्वबन्धु जी शास्त्री
११ प्रो० रामप्रसाद जी
१२ ,, सत्यव्रत जी राजेश
१३ ,, जयदेव जी
१४ ,, वेदप्रकाश जी
१५ ,, ओमप्रकाश जी
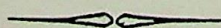
ऋषि-भक्त; हिन्दी-भक्त; महात्मा गांधी के "बड़े भाई"; राष्ट्रीयता में ग्रोतप्रोत; मातृभूमि; मातृ-सभ्यता ग्रौर संस्कृति के सेवक; श्रद्धा ग्रौर ग्रानन्द की खान; ग्रमर बलिदानी

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

जन्म : संवत् १६१३ निधन : संवत् १६८३

मस्तिष्क एवं हृदय

सम्बन्धी

स्नायुदौर्बल्य, पुराना सरदर्द, मृगी, हिस्टीरिया, भयंकर पागलपन, ब्लडप्रेशर, दिल की तीव्र धड़कन, हार्दिक पीड़ा, हृदय की दुर्बलता तथा उर्ध्ववात (गैस) आदि सम्पूर्ण पुराने रोगों के लिए अनुभवपूर्ण परामर्श

तथा

शुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा का केन्द्र—

आयुर्वेद शक्ति आश्रम कनखल (हरिद्वार)

पो० गुरुकुल कांगड़ी, जिला सहारनपुर (उ०प्र०) फोन नं० ७७

संचालक :

आयुर्वेद बृहस्पति कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री

D.Sc. (A) आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरी B. I. M.S.

उपसंचालक :

वैद्याचार्य डा० हर्षवर्धन शास्त्री

बी०ए०एम०एस०, आयुर्वेदाचार्य

संचालक : "आरोग्य भवन" सिंहद्वार गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार
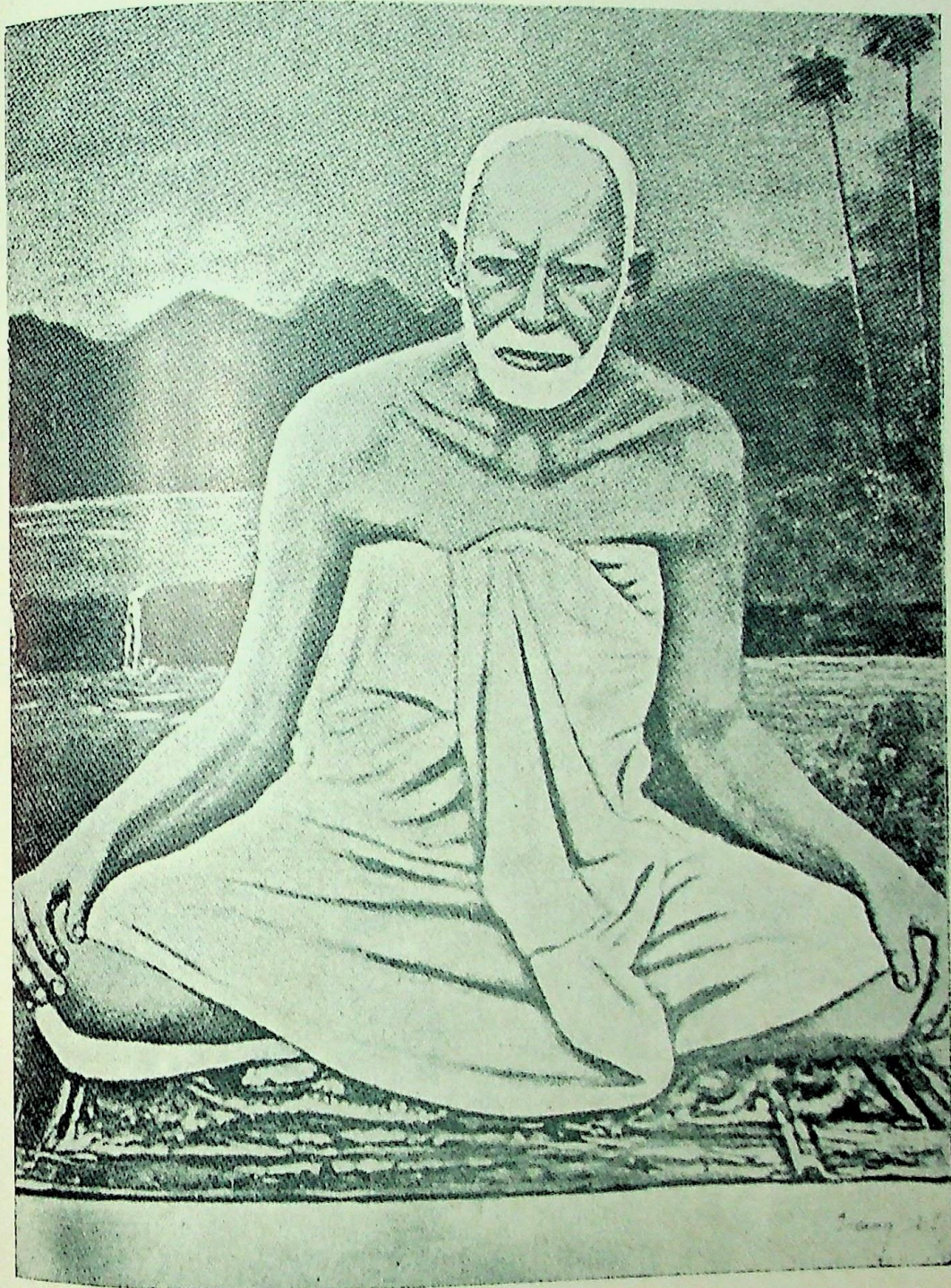
त्यागी; तपस्वी; योगी; विरक्त; गौरवशाली; मुर्धन्य; स्थितप्रज्ञता की जीवित मूर्ति; परमार्थ संलग्न; नर-श्रेष्ठ

वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी

जन्म : संवत् १९१२ निधन : संवत् १९९८

आर्य-समाज के उज्ज्वल नक्षत्र; विशिष्ट व्यक्तित्व; भावुक प्रवृत्ति; स्पष्ट एवं निर्भीक वक्ता;
वीर नरपुंगव; आर्य-केसरी; आर्य-पथिक

धर्मवीर पं० लेखराम जी

जन्म : संवत् १९१५ निधन : संवत् १९५३

आर्य-समाज के मनीषी; उत्कृष्ट विद्वान्; साधु-स्वभाव; वैराग्य-वृत्ति; तीव्र-प्रतिभा; कुशाग्र-बुद्धि; ऋषि-भक्त; नास्तिक से आस्तिक

मुनिवर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी

जन्म : संवत् १९२१ निधन : संवत् १९६७

प्रसिद्ध लेखक एवं प्रकाशक; यशस्वी दार्शनिक; स्वाध्यायशील; अनुपम विद्वान; संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के पूर्णज्ञाता; अनेक साहित्य पुरस्कारों से विभूषित

पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय

जन्म : संवत् १९३८ निधन : संवत् २०२५

वेदों के उद्भट्ट विद्वान्; अद्भुत व्याख्याता; प्रभावशाली लेखक; बहु-भाषाविज्ञ; दशाधिक वेद-व्याख्याग्रन्थ प्रणेता; दयानन्द संन्यासी वानप्रस्थ मण्डल के संस्थापक

स्वामी वेदानन्द तीर्थ

जन्म : संवत् १९५१ निधन : संवत् २०१३

आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर (हरिद्वार)

की

स्वर्ण-जयन्ती पर शुभकामनाओं के साथ

जाति भेद के महान विरोधी; पंजाब आर्यसमाज के स्तम्भ; लेखनी के धनी
'प्रकाश' एवं 'प्रताप' के संस्थापक; हैदराबाद सत्याग्रह के षष्ठम सर्वाधिकारी

महाशय कृष्ण बी.ए.

जन्म : संवत् १९३८ निधन : संवत् २०२०

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम

की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर

हार्दिक शुभ-कामनाओं के साथ
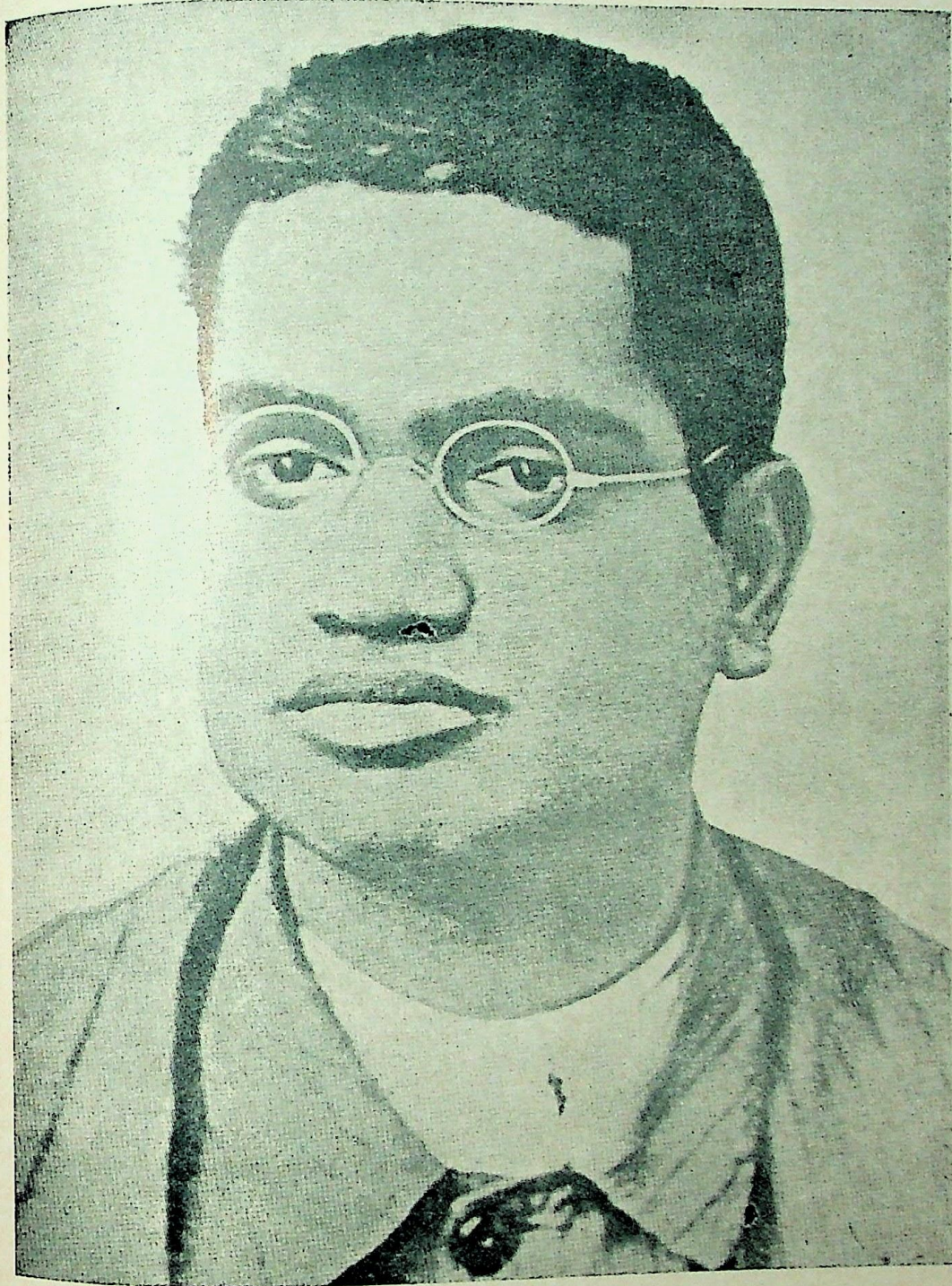
गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य; भारतीय इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान; प्रभावशाली भाषणकर्ता; त्यागी एवं तपस्वी; ओजस्वी व्यक्तित्ववान

आचार्य रामदेव जी

जन्म : सम्वत् १९३८ निधन : सम्वत् १९९६

मा प्र गाम पथो वयम् (ऋग्वेद १०-५७-१)

आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर अपनी प्रारम्भिक अवस्था को सफलतापूर्वक पार कर चुका है । आगामी कार्यक्रम को समयानुसार निर्धारित कर सफलता प्राप्त करें ।

इस स्वर्ण-जयन्ती-समारोह पर आश्रम के प्रति हमारी शुभकामनाएँ

पुष्पा विद्यालंकृता

धर्मवीर विद्यालङ्कार
स० मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आचार्य एवं कुलपति; ओजस्वी व्याख्याता
प्रभावशाली लेखक; बहु-भाषाविज्ञ; भक्तकवि; सिद्धान्तप्रिय विद्वान

पं० चमूपति एम. ए.

जन्म : संवत् १९५०

निधन : संवत् १९९४

स्व० महात्मा हरप्रकाश जी

जिन्होंने आश्रमरूपी वृक्ष की जड़ों को अपने रुधिर से सींच कर पल्लवित और पुष्पित किया, आश्रमवासी नर-नारियों तथा कर्मचारियों को पितृतुल्य स्नेह देकर परिवार जैसी सुख-सुविधाएं प्रदान की और अन्त में आश्रम को एक स्वयं सत्ता सम्पन्न पंजीकृत संस्था के रूप में गौरवान्वित किया,

उन सब के प्रिय महात्मा जी

की पुण्य-स्मृति में

उनके सभी इष्ट मित्रों सहयोगियों तथा आश्रमवासियों की ओर से

प्रयोजक

माता धर्मवती वानप्रस्थ

(आश्रमवासिनी)

स्व० महात्मा हरप्रकाश जी

जिन्होंने अपने जीवन के अन्तिम तीस वर्ष, भारत की एकमात्र संस्था, आर्य वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर की सेवा में अर्पित कर दिये।
जिन्होंने आर्यसमाज से सम्बद्ध आन्दोलनों—गोरक्षा, हिन्दी-सत्याग्रह आदि में तन, मन, धन की खुल कर आहुति डाली,

उन ऋषि-भक्त, देश-भक्त, आश्रम-भक्त, वीतराग महात्मा जी

की पुण्य-स्मृति में

उनके सभी प्रशंसकों, आर्य-नेताओं तथा आश्रम वासियों की ओर से

प्रयोजक

माता विद्यावती चोपड़ा

(आश्रमवासिनी)
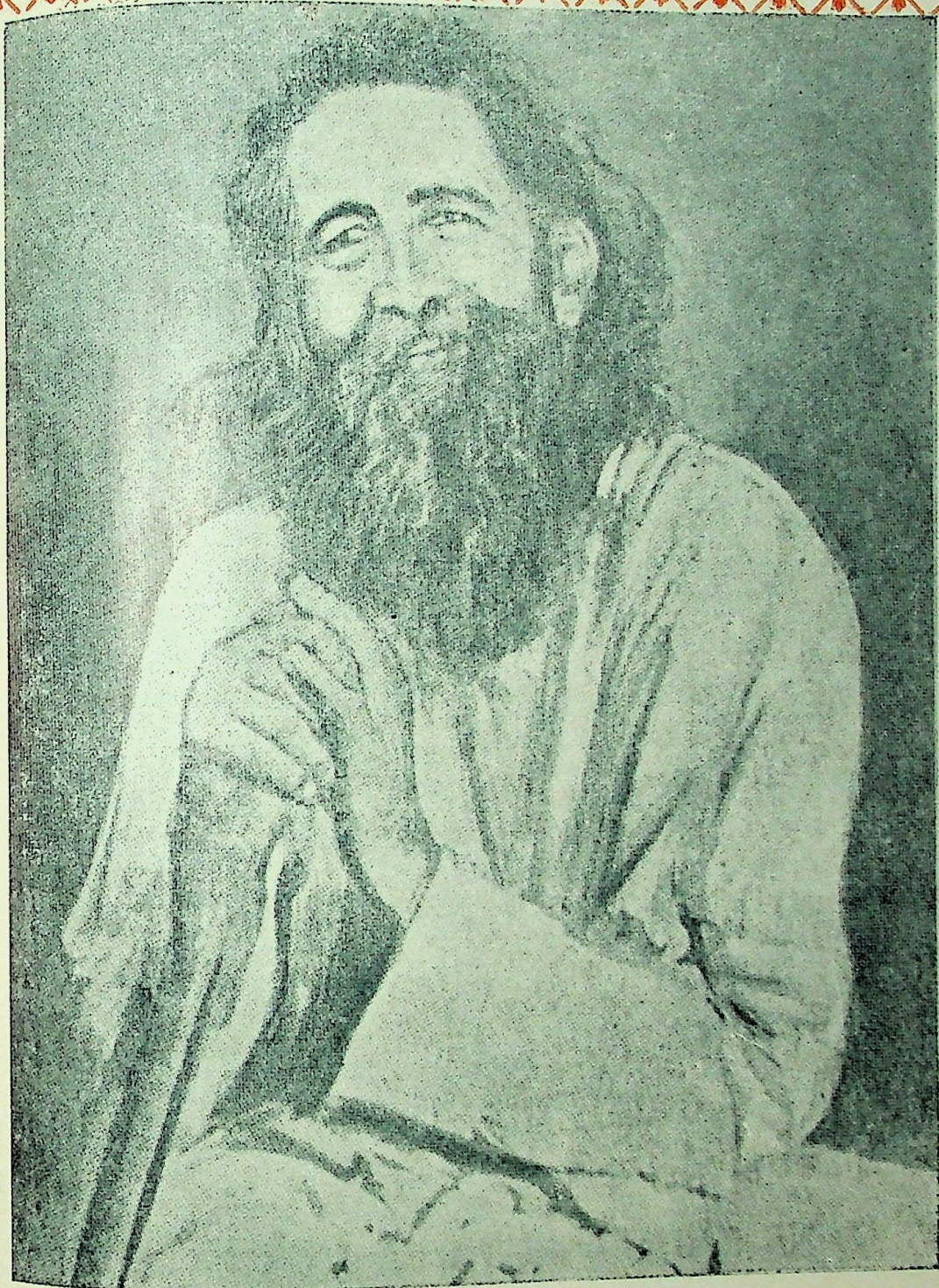
तपोमूर्ति; यज्ञमूर्ति; वर्णाश्रम व्यवस्था के अटल विश्वासी; आर्य-मर्यादाओं के परम श्रद्धालु; दृढ़-संकल्प; जनता के हृदय सम्राट्

महात्मा आनन्द भिक्षु

जन्म : संवत् १९५५ निधन : संवत् २०२७

श्रों विपश्चिते पवमानाय गायत, महो न धारात्यन्धो श्रर्षति ।
श्रहि र्न जूर्णामतिसर्पति त्वचं, श्रत्यो न क्रीडन्नसरद् वृषा ।।

ऋ० ९-८६-४४

शब्दार्थं–(विपश्चिते) ज्ञानमय (पवमानाय) सोम रूप श्रात्मा की (गायत) स्तुति गान करो (श्रन्धः) श्राध्यापनीय श्रात्मा (महीं धारा न) बड़ी जल धारा के समान (श्रति श्रर्वति) श्रपने तटों रूप देह बन्धनों को तोड़ कर चला जाता है (श्रहिः जूर्णा त्वचं न) सांप जैसे श्रपनी जीर्ण त्वचा को वैसे वह श्रपने जीर्ण शरीर को (श्रति सर्पति) छोड़कर चला जाता है श्रौर (श्रत्यः न) घोड़ के समान (वृषा हरिः) यह बलवान श्रौर गतिशील श्रात्मा (क्रीडन्) खेलता हुश्रा (श्रसरत्) एक क्षेत्र से दूसरे क्षत्र पर जाता है ।

स्व० श्री देशराज सचदेव
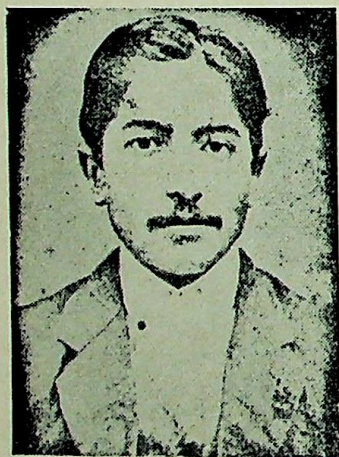
स्व० श्री देशराज सचदेव

जिनका जन्म सन् १९०० ई० में हुश्रा जो श्रपनी युवावस्था के प्रारम्भ से ही श्रार्य समाज के सक्रिय कार्यकर्ता थे। जो ३१ मई सन् १९३५ को श्रार्यसमाज क्वेटा के मन्त्री के नाते दिन भर श्रार्य कन्या पाठशाला के स्थापना दिवस समारोह (प्रथम जून १९३५ को होना था) के प्रबन्ध में संलग्न रहे। जिन का उसी रात्रिको ३ बजे क्वेटा के प्रसिद्ध भूकम्प मे देहान्त हो गया उस श्रमूल्य हीरे की

पुण्य-स्मृति में

उनके सभी बन्धु बान्धवों श्रौर इष्ट मित्रों की श्रोर से

प्रयोजक

सरस्वती देवी वानप्रस्था (धर्मपत्नी)

श्री श्रोम्प्रकाश सचदेव (पुत्र)
सुश्री राजदुलारी श्ररोड़ा (सुपुत्री)

स्वामी सर्वदानन्द जी के शिष्य; अनेक राजाओं के गुरु; तपस्वी; त्यागमूर्ति; विद्वान्; उत्तम लेखक; हैदराबाद सत्याग्रह के चतुर्थ सर्वाधिकारी; सार्वदेशिक सभा-प्रधान

स्वामी ध्रुवानन्द सरस्वती

निधन : सम्वत् २०२२

ओं इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं, न स्वप्नाय स्पृह्यन्ति
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।। साम उत्तरार्धिक १।२।३।३

शब्दार्थ–(देवाः)विद्वान् लोग (सुन्वन्तम्)प्रभु की भक्ति करने वालों को(इच्छन्ति) चाहते हैं, उनकी कामना करते हैं और (स्वप्नाय) स्वप्नशील-आलसी विषयासक्त और अकर्मण्य व्यक्तियों को (न) नहीं, (स्पृह्यन्ति) चाहते हैं क्योंकि (अतन्द्राः) निरालस और कर्मशील व्यक्ति ही (प्रमादम्) परम अनन्द को (यन्ति) प्राप्त करते हैं।

स्व० डा० देवराज सूरी M.B.B S.

- जो अत्यन्त सहृदय सर्जन एवं कुशल चिकित्सक थे;
- जो पंजाब विभाजन के बाद सन् १९४७ ई० में रोहतक आये और आर्यनगर बसा कर उसमें अपनी शानदार कोठी बनवाई;
- जो आर्यसमाज झज्झर रोड, वैदिक-भक्ति साधनाश्रम तथा गृह-निर्माण सहकारी संस्था आदि कई संस्थानों के चिरकाल तक प्रधान रहे;
- जिन्होंने एलोपैथिक चिकित्सा द्वारा जनता की शारीरिक, समाज कल्याण कार्यों के माध्यम से जनता की सामाजिक तथा सत्संग एवं साधना के केन्द्र वैदिक-भक्ति साधनाश्रम के द्वारा जनता की आध्यात्मिक प्रगति में योगदान दिया;

उन विशाल हृदय डाक्टर जी की

पुण्य-स्मृति में

उनके परिवार के सदस्यों, बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों
तथा
असंख्य प्रशंसकों की ओर से

प्रयोजक
लीलावती सूरी (धर्मपत्नी)
रोहतक

मौरेशियस देश के जनप्रिय शासक एवं प्रधानमन्त्री; वैदिक-धर्म के निष्ठावान भक्त आर्यभाषा के परम आस्थावान; आर्य-महासम्मेलन अलवर के महामहिम अध्यक्ष

डा० सर शिवसागर रामगुलाम

जन्म : सम्वत् १९५७

भगवान् कृष्ण का मानव को शाश्वत उपदेश

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येथे न त्वं शोचितु मर्हसि ।।

गीता २। २७

अर्थ — जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म भी निश्चित है। इसलिए हे मानव तू बिना उपाय वाले विषय में शोक मत कर।

परन्तु

"हसरत उन गुन्चों में है जो बिन लिखे मुरझा गये"

स्व० रञ्जना देवी एम.ए.

जिसने धन-धान्य से भरपूर घर में जन्म लेकर और स्कूल एवं कालेज की उच्च शिक्षा प्राप्त करके भी निरभिमानता, सादगी एवं सच्चरित्रता को अपने जीवन का अंग बनाकर रखा। जिसने घर के छोटे से छोटे कार्य को प्रसन्नता एवं कुशलता से किया और घर के नौकरों, चाकरों को भी सहानुभूति एवं सद्व्यवहार से प्रसन्न रखा, वह पुण्यात्मा २२ वर्ष की अल्प-आयु में विवाह के कुछ दिन बाद ही ४-१-७७ को इस नश्वर संसार से विदा हो गई।
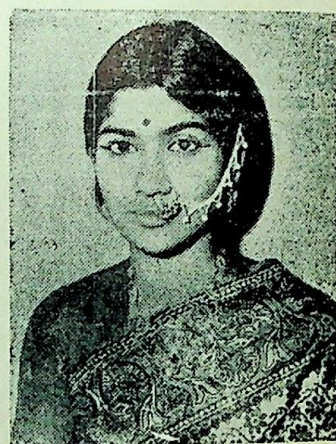
स्व० रञ्जमादेवी एम० ए०

उस बिन खिले फूल की

पुण्य-स्मृति में

उसके सभी बन्धु-बान्धवों, इष्ट-मित्रों और हित चिन्तकों की ओर से

प्रयोजक — **सेठ धर्मप्रकाश बुढ़ाना** (पिता)

श्रीमती बालारानी (माता)

राजस्थान केसरी; देशभक्त; समाज-सेवी; ओजस्वी लेखक एवं वक्ता; सर्वोच्च पत्रकार;
हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम के द्वितीय सर्वाधिकारी

कुँवर चांदकरण शारदा

जन्म : संवत् १९४५ निधन : संवत् २०१४
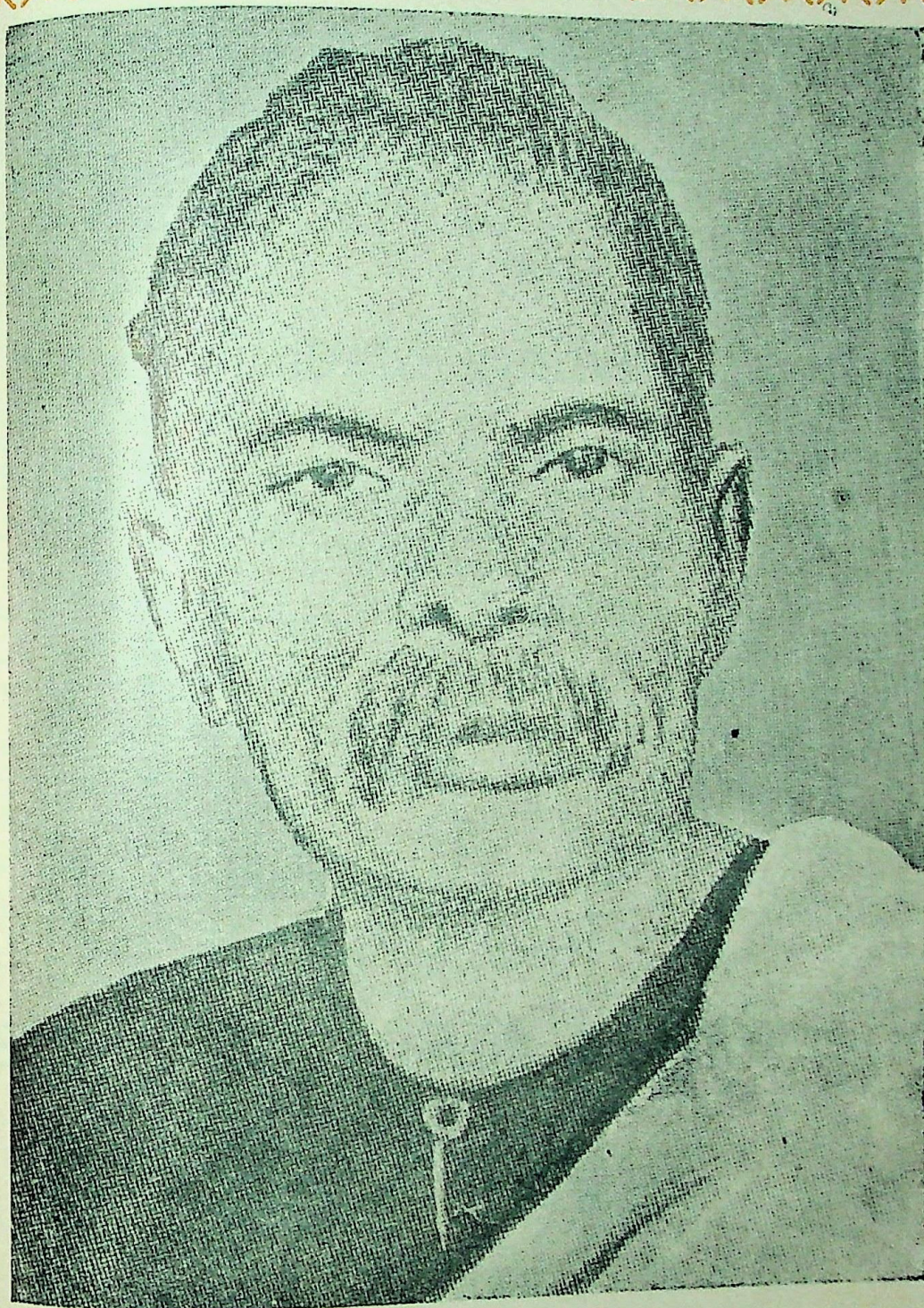
आजन्म ब्रह्मचारी; सर्वस्व त्यागी; मौलिक चिन्तक; कुशल प्रबन्धक; हंसमुख;
भ्रष्टाचार विरोधी; गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलपति

पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ

जन्म : संवत् १९३७ निधन : संवत् २०१५

DIWAKAR GUPTA

PARTNER

Indore Sewing Machine Coy.

Orient Moter and Fans
Rita Sewing Machine,
Usha Sewing Machine.

18 Rajwara Chowk, Indore.

Phone : 31760   Pin - 45004.

With Best Compliments

From

Orient Motor Pump Set & FANS

85 - Jawahar Road,
INDORE

Phone : 377-70
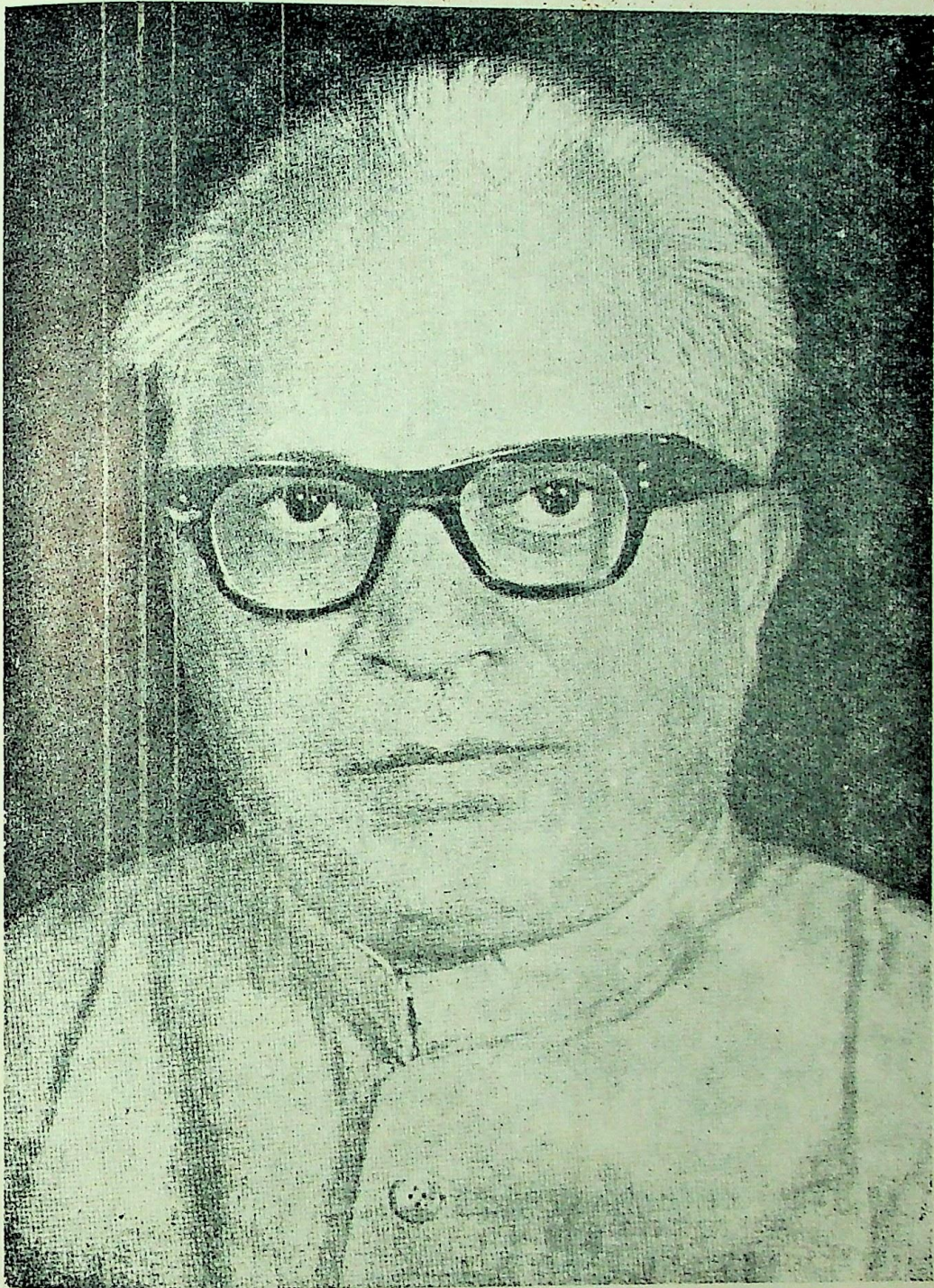
सामवेद भाष्यकार; सार्वदेशिक सभा के वेदानुसन्धान विभाग के पूर्वाध्यक्ष;
उद्‌भट्ट विद्वान्; अमोघ भाषणकर्ता एवं अध्यापक

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

जन्म : संवत् १९७२

को

स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर

शुभकामनाएँ

*
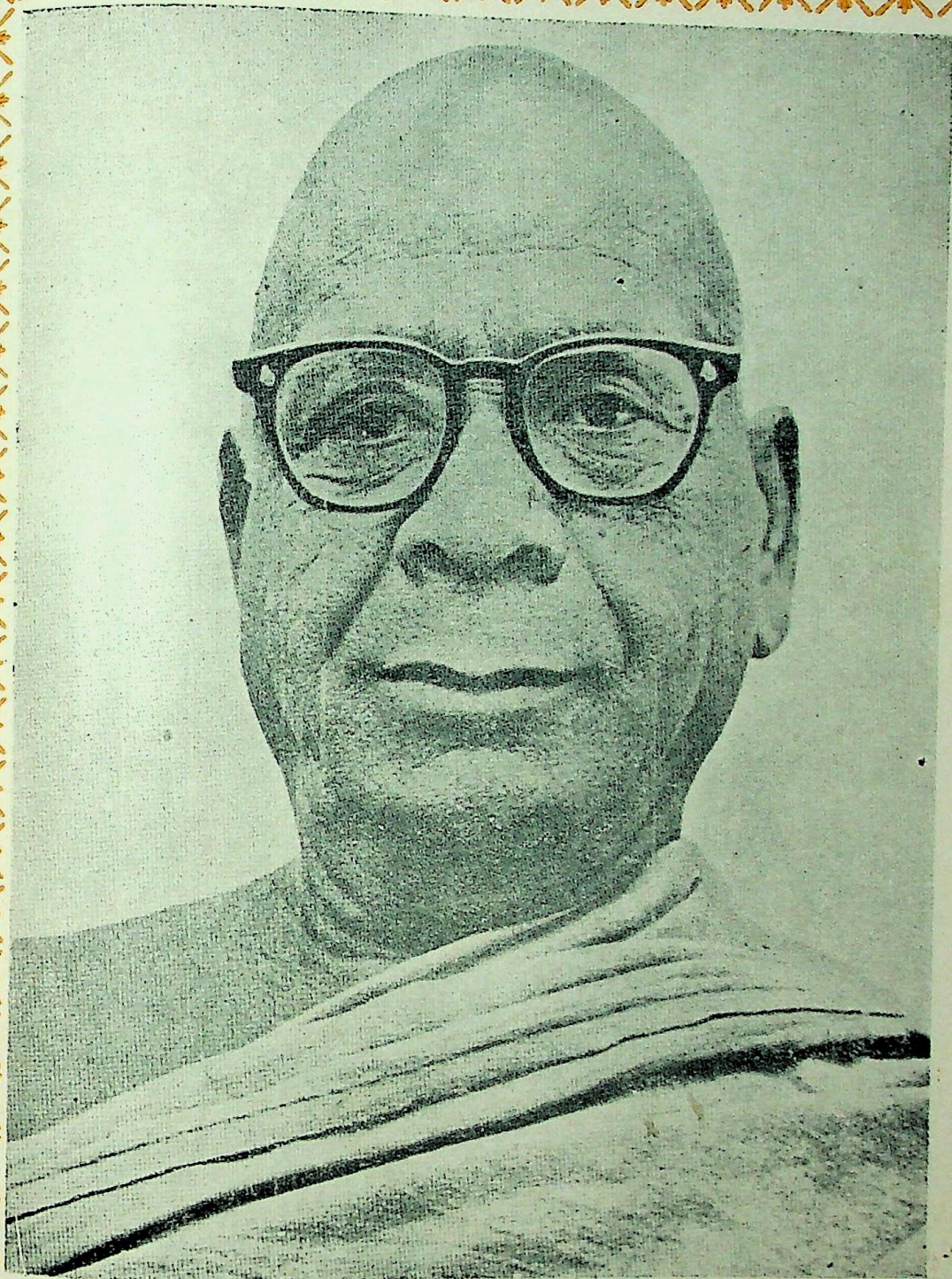
स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन शास्त्र विभागाध्यक्ष; निष्ठावान वैदिक विद्वान परिश्रमी; देश विदेश में वैदिक धर्मप्रचारक; दशाधिक ग्रन्थ रत्नों के प्रणेता

जन्म : संवत् १९६२

अदम्य उत्साही; अद्भुत साहसी; सर्वस्व त्यागी; गुरुकुलों के संस्थापक; प्राचीन भारतीय संस्कृति के खोजकर्ता; 'राष्ट्रीय पंडित' उपाधि से विभूषित

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

जन्म : संवत् १९६८

स्वर्ण-जयन्ती के शुभ अवसर पर शुभकामनाओं सहित

गुरुकुल चाय

खांसी, जुकाम, इन्फ्लूएन्ज़ा, बदहज़मी तथा थकान में मादकता रहित उत्तम पेय।

च्यवनप्राश

चरक संहिता अष्टवर्ग युक्त हिमालय की दिव्य जड़ी बूटियों से तैयार, शरीर की क्षीणता तथा फेफड़ों के लिए प्रसिद्ध आयुर्वेदिक रसायन। बाल, युवक तथा वृद्ध सबके लिये हितकर।
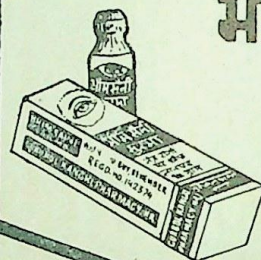
भीमसैनी सुरमा

आँखों को निरोग व शीतल रखता है।

पायोकिल

- दांतों का दर्द व टीस
- मसूढ़ों का फूलना
- मसूढ़ों में खून व पीप आना
- पायोरिया को जड़ से मिटाने के लिए उत्तम आयुर्वेदिक औषधि

agnihotri

गुरुकुल कांगड़ी फ़ार्मेसी
हरिद्वार

स्थानीय विक्रेता से प्राप्त करें

गुरुकुल घरोंडा के आचार्य; आर्य सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान्; भूतपूर्व संसद-सदस्य; हिन्दी-सत्याग्रह संग्राम के सैनानी

स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती

जन्म : सम्वत् १९४७

वेदों के महान विद्वान; शास्त्रार्थ महारथी; उत्साही व्याख्याता; अद्भुत प्रतिभा के धनी; प्रचारक तथा मौलिक वेद-भाष्यकर्ता

स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

जन्म : संवत् १९५२ निधन : संवत् २०२५

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम

ज्वालापुर (हरिद्वार)

की

स्वर्ण जयन्ती समारोह

के शुभ अवसर पर

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी परिवार

की

हार्दिक शुभकामनाएँ

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार के कुछ विशिष्ट उपहार

पञ्जाब केसरी लाला लाजपतराय

डी०ए०वी० कालिज लाहौर के स्तम्भ; मूर्धन्य वकील; कट्टर देशभक्त; निर्भीक शीर्षस्थ नेता; अद्भुत वाक्शक्ति; साहसी; बहुमुखी प्रतिभाशाली

जन्म : संवत् १९२२ निधन : संवत् १९८५
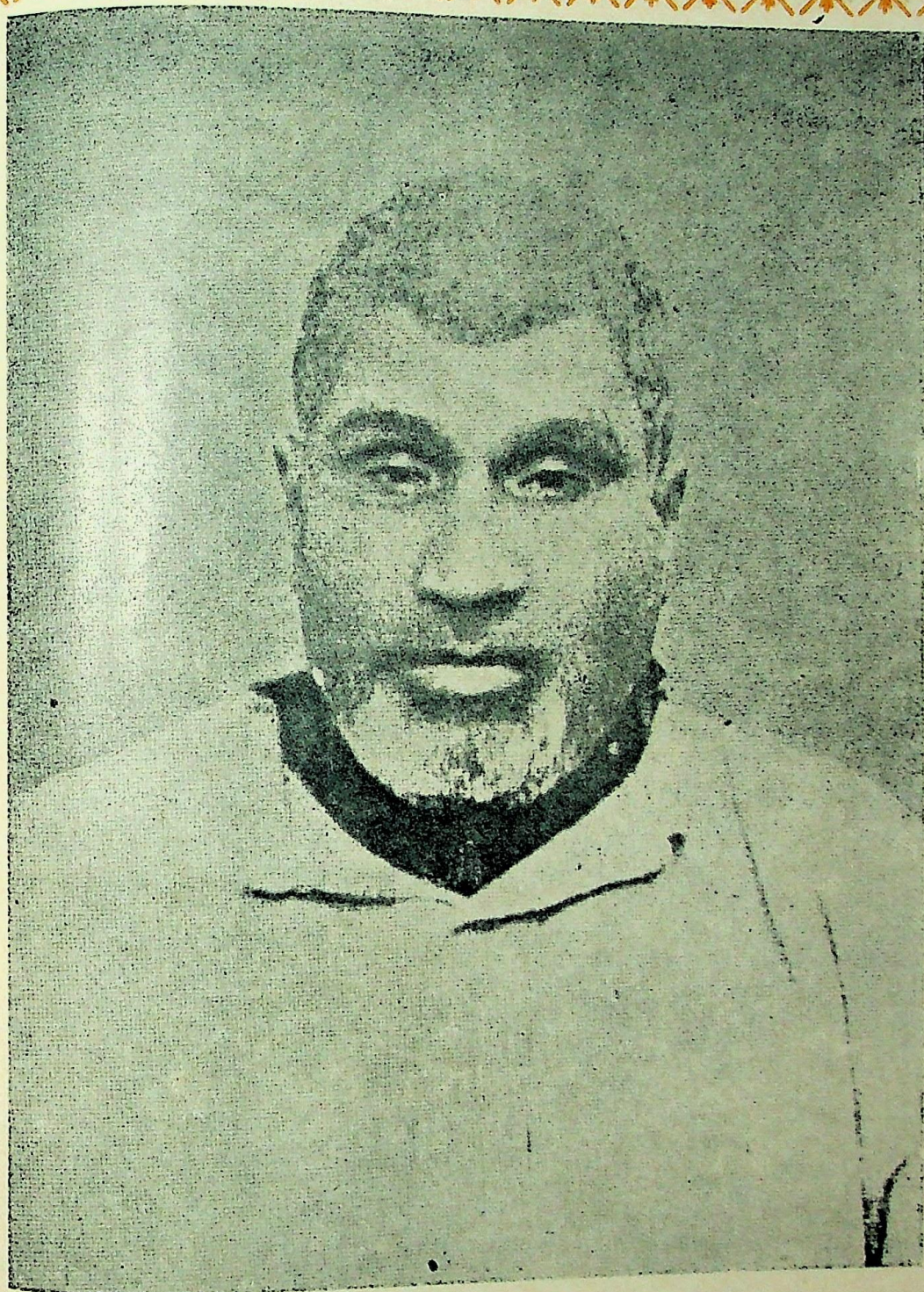
तपः पूतः; आदित्य ब्रह्मचारी; दार्शनिक; गीता मर्मज्ञ; गुरुकुल पाटोहर (रावलपिन्डी) एवं यमुनानगर आश्रम के आचार्य; हिन्दी सत्याग्रह संग्राम के संचालक

स्वामी आत्मानन्द जी

जन्म : संवत् १९३६ निधन : संवत् २०१७

स्व० कैप्टेन हंसराज मौंगा

चार वर्ष की आयु में ही जिनके पिता स्वर्ग सिधार गये उच्च शिक्षा न प्राप्त कर सकने के कारण जो सेना में भरती हो गये। जिन्हें विधि के विधान से सन् १९३९ के विश्वयुद्ध में ईराक भेज दिया गया, जो विपरीत जलवायु के कारण दो वर्ष भी वहां न रह सकें और-हृदय रोग को लेकर भारत वापसि आये। तदनन्तर १६ वर्ष लगातार इसी रोग से संघर्ष करते हुए सन् १९५७ में इस नश्वर देह को त्याग कर स्वर्ग सिधार गये। जिन्होंने ५५ वर्ष के जीवन में एक दिन भी चैन की सांस न ली;
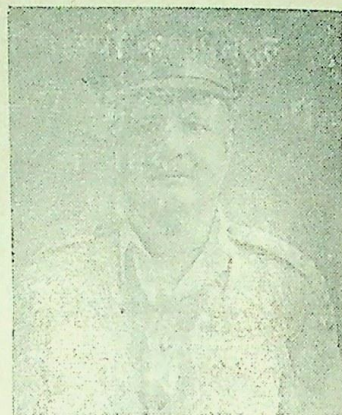
स्व० हंसराज जी मौंगा

उनकी पुण्य-स्मृति में

उनके सभी बन्धु-बान्धवों एवं इष्टमित्रों की ओर से

प्रयोजक—**लीलावती मौंगा** (धर्मपत्नी)

स्व० डा० देवराज मौंगा M. B. B. S.

जिन्होंने शिशु रोगों के विशेषज्ञ होकर २७ वर्ष की आयु में भिलाई स्टील प्लान्ट में सेवा आरम्भ की अभी दस वर्ष भी सेवा न कर पाये थे कि हृदयगति रोध से २० जुलाई सन् १९६७ ई० को परमगति को प्राप्त हो गये। अकाल मृत्यु ग्रस्त उस नवयुवक की

पुण्य-स्मृति में

उस के सभी वन्धु-बान्धवों तथा परिवार के सदस्यों की ओर से
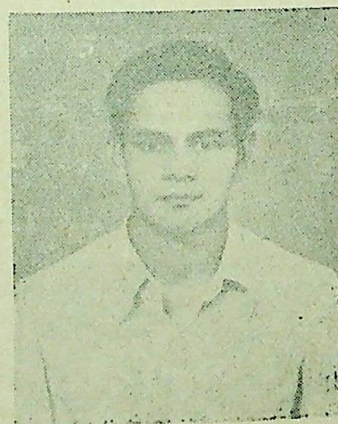
स्व० डा० देवराज मौंगा

प्रयोजक—**लीलावती मौंगा** (माता)

बलराज मौंगा (छोटा भाई), सीता मौंगा (धर्मपत्नी छोटे भाई की)
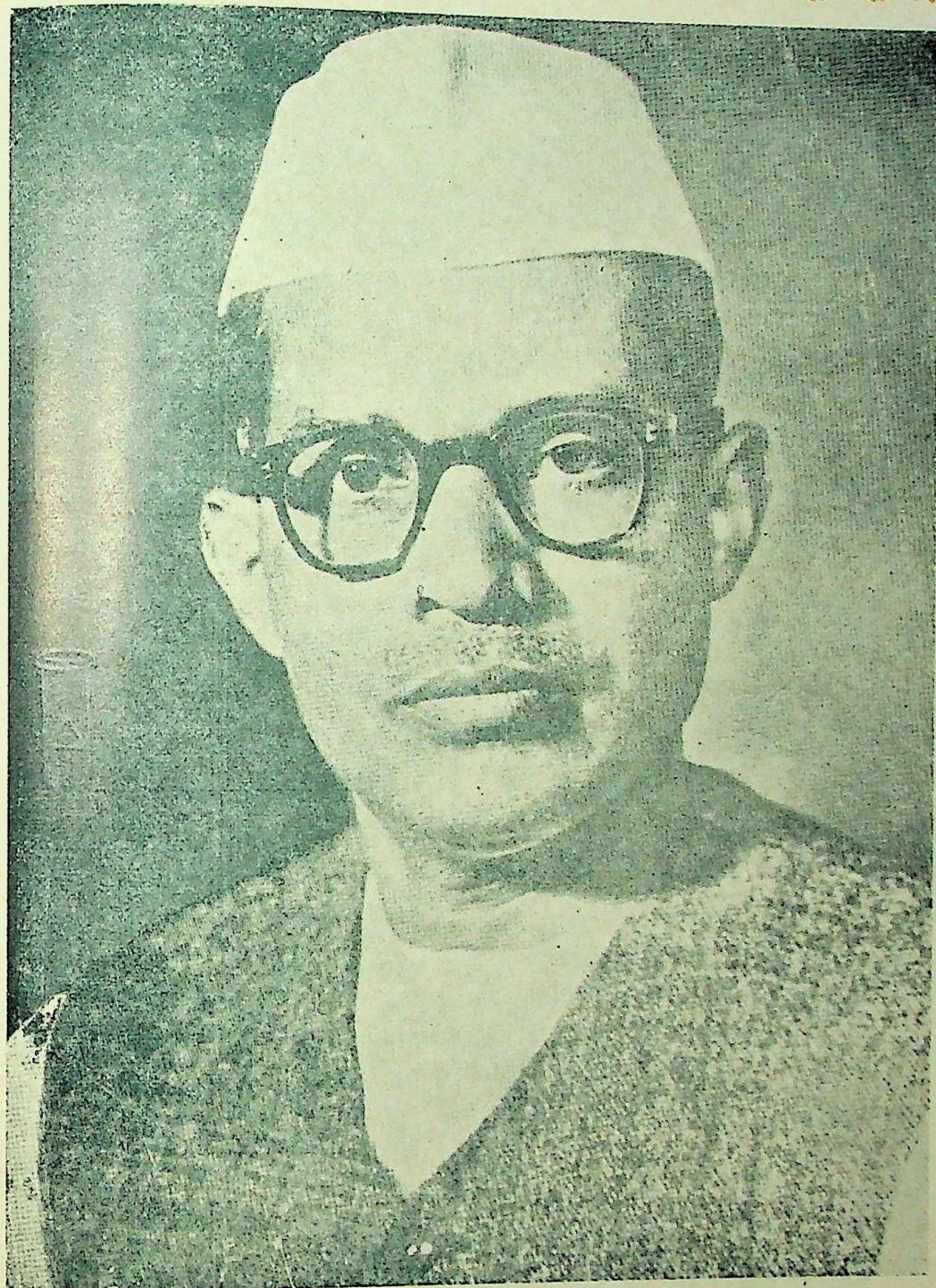
दक्षिण-भारत में आर्य-समाज के अग्रदूत; समस्त जीवन अर्पणकर्ता; साहसी; आर्य-संस्थाओं के प्राण; प्रबन्ध विशेषज्ञ; नवयुवकों के हृदय सम्राट्

पं० नरेन्द्र (हैदराबाद)

जन्म : सम्वत् १९६३

अदम उत्साही; अद्भुत साहसी; कर्मठ कार्यकर्ता; आर्यसमाज संगठन के सूत्रधार एवं अधिकृत प्रस्तोता; शिरोमणि सार्वदेशिक सभा के प्रधान

लाला रामगोपाल जी शालवाले

जन्म : सम्वत् १९६४

To

Arya Vanprasth & Sanyas Ashram

Jwalapur, Dt. Saharanpur (U. P.)

On the occasion of their

Golden Jubilee

From

Sehgal Industries

High class Rubber goods Manufacturers
Specialists in Hawai Chappals
& Straps

ATTARI BAZAR JULLUNDUR CITY.

PIN : 144002

Phones

Residence : 75131 *Office : 74485* *Factory : 75053*

भारत के उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश; अद्भुत प्रशासक; डी.ए.वी. कालेज के अध्यक्ष; निष्ठावान् धर्मप्रेमी; टंकारा स्मारक के प्राण

न्यायमूर्ति मेहरचन्द महाजन

जन्म : संवत् १९४६ निधन : संवत् २०२४

To

Arya Vanprasth & Sanyas Ashram

Jwalapur, Dt. Saharanpur (U. P.)

On the occasion of their

Golden Jubilee

Gram : 'Tulakothi'
(Howrah)

Phone : 66-2838
66-3846

Mohan Lal Satya Narayan

Processors and Stockists of

COTTON WASTE HARD & SOFT

Head Office :

113, Sree Arabindu Road

Salkia, Howrah.